

शोध दिशा

ISSN 0975-735X

शोध अंक 21

जनवरी-मार्च 2013

200 रुपए

संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ०प्र०)
फोन : 01342-263232, 07838090732
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वेब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

दिल्ली एन०सी०आर०
अनुभूति
सी-106, शिव कला
बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा
फोन : 09952070700

हरियाणा

डॉ० मीना अग्रवाल
एफ-403, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फोन : 0124-4076565, 07838090237

डॉ० हरिशरण वर्मा

एफ-120, सेक्टर 10
डी०एल०एफ० (के०एल० मेहता स्कूल के पास)
फरीदाबाद (हरियाणा)

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक

डॉ० मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक

डॉ० शंकर क्षेम

उपसंपादक

डॉ० रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक

गीतिका गोयल/ डॉ० अनुभूति

उपसंपादक

डॉ० अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता

अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता

ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

शुल्क

आजीवन :

व्यक्तिगत : तीन हजार रुपए

संस्थागत : चार हजार रुपए

वार्षिक शुल्क : पाँच सौ रुपए

यह प्रति : दो सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी आफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

- डॉ० आर.पी.सिंह (पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय) प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ०प्र०)
- डॉ० अशोक चक्रधर, उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान
- डॉ० हरिमोहन, प्रोफेसर हिंदी विभाग, के०एम०मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
- डॉ० आदित्य प्रचंडिया, प्रोफेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग, आगरा (उ०प्र०)
- डॉ० रामसजन पांडेय, प्रोफेसर हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
- डॉ० दामोदर खड्गसे, कार्याध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई (महा०)
- डॉ० आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
- डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
- डॉ० पद्मा पाटिल, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा०)
- डॉ० माया टाक, प्रोफेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० अनिलकुमार जैन, प्रोफेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० हनुमानप्रसाद शुक्ल, प्रोफेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० बाबूराम, एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र
- डॉ० मुकेश गर्ग, रीडर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ० जितेंद्र वत्स, प्रोफेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
- डॉ० दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
- डॉ० शाहबुद्दीन शेख, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा०, औरंगाबाद (महा०)
- डॉ० महेशचंद्र, रीडर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
- डॉ० हरeram पाठक, अध्यक्ष हिंदी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई (तिनसुकिया) असम
- डॉ० शंभुनाथ तिवारी, रीडर हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ०प्र०)
- डॉ० श्यामधर तिवारी, प्रोफेसर हि०वि०, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
- डॉ० प्रवीणकुमार वर्मा, रीडर हिंदी विभाग, सनातन धर्म कॉलेज, पलवल (हरियाणा)
- डॉ० संतोषकुमार गौड़, रीडर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
- डॉ० महेश दिवाकर, अध्यक्ष हिंदी विभाग, गुलाबसिंह कॉलेज, चाँदपुर (उ०प्र०)
- डॉ० घनश्याम अरोरा, पूर्व रीडर इतिहास विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ०प्र०)
- डॉ० सुधारानी सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता हिंदी विभाग, शहीद मंगल पांडेय राजकीय महिला स्ना० महा०, मेरठ

आजीवन सदस्य

डॉ० रामानंद शर्मा

अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिंदू (पी०जी०) कालेज
9, जिगर कालोनी, मुरादाबाद (उ०प्र०)

डॉ० मधुलिका तिवारी

रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एल०आर० पी०जी० कॉलेज, साहिबाबाद
गाधियाबाद (उ०प्र०)

श्री हरिराम 'पथिक'

स्नेहगंगा, विष्णुधाम कालोनी,
गली नं० 3, न्यू माधोनगर, सहारनपुर (उ०प्र०)

डॉ० वंदना सेमल्टे

टी०एफ० 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स,
गांधीनगर, गाधियाबाद 201001

डॉ० मनमोहन शुक्ल

147, मायापुरी, आवास योजना
झुँसी, इलाहाबाद 211019

डॉ० अश्विनीकुमार 'विष्णु'

अध्यक्ष अँग्रेजी विभाग
सीताबाई आर्ट्स कालेज, अकोला (महा०)

डॉ० शहाबुद्दीन नियाज़ मुहम्मद शेख

(प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा०औरंगाबाद)
अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ
78/484 सिविल हडको,
अहमदनगर 414003 (महा०)
09850119687

डॉ० लियाक़त मियाँ भाई शेख

अखिलेश नगर, प्लॉट क्र० 11
नए बस स्टेंड के पास,
गंगापुर, (औरंगाबाद) महा०
09423933402

प्रो० शेख मुहम्मद शाकिर शेख बशीर

अध्यक्ष हिंदी विभाग
पूना कालेज ऑफ आर्ट्स, कामर्स एंड साइंस
कैंप, पुणे 411201 (महा०)
09423017017

डॉ० अशोक द्रौपद गायकवाड़

'कृतज्ञता', अवधूत पार्क, आरोह निसर्ग के पास
कादंबरी नगर क्रमांक 1 के पास
पाइप लाइन रोड, सावेडी
अहमदनगर (महा०) 414003
09822941330

प्रा० दत्तात्रय माधवराव टिलेकर

द्वारा संतोष मेडिकल, साई प्रेस्टिज, फ्लैट नं० 13
पाटील अली, ओतूर
तह० जुन्नर, ज़िला पुणे (महा०) 412409
09860229544

डॉ० मजीद मुनीर शेख

ग्राम व पो० साष्ट, पिंपल गाँव,
(वाया अंकुशनगर) तह० अंबड
षिला जालना (महा०) 431212
09765944586

श्री अरुणकुमार भगत

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
'माध्यम' सी-56, ए/5, सेक्टर-62
नोएडा 201301 (उ०प्र०)

डॉ० मेहमूद रसूल पटेल

दारुल अमन, काशीनगर,
जालना रोड, बीड़ (महा०)

डॉ० भरत त्र्यंबक शेणकर

द्वारा होटल जय महाराष्ट्र
ग्राम, पो० व तह० अकोले
षिला अहमदनगर (महा०) 422601
09423164521

डॉ० पोपट विठ्ठल कोटमे

फ्लैट नं० 5, सत्यसंगम
कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी
श्री जयनगर, इंदिरानगर, नासिक (महा०) 422006
09850760866

प्रा० अनंत नानाजी केदारें

5 पार्वती अपार्टमेंट, अयोध्या कॉलोनी
दाते नगर, गंगापुर रोड
नासिक 422005 (महा०)

डॉ० शोभा साहेबराव राणे

17 स्वर समृद्धि अपार्टमेंट
नंदनवन लॉन के सामने
आशाराम बापू आश्रम मार्ग, सावरकर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक (महा०) 422013
09422292275

डॉ० श्रीमती विजयालक्ष्मी नारायण रामटेके

सुशीला सोसायटी, प्लॉट क्र० 5
अजय जिम के पीछे, तेलरांधे के सामने
जरी पटका रिंगरोड, जरी पटका पोस्ट ऑफिस
नागपुर 440014 (महा०)
09850861613

डॉ० मंजूर चाँदभाई सय्यद

‘गुलसिता’ 223 औदुंबरनगर, अमृतधाम
पंचवटी, नासिक 422004 (महा०)
09822991516

प्रा० (श्रीमती) ऐनूर अजीजभाई इनामदार

स्वामी समर्थनगर, राजूरी रोड
कोल्हार 413710
तहसील राहाता, जिला अहमदनगर (महा०)
09011449636

डॉ० एस०एन० देवरे

प्लॉट नं० 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा०) 424002

डॉ० अर्चना वालिया

286, जौनपुर दक्षिण, स्नेहकुंज कालोनी,
कोटद्वार (गढ़वाल) उत्तराखंड 246149

डॉ० विपिनकुमार गिरि

पुराना माधव नगर, भारद्वाज गली, सहारनपुर (उ०प्र०)
श्री हेमांशु शर्मा
हिंदी विभाग, साईदास ए०एस०सी० सी०से० स्कूल
पटेल चौक, जालंधर शहर (पंजाब)

प्राचार्या

आर०बी०डी० महिला महाविद्यालय
बिजनौर (उ०प्र०) 246701

प्राचार्या

कमला नेहरू कालेज फॉर वुमैन
फगवाड़ा (कपूरथला) पंजाब

प्राचार्या,

कन्या महाविद्यालय
विद्यालय मार्ग, जालंधर (पंजाब) 144004

डॉ० विद्या चौधरी

मिर्जापुर फार्म, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136119

डॉ० विजय इंदु

1608 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 10 ए, गुडगाँव (हरियाणा) 122001

डॉ० सुधरानी सिंह

सी-54, सेक्टर-3, सुशांत सिटी,
दिल्ली बाईपास, मेरठ (उ०प्र०)

डॉ० राजेंद्र मिश्र

14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 252730 (म०प्र०)

डॉ० स्मृति शुक्ला

ए-16 पंचशील नगर, नर्मदा रोड, जबलपुर (म०प्र०)

डॉ० सुरेंद्र यादव

301 नवदीप अपार्टमेंट, 7 शंकर नगर (साकेत),
इंदौर 452018

डॉ० प्रेमव्रत तिवारी

सरस्वती सदन, बेतियाहाता, गोरखपुर (उ०प्र०)

प्रो० डॉ० चंद्रकांत मिसाल

हिंदी विभाग,
एस०एन०डी०टी० वुमन विश्वविद्यालय,
कर्वे रोड, पुणे 411038 (महाराष्ट्र)

सुश्री शारदा बी. जावरे

ओमकार, समृद्धि डेपलपर, फ्लेट क्र० 402
प्लॉट नं० 26, सर्व क्र० 137/1 ए,
बराटे स्कूल के पास, वारजे, मालवाडी,
पुणे 411058 (महाराष्ट्र)
08805616654

सुश्री कामिनी अशोक न्यायाधीश

661 अरुणोदय कालोनी, सिडको एन-5

औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

09975773345

प्रा. अशोक शामराव मराठे

116, सखाराम नगर,

पेरेजपुर रोड, साक्री, तह. साक्री,

षिला धुले 424304 (महाराष्ट्र)

प्रा. पंजाबी ममता नानकचंद

19/20, त्रिमूर्ति नगर, मोरे अस्पताल के पास,

साक्री, तहसील साक्री, षिला धुले 424304

प्रा. करुणा दत्तात्रय अहिरे

व्ही.यू.पाटील कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,

साक्री, तह. साक्री, षिला धुले 424304

प्रा. डॉ. प्रमोद गोकुळ पाटील

मु.पो. मोराणे (प्र.ल.)

तह. षिला धुले 424001 (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ. अभयकुमार रमेश खैरनार

मु. पो. जुनवणे, तह. जि.धुले (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ. संजय विक्रम ढोढरे

7, मोतीराम नगर, बाडीभोकर रोड,

देवपूर, धुले 424002 (महाराष्ट्र)

प्रा. उषा पुंडलिक शिरोळे

द्वारा श्री शशिकांत हरी बागडे

गुरुकृपा हास्पिटल, डाक पारीपत्यदार

सावतानगर मालेगाँव, तह-मालेगाँव

षिला नासिक (महा.)

प्रा. डॉ. अशफाक सिकलगर

जीएफ-102 ताज अपार्टमेंट,

चालीसगाँव रोड, धुले (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ. महेन्द्रसिंह रघुवंशी

सरस्वती नगर, प्लॉट नं. 10,

वाघेश्वरी मंदिर के पास, नंदुरबार 425412

डॉ. सुषमा कोंडे

81/ए, प्लॉट नं. 9/ए,

गिरिदर्शन हाउसिंग सोसायटी, बानेर रोड

पुणे 411007 (महाराष्ट्र)

09822848464

प्रा. डॉ. योगेश गोकुळ पाटील

प्लॉट नं. 12, नयना सोसायटी,

नकाणे रोड, देवपूर, धुले 424002

प्रा. डॉ. मंजू तरडेजा (सिंघाणी)

ब्लॉक नं. आर-10, रूम नं. 10,

कुमार नगर, साक्री रोड, धुले 424001

प्रा. डॉ. चंद्रमादेवी पाटील

59, धनदाई नगर, गोंदुर रोड, वलवाडी,

देवपूर, धुले 424005 (महाराष्ट्र)

डॉ. संजयकुमार नंदलाल शर्मा

38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,

तलोदा, जि. नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

श्रीमती वर्षा सुभाषचंद्र देशमुख

बी-6, चंद्रवेल अपार्टमेंट, गोविंदनगर होटेल

प्रकाश्या भागे, मुंबई नाका,

नासिक (महाराष्ट्र) 422010

डॉ. देवकीनंदन महाजन

1 टेलीफोन कालोनी, धुले रोड

अमलनेर (जलगाँव) महाराष्ट्र

डॉ. कल्पना राजेंद्र पाटील

38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,

तलोदा, जि. नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

प्रा. डॉ. रामचंद्र माली

अध्यक्ष हिंदी विभाग, क०वा०वि० महाविद्यालय,

नवापुर, षिला नंदुरबार (महाराष्ट्र)

डॉ. रेखा वसंत पाटील

सीतामाई नगर, चालिसगाँव

जिला-जलगाँव (महा.) 424101

प्राचार्य

विद्यार्वाधिनी महाविद्यालय, धुले (महा.) 424001

डॉ. हेमलता कांचनकर

43 नंदनवन कालोनी (कैट), औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

09730202528

डॉ. पूनम भारद्वाज

17 प्रेम विहार, मुजफ्फरनगर 251001

09997100697

श्रीमती अल्पना

पत्नी श्री राजीव नागर
द्वारा श्री अरुण कपूर, III एच 288 नेहरू नगर
पवन सिनेमा के पीछे, राकेश मार्ग
गाजियाबाद 201001
मो० 09971567738

सुश्री नेहा संदीप घोरपड़े

द्वारा सुश्री सुनीता पवार
फ्लेट नं० 404, प्रकाश मेमाराइज
एस नं० 73, दूध डेयरी, पुणे-411046

सुश्री निर्मला पुरुषोत्तम तोमर

फ्लेट नं० 12, एस नं० 137/2
वारजे मलवाडी, पुणे 411058
08087612123

प्रा० शिंदे नवनाथ सर्जेराव

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
कडलास रोड, सांगोला (सोलानुर) 413307
09763602304

डॉ० ज्योतिसिंह

213 अनूपनगर
सी०एच०एल० अपोलो हास्पिटल के सामने
ए०बी० रोड, इंदौर 452008 (म०प्र०)
09926300355

सुश्री मीनल वार्वे

बी-8, ड्रीम घरकुल,
एम.एस.ई.बी. कॉलोनी के पास, शिवाजी नगर,
जेल रोड, नासिक रोड (महाराष्ट्र)

Dr. V. Jayalakshmi

Mathura, Plot No. 38
5th Cross Street, Gokul Nagar
Preumbakkam
Chennai-600100

प्रा० ईश्वर पदमसिंग ठाकुर

जनशक्ति कालोनी
रिंग रोड, फैजपुर
तहसील यावल (जलगाँव)

सुश्री भारती मधुकर पाटील

मु०पो० सावलदे, तहसील शिरपूर
जिला धुले (महा०)

डॉ० सुचित्रा मलिक

37 गांधी आश्रम, विष्णु गार्डन
कनखल (हरिद्वार) उत्तराखंड

डॉ० वंदना श्रीवास्तव

के 83 सी आशियाना
लखनऊ 226012
09415917170

प्राचार्य

शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई
कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किला भवन, इंदौर (म.प्र.)

डॉ० चंद्रा तलेरा जैन

जी-17, रेडियो कालोनी
इंदौर (म०प्र०) 452001
09425944773

डॉ० वंदना अग्निहोत्री

194 सुखदेव नगर, एरोडूम रोड
इंदौर (म०प्र०) 452001
09926477787

डॉ० चंद्रकिरण अग्निहोत्री

108, रेडियो कालोनी
इंदौर (म०प्र०) 452001

डॉ० जुबैदा हाशिम मुल्लाँ

बैतुल हाशमी, म०नं० 152, ताजनगर
हुबली 580031 (कर्नाटक)

प्रो० दीपक विश्वासराव पाटील

मुकाम पोस्ट सुन्दने
निकट कलाविश्व कंप्यूटर सेंटर
तहसील जिला धुले
घुलेवाडी, संगमनेर (महा०) 424002
099923811609

संपादकीय

प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन

आज मैं एक ऐसे साहित्य-साधक और उनकी सद्यःप्रकाशित पुस्तक 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' के संबंध में चर्चा करना चाहता हूँ, जो विगत आधी शताब्दी से हिंदी के महान् कथाकार प्रेमचंद के साहित्य और उनके जीवन के अनेक छिपे और अनछपे तथ्यों से परिचित कराते आ रहे हैं। वे हैं हिंदी के महान साधक और आचार्य डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका।

वास्तव में डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका के संबंध में सोचने-विचारने तथा उनके साहित्यिक कर्म की दीर्घ साधना का दिग्दर्शन करने पर जो चित्र सामने आता है, वह है आधी शताब्दी तक हिंदी कथा-सम्राट् प्रेमचंद के अटूट-अडिग शोधकर्मी आलोचक का चित्र। एम॰ए॰ (1961) करने के बाद उन्होंने प्रेमचंद के अध्ययन-अनुसंधान का जो रास्ता पकड़ा, वे उसी के पथिक बनकर आज तक उसी रास्ते पर चलते आ रहे हैं।

प्रेमचंद पर उनकी पहली कृति थी 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान' जो दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रेमचंद पर किया गया पहला शोध-प्रबंध था और जिसने प्रेमचंद के उपन्यासों की प्रकाशन-तिथियों, उनकी सृजन-प्रक्रिया से लेकर उपन्यासों की शिल्प-रचना के संबंध में नई अवधारणाएँ प्रस्तुत कीं और कुछ पुराने अतार्किक एवं तथ्यहीन निष्कर्षों का खंडन किया। इस शोधपरक आलोचना के प्रकाशन से गोयनका जी को प्रेमचंद-आलोचक की मान्यता मिली, परंतु वे रुके नहीं और प्रेमचंद विश्वकोश (पाँच खंड) की वृहद् योजना पर लग गए। योजना के आरंभ में प्रेमचंद के बड़े पुत्र श्रीपतराय तथा डॉ॰ गंगाप्रसाद विमल का उन्हें सहयोग मिला, किंतु दोनों ने ही उन्हें मझधार में छोड़ दिया; फिर भी वे डटे रहे और हजारों घंटों की कर्मशीलता एवं हजारों पत्रों को लिखते-लिखते उनका लक्ष्य पूरा हुआ और वर्ष 1987 में प्रेमचंद विश्वकोश के दो आरंभिक खंड प्रकाशित हुए। प्रेमचंद के छोटे पुत्र अमृतराय ने नई दिल्ली के भव्य सभागार फिक्की में इसका लोकार्पण किया। इस विश्वकोश से प्रेमचंद के जीवन और साहित्य के विषय में अनेक अज्ञात एवं दुर्लभ प्रसंगों, तथ्यों एवं रचनाओं का उद्घाटन हुआ तथा हिंदी-संसार ने उन्हें प्रेमचंद के बॉसवेल के रूप में स्वीकार कर लिया। उस समय जैनेंद्रकुमार, प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, मन्मथनाथ गुप्त, विष्णु प्रभाकर, चंद्रकांत वादिवडेकर, गोपालराय, विवेकीराय, इंद्रनाथ मदान, जगदीश चतुर्वेदी, मृणाल पांडेय, कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, विनय आदि अनेक प्रतिष्ठित लेखकों ने 'प्रेमचंद विश्वकोश' का विवेचन किया और

अधिकांश ने माना कि यह प्रेमचंद शताब्दी वर्ष की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

इस प्रकार 'प्रेमचंद विश्वकोश' ने प्रेमचंद के अध्ययन की दिशा में तथा उनके पूर्वाग्रहरहित मूल्यांकन एवं उनके योगदान के संबंध में नई दिशाएँ खोलीं और उनकी ऐसी मूर्ति स्थापित की, जो पाठकों-विद्वानों-प्रोफेसर्स की दृष्टि में ओझल थी। इस प्रतिष्ठा और नई खोजों से हिंदी का प्रगतिशील गुट बहुत बौखलाया और गोयनका जी पर तरह-तरह के आरोपों का द्वार खुल गया। उन्हें सांप्रदायिक होने के आरोप लगाकर साहित्यिक बिरादरी से बहिष्कृत करने का भी प्रयत्न हुआ, किंतु इन आरोपों के मूल में कोई तथ्य-तर्क नहीं था, इसलिए ये आरोप एक विशेष गुट तक ही सीमित होकर रह गए।

इसके उपरान्त भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली से उनकी दो पुस्तकें आईं—'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' (दो खंड) तथा 'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियाँ'। इनको भी प्रेमचंद विश्वकोश जैसी सराहना तथा स्वीकृति मिली, क्योंकि भारत के साहित्यिक इतिहास में यह पहली घटना थी, जब एक शोधकर्मी ने प्रेमचंद जैसे विश्वविख्यात लेखक की लगभग 1400 पृष्ठों की अज्ञात, अप्राप्य एवं दुर्लभ सामग्री को खोजकर तथा सैकड़ों पृष्ठों की उर्दू रचनाओं को हिंदी में प्रस्तुत करके एक इतिहास रचा था।

प्रसिद्ध समीक्षक और आलोचक प्रो० सुधीश पचौरी ने उस समय नवभारत टाइम्स में लिखा था कि गोयनका जी ने इस विपुल सामग्री को प्रकाशित करके प्रगतिशीलों के सम्मुख संकट उत्पन्न कर दिया है। इस अप्राप्य सामग्री ने प्रेमचंद की कुछ ऐसी संवेदनाओं तथा विचारों से अवगत कराया, जिससे साहित्य-संसार अवगत नहीं था। यह कुछ ऐसा ही कार्य था जैसे कोई इतिहासकार अथवा आर्कॉलॉजिस्ट ज़मीन खोदकर कोई नई संस्कृति तथा किसी खोई अज्ञात संस्कृति का उद्घाटन करे। किसी शोधकर्मी लेखक का यह कार्य ऐसा ही था, जिसका खूब स्वागत हुआ। यदि कष्ट हुआ तो प्रगतिशीलों को, क्योंकि प्रेमचंद पर उनकी सारी मान्यताएँ इस सामग्री ने ध्वस्त कर दीं। डॉ० शिवकुमार मिश्र ने वर्ष 1981 में अमृतसर की एक गोष्ठी में कहा था कि हमारी तकलीफ़ यह है कि प्रेमचंद पर गोयनका ने काम किया, हमने क्यों नहीं किया।

इस विरोधी वातावरण के बीच प्रेमचंद पर तथा अन्य लेखकों पर गोयनका जी की पुस्तकें आती रहीं। उनकी यशपाल, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, विष्णु प्रभाकर, मन्मथनाथ गुप्त, प्रभाकर माचवे, जगदीश चतुर्वेदी, रामकुमार वर्मा, मंजुल भगत, बालशौरि रेड्डी आदि पर पुस्तकें तथा संचयन आ चुके हैं। उन्होंने गांधी जी की पत्रकारिता पर 'गांधी पत्रकारिता के प्रतिमान' तथा हिंदी के प्रवासी साहित्य पर 'हिंदी का प्रवासी साहित्य' लिखकर भी सर्वथा उपेक्षित लेकिन महत्त्वपूर्ण विषयों पर पुस्तक लिखने की पहल की।

महात्मा गांधी की पत्रकारिता को तो लोग भूल ही गए थे, जबकि गांधी को महात्मा तथा राष्ट्रपिता बनाने में उनकी पत्रकारिता का योगदान कम नहीं है। इसी प्रकार विदेशों में रहने वाले भारतीयों तथा भारतवासियों ने विपुल मात्रा में हिंदी में साहित्य की रचना की है और वे निरंतर साहित्य-सृजन कर रहे हैं। गोयनका जी ने विगत 30-32 वर्षों में प्रवासी साहित्य को प्रतिष्ठित

करने, उसे मुख्य धारा का अंग बनाने, पाठ्यक्रमों में लगवाने तथा उसके प्रकाशन में जो कार्य किए हैं, उसकी प्रामाणिक जानकारी इस पुस्तक से मिल जाती है। असल में हिंदी के प्रवासी साहित्य पर यह पहली पुस्तक है, जो मॉरिशस, अमेरिका, इंग्लैंड, फिजी, सूरीनाम आदि देशों में रचे गए हिंदी-साहित्य के व्यापक वाङ्मय के परिचय के साथ उनका मूल्यांकन करती है। विदेशों से हिंदी के अनेक लेखकों के संबंध बने, किंतु गोयनका जी ही एकमात्र ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने प्रवासी साहित्य के प्रकाशन तथा मूल्यांकन के कार्य किए और अब भी कर रहे हैं। उनके कार्यों से देश में प्रवासी साहित्य के प्रति उत्सुकता और आकर्षण बढ़ा है।

प्रेमचंद पर इधर उनकी दो महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं, जो प्रेमचंद-संबंधी हमारे ज्ञान को प्रामाणिक रूप से विकसित करती हैं और प्रेमचंद-आलोचना की जड़ता को तोड़ती हैं। पहली कृति है, 'प्रेमचंद कहानी रचनावली', जिसे छः खंडों में साहित्य अकादमी नई दिल्ली ने वर्ष 2010 में प्रकाशित किया। यह प्रेमचंद की कहानियों की पहली रचनावली है, जो उनकी 301 कहानियों को कालक्रम में प्रस्तुत करती है, प्रत्येक कहानी का प्रकाशन-समय तय करती है, उसके हिंदी-उर्दू रूप तथा कहानी-संग्रहों में संकलित कहानियों का पूर्ण विवरण देती है और कहानी के पहले पाठ को प्रस्तुत करती है। 'प्रेमचंद : कहानी रचनावली' के प्रत्येक खंड में 40-50 पृष्ठों की भूमिकाएँ हैं और उपलब्ध 298 कहानियों को छः खंडों में इस प्रकार रखा गया है—पहला खंड 1908 से 1915 तक 50 कहानियाँ, दूसरा खंड 1916 से 1921 तक 49 कहानियाँ, तीसरा खंड 1922 से 1925 तक 52 कहानियाँ, चौथा खंड 1926 से 1928 तक 44 कहानियाँ, पाँचवाँ खंड 1929 से 1931 तक 44 कहानियाँ, छठा खंड 1932 से 1936 तक 59 कहानियाँ। इनमें वे सब कहानियाँ हैं, जो 'मानसरोवर' के आठों खंडों, 'गुप्तधन' के दो खंडों तथा 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' में संकलित हैं, किंतु रचनावली में वे प्रकाशन के कालानुसार संकलित की गई हैं। 'प्रेमचंद : कहानी रचनावली' के छह खंडों की भूमिकाएँ भी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि प्रेमचंद के कहानीकार को लेकर अनेक नवीन तथ्यों का उद्घाटन हुआ है तथा प्रचलित धारणाओं की परीक्षा करके उनके सत्यासत्य तक पहुँचा गया है।

इस कहानी रचनावली के प्रकाशन के बाद वर्ष 2012 के अंत में गोयनका जी की नई किताब 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' का प्रकाशन हुआ। प्रेमचंद कहानी रचनावली के समान प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन भी पहली बार हुआ है, क्योंकि मानसरोवर के आठ खंडों की 203 कहानियों के आधार पर हुए अध्ययन इसलिए कालक्रम से नहीं हो पाए, क्योंकि 'मानसरोवर' में संकलित कहानियाँ कालक्रमानुसार नहीं की गईं। प्रेमचंद ने स्वयं 'मानसरोवर' के दो खंड प्रकाशित किए थे, किंतु उन्होंने तथा उनके प्रकाशक पुत्रों ने कहानियों को संकलित करते समय उनके कालक्रम का ध्यान नहीं रखा और उनकी उपेक्षा से कहानियों का प्रकाशन-क्रम इधर-उधर हो गया और एकदम अराजकता उत्पन्न हो गई। अतः गोयनकाजी का प्रेमचंद की कहानियों का यह कालक्रमानुसार अध्ययन पहली बार किया गया वैज्ञानिक अध्ययन है, जो कहानियों को उनके रचना-क्रम में तथा उनके पूर्वापर संबंधों को ध्यान में रखकर उनकी संवेदना एवं लेखकीय सरोकारों के मर्म की विवेचना करता है। प्रेमचंद की कहानियों के इस अध्ययन में पहली बार उनकी उपलब्ध 298 कहानियों

का विवेचन हुआ है, कहानी अच्छी हो या बुरी श्रेष्ठ हो या साधारण, उसे समान महत्त्व देकर लेखक के रचना-मंतव्य को उद्घाटित किया है। इस प्रकार यह आलोचनात्मक कृति आलोचना की रूढ़ि को भी तोड़ते हुए प्रेमचंद के समग्र कहानी-संसार की संवेदनाओं तथा जीवनानुभवों की कलात्मक परीक्षा करती है तथा सर्वथा नए निष्कर्षों तक पहुँचती है।

‘प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन’ में कुल आठ अध्याय हैं— (एक) प्रेमचंद : कहानीकार का इतिहास (अ) प्रेमचंदपूर्व कहानी की स्थिति और प्रेमचंद का आगमन, (आ) कहानियों की संख्या और हिंदी-उर्दू कहानी-संग्रह; (दो) प्रेमचंद की कहानियों की कालक्रमानुसार सूची; (तीन) प्रेमचंद का कहानी-दर्शन; (चार) प्रथम दशक (1908-1910) की कहानियों का अध्ययन; (पाँच) द्वितीय दशक (1911-1920) की कहानियों का अध्ययन; (छह) तृतीय दशक (1921-1930) की कहानियों का अध्ययन; (सात) चतुर्थ दशक (1931-1936) की कहानियों का अध्ययन; (आठ) उपसंहार; (परिशिष्ट) क : प्रेमचंद की कहानियों की मूल पांडुलिपि, ख: प्रेमचंद की कुछ कहानियों की अँगरेजी रूपरेखाएँ, ग: कमलकिशोर गोयनका की प्रकाशित पुस्तकें।

पहले अध्याय में गोयनका जी ने प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियों की खोजने की आवश्यकता पर बल देते हुए प्रेमचंद के आगमन से पूर्व कहानी की स्थिति तथा उनके आगमन पर हिंदी की पहली आधुनिक कहानी, हिंदी में उनकी पहली कहानी, सोज्जेवतन की उर्दू कहानियों की हिंदी-कहानियों के रूप में स्वीकृति तथा उर्दू-हिंदी की अभेदता, प्रेमचंद के हिंदी कहानी में आने के कारण, उर्दू की सांप्रदायिकता, हिंदी की पहली कहानी ‘परीक्षा’ से मिली अभूतपूर्व लोकप्रियता, प्रेमचंद के हिंदी-ज्ञान के भ्रमों का निराकरण तथा वास्तविकता, हिंदी पत्रिकाओं की बढ़ती माँग और उर्दू से निराशा, हिंदी में आगमन से हिंदी-उर्दू दोनों को लाभ, हिंदी-कहानी का कायाकल्प एवं नवजागरण, उर्दू आलोचकों की अतिवादी दृष्टि, कहानियों की कालक्रमानुसार सूची एवं उसका औचित्य तथा कालक्रमानुसार अध्ययन का महत्त्व, कहानियों की संख्या—उपलब्ध एवं अनुपलब्ध तथा हिंदी-उर्दू कहानी-संग्रहों का विवरण एवं उनमें प्रकाशित कहानियों की सूची आदि का विवेचन-निरूपण किया है। ये सभी विषय इतने महत्त्वपूर्ण होने पर भी इनकी इतनी विस्तृत तथा प्रामाणिक जानकारी पहली बार सामने आई है। प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियों के पारस्परिक संबंधों एवं रूपों तथा उनके उर्दू से हिंदी में आने के कारणों की तथ्यों-तर्कों के आधार पर पहली बार विवेचन हुआ है और उनकी कहानियों की संख्या 301 तय की गई है, जबकि इसकी भी संभावना बताई गई है कि अभी 8-10 कहानियाँ अनुपलब्ध हो सकती हैं। दूसरे अध्याय में प्रेमचंद की 301 कहानियों की कालक्रमानुसार सूची है, जो स्वयं में एक व्यापक-कठिन शोध-कर्म है। प्रत्येक कहानी का हिंदी-उर्दू शीर्षक, प्रथम प्रकाशन—हिंदी या उर्दू, संग्रह-संकलन के नाम, हिंदी-उर्दू कहानी-संग्रहों का विवरण आदि सूचनाएँ दी गई हैं तथा जो तीन कहानियाँ अनुपलब्ध हैं, उनका भी यथास्थान उल्लेख है। हिंदी में किसी भी लेखक की रचनाओं का ऐसा प्रकाशन-विवरण भी पहली बार किया गया है।

प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन के तीसरे अध्याय में प्रेमचंद के कहानी-दर्शन

का विवेचन है, जो कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। पहली बार प्रेमचंद का कहानी- दर्शन समग्र रूप में सामने आया है, उन्होंने हिंदी-कहानी को आधुनिक दर्शन दिया, जो आज तक भारतीय कहानी का राष्ट्रीय दर्शन बना हुआ है। उन्होंने कहानी को युग-सत्य से जोड़ा, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समग्र संश्लिष्ट दर्शन दिया, नग्न यथार्थवाद का विरोध किया तथा उत्कर्ष-परिष्कार, संस्कार तथा उन्नयन को प्रयोजन बनाया। प्रेमचंद ने अंधकार से प्रकाश की तथा अमंगल से मंगल की यात्रा का जो साहित्य-मंत्र एवं प्रयोजन रखा, वह उनके भारतीय विवेक तथा भारतीयता के कथाकार होने का ही प्रमाण है। हिंदी के प्रगतिशील आलोचकों ने प्रेमचंद को मार्क्सवादी कथाकार बनाने की जो चेष्टा की, वह पूर्णतः तथ्यविहीन है, क्योंकि उनकी एक भी ऐसी कहानी नहीं है, जो मार्क्सवाद के वर्ग-संघर्ष तथा सर्वहारा की क्रांति की दृष्टि से लिखी गई हो। गोयनका जी ने यह स्पष्ट किया कि प्रेमचंद ने कहानी का एक आधुनिक भारतीय शास्त्र दिया, जो देश के स्वराज्य, राष्ट्रीय सांस्कृतिक नवजागरण और देशी अस्मिता और भारतीय आत्मा की रक्षा की प्रेरणा, चेतना और संकल्प से निर्मित हुआ था।

इस आलोचनात्मक ग्रंथ के चौथे अध्याय में वर्ष 1908 से 1910 तक की 11 कहानियों की पृष्ठभूमि, युग-संदर्भ, विषय-वस्तु तथा लेखकीय सरोकारों का विवेचन है। ये सभी कहानियाँ उर्दू में छपी हैं, किंतु उन्होंने इनसे कहानी-कला की बुनियाद रख दी। इन पर युग के राष्ट्रीय सांस्कृतिक नवजागरण, भारतेंदु-द्विवेदीयुग की चेतना तथा हिंदू-समाज के पुनरुत्थान के लिए 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तानी' के आंदोलन का गहरा प्रभाव है। जो आलोचक प्रेमचंद की इन कहानियों पर 'अंधराष्ट्रवाद' तथा संकीर्ण हिंदू पुनरुत्थानवाद का आरोप लगाते हैं, वे युग-चेतना एवं प्रेमचंद दोनों का अपमान करते हैं। प्रेमचंद पहले कहानीकार हैं, जिन्होंने देशप्रेम, राष्ट्रीय अस्मिता, स्वतंत्रता, आत्मगौरव को केंद्र में रखा और भारत की माता के रूप में कल्पना की और आधुनिक हिंदी-उर्दू-कहानी की रचना की और आरंभिक कहानियों में ही अनुभवी कहानीकार की कला के दर्शन कराए। ये आरंभिक कहानियाँ हिंदी-कहानी के उद्भव, आधुनिक कहानी के जन्म और प्रेमचंद को कहानीकार के रूप में स्थापित करने के महत् कार्य के लिए सदैव याद रखी जाएँगी। पाँचवें अध्याय में 1911 से 1920 तक की 80 कहानियाँ लेखक की संवेदना एवं कहानी-संसार के व्यापक होते संसार का विवेचन है। यह दशक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसी कालखंड में प्रेमचंद का उर्दू से मोह टूटा और हिंदी में कदम रखा, हिंदी की पहली कहानी 'परीक्षा' छपी; हिंदी-कहानी का पहला कहानी-संग्रह 'सप्त-सरोज' भी छपा और प्रेमचंद रवींद्रनाथ टैगोर के समकक्ष माने गए। उनका उपन्यास 'सेवासदन' भी इसी कालखंड में प्रकाशित हुआ और वे कहानी-सम्राट के साथ उपन्यास-सम्राट के रूप में मान्य हुए। इस काल की 36 कहानियाँ 'मानसरोवर' में नहीं हैं और ये अमृतराय तथा कमलकिशोर गोयनका के द्वारा खोजी गईं। नामवर सिंह की धारणा के विपरीत में 80 कहानियाँ एक ही ढर्रे की कहानियाँ नहीं हैं, पर संवेदना का वैविध्य है। 77 कहानियाँ हिंदू-समाज पर आधारित हैं और हिंदू देवी-देवताओं तक को स्थान मिला है; 25 कहानियाँ स्त्री-विमर्श की हैं और एक नया स्त्री-बोध सामने आता है, हिंदू जीवनमूल्यों एवं नैतिकता का बार-बार उपयोग करते हैं; 11 कहानियों में गाँव और किसान हैं। ऐतिहासिक कहानियाँ भी हैं दलितोत्थान और मानवोत्थान की कहानियाँ हैं, अंग्रेजी

शिक्षा सभ्यता के कुप्रभाव की कहानियाँ हैं और आदर्श एवं परिष्कार का लेखकीय आदर्श है। विवेकानंद के विचारों का प्रभाव है और बहुलतावादी जीवन के विविध रंग पात्र और परिवेश हैं तथा वर्जन-ग्रहण तथा यथार्थ आदर्श का संगम है, लेकिन मूल दृष्टि अंधकार से प्रकाश की ओर जाने की है। इस प्रकार प्रेमचंद ने आरंभ में जो बुनियाद बनाई थी, उसी पर महल का निर्माण होता है। देश, समाज, धर्म, नैतिकता, मनुष्यता, उत्कर्ष, परिष्कार, सहिष्णुता, पारिवारिकता, मूल्यवत्ता आदि उनकी कहानी-कला के प्रमुख तत्त्व हैं। व्यक्ति, समाज और देश का मंगल ही कहानीकार का लक्ष्य है।

छठे अध्याय में 1921 से लेकर 1930 तक 136 कहानियों का सर्वेक्षण-विवेचन है। यह उनके जीवन एवं साहित्य का व्यस्ततम कालखंड है। इसमें कई महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित होती हैं और वे पूर्णतः हिंदी-लेखन के प्रति समर्पित होते हैं, यद्यपि उर्दू का मोह टूटा नहीं है। इस कालखंड की केवल 5-6 कहानियों का विवेचन करके अधिकांश आलोचकों ने अपने निष्कर्ष दिए हैं, जो भ्रामक हैं, क्योंकि शेष 130 कहानियों को ओझल करके कोई भी प्रामाणिक निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। इस अध्याय में 136 कहानियों का मूल्यांकन करके ही निष्कर्ष दिए गए हैं। सर्वाधिक कहानियाँ आदर्शवादी और मानवीय मूल्यों की स्थापना करती हैं, कहानियों में गांधीयुग, स्वराज्य, स्वाधीनता-संग्राम, देशभक्ति, नैतिकता, सामाजिक सुधार, असहयोग आदि का चित्रण है। स्त्री-विमर्श और प्रेम की कहानियाँ हैं। स्त्री आधुनिक बनती है किंतु भारतीय संस्कारों को अपनाए रहती है, हिंदू-समाज की कहानियों की अधिकता है, पर मुस्लिम जीवन एवं विदेशी पात्रों की भी कहानियाँ हैं, हिंदू मिथकों-प्रतीकों का प्रयोग है, दलित जीवन तथा अँग्रेजी शिक्षा-संस्कृति से विकृत होते सामाजिक जीवन की कहानियाँ हैं, विदेशी पात्रों तथा प्रवासी भारतीयों पर कहानियाँ हैं, किंतु ये सभी पराधीन देश के कहानीकार की कहानियाँ हैं, जिनका मूलाधार राष्ट्रीय जाग्रति, गांधी-चेतना और भारतीयता है। ये कहानियाँ सामाजिक उथल-पुथल, जागरण और कायाकल्प की प्रमाण हैं। लेखक पुरातन और वर्तमान की सभी विषमताओं, अन्याय एवं अनिष्टकारी स्थितियों तथा प्रवृत्तियों को हटाकर एक स्वतंत्र आधुनिक भारत बनाने का चित्र प्रस्तुत करता है। गोयनका जी का यह निष्कर्ष महत्वपूर्ण है कि आदर्शविहीन यथार्थवादी कहानियाँ एक कौंध, एक चमक, एक इल्हाम, एक संयोग हैं, जो एक क्षणिक आवेग तथा एक विशिष्ट क्षण की विशिष्ट अनुभूति हैं, जो रचना के बाद अदृश्य हो जाती हैं और प्रेमचंद पुनः अपने आदर्शवादी मार्ग पर लौट आते हैं। प्रेमचंद की कहानी की विकास-यात्रा के मूल्यांकन में इस तथ्य को सामने रखना आवश्यक है।

सातवें अध्याय में 1931 से 1936 तक की 75 कहानियों का कालक्रमानुसार विवेचन है। इनमें 57 हिंदी में तथा 18 उर्दू में छपी हैं। इस विवेचन से सिद्ध होता है कि वर्ष 1931 के बाद किसी यथार्थवादी प्रेमचंद का जन्म तथा पूर्ववर्ती आदर्शवादी प्रेमचंद की मृत्यु नहीं होती है, बल्कि इन कहानियों में आदर्शवादी चेतना है। छिपे देवत्व को जाग्रत करने तथा मन को उच्च भावों से संस्कारित करने का लेखकीय लक्ष्य मिलता है। वे मानते हैं कि साहित्य की आत्मा आदर्श है और उसकी देह यथार्थ चित्रण। जीवन के अंत तक आदर्शवाद एवं देवत्व के उत्कर्ष तक उनकी आस्था बनी रहती है और वे वर्ष 1936 तक में स्वयं को आदर्शवादी ही मानते हैं। अतः

माक्सवादी आलोचकों की यह धारणा कि प्रेमचंद अंतिम वर्षों में माक्सवादी हो गए थे तथा क्रांतिकारी यथार्थवाद के समर्थक हो गए थे, पूर्णतः कपोल-कल्पना पर आधारित है। उन्होंने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' के अपने रचना-सिद्धांत को कभी नहीं छोड़ा और वे मनुष्य के शुभ और मंगल के लिए कहानियों की रचना करते रहे। अतः प्रेमचंद की यदि कोई वसीयत है तो वह 'महाजनी सभ्यता' लेख में न होकर उसी माह प्रकाशित कहानी 'रहस्य' (हंस, सितंबर 1936) में ही देखनी होगी, जो मनुष्य के सेवा-कर्म में देवत्व के दर्शन कराती है। आठवाँ अध्याय उपसंहार का है। इसमें गोयनका जी ने इस अध्ययन के निष्कर्ष दिए हैं, पुरानी अतार्किक मान्यताओं का खंडन तथा अनेक नई स्थापनाएँ की हैं।

निष्कर्षतः, प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन पुस्तक प्रेमचंद साहित्य की आलोचना की जड़ता को तोड़ते हुए उन्हें भारतीयता की नई दृष्टि से देखती है और प्रेमचंद के कहानीकार की एक सर्वथा नई मूर्ति, एक सर्वथा नए प्रेमचंद से मुलाकात कराती है। प्रगति आलोचना की सीमित एवं संकुचित दृष्टि का भंजन करके प्रेमचंद को विराट् भारतीय समाज के कहानीकार के रूप में स्थापित करती है। प्रेमचंद को 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की समग्र रचना-दृष्टि से ही इस विराट् मानवीय समाज की कहानियों के मर्म को समझा जा सकता है, क्योंकि भारतीय आत्मा की अनुभूति केवल यथार्थ से नहीं हो सकती है। यह ग्रंथ प्रेमचंद को टुकड़ों में न बाँटकर, समग्रता में देखता-परखता है और उनके कहानी-सम्राट् होने, 'प्रेमचंद स्कूल' तथा 'प्रेमचंदयुग' के संस्थापक होने का गौरव प्रदान करता है।

प्रेमचंद साहित्य-आलोचना में यह कृति एक सर्वथा मौलिक प्रयास है। इसके निष्कर्षों पर सहमति-असहमति हो सकती है और बहस की जा सकती है, किंतु कहानीकार प्रेमचंद को समग्रता में देखने तथा नई दृष्टि से उनकी परीक्षा करने एवं अपनी मौलिक अवधारणाओं के कारण प्रेमचंद-आलोचकों, प्रेमियों को सदैव आकर्षित तथा उत्तेजित करती रहेगी। ऐसी आलोचनात्मक कृतियाँ कभी-कभी ही सामने आती हैं। गोयनका जी ने अपने जीवन की आधी शताब्दी देकर जो प्रेमचंद-विशेषज्ञता प्राप्त की है, उसे यह पुस्तक और भी पुष्ट करती है। विश्वास है, हिंदी संसार इसका स्वागत करेगा।

—डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन; लेखक : डॉ० कमलकिशोर गोयनका;
प्रकाशक : नटराज प्रकाशन, ए-98, अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052; प्रथम
संस्करण : दिसंबर 2012; पृष्ठ संख्या 760; मूल्य : दो सौ तीस रुपए।

जनसुलभ साहित्य माला

हिंदी साहित्य निकेतन ने जनसुलभ साहित्य माला के अंतर्गत निम्नलिखित पुस्तकों को प्रकाशित किया है। इनमें से प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल पचास रुपये रखा गया है। किंतु लगभग 1200 पृष्ठों की ये बारह पुस्तकें एक साथ मँगाने पर केवल 500 रुपयों में दी जा रही हैं। डाकखर्च भी संस्था करेगी। अपने चैक-ड्राफ्ट अपने आदेश के साथ नीचे लिखे पते पर भेजें—

कहानी

कमरा नंबर 103 : सुधा ओम ढींगरा

इमराना हाज़िर हो : महेशचंद्र द्विवेदी

कहानियाँ अमेरिका से : सं० इला प्रसाद

कुत्तेवाले पापा : मीना अग्रवाल

प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ : सं० डॉ० कमलकिशोर गोयनका

लघुकथाएँ मानव-जीवन की : सं० सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'

व्यंग्य

दूध का धुला लोकतंत्र : गोपाल चतुर्वेदी

आदमी और कुत्ते की नाक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

सच का सामना : हरीशकुमार सिंह

व्यंग्य-एकांकी

अफलातून की अकादमी : डॉ० शिव शर्मा

सिनेमा

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति : नवलकिशोर शर्मा

कविता

मान भी जा छुटकी : गीतिका गोयल

सलाहकार मंडल : प्रो० मोहन श्रोत्रिय, नंद भारद्वाज, प्रो० अशोक चक्रधर,

नवलकिशोर शर्मा, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रकाशक

हिंदी साहित्य निकेतन

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) 246701

फ़ोन : 01342-263232, 09557746346, 07838090732

अनुक्रम

संस्कृति और अध्यात्म / प्रो० (डॉ०) आदित्य प्रचंडिया	17
भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में पर्यावरण / डॉ० अशोक उपाध्याय	21
प्रज्ञावतार लीलामृत : अप्रतिम आधुनिक महाकाव्य / मधुकर अष्ठाना	28
निर्गुण संत-साहित्य की वर्तमान में प्रासंगिकता / डॉ० धर्मचंद्र विद्यालंकार	51
वीरेंद्र जैन का उपन्यास-साहित्य / प्रा० डॉ० शिवाजी देवरे	56
उदयशंकर भट्ट के उपन्यासों में आंचलिकता / डॉ० ईश्वरसिंह सागवाल	64
कथाकार प्रेमचंद : एक दृष्टिकोण / डॉ० प्रीति अरोड़ा	69
कथाकार संजीव की कहानियों में जीवनमूल्य / सतेंद्रकुमार	73
उदयप्रकाश कृत कहानी-संग्रह 'पॉल गोमरा का स्कूटर' की अंतर्वस्तु / एकता जैन	78
भीष्म साहनी के नाट्यसाहित्य में मानवाधिकार-हेतु संघर्ष/ डॉ० (श्रीमती) ज्योति सिंह	95
दलित साहित्य के प्रतिमान : एक विवेचन / डॉ० जगदीश शरण	101
दलितों की वेदना ही दलित साहित्य की जननी है / डॉ० सुधारानी सिंह	107
प्रणय की सशक्त अभिव्यक्ति : इतनी पत्थर रोशनी / डॉ० वंदना श्रीवास्तव	111
समकालीन हिंदी-कविता की शैल्पिक संरचना / डॉ० ओमप्रकाश सैनी	117
महादेवी वर्मा का आधुनिक हिंदी साहित्य को अवदान / एकता जैन	121
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के काव्य का शिल्पगत सौंदर्य / दीप्ति गोयल	126
लोककवि संत ब्रह्मानन्द / डॉ० उषादेवी	133
सुदर्शन रत्नाकर का काव्य-शिल्प / डॉ० रीटा खर्ब	138
रश्मि मल्होत्रा द्वारा रचित 'हथेलियों पर रखी आग' काव्य-संग्रह में जीवनमूल्य / सुनीताकुमारी	142
धर्मवीर भारती के नाट्य-साहित्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन / डॉ० रीटा खर्ब	147
डॉ० शंकर शेष के नाटकों का अनुशीलन / प्रा० डॉ० योगेश पाटील	155
भारतभूषण अग्रवाल के काव्य में यथार्थ-बोध / डॉ० शुक्ला रानी	160
जयनाथ 'नलिन' की निबंध-कला / सत्यपाल	165
व्यंग्यकार शरद जोशी की जीवनदृष्टि / निशाबा डी० परमार	170
शरद जोशी : जीवन एवं संघर्ष / पंकजकुमार डी० पटेल	175

व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल / निशाबा डी० परमार	181
हिंदी पत्रकारिता में 'मतवाला' पत्र की भूमिका / कुमारी संध्या	186
विश्वस्तर पर हिंदीभाषा / डॉ० करनैल सिंह	192
हरियाणवी लोककाव्य के अंतर्गत फुटकर रागनी व भजनों में सामाजिक सरोकार/ डॉ० बलजीत सिंह	197
हरियाणवी लोककथाओं में हास्य-व्यंग्य / डॉ० बलजीत सिंह	203
आचार्य पदुमनदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व / संदीपकुमार मिश्र	209
आचार्य कुलपति मिश्र के ग्रंथों का शास्त्रीय विश्लेषण / गुंजन त्रिपाठी	218
शिरोमणि कवि सूरदास की भक्ति-भावना / श्रीमती हेमलता	226
केशव के काव्य के भाषावैज्ञानिक स्वरूप का समग्र मूल्यांकन/ प्रतिभा पांडेय	231
केशव के काव्य में शब्दार्थ-निरूपण / प्रतिभा पांडेय	236
गोपालदास नीरज : जीवन दर्शन / मंजू चौहान	247
सूचना के अधिकार अधिनियम-2005 : समस्याएँ व सुझाव/ डॉ० ब्रह्मप्रकाश, संजयकुमार	251
स्वामी दयानंद के शिक्षासंबंधी विचार / डॉ० नीलू कपूर	255
भारतीय महिलाओं की समस्याएँ और समाधान / संजयकुमार	259
भारतीय संविधान का निर्माण / वर्षा पांडेय	266
एक साहित्यकार की अनुभव-संपदा : सवाल साहित्य के / उषा यादव	269
सवाल साहित्य के प्रतिक्रिया / डॉ० हणमंतराव पाटील	271
'सवाल साहित्य के' रचना समय की माँग / डॉ० बाबूराम	273
वात्सल्य अनुभूतियों के अर्घ्य से सिक्त लोरियाँ : ममता की छाँव में / कृष्ण शलभ	276

संस्कृति और अध्यात्म

प्रो० (डॉ०) आदित्य प्रचंडिया,
डी० लिट्०

संस्कृति जीवन-शैली है और दर्शन जीवन-दृष्टि है। जीवन-शैली के मूल में जीवन-दृष्टि होती है, दोनों अवियोज्य हैं। संस्कृति का उन्नयन दर्शन या जीवन-दृष्टि पर ही निर्भर है। सवाल उठता है—जीवन-दृष्टि क्या है? भारत में अनेक दर्शन पुष्पित-पल्लवित हुए हैं, उन सबकी जीवनदृष्टि समान ही है। भारतीय दर्शन अनेक हैं, किंतु जीवन-दृष्टि एक ही है। यहाँ तक चर्वाक जैसे नास्तिक दर्शन की जीवन-दृष्टि भी भौतिकवादी या भोगवादी न होकर मूलतः आध्यात्मिक ही है, चर्वाक भी एक ऋषि हैं। 'ऋषिभाषित' नामक जैन-ग्रंथ में उन्हें दंत और विरत कहा गया है, वे भी संसार-परिभ्रमण से मुक्ति के आकांक्षी हैं। वे चाहे 'ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत' की बात कहते हैं, फिर भी वे 'ऋणं कृत्वा मद्यं पीवेत' की बात नहीं करते हैं। जैन और बौद्ध भी चाहे अनीश्वरवादी हों, फिर भी वे भौतिकवादी या भोगवादी नहीं हैं। प्राचीन भारतीय दर्शनों में चाहे वे श्रमण-परंपरा के दर्शन हों या वैदिकधारा के दर्शन हों, सभी मूलतः भोगवादी नहीं हैं, त्यागवादी हैं।

भारतीय संस्कृति के मूल 'उपनिषद्' हैं। उपनिषदों में भी सबसे छोटा और सबसे महनीय मात्र अठारह श्लोकों में सीमित एक छोटा-सा उपनिषद् है, 'ईशावास्योपनिषद्'। इसके संबंध में महात्मा गांधी ने कहा था कि यदि समग्र भारतीय साहित्य नष्ट हो जाए, किंतु 'ईशावास्योपनिषद्' का प्रथम श्लोक भी बचा रहा तो मैं पुनः भारतीय संस्कृति को जीवित कर दूँगा। ऐसा क्या है, इस उपनिषद् में। इस उपनिषद् के प्रथम श्लोक का एक वाक्यांश है—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' अर्थात् त्यागपूर्वक भोग करो, संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे व्यक्ति अपना कह सके। सभी दैवीय, ईश्वरीय या प्रकृति-प्रदत्त हैं। मनुष्य को उनके उपयोग का एक सीमित अधिकार तो है, किंतु स्वामित्व या मालिकाना अधिकार नहीं है। भारतीय संस्कृति एकांततः भोग का निषेध नहीं करती है। अतः भारत का सांस्कृतिक उत्थान त्याग के आध्यात्मिक मूल्यों के विकास में सन्निहित है।

आध्यात्मिक या त्यागपरक मूल्यों के विकास के लिए जीवन-दृष्टि में परिवर्तन आवश्यक है। हम सभी विकास या उत्थान की बात करते हैं। इसका अर्थ है, वर्तमान से संतुष्ट नहीं हैं, दशा बदलना चाहते हैं; किंतु जब तक दिशा या दृष्टि नहीं बदलेंगे, दशा बदलने वाली नहीं है। भोगवादी या भौतिकवादी जीवन-दृष्टि भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के उत्थान या विकास में सहायक नहीं हो सकती। आध्यात्मिक जीवनमूल्यों की प्रतिष्ठा में ही भारत का सांस्कृतिक

उत्थान संभव है। जब तक व्यक्ति की भोगवृत्ति, लोभवृत्ति, ममत्ववृत्ति, अहंवृत्ति पर नियंत्रण असंयम पर अंकुश नहीं लगेगा, सांस्कृतिक उत्थान कैसे संभव होगा? भौतिक सुख-सुविधाएँ, उपभोक्तावादी संस्कृति, अर्थ-प्रधानता आदि हमारे सांस्कृतिक-आध्यात्मिक जीवनमूल्यों के विकास में सहायक नहीं हो सकते हैं।

आज धर्म और अध्यात्म प्रदर्शनात्मक बन गए हैं। प्रदर्शन की भूख में दर्शन गौण हो गया है। सांस्कृतिक विकास तभी होगा, जब हम प्रदर्शन के स्थान पर दर्शन को प्रधानता देंगे। प्रदर्शन बाह्य है, जबकि दर्शन आंतरिक या आत्मिक है। प्रदर्शन बाह्य भौतिक प्रगति का सूचक हो सकता है, किंतु वह आंतरिक विपन्नता का ही परिचायक है। भौतिक जीवन दृष्टि हमें दैहिक सुख-सुविधा देकर आर्थिक संपन्नता तो दे सकती है, किंतु उसमें पारस्परिक सौहार्द, सहयोग और समर्पण या सेवा के जीवनमूल्य निराकृत हो जाते हैं। अतः भारतीय संस्कृति की मूल आत्मा ही मर जाती है और फिर उसका उत्थान कैसे संभव होगा?

संस्कृति समाज पर आधृत है और समाज की संरचना त्याग और समर्पण के जीवनमूल्यों पर आधारित है। समाज परिवारों का समूह है और परिवार उसके सदस्यों की त्याग-भावना पर खड़ा होता है। यदि पत्नी की पति के प्रति और पति की पत्नी और अपनी संतान के प्रति त्याग और उनके हित-साधन की वृत्ति न हो, तो परिवार बनेगा ही नहीं; और परिवार के बिना समाज और समाज के बिना संस्कृति ही नहीं होगी। अस्तु, सांस्कृतिक उत्थान के लिए त्याग और समर्पण के जीवनमूल्य आवश्यक हैं। इन मूल्यों के प्रति निष्ठा और इनके आत्मसात होने पर ही भारत का सांस्कृतिक उत्थान संभव है।

‘वन में घर, दरिद्रता में धन, अंधकार में प्रकाश और मरुस्थल में जल का मिलना जिस प्रकार दुर्लभ है, उसी प्रकार इस कलियुग में कोई भाग्यशाली व्यक्ति ही अध्यात्मशास्त्र को प्राप्त कर पाता है। जैनदर्शन के अनुसार उत्सर्पिणी काल का पाँचवाँ ‘दुःखम’ नाम का आरा चल रहा है और हिंदू-धर्म के अनुसार सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इन चार युगों में से अभी कलियुग चल रहा है। भौतिक सुखों में तीव्र आसक्ति के इस युग में सम्यग्यान का प्रकाश बहुत ही दुर्लभ है। मोह का जाल चारों तरफ बिछा हुआ होता है। बचपन में व्यक्ति माता के सम्मुख, यौवन-वय में पत्नी के सम्मुख, वृद्धावस्था में पुत्र के सम्मुख होता है, परंतु आत्मा के सम्मुख नहीं होता है।

आज चारों ओर भोग-विलास से युक्त वातावरण में अध्यात्म के प्रति झुकाव और लगाव है। उसमें रसानुभूति बहुत ही कठिन है। अनादिकाल से जीव को विषयों की अभिरुचि है। वह शरीर में ही ‘अहं’ पने की बुद्धि करता है। शरीर में अपनापन है। इसलिए शरीर के लिए वह कुछ भी करने को तत्पर हो जाता है, किंतु अपने में अपनापन नहीं आया। ‘स्व’ में स्व की प्रतीति नहीं हुई, इसलिए शरीर के आनंद में लीन रहता है। आत्मानंदी बनने के भाव नहीं जन्मते और अध्यात्म-रस को वह प्राप्त नहीं कर सकता है। भूख के बिना भोजन में रस नहीं आता है, प्यास के बिना पानी पीने में मजा नहीं आता है। वैसे ही आत्मरुचि पैदा हुए बिना अध्यात्म में रस उत्पन्न नहीं होता है।

एक धनपति अपने इकलौते पुत्र को प्रातः उठाते हुए रोज उसे गालियाँ देते, कठोर शब्दों का उच्चारण करते तथा पड़ोसी गरीब किसान के पुत्र के रोज गुणगान करते थे। वे कहा

करते—‘अरे! निर्लज्ज देख उस पड़ौसी के पुत्र को अपने पिता के कार्य में सहयोग भी करता है, साथ ही प्रतिवर्ष कक्षा में प्रथम आता है। कितना समझदार है? होशियार है? और तू मूर्ख शिरोमणि।’ अब उन धनपति से पूछा जाए कि आपका पुत्र निर्गुणी, पड़ौसी का पुत्र सगुणी अर्थात् गुणवान जिसके आप रोज़ गुण गाते हैं तो यह करोड़ों की संपत्ति आप किसे देंगे? धनपति का उत्तर यही होगा कि अपने पुत्र को ही दूँगा। ठीक वैसे ही निर्गुणी विश्वासघाती यह शरीर और अनंत ज्ञानवाद गुणवान भगवान। यह आत्मा फिर भी अज्ञानता के कारण जीव-आत्मा को साधन तथा शरीर को साध्य बना लेता है और वह शरीर के लिए अपना सर्वस्व जीवन लुटा देता है तथा आत्मा परमात्मा की सिर्फ़ बातें ही रह जाती हैं।

इस कलियुग में तो वातावरण अत्यंत दूषित है। असीमित भोगाकांक्षाएँ और प्रचुर मात्रा में भोग-विलास की सामग्री चारों ओर बिखरी हुई है तथा इस विषमकाल में प्राणी प्रायः पापकर्म में संलग्न है। ऐसे प्राणियों को अध्यात्म के प्रति लगन होना मुश्किल है। कुछ प्राणियों में अध्यात्मशास्त्र के अध्ययन के लिए स्वयं की तीव्र प्यास, तीव्र लगन चाहिए। साथ ही योग्य गुरु भी। एक युवक एक संन्यासी के पास आकर कहने लगा कि ‘अध्यात्म क्या है? मुझे बताइए।’ तब संन्यासी ने कहा, ‘पहले अपन नदी में स्नान कर लें फिर तुम्हें बताऊँगा।’ दोनों नदी पर गए। युवक स्नान के लिए जैसे ही नदी में उतरा, वैसे ही संन्यासी ने अपने पूरे बल के साथ उसे पानी में डुबो दिया। युवक तड़पने लगा। पानी की सतह पर आने के लिए छटपटाने लगा। दुबला-पतला होते हुए भी उसने अपनी पूरी ताकत से बलशाली संन्यासी को एक तरफ़ पछाड़ दिया और ऊपर आकर चैन की साँस ली। उस संन्यासी ने कहा, ‘तुम पानी में डूबते हुए क्या सोच रहे थे? ‘उस समय तुम्हारी क्या-क्या इच्छाएँ थी?’ तब युवक ने कहा कि उस समय भला मैं क्या सोच सकता हूँ? उस समय तो मात्र एक ही तीव्र इच्छा थी, पुरुषार्थ था कि कैसे भी पानी के बाहर आऊँ और साँस लूँ।’ संन्यासी ने कहा कि ‘हे युवक! साँस लेने की तेरी जैसी तीव्र इच्छा थी, प्यास थी। बस, वैसी ही इच्छा, वैसी ही लगन अध्यात्म के प्रति हो तो अध्यात्मशास्त्र का अध्ययन कर सकता है। अन्यथा अध्यात्मशास्त्र की प्राप्ति ठीक वैसे ही दुर्लभ है, जैसे वन में घर का मिलना, दरिद्रता में धन की प्राप्ति, अंधकार में प्रकाश का मिलन तथा मरुस्थल में जल का संयोग दुर्लभ है।’

संस्कृति किसी भी राष्ट्र की धरोहर होती है। शिक्षा और संस्कृति का अविनाभावी व्यापक संबंध है। इससे किसी भी देश की संस्कृति का निर्माण ही नहीं होता, उसे नया आयाम भी मिलता है। संस्कृति के अभाव में शिक्षा निःसार और निष्प्रयोजन हो जाती है। शिक्षा द्वारा ही मनुष्य सुसंस्कृत और सभ्य बनता है। सांस्कृतिक मूल्यों से संयुक्त शिक्षा व्यक्ति को संकीर्ण दृष्टि से ऊपर उठाकर उसमें विश्वव्यापी सोच पैदा करती है। संस्कृति की सामग्री से ही शिक्षा का प्रत्यक्ष रूप से निर्माण होता है और यही सामग्री शिक्षा को न केवल उसके स्वयं के उपकरण वरन् उसके अस्तित्व का कारण भी प्रदान करती है। शिक्षा का कार्य है समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों को उसके युवा समर्थ सदस्यों में हस्तांतरित करना। बाहर से आयातित संस्कृति हमारी भूमि के लिए कितनी अनुकूल है, यह विवेक सापेक्ष है। यदि केवल दूसरों की नकल करके अपनी परंपरा में बदलाव कर दिया जाएगा तो हमारी मूल संस्कृति विद्रूप हो जाएगी। सुख-सुविधाएँ क्षणिक आनंद अवश्य देती हैं, लेकिन उनका परिणाम सुखद

नहीं होता। जो ज्ञान बिना परिश्रम के प्राप्त होता है, उसे प्राप्त करने में आनंद की अनुभूति नहीं हो सकती और न ही वह किसी महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। शिक्षक और संत संस्कृति के संवाहक होते हैं। वे मालाकार की तरह शिक्षार्थियों के संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींचकर विराट रूप प्रदान करते हैं।

शिक्षा का प्राथमिक फल मस्तिष्क-विकास है, पर उसका चरम फल आत्म-विकास है। जो शिक्षा वस्तुपरक और सूचनात्मक होती, वह जीवन-परिवर्तन में बहुत उपयोगी नहीं होती। अध्यात्म-निरपेक्ष शिक्षा मस्तिष्क को प्रबुद्ध बना सकती है, जागतिक सृजन में सक्षम हो सकती है, भौतिक विज्ञान को उन्नत बना सकती है, किंतु वृत्तियों के उदात्तीकरण का प्रश्न वहाँ गौण हो जाता है। अतः शिक्षा में अध्यात्म के प्रवेश से ही विद्यार्थी का सर्वतोमुखी विकास हो सकता है। यदि हम पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के चक्कर में पड़कर आध्यात्मिकता का आधार त्याग देंगे तो उसका परिणाम होगा कि तीन पीढ़ियों में हमारा जातीय अस्तित्व मिट जाएगा। राष्ट्र का मेरुदंड टूट जाएगा। राष्ट्रीय भवन की नींव ही खिसक जाएगी। इसीलिए प्राचीन पूर्वजों से चली आई अमूल्य विरासत आध्यात्मिकता की पकड़ को कदापि ढीला न होने दें। यदि आपकी आस्था आध्यात्मिकता में या न हो, लेकिन राष्ट्रीय जीवन की रक्षा-हेतु हमें आध्यात्मिकता के आधार पर टिके रहना होगा। आत्मगत शिक्षण में जीवन का बोध है। आत्मगत शिक्षण में जीवन की साधना है। गुणों का अभ्यास है तथा आत्म-अनुशासन है।

भारतीय संस्कृति अध्यात्म-प्रधान है। हमारी संस्कृति की खासियत है कि वह प्रत्यक्ष की ओर न ले जाकर अदृश्य की ओर संकेत करती है। जो विश्व के कण-कण में व्याप्त है, जो सर्वज्ञ है, जो सारे ब्रह्मांड के संचालन का कार्य करता है। हमारा शरीर विनाशी है, परंतु हमारे शरीर में व्याप्त आत्मा अजर और अमर है। अपने से भिन्न संस्कृतियों के ग्राह्य तत्त्वों को अपनाकर भारतीय संस्कृति सदैव बल और शक्ति प्राप्त करती रही है। संस्कृति की अनेक वेगवान धाराएँ इसमें मिलीं और इसने सबका ही स्वागत किया। प्रेम और उदारता से सबमें अभिन्नता लाने का प्रशंस्य प्रयास हुआ। यूनानी, हूण, मुसलमान एवं यूरोपियन सभी यहाँ आए और वे अपने साथ अपनी कला और संस्कृतियों को भी लाए और भारतीय संस्कृति ने सबका समान रूप से स्वागत किया और सबसे सार रूप ग्रहण कर अपनी आत्मा को अछूता रखा। इस प्रकार भारतीय विचारधारा में आध्यात्मिक तत्त्वों का समावेश है। आज संसार में भौतिकता का बोलबाला है। इससे बचने के लिए यहाँ का आत्मवाद ही एकमात्र उपाय है।

□ 'मंगलकलश'

394 सर्वोदय नगर,

आगरा रोड, अलीगढ़ 202001 (उ०प्र०)

दूरभाष : (0571) 2410486

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में पर्यावरण

डॉ० अशोक उपाध्याय

अध्यक्ष हिंदी विभाग, बेरली कॉलेज, बेरली

जीवन-प्रभात के हीरकहारों से सुसज्जित भारतीय संस्कृति एवं साहित्य का पर्यावरण-प्रेम विश्वविख्यात है। इसमें निहित प्राकृतिक सामर्थ्य के दिव्य स्वरूप में जड़ और चेतन की समरसता आनंद के चरम सोपानों का निदर्शन प्रस्तुत करने में सदैव सफल हुई है। 'वैदिक काल से ही हम देखते हैं कि आर्यलोग अग्नि, वरुण, उषा, पूषण आदि प्राकृतिक तत्त्वों तथा शक्तियों के उपासक रहे हैं और धीरे-धीरे प्राकृतिक शक्तियों के यही प्रतीक आगे चलकर उच्च से उच्चतम चेतनाओं तथा तत्त्वों के प्रतीकों एवं प्रत्ययों में परिणत होकर इस सृष्टिचक्र के बाहरी तथा भीतरी विधान को समझाने में सफल हुए हैं और इन्हीं नैसर्गिक प्रतीकों के सोपानों से आरोहण कर भारतीय ऋषियों, तत्त्वज्ञों एवं सत्य-द्रष्टाओं की मनीषा सृष्टितत्त्व के आदिकरण स्वरूप ब्रह्मतत्त्व की उपलब्धि कर सकने में समर्थ हो सकी है।' अथर्ववेद के 'पृथ्वीसूक्त' में की गई पृथ्वी की स्तुति में इसके पर्यावरण की चर्चा संपन्न और श्रेष्ठ वन-प्रदेश, गगनचुंबी पर्वत-शिखर, कल-कल निनादित सरिता-सलिल, अनवरत प्रवाहित निर्झर, अपार अन्न उपजाने वाली कृषिभूमि, बहुशक्तिनिभूत औषधि-समूह, गाय इत्यादि पशुधन समूह से सुशोभित अपने वक्ष-स्थल में स्वर्ण इत्यादि खनिज पदार्थों तथा अग्नि-समूह को धारण करने में समर्थ अनुपम अचंचल पिंगल, श्यामल, अरुणाभा से युक्त बहुरूप वसुधा के रूप में की गई है। ग्राम-नगर इत्यादि के संरक्षण भूकंप, कृषिकर्म, सर्ववस्तु प्राप्ति, मणि-सुवर्ण इत्यादि की उपलब्धि के लिए इसके मंत्रों का उपयोग अत्यंत श्रद्धा के साथ होता रहा है—

भूमि शिला है, भूमि धूल है, वह प्रस्तर, गिरि-शैल अपार,
सब रूपों में परिणत भू यह टिकी धर्म के दृढ़ आधार।
है सुवर्ण की खान मनोहर, जिसका वक्षस्थल अभिराम,
उस पृथ्वीदेवी को हम सब सादर हैं कर रहे प्रणाम।
अचल खड़े सब ओर जहाँ पर विविध वनस्पति, वृक्ष महान,
हम उस विश्वभरा धरा के करते गुण-गौरव का गान।²

भारतीय संस्कृति और साहित्य में वृक्षों और वनस्पतियों को अत्यंत सम्मानपूर्ण स्थिति प्रदान की गई है। वनस्पति की इतनी पूँजी शायद ही किसी देश में होती हो। तुलसी से लेकर तमाल तक और तिवड़े से लेकर तंबाकू तक इसी देश में पूजा की सामग्री में स्थान पा सकते हैं। फूलों, फलों और वनस्पतियों के आधार पर नामकरण की अभिजात्य प्रथा, मौसम, दिन और हवाओं के आधार पर उपनामों का वर्गीकरण सब-कुछ ऐसा है जो अविश्वसनीय सत्य है।³

विभिन्न प्रकार के वृक्षों का उचित प्रकार से पालन-पोषण तथा उनका आरोपण ठीक वैसा ही है, जैसा कि संतान के प्रति किया गया कर्तव्य। अशोक, बरगद, पीपल, नीम शमी, आँवला, नारियल, गूलर, आम, कटहल, जामुन, पाकड़ इत्यादि वृक्ष उपयोगी होने के साथ-साथ हमारी धार्मिक आस्थाओं के आधार तथा यथावसर पूजनीय भी हैं। हरिऔध जी ने 'प्रियप्रवास' में वृंदावन की चर्चा करते हुए निम्नलिखित वृक्षों का उल्लेख किया है—

जंबू अंब कदंब निंब फलसा जंबीर औ' आँवला।
लीची दाड़िम नारिकेल इमिली और शिशपा इंगुदी।
नारंगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी
श्रेणीबद्ध तमाल ताल कदली औ' शाल्मली थे खड़े।
ऊँचे दाड़िमन्से रसाल तरु थे औ' अम्र-से शिशपा।
यों निम्नोच्च असंख्य पादप कसे वृंदाटवी मध्य थे।⁴

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'मदनदहन' के प्राचीन धार्मिक उपाख्यान को वासन पुराण के आधार पर स्पष्ट करते हुए लिखा है, कि जब महादेव ने मनोजन्मा कामदेव को भस्म किया, तब उनका रत्नमय धनुष टूटकर खंड-खंड हो धरती पर गिर गया। जहाँ मूठ थी, वह स्थान रुक्ममणि से बना था, वह टूटकर धरती पर गिरा और चंपे का फूल बन गया। हीरे का बना हुआ जोना है स्थान था वह टूटकर गिरा और मौलसरी के मनोहर पुष्पों में बदल गया। अच्छा ही हुआ। इंद्रनील मणियों का बनाने इस घटना के कारण हुई सबसे सुंदर पाद व पुष्पों में परिवर्तित हो गया।⁵ द्विवेदीजी ने इस घटना के कारण हुई सबसे सुंदर बात की भी चर्चा की है। इसके अनुसार 'चंद्रकांतमणियों का बना हुआ मध्यदेश टूटकर चमेली बन गया और विद्रुम की बनी निम्नतर कोटि बेला बन गई, स्वर्ग को जीतनेवाला कठोर धनुष जो धरती पर गिरा तो कोमल फूलों में बदल गया। स्वर्गीय वस्तुएँ धरती से मिले बिना मनोहर नहीं होती।⁶ पर्यावरण वैशिष्ट्य है। वास्तविकता यह है कि फूल धरती की प्रार्थना है जिनके द्वारा वह अपने सृजन-प्रेरणों में भी सहायक होता है।'⁷ पर्यावरण की दृष्टि से रामायणकाल अर्थात् चर्चित रहा है। इनमें रावण की अशोकवाटिका, रामकी पंचवटी तथा राजाजनक की पुष्पवाटिका बहुत चर्चित रही है। पुष्पवाटिका के पुष्पों का वर्णन पंडित राधेश्याम कथावाचक ने इस प्रकार किया है—

गेंदा, गुलाब, मोतिया, जुही गुलमेंहदी, गुलबाँस, गुलनार।
दाऊदी, दुपहरिया, मरवा, केतकी, हजारा, हारसिंगार।
कलगा, पनसुतिया, मौलसिरी, कनैल, कामनी, सदाबहार,
मालती, माधवी, जवा, झिली, केवड़ा, मोगरा, पपी अनार।
पचरंगा, चंपा, सूर्यमुखी, झिलमिली, मारुती, नौरंगा।
चाँदनी, कुमुद, दौना, लाला, जलतरंग, चमेली, चौरंगा।⁸

उन्होंने चिड़ियाघर, मछलीघर, रविशों, फव्वारों तथा देवी-मंदिर से सुशोभित इस पुष्पवाटिका के हजारों किस्मों के पुष्पों की गणना में असमर्थता व्यक्त करते हुए लिखा है—

'गुलप्यारी, गुलशब्बो, गुलहड़, गुलचीनी, गुल्फनूस, केला।
सेवरा, निवाड़ी मदनमान, गुलकेली, कुंद, कमल, बेला।
नीले, पीले, साँवल, गोरे, चितकबरे, रंग-बिरंगों के।

हम नाम गिनाएँ क्या-क्या थे फूल हज़ारों किस्मों के⁹

राजभवनों के आस-पास उद्यानों अथवा उपवनों की व्यवस्था प्राचीन भारतीय स्थापत्य का अविस्मरणीय स्वरूप प्रस्तुत करती हैं। पर्यावरण की दृष्टि से इसका व्यापक महत्त्व सर्वविदित है। तपोवनों के संरक्षक ऋषि-मुनियों का विनाश करके उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करने वाले राक्षसों के विनाश की श्रीराम द्वारा की गई प्रतिज्ञा का संज्ञान पर्यावरण की रक्षा की दृष्टि से भी आवश्यक है। सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत के सिंहल दीप को पर्यावरण की दृष्टि से कैलाश अथवा शिवलोक के समतुल्य बताया है। चारों ओर विकसित गगनचुंबी आम्रवृक्षों की घनी वाटिका ज्येष्ठ मास की तीव्र गर्मी में भी शीत मास का सुख प्रदान करने वाली थी। इस प्रकार के बारहमासी आम्रवृक्षों के कारण वहाँ सदैव बसंत ऋतु का आवास रहता था। कटहल, बड़हल, खीरनी, नारियल, महुआ, सुपारी, जाफल, हमली, खजूर तथा टाड़ के घने वृक्षों के कारण वहाँ देवराज इंद्र की अमरावती के स्फुरण का आभास होता था—

फरे आँव अति सघन सोहाए, औ' जस फरे अधिक सिरनाए।
कटहर डार पीड सो पाके, बड़हर सोड अनूप अति टाके।
खिरनी पाकि खाँड असि मीठी, जाँबु जो पाकि भँवर असि डीठी।
नरिअर फरे फरी खुरहुरी, फुरी जानु इंद्रासन पुरी।
पुनि महु चुवै सो अधिक मिठासू, मधु जस मीठ पुहुप जस बासू।
और खजहजा आव न नाऊँ, देखा सब रावन अँबराऊँ।
लाग सबै जस अब्रत साखा, रहै लोभाइ सोइ जोइ चाखा।¹⁰

निराला जी ने 'कुकुरमुत्ता' नामक कविता में व्यंग्यात्मक स्वर में एक नवाब के बगीचे की चर्चा करते हुए अपनी प्रगतिशीलता की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। गजनवी के मनहर बाग में सुंदर बनी क्यारियों में आभिजात्य के प्रदर्शन का सपना चमन में फैली सुंदर बनी क्यारियों में आभिजात्य के प्रदर्शन का सपना, चमन में फैली बनी सुंदर क्यारियों के रूप में तहशीब और तरतीब से विभिन्न प्रकार के फूलों के पौधों के रूप में जाग्रत था—

बेला गुलशब्बो, चमेली, कामिनी
जुही, नरगिस, रातरानी, कमलिनी
चंपा, गुलमेहँदी, गुलखैरू, गुलअब्बास
गदा, गुलदाऊदी, निवाड़ी, गंधराज
और कितने फूल फव्वारे नई
फलों के भी पेड़ थे,
आम, लीची, संतरे और फालसे।¹¹

आभिजात्य कृत्रिमता के परिवेश में विकसित मनोहर उद्यान के विपरीत भारतीय जन-जीवन में पर्यावरण का एक अन्य रूप 'अधगड़े झोपड़ों में' विकसित होता रहा है। निरालाजी ने इसका वर्णन निम्न पंक्तियों में किया है। इसमें सुधार की आवश्यकता है—

जगह गंदी, रुका, सड़ता हुआ पानी
मोरियों में, जिंदगी की लंतरानी
बिलबिलाते कीड़े, बिखरीं हड्डियाँ

सेलरों की परों की थीं गड्डियाँ
कहीं मुर्गी, कहीं अंडे
धूप खाते हुए कंडे।¹²

पूर्व एवं पश्चिम के महासागर तक विस्तार ग्रहण करनेवाला नगाधिराज हिमालय भारतीय संस्कृति के लिए प्रकृति का अद्भुत उपहार है। महाकवि कालिदास ने इसे पृथ्वी के मानदंड की उपमा प्रदान की है—

अस्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौतोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदंडः।
सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुर्धरित्रीम्।

आश्चर्यमिश्रित सत्य यह है कि हिमालय का देवतात्मा का स्वरूप भी उसके पर्यावरण में निहित सत्य का परिचायक है। पृथ्वी रूपी गाय के भीतर से विभिन्न औषधियों तथा दीप्तिमान रत्नों के अगणित भंडार को वत्स के रूप में ग्रहण करके दूसरों को वितरित करने की सामर्थ्य उसके देव-स्वभाव का परिचायक है। इसके द्वारा हमारी संस्कृति में निहित पर्यावरण के प्रति अगाध श्रद्धा अनायास ही प्रकट हो जाती है। प्रकृति के साथ सहज और संवेदनशील सम्पर्क हमारे समाज के आधारभूत सिद्धांतों में से एक है। मन की पवित्रता, वैराग्य, सदाचरण एवम् लोकोपकार इत्यादि सद्गुणों के विकास में इसका सम्पर्क अत्यंत लाभ प्रद है। प्रो० श्रीरामचरण जी 'महेंद्र' के अनुसार हिंदू-संस्कृति तो तपोवन में, प्रकृति के अंचल में है। हम त्याग को महत्त्व देते हैं, आंतरिक संपदाओं के संग्रह में विश्वास करते हैं। हिंदू मानते हैं कि उनका मानसिक पक्ष जितना शुद्ध एवं विकसित, परिपक्व रहेगा, उनके उतने ही अच्छे कर्म होंगे और उनका उतना ही उच्च जीवन भी होगा। त्याग संयम ईश्वर में विश्वास उनकी रग-रग में समाया हुआ है। भारतीय सभ्यता एवम् संस्कृति का जन्म तथा विकास नगरों से दूर ऋषियों तथा मुनियों के आश्रमों, तपोवनों, पुण्याख्यों में हुआ है।¹³ हिमशिखरों से प्रतिष्ठित हिमालय का पर्यावरण अत्यंत प्रभावित होकर अपनी सृजन-क्षमता का विकास करने में सफल हुए हैं। हिंदी की छायावादी काव्यधारा के प्रतिष्ठित कवि सुमित्रानंदन पंत ने स्वीकार किया है, 'मेरे किशोर प्राण मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौंदर्य को है, जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ हूँ। मेरे भीतर ऐसे संस्कार अवश्य रहे होंगे, जिन्होंने मुझे कवि-कर्म करने की प्रेरणा दी, किंतु उस प्रेरणा के विकास के लिए स्वप्नों के पालने की रचना पर्वत-प्रदेश की दिगंतव्यापी के रश्मिदोल में झुलाया, रिझाया तथा कोमलकंठ वन-पंखियों के साथ बोलना कुहुकना सिखलाया।'¹⁴ उन्होंने हिमालय के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हुए लिखा है—

शोभाचपल हुए किशोर पग, गरिमाविनत बना गंभीर मन
रंगभूमि थी प्रकृति मनोरम पृष्ठभूमि हिमवत् की पावन
अनजाने सुंदर निसर्ग ने किया हृदयस्पर्शों से संस्कृत
उज्ज्वल स्वर्णिम उच्छाओं में अंतर्मुख मन को कर केंद्रित।¹⁵

कविवर पंतजी ने ग्राम्या में ग्रामीण पर्यावरण का विवरण अत्यंत सहज और सुशोभित रूप में प्रायः प्रस्तुत किया है। ग्रामवासिनी भारत माता के खेतों में पर्यावरण का मनमोहक रूप

दूर-दूर तक मखमली हरीतिमा के रूप में प्रदर्शित होता है। नभ का चिर निर्मलनील फलक शस्यश्यामल भूतल पर झुका हुआ-सा प्रतीत होता है-

रोमांचित-सी लगती वसुधा आई जौ-गेहूँ में बाली
अरहर सनई की सोने की किंकिणियाँ हैं शोभाशाली
उड़ती भीनी तैलाक्त गंध, पीली सरसों पीली-पीली
लो हरित धरा से झाँक रही नीलम की कलिती-सी नीली।¹⁶

विभिन्न प्रकार के उपवनों में पर्यावरण की सौंदर्य-कला का ऋतु उत्सव व्यापक रूप में देखने को मिलता है। इन्हें देखकर मन में प्रतिक्रिया होती है कि मनुष्य क्या इस सौंदर्य के संसार से अधिक सुंदर है। इनके कुसुमित अंग और कंट का व्रत मन का वर्गों की जन-संस्कृति में जो भी रहस्य हो, परंतु पर्यावरण की सौंदर्य कला के ऐसे प्रयोग शोभा के दर्पण-जैसे बनकर मटमैली पृथ्वी के आँचल को सुंदरता प्रदान करते हैं-

रंग-रंग के खिले फ्लाक्स वरवीना, छपे डियांधस
नतदृग ऐन्टिहिनम तितली-सी पैंजी पॉपी सालस
हँसमुख कैण्डीटफ्ट रेशमी चटकीले नैस्टरडम
खिली स्वीटपी एबंडस फिलवास्केट और ब्लूबैटम
विविध आयताकार वर्ग षट्कोण क्यारियाँ सुषमित
वर्तुल अंडाकृति नवरुचि से कटी-छँटी दूर्वावृत।¹⁷

अज्ञेयजी ने इस प्रकार के नवरुचि से परिपूर्ण उपवनों की अपेक्षा पर्यावरण के उन्मुक्त हर्षोल्लास और उन्मुक्त स्वरूप को अपनी प्रेयसी के रूप में गौरव प्रदान किया है। उन्मुक्त वातावरण में विलसित हरी बिछली घास और कलगी छरहरी बाजरे की जीवन की एकांत शांति से संपन्न पर्यावरण का प्रेम प्रदर्शित करने के लिए प्रयुक्त अत्यंत सार्थक प्रतीक हैं, जिन्हें शहराती जीवन-संदर्भ में 'पालतू मालंच' पर सजी-सँवरी जूही के फूल से अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व प्राप्त होना चाहिए-

आज हम शहरातियों को
पालतू मालंच पर सँवरी जूही के फूल-से
सृष्टि के विस्तार का ऐश्वर्य का, औदार्य का
कहीं सच्चा, कहीं प्यारा एक प्रतीक बिछली घास है,
या शरद की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर
दोलती कलगी अकेली बाजरे की।¹⁸

पृथ्वी के मानदंड हिमालय के समान ही भारतीय संस्कृति के शोभामय भू-प्रदेश ब्रजमंडल में स्थित स्वनामधन्य अशरण के शरणदाता के रूप में प्रतिष्ठित गिरिराज गोवर्द्धन हमारे पर्यावरण संरक्षण के पौराणिक स्वरूप के कारण विश्व प्रसिद्ध है। महाकवि हरिऔधजी ने लिखा है-

ऊँचा शीश सहर्ष शैल करके था देखता व्योम को।
या होता अति ही सगर्व वह था सर्वोच्चता दर्प से।
या वार्ता यह था प्रसिद्ध करता सामोद संसार में
मैं हूँ सुंदर मानदंड ब्रज की शोभामयी भूमिका।¹⁹

पर्यावरण जीवन में सुख-शांति और संतोष का संवाहक है। श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में सीता का चित्रकूट में बनी कुटिया को राजभवन के समतुल्य मानना इसका साक्षी है। इससे जीवन-सुरक्षा के विभिन्न आयामों के विकास की शिक्षा भी मिलती है। निरंतर प्रवाहित निर्झरों की पहरेदारी में निर्मल जल से संपन्न मृगों एवं सिंहों के अभयारण्य से युक्त इसका सौंदर्य तनु-लता सफलता स्वाद के साथ अवलोकनीय है—

क्या सुंदर लता वितान तना है मेरा,
पुंजाकृति गुंजित कुंज घना है मेरा
जल निर्मल पवन-पराग सना है मेरा
गढ़ चित्रकूट दृढ़-दिव्य बना है मेरा
प्रहरी निर्झर, परिखा प्रवाह की काया
मेरी कुटिया में राजभवन मनभाया।²⁰

नदियाँ भारतीय संस्कृति में पर्यावरण का धार्मिक प्रवाह ही नहीं, उसके संरक्षण का आधार भी हैं। विभिन्न धार्मिक अवसरों पर इनके प्रवाह को उन्मुक्त बनाए रखने के प्रयास हमारी आस्थाओं का आधार हैं। गंगा-यमुना और सरस्वती का संगम तीर्थराज प्रयाग भक्ति, धर्म एवं लोकरक्षा के अमृत-कलश के रूप में ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न तेजस्विताओं को अपनी पवित्रता में संरक्षित करके विश्व-कल्याण का संवाहक बन गया है। इसमें विलुप्त सरस्वती का वर्णन करते हुए जयशंकर प्रसाद ने लिखा है—

करती सरस्वती मधुर नाद
बहती थी श्यामल घाटी में निर्लिप्त भाव-सी अप्रमाद
सब उपल उपेक्षित पड़े रहे जैसे वे निष्ठुर जड़ विषाद
आलोक अरुण किरणों का उन पर अपनी छाया बिखराना
अद्भुत था निज निर्मित पथ का वह पथिक चल रहा निर्विवाद
कहता जाता कुछ सुसंवाद।²¹

हमारे देश को मरुस्थल होने से बचाने में नदी, पर्वत और वनस्थली का बहुत बड़ा योगदान है। गंगा, यमुना, गोमती, गोदावरी इत्यादि नदियों ने इसे विश्व की सर्वोत्तम उर्वरा शक्ति से अनुप्राणित करके नवजीवन प्रदान किया है। पर्यावरण का विकास यह सिद्ध करता है कि संसार के विकास क्रम में भीषण विप्लव, युद्ध तथा अणु-विस्फोटों के बावजूद इसकी सौंदर्य एवं उपयोगिता कभी समाप्त नहीं होगी। विभिन्न प्रकार के पक्षी, कीट, वन, उपवन, जलराशि, पर्वत श्रृंखलाएँ तथा जीव-जंतु इसका शाश्वत प्रमाण हैं। परिवर्तनशील युगजीवन में विकसित यथार्थ एवं आदर्शों के संवहन की आनंदमयी प्रेरणा से परिपूर्ण इसका सांस्कृतिक स्वरूप प्रेम तथा सद्भाव की सुकोमलता द्वारा सदैव सुख तथा संपत्तिदायक बनता चला जा रहा है। लोकरक्षा का सामूहिक आवेग इसमें मूर्तिमान देवीशक्ति के रूप में जीवन की विजयदायक स्फूर्ति प्रदान करने में सभी प्रकार से समर्थ है। स्नेह, लावण्य, दया, माया, ममता तथा करुणा के असंख्य विराम संकेतों को नूतन योजनाओं तथा संभावनाओं से अविरामता प्रदान करना इसका दृश्य एवं अदृश्य अभीष्ट है। फिर भी सीताकांत महापात्र के शब्दों में यही कहना उचित प्रतीत होता है—

जी कहता है

करना होगा आविष्कार फिर एक बार
काँटे और झाड़ियाँ लाँघ
अनजाने और अद्भुत भूगोल का
आकाश, समुद्र, तारे, नदी, वन, फूल
मृत्यु सपने यंत्रणाओं के
तमाम रास्ते पार कर
खलिहान लाएँगे ढोकर स्मृति-फ़सल।²²

संदर्भ

1. श्री सुमित्रानंदन पंत, कला और संस्कृति, पृ० 35
2. पृथ्वी सूक्त, 26, 27 अथर्ववेद, 12 कांड भाषांतरकर्ता पांडेय-पंडित श्री रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम' कल्याण, हिंदू संस्कृति अंक, पृ० 7
3. बालकवि वैरागी, परंपरा से जुड़े ए इंद्रधनुषी त्यौहार, नवभारत टाइम्स वार्षिकांक, पृ० 19, 20
4. पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', प्रिय प्रवास, पृ० 100
5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ० 11
6. वही, पृ० 11
7. श्री सुमित्रानंदन पंत, कला और संस्कृति, पृ० 107
8. पंडित राधेश्याम कथावाचक, राधेश्याम रामायण, पृ० 12
9. वही, पृ० 12
10. मलिक मुहम्मद जायसी, पद्मावत, पृ० 90
11. निराला, कुकुरमुत्ता, पृ० 38
12. वही, पृ० 49
13. प्रो० श्री रामचरण महेंद्र, हिंदू संस्कृति के आंतरिक पक्ष, कल्याण, हिंदू संस्कृति अंक, पृ० सं० 263
14. श्री सुमित्रानंदन पंत, रश्मिबंध, परिदर्शन, पृ० 8
15. वही, हिमप्रदेश, पृ० 131
16. श्री सुमित्रानंदन पंत, ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली खंड-दो, पृ० 141
17. वही, पृ० 162
18. अज्ञेय, कलगी बाजरे की, नया सप्तक, पृ० 67
19. पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध' प्रियप्रवास, पृ० 98
20. श्री मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ० 223
21. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ० 171
22. सीताकांत महापात्र वर्षा की सुबह, पृ० 14 अनुवाद, राजेंद्रप्रसाद मिश्र, राजकमल प्रकाशन

□ 6/7 खन्ना भवन, सुभाषनगर,
बरेली (उ०प्र०)

प्रज्ञावतार लीलामृत : अप्रतिम आधुनिक महाकाव्य

मधुकर अष्ठाना

महाकाव्य की परिभाषा करते हुए डॉ० गोविंदराम शर्मा ने लिखा है, 'महाकाव्य एक ऐसी छंदोबद्ध प्रकथनात्मक रचना होती है, जिसमें विषय की व्यापकता और नायक की महानता के साथ-साथ कथावस्तु की एकसूत्रता, छलकता हुआ रसप्रवाह, वर्णन विशदता, उदात्त भाषा-शैली, जीवन का यथासाध्य सर्वांगीण चित्रण और जातीय भावनाओं तथा संस्कृति की सुंदर अभिव्यक्ति हो।' सर्वप्रथम महाकाव्य के स्वरूप का विवेचन संस्कृत के आचार्यों ने अपने ग्रंथों में किया है, जिसमें भामह, दंडी, रुद्रट और हेमचंद्र के नाम प्रमुख रूप से लिए जा सकते हैं। उक्त आचार्यों के उपरांत विश्वनाथ ने अपने ग्रंथ 'साहित्यदर्पण' में विस्तारपूर्वक महाकाव्य के लक्षणों का निरूपण किया है और डॉ० गोविंद त्रिगुणायत ने उनके अभिमत का विश्लेषणात्मक उल्लेख किया है, जिसमें अनेक प्रतिमान स्थापित किए गए हैं। इसप्रकार अनेक विद्वानों, आचार्यों के महाकाव्य से संबंधित विवरणों का विश्लेषण करने के उपरांत प्रस्तुत ग्रंथ को महाकाव्य के स्थान पर उससे ऊपर 'पुराण' की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। इस ग्रंथ को प्रबंधकाव्य या महाकाव्य कहा जाना ग्रंथ की अवमानना होगी। वैसे यह ग्रंथ महाकाव्य की समस्त विशेषताओं से संपन्न है और अनेक अर्थों में महाकाव्य के गुणों के अतिरिक्त भी इसमें गुणात्मकता और व्यापकता है। इसकी प्रमुख विशेषता है कि इसका कथानक किसी पुराण अथवा इतिहास से न लेकर सत्य घटना पर आधारित है, जिसमें परमपूज्य आचार्य श्रीराम शर्मा से संबंधित उनके जीवन के ज्ञात-अज्ञात क्रिया-कलापों को गहन शोध के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कल्पना का स्थान बहुत सीमित है। इस ग्रंथ में जितने भी पात्र आए हैं, उनकी और साथ ही नायक की भी उदात्त चरित्र-सृष्टि की गई है। अनेक छंदों से समन्वित विशिष्ट रचना-शिल्प, समुन्नत काव्यकौशल का संज्ञान कराता है और इसका सृजन भी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं किया गया है और इसमें भी महत् उद्देश्य और उच्चकोटि का जीवनदर्शन निहित है। इसप्रकार प्रस्तुत ग्रंथ मानवतावादी जीवनमूल्यों से प्रतिष्ठित है। इसमें युगीन जीवनादर्शों की स्थापना की गई है, इस ग्रंथ का भारतीय संस्कृति के अनुकूल उसके उन्नयन में महत्वपूर्ण योगदान है। इसमें उन्नत विचार-दर्शन है, जिसमें समाज को संजीवनी शक्ति प्रदान करने की पूर्ण क्षमता है। वैविध्यपूर्ण वस्तुवर्णन, प्रकृति के विविध रूपों का कलात्मक चित्रण तथा विविधवर्णी भावों की मनोरम झोंकियों की अभिव्यक्ति कवि श्री शचींद्र भटनागर को काव्य-कौशल के शिखर पर प्रतिष्ठित करता है। परमपूज्य आचार्य श्रीराम शर्मा की ईश्वरीय प्रेरणा से मानवहितार्थ सृजित यह महाग्रंथ समाज को गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर मानव-धर्म स्वीकार करने के लिए आमंत्रित करता है। यह प्रेरित करता है ऐसे समाज के निर्माण के लिए, जिसमें रूढ़ जातिगत तथा संप्रदायगत व्यवस्था का स्थान न हो। सामाजिक विषमता, विसंगति,

विरूपता समाप्त करने के लिए, अंधविश्वासों और पाखंडों पर कठोर प्रहार करने के लिए, नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए तथा विकृतियों से बचते हुए आत्मोन्नति के प्रयास के लिए यह ऐसे महानायक की महागाथा है, जो सदियों की प्रतीक्षा के उपरांत मानव-कल्याण की उत्कट भावना से शब्दाकार होती है, जिसका श्रेय शचींद्र जी जैसे समर्थ रचनाकार को ही उपलब्ध होता है।

कथानक का प्रारंभ हिमगिरि पर सूक्ष्म तथा कारण सत्ताओं की महासभा से होता है, जिसमें मानव के रूप में अवतरित प्रतिभाओं के पतन-पराभव पर गहन विचार-विमर्श किया जाता है। लोकमंगल हेतु अशरीरी शक्तियों की महासभाएँ प्रायः होती रहती थीं, जिसे शचींद्र जी ने अपने शब्दों में निम्नांकित रूप में व्यक्त किया है—

वहीं हिमाच्छादित शिखरों पर ऋषिगण थे गंभीर गहन,
विषम परिस्थितियाँ पृथ्वी की उन्हें न हो पा रहीं सहन।
किया गया दुर्भेद्य क्षेत्र में महासभा का आयोजन,
करते थे संपूर्ण विश्वहित ऋषिगण चिंतन और मनन।

—प्रथम सर्ग, पृ० 03

इस सभा में परमात्मा की शाश्वत इच्छा का भी संदर्भ दिया गया है कि किस प्रकार धरती पर पापियों का नाश करने के लिए वह अवतार धारण किया करता है और वर्तमान में धरती पर हो रहे विनाश का वर्णन किया गया है। उक्त महासभा में धार्मिक अंधविश्वास, पाषंड जातिप्रथा, विधवाओं की करुण दशा, दहेजप्रथा, मृत्युभोज, महिलाओं की दासता अर्थात् देशकाल की समस्त गृहित राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों पर विचार-विमर्श होता है और अंत में सभाध्यक्ष कहते हैं—

महाकाल संकल्पित है अब, युग-परिवर्तन होना है,
अब नवयुग की नई भोर में, आना समय सलोना है।
महाकाल के द्वारा होगा, अभिनव एक प्रयोग यहाँ,
दूर उसी माध्यम से होगा, दुश्चिंतन का रोग यहाँ।
तपःपूत युगदृष्टा यद्यपि, समाधान युग को देगा,
किंतु न इस परिवर्तन का वह, श्रेय स्वयं किंचित लेगा।
जिसके माध्यम से देखेगी, प्रज्ञा का संचार मही,
संभव है स्वीकारा जाए, नवयुग का अवतार वही।

—प्रथम सर्ग, पृ० 15

सभाध्यक्ष का निष्कर्ष स्वरूप वक्तव्य श्रवण कर उपस्थित ऋषिगण की चिंताओं एवं शंकाओं का समाधान हो गया और वे सभी सभा-विसर्जन के उपरांत अपने-अपने स्थान पर चले गए। इस सर्ग में प्रथम दो छंद 48 मात्रिक दंडक हैं और उसके उपरांत पूरे कथानक में 16-14 मात्रा में लावनी छंद का प्रयोग हुआ है। अंत में भी दो छंद दंडक दिए गए हैं।

द्वितीय सर्ग का प्रारंभ भारतीय ग्रामों की प्राकृतिक सुंदरता के वर्णन से होता है, जिसमें क्रमशः परम श्रद्धेय आचार्य श्रीराम शर्मा के जन्मस्थान आँवलखेड़ा की भौगोलिक, सामाजिक तथा धार्मिक दशा का यथातथ्य वर्णन, आचार्यश्री के जमींदार परिवार का कृषकों के साथ

कोमल-स्नेहमय व्यवहार, सामाजिक परंपराओं, रीति-रिवाजों की संकीर्णता पर चिंतन, आचार्यजी के जन्म के समय की विलक्षणताएँ तथा पिता पं० रूपकिशोर को पुत्र के असाधारण होने का आभास आदि को महाकवि ने आलंकारिक भाषा और अन्यतम शिल्प में प्रस्तुत किया है। कथानक की रसार्द्रता और छंदों का लालित्य पाठक को बाँधे रखता है। प्रथम दो छंद दंडक और शेष 16-16 मात्रावाले सुगत एवं यंत्र छंद में प्रस्तुत करके कथा का विस्तार किया गया है—

यह निसर्ग की सुता, यहाँ के मौसम मनभावन होते हैं,
माँ की गोदी जैसे रजकण, अति पुनीत पावन होते हैं।
ग्रामवासिनी भरतभूमि यह, अन्नपूर्णा का पद पाती,
इसकी चरणधूलि मस्तक पर, आदर से धारण की जाती।

—द्वितीय सर्ग, पृ० 19

आँवलखेड़ा और वहाँ के निवासियों, वहाँ की आर्थिक स्थिति, प्राकृतिक सौंदर्य एवं आचार्यश्री के पूज्य पिता पं० रूपकिशोर के स्वभाव वर्णन के उपरांत माता दानकुँवरि के गर्भ-धारण के पश्चात् सपनों में दिव्य दृश्यों का दिखाई पड़ना आदि में शुभ संकेत आचार्यश्री की विलक्षण प्रतिभा का आभास कराते हैं यथा—

एक बार देखा जननी ने, दूर कहीं निर्जन प्रदेश था,
पृथ्वी और प्रकृति का मनहर, पारदर्श स्वर्णिम सुवेश था।
शुभ सिंदूरभरी थाली-सी, सूर्योदय की कांति वहाँ थी,
अद्वितीय सौंदर्य छटा में, व्याप्त अलौकिक शांति वहाँ थी।
तभी वहाँ स्वर्णिम सूर्योदय में नारी-आकृति उभरी थी,
माँ अवर्ण्य लावण्य देखकर, विस्मय से तत्काल भरी थी।

—द्वितीय सर्ग, पृ० 23

इसी प्रकार माँ को अनेक शुभकारी स्वप्न आते रहते हैं, जिसमें वह दिव्य देवों, ऋषियों आदि को देखती है। ऐसे ही पुलकित वातावरण में परमपूज्य आचार्यश्री का अवतरण हुआ, जिसका अनुपम शब्दांकन शचींद्र जी ने इस प्रकार किया है—

विद्वानों ने कहा, अलौकिक आत्मा भू पर प्रकट हुई है,
जो थी अंतरिक्ष में अब तक, वह पृथ्वी के निकट हुई है।
ऐसे प्रकट हुए कि गाँव के घर-घर में उल्लास छा गया,
दर्शन को फिर दूर-पास के, गाँवों का हर व्यक्ति आ गया।
एक प्रखर आवेश भक्ति का, सरिता-सा कल-कल लहराता,
लगता, वही प्रवाह अनवरत, उमड़-उमड़ सागर तक जाता।

—द्वितीय सर्ग, पृ० 25

द्वितीय सर्ग के अंत में पुनः तीन छंद दंडक दिए गए हैं, तृतीय सर्ग में प्रथम बाएँ पृष्ठ पर एक कुकुभ छंद और उसके पश्चात् दो छंद त्राटक हैं, दाएँ पृष्ठ पर दो दंडक छंद से प्रारंभ कर शेष सर्ग ताटक छंद में है, जिसमें बालक श्रीराम का उपनयन संस्कार, महामना मदनमोहन मालवीय द्वारा कराया जाना, गायत्री की महत्ता का वर्णन, वास्तविक ब्राह्मण का स्वरूप, ब्रह्मत्व की साधना की प्रक्रिया, वर्णव्यवस्था का वैज्ञानिक कारण, वर्तमान में रूढ़ रूप में पतन,

युगानुरूप परिवर्तन की आवश्यकता, यज्ञोपवीत का महत्त्व तथा बालक श्रीराम में परिपक्वता के विकास का विशद् वर्णन है। इस सर्ग के अंत में मनहरण घनाक्षरी के चार-चार चरण की चार रचनाएँ हैं, जिसमें बालक श्रीराम को स्वयं में आत्मविश्वास का आभास होता है। यथा—

होती थी, अनुभूति कि वह त्रिपदा गायत्री,
प्राणि-मात्र की जन-जन की अपनी माता है।
उसके सम्मुख सभी आपदाएँ बौनी हैं,
जीवन के तीनों तापों की वह त्राता है।
शनैः शनैः वह मन परिपक्व हुआ जाता था,
और प्रखरता बढ़ती जाती थी चिंतन में,
विघ्न पार करने में पथ के मैं सक्षम हूँ,
यह विश्वास सुदृढ़ होता था उसके मन में।

—तृतीय सर्ग, पृ० 41-42

सर्ग चार में बालक श्रीराम पहले की अपेक्षा अधिक सक्षम, अधिक बुद्धिमान और समाज के उपेक्षित वर्ग के प्रति अपार करुणा से पूरित दृष्टिगत होते हैं, विशेष रूप से तत्कालीन समाज में हरिजनों की दुर्दशा, सामाजिक असमानता, शोषण-उत्पीड़न से अधिक संवेदित होते हैं और समाज में सुधार-हेतु संकल्पित होते हैं। उस समय दलितवर्ग को अछूत समझा जाता था और उन्हें समानता का अधिकार प्राप्त नहीं था। उनके पास खेत या संपत्ति भी नहीं होती थी। उनका जीवन ऊँची जातियों की सेवा में रूखी-सूखी खाकर और दिन-भर मजदूरी में ही व्यतीत होता था और बड़ी जातियों के घरों से दूर उनकी झोपड़ियाँ होती थीं, अशिक्षा के साथ ही कुशिक्षा भी व्याप्त थी। छपको नाम की महिला उनकी हवेली में काम करती थी, जिसका कार्य झाड़ू-पोंछा और सफाई था। उसके परिश्रम से हवेली स्वच्छ रहती थी। बालक श्रीराम के अंतर्मन में उस समय जो अंतर्द्वंद्व चल रहा था, उसे शचींद्र जी ने निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त किया है—

घर की अस्वच्छता, छपको जब, निज सिर पर ढोकर जाती थी,
तभी एक शंका बालक के, मन में उभर-उभर आती थी।
चिंतन से बोझिल बालक का, मन गंभीर हुआ करता था,
दर्द दुखी-दलितों के मन का, उसका हृदय छुआ करता था।
स्नेह-न्याय से रहित व्यवस्था, बालक को न तनिक भी भाई,
एक दिवस बालक ने माँ को अपने मन की व्यथा सुनाई।

—चतुर्थ सर्ग, पृ० 45

छपको एक बार बीमार पड़ गई और कई दिनों काम पर नहीं आ सकी, जिससे हवेली की सफाई नहीं हो सकी और दुर्गंध भी आने लगी। बालक श्रीराम का मन व्याकुल हो उठा कि बीमार छपको की सेवा करनेवाला कोई नहीं होगा। उसे भोजन-पानी किस प्रकार उपलब्ध होता होगा। एकदिन जब उनके पिता भागवत कथा कहने अलवर चले गए थे और उनकी चिंता का कहीं समाधान नहीं हो सका, तो उन्होंने छपको को देखने उसकी झोपड़ी में जाने का निश्चय किया। श्रीराम ने वहाँ जाकर अपनी सामर्थ्य-भर छपको की सेवा की। यथा—

एक निमिष में निर्णय लेकर, मन उसके अनुकूल बनाया,

बाहर गया, निकट की कुटिया से थोड़ा जल लेकर आया। पानी स्वयं पिला छपको को, पुनः गया कुटिया से बाहर, उसका सारा कष्ट सुनाया, एक वैद्य के निकट पहुँचकर। समझ पूर्ण उपचार वैद्य से, शीघ्र लौट कुटिया में आया, लौटा तो मरहम-पट्टी की सामग्री हाथों में लाया। निकट पहुँचकर उसने धोया, वह कृमिभरा घाव वृद्धा का, फिर मरहम-पट्टी की, जिससे ठहरा पीप-स्राव वृद्धा का। क्वाथ बनाकर दिया कि जिससे शांति मिले छपको को ज्वर में, यूँ लौटी चेतना देह में, और शक्ति आई कुछ स्वर में।

—चतुर्थ सर्ग, पृ० 50

बालक श्रीराम के मन में दलितों के प्रति संवेदना केवल कथन रूप में नहीं थी, बल्कि वे उसे कार्यरूप में परिणत करते थे। उनके चिंतन एवं व्यवहार में कोई अंतर नहीं था। लौटने पर उनके चाचा ने उन्हें डाँटा और गंगाजल से स्नान कराकर हवेली में जाने दिया, लेकिन श्रीराम ने दृढ़ संकल्प किया और अपनी माता से अपने मन की बात कही कि जब तक छपको के घावों का पूर्ण उपचार नहीं हो जाता, वे उसकी सेवा करने जाते रहेंगे। यह भावाकुल संवेदना और करुणा उनकी अंतिम साँस तक अधिक सुदृढ़ होती गई, जिसने समाज में धार्मिक असहिष्णुता के स्थान पर समानता और सद्भावना की नूतन दिशा निश्चित की।

सर्ग पाँच में बालक श्रीराम उपनयन संस्कार के उपरांत नियमित रूप से गायत्री मंत्र का जप करने लगे। जहाँ वे नित्य उपासना करते थे, उसी कक्ष में उनकी अपने गुरु की प्रकाश-काया के दर्शन प्राप्त हुए। गुरु ने उन्हें उनके पूर्ववर्ती तीन जन्मों का दृश्य दर्शन कराया। गुरु ने उन्हें चौबीस महापुरश्चरणों एवं तत्संबंधी अनुशासनों के विषय में निर्देश दिया। गुरु ने व्यक्तिगत साधना के साथ ही लोकमंगल के कार्यों में भी सक्रिय रहने का निर्देश दिया। श्रीराम ने गुरु के प्रति स्वयं को पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया। यह सर्ग सुगत छंद से प्रारंभ और उसके पश्चात् सार छंद में नियोजित है। शचींद्र जी का अद्भुत छंद-ज्ञान निर्दोष होने के साथ ही सटीक भी है, कहीं-कहीं ऐसे छंदों का भी प्रयोग मिलता है, जो पहचान से परे हैं और हिंदी के लिए नवीनतम हैं, जिनका नामकरण होना चाहिए। उक्त प्रकार के छंदों का प्रयोग फ़ारसी भाषा में मिलता है, जब बालक श्रीराम को गुरु की प्रकाश-काया के दर्शन होते हैं तो तत्कालीन स्थिति-परिस्थिति का वर्णन शचींद्र जी निम्नांकित रूप में करते हैं—

हो नहीं सका था दिनारंभ, पर हुआ न था अब तक निशांत,
बालक श्रीराम कक्ष में था बैठा तन्मय, ध्यानस्थ, शांत।
मन था, जैसे हो दीपशिखा, निष्कंप अविचलित क्लांतिहीन,
नवनीत दुग्धवत् ध्यान हुआ, स्वर्णिम सूर्योदय में विलीन।

—पंचम सर्ग, पृ० 61

देखी देहेतर दिव्यमूर्ति, ज्यों मूर्तिमान साकार कांति,
आश्वस्त हुए श्रीराम, मिटी उनके मन की सारी अशांति।

—पंचम सर्ग, पृ० 62

छठवें सर्ग में शचींद्र जी ने आचार्यप्रवर की प्रथम हिमालय-यात्रा, नंदनवन तक वन्य पशुओं से युक्त मार्ग में कष्टमय यात्रा, तदुपरांत नंदनवन में गुरु का सान्निध्य, चौबीस सूक्ष्म शरीरधारी महर्षियों के दर्शन, उनका सान्निध्य एवं उनकी दिनचर्या का ज्ञान, पराधीन भारत की पीड़ा-निवारण के लिए गुरु के द्वारा निर्देशित साधना के साथ समाजसुधारक एवं स्वतंत्रता-संग्राम सेनानी बनने के निर्देश आदि का अनुपम वर्णन किया है, जिसका प्रारंभ अपूर्णाक्षरी मरुकणिका छंद में किया गया है जो हिंदी के सर्वाधिक लंबे 52 मात्रिक छंद हैं, इसे उर्दू में बहरे-रमल कहा जाता है। केवल दो छंद दंडक के समायोजित हैं। उक्त छंद का निर्वाह बहुत दुष्कर होता है, किंतु शचींद्र जी ने इस छंद का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। इससे स्पष्ट है कि उनकी छंदों-अलंकारों के साथ उनकी भाषा पर भी गहरी पकड़ है।

श्रीराम ने अपने गुरु का प्रकाशस्वरूप देखा, उनके उपदेशों को ध्यान से सुना और अपने मन में निश्चित कर लिया कि उन्हें सत्पात्र समझकर ही गुरु ने सत्कर्ष के लिए प्रेरित किया है, अतः कोई क्षण नष्ट करना हितकर नहीं है और वे निर्देशित गायत्री तत्पश्चर्या में पूरी भावना के साथ लग गए। इस तथ्य को शचींद्र जी ने निम्नांकित शब्दों में व्यक्त किया है—

भाव मानस में उठा श्रीराम के उस समय यह,
मार्गदर्शक से मिला है मौन आमंत्रण मुझे,
है परम सौभाग्य जो गुरु ने परखकर पात्रता,
अब बुलाया है, गँवाना है न कोई क्षण मुझे।
प्रेरणा जिनसे मिली है शक्ति भी देंगे वही,
उस विजन दुर्गम हिमालय तक पहुँचने के लिए,
जब समर्पण कर दिया फिर प्रश्न, शंका, सोच क्या,
पूर्ण अब निर्विघ्न होंगे कार्य सब उनके दिए।

—षष्ठ सर्ग, पृ० 75

माँ से विदा लेने के उपरांत वे हिमालय की ओर अग्रसर हो जाते हैं। हिमालय का इतना सुंदर वर्णन शायद ही किसी रचनाकार ने किया हो। यह वर्णन जहाँ प्रकृति के मर्म को खोलकर रख देता है, वहीं अपूर्व सौंदर्यबोध भी कराता है। हिमालय की प्रकृति का मनोरम चित्रण आचार्य श्रीराम शर्मा की दृष्टि से देखते शचींद्र जी उसका मनोरम चित्रण निम्नवत् करते हैं—

प्रकृति के ममतामयी आँचल तले चलते हुए,
देखते हर दृश्य में केवल सगा परिवार-सा,
मौन ममता की मधुर अनुभूति होती थी उन्हें,
था वहाँ कण-कण प्रकृति के प्यार के विस्तार-सा।
पुष्प-पल्लव से, विटप से, वायु-जल के वेग से,
झर रहा आत्मीयता का मृदु मधुर मकरंद था,
हिमशिखर, सरवर, अग्नि, आकाश के हर छोर तक,
जिस दिशा में दृष्टि जाती थी, वहीं आनंद था।
दीर्घ चीड़ों-दावेदारों के विटप तनकर खड़े,

थे सुरक्षा में सजग-सन्नद्ध प्रहरी की तरह,
हिमशिखर पर दूर जब नवजात अरुणाभा खिली,
तो लगी वह ग्राम का स्वर्णिम दुपहरी की तरह।

—षष्ठ सर्ग, पृ० 77

स्थूल से सूक्ष्म तक हिमालय का वर्णन करने के उपरांत कवि ने सिद्धात्माओं से भेंट और हिमालय के सूक्ष्मदर्शन की भी कथा कही है। सिद्धात्माओं के साथ हिमालय की यात्रा श्रीराम को अत्यंत सहज लगी और कुछ ही अवधि में सैकड़ों मील की यात्रा संपन्न हो गई और उन्हें अपने गुरु के दर्शन हुए। श्रीराम ने मन-ही-मन कल की यात्रा के संबंध में जब सोचा तो, जो सिद्धात्मा मार्गदर्शक वहाँ तक ले गए थे, उन्होंने तत्काल उन्हें समझाया और कहा—

मार्गदर्शक ने तुरत समझा, कहा श्रीराम से,
'मोह मत करना कभी गिरिक्षेत्र से, ऋषिलोक से,
जब मिले निर्देश, केवल उस समय आना इधर,
अन्यथा होंगे विकल उद्वेग से, दुख-शोक से।
सिद्ध भू है यह हिमालय-क्षेत्र की, इस भूमि पर,
हर अलौकिक पंचभौतिक आवरण सुपुनीत है,
दिन, महीने, वर्ष की गणना न हो सकती इधर,
साधना की भूमि यह संपूर्ण समयातीत है।
मानवी इच्छा न अपना लक्ष्य कर सकती इसे,
इस अतीन्द्रिय लोक में आता नहीं कोई स्वयं,
यह कठिन दुस्साध्य, दुर्गम है, न पा सकता इसे,
बुद्धि, शिक्षा, ज्ञान, श्रम, विज्ञान, कौशल का अहां।'

—षष्ठ सर्ग, पृ० 81

गुरु के उपदेशामृत से विश्वकल्याण, लोकमंगल और मानवता के उत्थान का दृढ़ संकल्प लेकर श्रीराम पुनः अपने कर्मक्षेत्र में वापिस आ गए। उन्हें लौटते समय सिद्धात्माओं ने गोमुख तक सरलता से पहुँचा दिया। लौटकर वे स्वतंत्रता-संग्राम में भी कूद पड़े। यह खंड अंत में फ़ारसी के छंद 'बहरे-रमल' में समाप्त किया गया है, जो हिंदीकाव्य के लिए नया छंद है और उसका नामकरण छंद-विशेषज्ञों ने अभी तक नहीं किया है।

'श्रेय पथ' शीर्षक से प्रारंभ सप्तम सर्ग में भारत के स्वाधीनता-संग्राम और उसमें बालक श्रीराम द्वारा बालसेना का गठन, उसकी सक्रियता और संगठन-शक्ति के माध्यम से उनका योगदान दर्शाया गया है। बालक श्रीराम को बार-बार परिवारीजनों द्वारा वर्जित किया जाना और उसके बावजूद उनकी आगरा के काँग्रेस कार्यालय तक पैदल यात्रा आदि ऐसे कार्य-कलाप हैं, जो उनके देशप्रेम का संज्ञान कराते हैं। इसी क्रम में लगानबंदी आंदोलन में निष्ठापूर्वक प्रयास, जिसमें तत्कालीन कलेक्टर विलियम सन द्वारा उनके ऊपर लाठियों से प्रहार, फिर भी मूर्च्छा आने से पूर्व ध्वज के सम्मान को आँच न आने देना, उनका साहस, सजगता तथा प्रत्युत्पन्नमति के प्रदर्शन आदि के उपरांत पुरश्चरण साधना में व्यवधान से गुरु के निर्देशों के अनुपालन में कठिनाई होने की चिंता और साथ ही उनकी परिस्थितियों के परिप्रेक्ष में गुरु द्वारा साधना की

पूर्व निर्धारित अवधि में वृद्धि करने का आश्वासन देना भी सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त सैनिक समाचार-पत्र के संपादन में सहयोग के द्वारा जनता को स्वतंत्रता आंदोलन के संबंध में जागरूक कर सहयोग प्राप्त करने के प्रयास द्वारा उनकी क्षमता का परिचय प्राप्त होना भी इसी सर्ग में निबद्ध है। सर्ग के अंत में उस समय के वरिष्ठ साहित्यकार बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' द्वारा श्रीराम को आशीर्वाद दिया जाना, उनकी अहंकारहीनता एवं विनम्रता का परिचय तथा डॉ॰ केलकर के साथ कार्य करने की सामर्थ्य की प्रामाणिकता आदि का विवरण अत्यंत सुंदर छंदों में कवि ने बड़ी कुशलता से दिया है, जिसका कथ्य ही नहीं, शिल्प भी अनूठी कलात्मकता से परिपूर्ण है।

यह सर्ग 'बहरे-रमल' के तीन छंदों से प्रारंभ होकर दो मदनहरण घनाक्षरी और तदुपरांत ताटक छंद में सुनियोजित निबद्ध है और उपसंहार पुनः बहरे रमल से ही होता है। उत्कृष्ट प्रतीक बिंब-विधान, लक्षणा शब्दशक्ति का प्रयोग और कथानक के साथ पूर्णतः न्याय करने की कामना में शचींद्र जी की शब्द-साधना पूर्णतया सफल है, अक्षर-ब्रह्म के आराधक-साधक केवल छंदबद्ध कथा लिखने का निरपेक्ष कार्य नहीं करते, बल्कि उसमें स्वयं को विलीन कर देते हैं और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि आचार्यप्रवर स्वयं अपनी कथा लिखा रहे हैं अथवा कवि शचींद्र जी की जाग्रत कुंडलिनी अपने अंतर्चक्षुओं से समस्त घटनाओं की साक्षी होकर उन्हें सृजन का माध्यम बनाती है। प्रस्तुत महाकाव्य में शचींद्र जी वेदव्यास की भाँति केवल काव्य नहीं लिखते, बल्कि एक ऐसे धर्मग्रंथ का प्रणयन करते हैं, जो घर-घर अखंड पाठ के योग्य है, जिसकी प्रत्येक घटना हमें प्रेरणा देती है, जाग्रत करती है और सकारात्मक सक्रियता का लोकमंगल हेतु आमंत्रण देती है। स्वयं कहते हैं—

गिज की विविध विधाएँ होती हैं, जीवन में,
शोधन की हर विधा साधना बन जाती है।
ईश्वर को अर्पित कर्तव्य हुआ हो जिसमें
वह, जीवन-शैली उपासना बन जाती है।

—सप्तम सर्ग, पृ० 87

यद्यपि उपर्युक्त उक्ति आचार्यजी के भविष्य से संबंधित है, किंतु शचींद्र जी पर भी सटीक है। निश्चित रूप से प्रस्तुत ग्रंथ का सृजन प्रारंभ करने से पूर्व उन्होंने साधना के समस्त सोपान पार किए होंगे तभी यह दिव्य महाकाव्य अवतरित हो सका।

स्वतंत्रता-संग्राम में हुए लाठी चार्ज का वर्णन करते हुए शचींद्र जी लिखते हैं कि जब बाल सेना के जुलूस पर अंग्रेज कलेक्टर ने लाठीचार्ज कराया तो भीड़ तितर-बितर होने लगी, किंतु श्रीराम भागने वाले नहीं थे। वे ध्वज लेकर निर्भीक खड़े रहे। लाठियाँ बरसती रहीं, किंतु उन्होंने ध्वज नहीं झुकने दिया। यथा—

खड़े रहे श्रीराम अभी भी, ध्वजा थामकर कोमल वय,
ज्यों पतझर की शुष्क आँधियों मध्य घिरा कोई किसलय।
ऊँची थी वह भुजा कि जिसमें ध्वजा तिरंगा थामा था,
मातृभूमि के इस सपूत का अब भी था ऊँचा माथा।

—सप्तम सर्ग, पृ० 99

डंडे खाते रहे किंतु वह डरकर विचलित हुए नहीं,

भारतमाता की जय कहते-कहते मूर्च्छित हुए वहीं।
मुख में दबा लिया ध्वज, गिरने लगा जब कि पृथ्वी पर तन,
गिर न सका झंडा पृथ्वी पर गिरे वहाँ कुछ शोषित-कण।

—सप्तम सर्ग, पृ० 99

स्वतंत्रता-आंदोलन में चार बार कारावास की यातना सहने के उपरांत आंतरिक प्रेरणा से देश में स्वतंत्र भारत के योग्य युवाओं के निर्माण का बीड़ा उन्होंने उठाया और युगनिर्माण के पथ पर अग्रसर हुए, जो उनका पूर्व निर्धारित श्रेयपथ था। यथा—

की तभी उद्घोषणा 'उस नव स्वशासित देश को,
प्रचलनों से भिन्न दूँगा एक अभिनव भक्ति मैं,
कल रहे परतंत्र, वंचित नागरिक को देश में,
फिर यहाँ दूँगा नई प्रेरक अभय अभिव्यक्ति मैं।
प्रगति-पथ पर वेग से जो बढ़ चलें, बढ़ते रहें,
उन करोड़ों पाँव को दूँगा अपरिमित शक्ति मैं,
जो न सोचें लौटने की, लक्ष्य पर पहुँचे बिना,
बस वही तेजस्विता-संपन्न दूँगा व्यक्ति मैं।

—सप्तम सर्ग, पृ० 108

'उत्सर्ग' शीर्षक से प्रारंभ अष्टम सर्ग पं० श्रीराम शर्मा की द्वितीय हिमालय यात्रा से प्रारंभ होता है। जहाँ उनके गुरु देश की स्वतंत्रता-हेतु आश्वस्त करते हैं और भारतवासियों में आध्यात्मिक सामर्थ्य जगाने का निर्देश देते हैं, जिससे नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक व्यवस्था में यथोचित परिवर्तन हो सके। शिष्य ने निर्देश के क्रियान्वयन हेतु 'अखंड ज्योति' पत्रिका के नाम एवं स्वरूप के विषय में चिंतन तथा प्रयास किया। इस क्रम में पं० श्रीराम शर्मा आगरा से मथुरा आ गए और पत्राचार प्रारंभ किया। उनके पत्रों में प्रभावित और आकर्षित करने की विशेष क्षमता होती थी। उनकी धर्मपत्नी भगवतीदेवी की स्नेहशीलता, सहजता और आत्मीयता से पूर्ण व्यवहार सदैव सबको प्राप्त था। वह चाहे विपत्नी की संतानें हों अथवा अतिथि आगंतुक हों, सभी उनके व्यवहार तथा कार्यशैली से प्रसन्न थे। उन्होंने महिला-मंडल का भी गठन किया। कवि ने इस सर्ग के अंत में पत्नी भगवतीदेवी के आदर्श त्याग का भी सुंदर वर्णन किया है। सर्ग का प्रारंभ 48 मात्रा के दो दंडक छंदों से किया गया है और उसके पश्चात् सुगत छंद का प्रयोग है।

लौकिक दृष्टि से हिमालय का वास्तविक दर्शन संभव नहीं है। उसके लिए तो तपस्यारत देहेतर गुरुओं की कृपा चाहिए। हिमालय का अद्भुत सौंदर्य अंतर्मन की दृष्टि से ही निहारा जा सकता है। पं० श्रीराम शर्मा के पूर्व जन्म का पुण्य और वर्तमान जन्म की साधना के फलस्वरूप गुरु के वे कृपापात्र थे। गुरु उनसे आध्यात्मिक भारत के प्राचीन गौरव का पुनरुद्धार चाहते थे, जिससे स्वदेश की स्वाधीनता, जो मिलनी निश्चित हो गई थी, के संग्राम में पुनः कूदने का औचित्य समाप्त हो गया था। हिमालय की यात्रा करते हुए वे नंदनवन तक पहुँच गए और वहाँ की शोभा देखकर प्रमुदित हो गए। उसी के उपरांत उन्हें अपने गुरु के दर्शन हुए। गुरु एवं शिष्य का मिलन, श्रद्धा एवं स्नेह की पराकाष्ठा का परिचय देता है। गुरु ने उन्हें अदृश्य

महर्षियों एवं तपस्यारत महात्माओं के दर्शन ही नहीं, उनके उपदेश भी श्रवणपान कराने का आश्वासन दिया और जब दर्शन मिला तो—

ऋषियों का सामीप्य प्राप्त कर, शिष्य स्वयं अब धन्य हुआ था,
इस अमूल्य अवसर के सम्मुख, सब-कुछ उसे नगण्य हुआ था।
उनके दर्शन-लाभ प्राप्ति को लेकिन ज्योंही आँख उठाई,
उन सबके नयनों में देखी, गहन वेदना की परछाँई।
आनन पर उल्लास नहीं था, आँख डबडबाई लगती थी,
उनके मस्तक पर चिंता की, गहन घटा छाई लगती थी।
दृश्य देख श्रीराम स्तब्ध थे, पर भीतर होता था मंथन,
साहस था न प्रश्न करने का, हुआ किंतु व्याकुल उनका मन।

—अष्टम सर्ग, पृ० 113

गुरु ने महर्षियों के दुखी होने का कारण भारत में आध्यात्मिकता का अभाव बताया और महर्षियों की आकांक्षा का भी उल्लेख किया, जो वे श्रीराम शर्मा के माध्यम से कराना चाहते थे। कवि ने इस अवसर पर भारत में धर्म का व्यापार करनेवाले ठग-प्रवंचकों पर भी तीव्र कटाक्ष किया है। यथा—

छद्म वेशधारी कितने ही, साधु-संत फिरते हैं भू पर,
उनमें से अधिकांश साधुजन, हैं न क्षुद्रताओं से ऊपर।
केवल लोभ-मोह-लिप्सा में जीवन व्यर्थ गवाँते रहते,
स्वयं सुपथ का वरण न करते, औरों को भटकाते रहते।
कितने उपदेशक मंचों से, शब्द-जाल फैलाया करते,
स्वर-संगीतजनित भावुकता से सबको बहकाया करते।
किंतु न श्रोताओं को जीवन की उत्कृष्ट दिशा दे पाते,
नहीं थके-हारे मानव को, उत्कट जिजीविषा दे पाते।

—अष्टम सर्ग, पृ० 113-114

इस प्रकार शचींद्र जी ने गुरु के उपदेश के द्वारा ही, वर्तमान आध्यात्मिक परिस्थितियों का वर्णन करते हुए सृजन को वर्तमान से जोड़कर, प्रासंगिक बनाने के महत् उद्देश्य को भी पूर्ण किया है, जो उनके ज्ञान, विवेक-कौशल एवं सार्वभौमिक दृष्टि का परिचायक है। गुरुओं द्वारा लक्ष्य का इंगित किए जाने के उपरांत आचार्यजी ने 'अखंड-ज्योति' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया, जिसमें चयन, लेखन, संचयन, संपादन एवं प्रेषण का संपूर्ण दायित्व वही वहन करते थे, जिसका सुपरिणाम भी निकला।

'अखंड ज्योति' के प्रचार-प्रसार के साथ ही पं० श्रीराम शर्मा को अनन्य सहयोगी भी प्राप्त होने लगे, जो संस्था की सेवा में अपना तन-मन-धन अर्पित कर सदुद्देश्य-हेतु कार्य करने लगे और संस्था दिन-प्रतिदिन प्रगति करने लगी। श्रीकृष्ण की जन्मभूमि मथुरा को ही केंद्र बनाया गया। पं० श्रीराम शर्मा ने पत्रिका के द्वारा तथाकथित योगियों, साधुवेशधारी बाबाओं की पोल खोलने के साथ ही समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, पाखंडों के विरोध के साथ ही धार्मिक अनुष्ठानों में तथाकथित ब्राह्मणों के वर्चस्व को समाप्त करने का सराहनीय प्रयास किया।

वैदिक/सनातन धर्म में आई विकृतियों का पर्दाफ़ाश कर साधारणजन को अपव्यय से भी बचाने का प्रयास किया तथा धर्म को सरलीकरण के द्वारा सभी वर्गों के लिए मुक्त किया। उन्होंने धर्म को तर्क एवं विज्ञान के निकष पर कसकर वर्तमान परिस्थितियों में पूरे समाज के लिए उपयोगी एवं प्रगतिगामी बनाया। यथा—

जीवन की अति गूढ़ गुत्थियाँ, इनके माध्यम से सुलझाई,
गायत्री की दिव्य शक्तियाँ, इनसे ही सबको समझाई।
स्वस्तिक, तुलसी तथा तीर्थ का, इसमें ही था विशद विवेचन,
गंगा, गुरु, गायत्री, गीता, गौ को इनसे मिला समर्थन।
इनमें थे शुचि शिखा-सूत्र के सारे वैज्ञानिक प्रतिपादन,
पर्व संस्कारों से मिलते जीवन के उपयोगी शिक्षण।
वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर, इस क्रम में ही हुआ प्रकाशन,
किंतु मात्र था सूत्रपात वह, था न विषय का विशद विवेचन।

—अष्टम सर्ग, पृ० 129

पत्नी भगवतीदेवी ने भी अपने सारे गहने इस पुनीत कार्य-हेतु दान कर दिए थे और साथ ही समस्त गृह-व्यवस्था को भी वह सुचारु रूप से संपादित करती रहीं। उनके लिए हिंदू-मुसलमान सभी समान थे और सहयोगी भी। उनके वात्सल्य-भाव ने परिवार के सभी सदस्यों एवं परिजनों को आप्लावित कर दिया था। सुयोग्य एवं कर्मठ जीवन-साथी के कारण पं० श्रीराम शर्मा अध्यात्म के प्रचार-प्रसार में निर्विघ्न समर्पित हो गए। भगवतीदेवी भी महिलाओं को जाग्रत, सुशिक्षित और कर्मठ बनाने में व्यस्त हो गईं, जिसके संदर्भ में उन्होंने महिला-मंडल का गठन भी किया।

नवम सर्ग 'समाधान' शीर्षक से है, जिसमें प्रथम गायत्री तपोभूमि का पूजन, पं० श्रीराम शर्मा को आचार्य की उपाधि से विभूषित किया जाना, गायत्री माता के विग्रह की प्राण-प्रतिष्ठा और आचार्यजी द्वारा चौबीस दिन का जलोपवास, यज्ञाचार्यों द्वारा पं० श्रीराम शर्मा को आचार्य तपोनिष्ठ की उपाधि दिया जाना, गुरुदीक्षा, गायत्री महाविज्ञान का प्रकाशन, सामूहिक जप का प्रभाव, नरमेध की व्याख्या, यूपबद्धों का दर्शन और माता भगवतीदेवी द्वारा दैनिक उपयोग के आभूषणों का भी समाज के लिए अर्पित किया जाना आदि सुनियोजित है।

घीयामंडी की तपस्थली यद्यपि छोटी थी, किंतु मनोरम थी, जहाँ नियमित रूप से ध्यान, जप, तप आदि होते थे। निरंतर होनेवाले महापुरश्चरणों के तप से पूजास्थल में अपूर्व ऊर्जा विद्यमान थी। वहाँ गायत्री माता का चित्र स्थापित था, जिनके एक हाथ में कमंडल तथा दूसरे हाथ में वेद शोभित था, जल-कलश स्थापित था, जिस पर आम्र-पत्र एवं श्रीफल रखा था और अखंड दीपक जल रहा था। उस समय आचार्यजी की मनोदशा का वर्णन करते हुए शचींद्र जी लिखते हैं—

शांत चित्त श्रीराम, शांत मन थे, सुस्थिर शरीर था उनका
तन, पीयूष प्रवाहित धारा का अति शांत तीर था उनका
बुद्धि शांत थी, शांत अहंता, शांत वासना की आवर्ते
तृष्णा-उद्विग्नता शांत थी, थी विकार की वहाँ न पर्ते

नेत्र-निमीलित, भाव-संयमित, समय ध्यान का था वह नीरव,
मध्य चेतना के दिनकर का दृश्यमान था स्वर्णिम वैभव।

—नवम सर्ग, पृ० 145

बसंत पंचमी के पावन अवसर पर तपोभूमि के शिलान्यास का आयोजन किया गया, इसके पूर्व माता दानकुँवरि ने समस्त विधि-विधान से अर्चना-प्रार्थना की और पूजावेदी पर चाँदी की ग्यारह मुद्राएँ चढ़ाईं। पूजास्थल पर सर्वप्रथम गायत्री माता का मंदिर और उसके उपरंत यज्ञ-भवन का निर्माण हुआ। ज्येष्ठ मास के शुक्ल-पक्ष की दशमी तिथि, जिसे गंगा-दशमी भी कहा जाता है, गायत्री माता की जयंती होती है, अतः उक्त दिवस ही मंदिर में प्राणप्रतिष्ठा की गई। उक्त अवसर पर उत्तराखंड के त्रियुगीनारायण तीर्थ की अखंड अग्नि मँगाई गई थी, जो यज्ञशाला में स्थापित की गई। विद्वानों एवं वेदाचार्यों ने यज्ञ का संचालन कराया। सहस्रांशु ब्रह्मयज्ञ जनहित के आत्मोत्थान हेतु कराया गया और इस प्रकार वैयक्तिक तप-अनुष्ठान का समाजीकरण प्रारंभ हो गया। उक्त अवसर पर आगंतुक साधकों का भी कठिन तितीक्षामय जीवन था और उन्हें काष्ठपादुका पहननी पड़ती थी एवं केवल दुग्धाहार ही करना होता था। इस प्रकार अनवरत घोर साधना द्वारा आश्रम के संस्कार को जगाया गया एवं सिद्धपीठ हेतु श्रेष्ठ पुण्यात्माओं, जनसेवी, ज्ञानी-विज्ञानी तथा वृद्ध हो चुके अध्येताओं से आशीर्वाद माँगा गया। आचार्यजी ने चौबीस दिन तक केवल ऋषिकेश के गंगाजल को ही ग्रहण कर घोर तपस्या की थी। उसी समय उन्हें अपने देहतर गुरु के आगमन का आभास हुआ, जिन्होंने आचार्यजी को गायत्री विद्या का प्रचार-प्रसार-विस्तार का महनीय कार्य करने हेतु निर्देशित किया। इसे कवि ने निम्नांकित शब्दों में व्यक्त किया है—

गायत्री के विग्रह की भी, प्राण-प्रतिष्ठा हो जाएगी,
फिर श्रद्धालु साधकों की भी भीड़ वहाँ नित-नित आएगी।
लेकिन जो दुर्बुद्धि-विनाशक, है सन्मति-प्रेरक गायत्री,
क्षुद्र स्वार्थ, संकीर्ण भाव की होती जो वेधक गायत्री।
जिस विद्या ने दी ब्रह्मा को थी अतुलित सामर्थ्य सृजन की,
जिससे उन्हें मिली थी स्रष्टा के गरिमामय संबोधन की।
जिस विद्या ने दी वशिष्ठ को अति विशिष्ट बनने की क्षमता,
जिसके कारण परमेश्वर ने की उनकी सद्गुरु से समता।
विश्वामित्र साधना जिनकी करके थे ब्राह्मण कहलाए,
प्रबल शक्ति से जो गायत्री-विद्या की, महर्षि बन पाए।
ऐसी गायत्री-विद्या का अब विस्तार तुम्हें करना है,
जनसाधारण में इसके प्रति अब विश्वास तुम्हें भरना है।

—नवम सर्ग, पृ० 150-151

गुरु ने बताया कि समाजसेवा और मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए गायत्री का जो जप करेगा, उसे पूर्ण फल प्राप्त होगा और गायत्री मंत्र उसके लिए प्रतिबंधित नहीं रहेगा। जिनका ध्येय लोकमंगल एवं विश्वकल्याण के स्थान पर व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति होगी और जो मानवता के विपरीत आचरण करेगा उसे यह जप फलित नहीं होगा। आद्यशक्ति की इस विद्या से जन-जन को लाभान्वित करना ही हिमगिरि के शिखरों पर साधनारत ऋषियों का उद्देश्य है

जनवरी-मार्च 2013 ■ 39

जिसका संपूर्ण उत्तरदायित्व आचार्य श्रीराम शर्मा को वहन करने का निर्देश गुरु से प्राप्त हुआ। आचार्य जी चौबीस दिनों तक केवल गंगाजल पर ही साधना करते रहे और जब यह तपस्या समाप्त हुई तो उस समय का वर्णन शचींद्र जी ने निम्नवत् किया है—

काली कमली से तन आवृत, काला चश्मा ढके नयन को,
ऊर्जा का संचय होता था, रुद्ध किया हर वातायन को।
क्षीण हुआ था स्वर, वाणी भी थी विनम्र मंथर अति कोमल,
किंतु गौरवर्णी काया पर फैली थी अरुणाभा उज्ज्वल।
देह-भार घट गया किंतु थी, मुख पर तेजस्विता अनाहत,
ऊर्जित तन संस्पर्श मात्र से लगता था विद्युत तरंगवत्।
दीप्ति दृष्टि में तेज, देह में, वह साधक ज्यों सिद्ध हुआ था,
तभी समक्ष गमन, या उनका चरणस्पर्श निषिद्ध हुआ था।

—नवम सर्ग, पृ० 154

मंदिर में एक ओर गायत्री माता का विग्रह और निकट ही चौबीस सौ तीर्थों का जल एवं प्रमुख सिद्धपीठों की रज रखी थी जिसमें अपूर्व आध्यात्मिक बल था। सहस्रों साधकों ने सवाकोटि मंत्र लेखन किया था जो मूर्ति के पार्श्वभाग में रखा गया था। इस आयोजन में केवल साधकगण ही आमंत्रित थे। आयोजन सायंकाल में समाप्त हुआ और उक्त समय का चित्रण करते हुए शचींद्र लिखते हैं—

अब केवल साधकगण ही थे, शेष वहाँ आश्रम प्रांगण में,
छाने लगी लालिमा थी अब पश्चिम के नीलाभ गगन में।
थका हुआ सूरज लगता था, निष्प्रभ सिंदूरी थाली-सा,
दिनभर उपवन की सेवा कर लौट रहे उन्मन माली-सा।
लुप्त हुई लालिमा, अँधेरा फिर धीरे-धीरे गहराया,
विलग सरोवर जल से होकर, जैसे अरुण कमल कुम्हलाया।

—नवम सर्ग, पृ० 156

इस प्रकार चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति संपन्न होने के उपरांत दिव्य ब्रह्मवर्चस की अपूर्व ऊर्जा का अंश उपस्थित साधकगणों को प्राप्त हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल आचार्यजी ने सर्वप्रथम माता भगवतीदेवी को दीक्षित किया। यज्ञ के उपरांत उपस्थित साधकों को गायत्री जप का प्रचार करने का आह्वान किया और कहा कि बिना जाति-धर्म, छुआछूत आदि का भेदभाव किए इस मंत्र की दीक्षा सभी को दी जाए, जिससे संपूर्ण विश्व का कल्याण हो सके। साधकों के लिए साधना सत्र चलाने तथा नवशक्ति साधना के लिए 'अखंड ज्योति' पत्रिका द्वारा भी साधक आमंत्रित किए जाने लगे। अपनी दोनों संतानों शैल तथा मृत्युंजय को भी आचार्यजी ने दीक्षा दी। आचार्यजी तथा शिष्यों के प्रयास से देश में यज्ञों की शृंखला चल पड़ी और स्थान-स्थान पर आचार्यजी स्वयं तथा प्रतिनिधियों के द्वारा यज्ञों का संचालन कराने लगे।

दशम सर्ग 'विस्तार' शीर्षक के अंतर्गत आचार्यजी द्वारा आध्यात्मिक उन्नति-हेतु चलाई गई योजनाओं का विस्तार किया गया जिसमें सहस्रकुंडीय यज्ञ की प्रेरणा, यज्ञीय भाव का अर्थ, ब्रह्मास्त्र अनुष्ठान का स्वरूप, जिसके अंतर्गत केवल सुपात्र साधकों की प्रविष्टि होती थी तथा

आचार्यजी के उद्बोधन की विशेषताओं को स्पष्ट किया गया है, इसके अतिरिक्त अनेक घटनाक्रमों एवं आचार्यजी के यज्ञों का प्रभाव तथा विरोध भी दर्शाया गया है। राजनीतियों का हस्तक्षेप और आचार्यजी को शास्त्रार्थ की चुनौती दिया जाना भी सम्मिलित है। इसमें जो यज्ञशाला में विलक्षण अनुभूतियाँ हुई, उनकी भी चर्चा की गई है। पाँच दिवसीय कार्यक्रम का समापन आचार्यजी के विशिष्ट उद्बोधन से हुआ, जिसमें विशाल जन-श्रद्धा का आवेग यज्ञशाला की परिक्रमा करने को उमड़ पड़ा। इसी सर्ग में श्री सत्यनारायण पंड्या का परिवार में आगमन हुआ, जो आचार्यजी के प्रवचनीय प्रभाव के फलस्वरूप संभव हो सका। पंड्याजी के पुत्र प्रणव के विषय में भविष्यवाणी भी की गई।

सर्ग के प्रारंभ में सुगत के तीन छंद, फिर दंडक के दो छंद पुनः सुगत में ही पूरा अध्याय निबद्ध है। आचार्यजी की तत्कालीन मनोदशा उसकी प्रतिक्रिया और उसका सक्रिय रूप निरूपित करने में ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं आचार्यजी ही शचींद्र की लेखनी में उतर आए हैं। उस समय की परिस्थितियों, वातावरण, घटनाओं का यथार्थ चित्रण, भाषा की सहजता और प्रवाहमयता आदि ऐसी विशिष्टताएँ हैं, जो अन्य ग्रंथों में कठिनाई से परिलक्षित होती हैं। कृति में अन्य भाषा के शब्द कहीं दिखाई नहीं पड़ते जैसे शचींद्र जी संस्कृत एवं हिंदीभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा जानते ही नहीं, जबकि वस्तुतः वे उर्दू और अँग्रेजी के भी पंडित हैं, नीरस प्रसंगों को भी उन्होंने सरस एवं मनोरम बनाकर प्रस्तुत किया है, जो उनके विशद ज्ञान का परिचायक है। यज्ञ की महत्ता को समझाने के लिए शरीर को माध्यम बनाना अत्यंत सुंदर एवं पठनीय है—

देखो इस संपूर्ण प्रकृति में, कहीं क्षुद्रता नहीं व्याप्त है,
सभी अन्य को देते रहते, जो कुछ होता उन्हें प्राप्त है।
तन भी तो जन्म से मृत्यु तक, प्रतिपल यज्ञ किया करता है,
इसे प्राप्त जो हुआ, अन्य को निस्पृह भाव दिया करता है।
कर पग के श्रम से जो अर्जित होता, वह मुख तक जाता है,
मुख उसको रससिक्त बनाकर स्वयं उदर तक पहुँचाता है।
उदर उसे तन के उपयोगी रस में परिवर्तित करता है,
अपने पास नहीं उसमें से वह कुछ भी संचित करता है।
पुनः हृदय के द्वारा उसको, सारे तन में पहुँचाता है,
फिर तन का प्रत्यंग उसी से शक्ति पुष्टि प्रतिपल पाता है।

—दशम सर्ग, पृ० 172-173

यज्ञ में जो भी सामग्री अर्पित की जाती है, वह उस सामग्री के भीतर निहित शक्ति को अभिवर्धित कर सूक्ष्म बना देता है और जनकल्याण के लिए उसे दूर-दूर तक विस्तार देता है और वह इस प्रकार संपूर्ण सृष्टि-चक्र में आवश्यक एवं उपयोगी संतुलन बनाता है जैसे गाय दुहने के पूर्व उसे चारा दिया जाता है, उसी तरह यज्ञ की सामग्री के रूप में ऐसे पदार्थ डाले जाते हैं, जो वातावरण को शुद्ध करने के साथ ही सबका कल्याण करते हैं। आचार्यजी ने कहा कि जो धन, श्रम, साधन श्रद्धा से अर्पित करे, वही ग्रहणीय है और उसकी साधना भी श्रद्धापूरित होनी चाहिए, अन्यथा वह निरर्थक होगी। पद, प्रभाव, सम्मान, कीर्ति, प्रदर्शन और अहंकार से

अर्पित कोई भी वस्तु अंततः दुख का माध्यम बनती है। उन्होंने कहा कि ब्रह्मास्त्रानुष्ठान दो वर्ष तक चलेगा, जिसमें भागीदारों की पात्रता सुनिश्चित की जाएगी। यथा—

यज्ञस्थल पर श्रेष्ठ साधकों की प्रविष्टियाँ संभव होंगी,
बिना साधना भागीदारी, उसमें पूर्ण असंभव होगी।
पंचविंश उपवास सहित जो जन लघु अनुष्ठान कर लेंगे,
वे सहस्रकुंडीय यज्ञ में होता-आसन पर बैठेंगे।
इक्यावन उपवास सहित जप सवा लक्ष जो कर आएँगे,
महायज्ञ में यजमानों का वे साधक गौरव पाएँगे।
जो गायत्री जप की प्रतिदिन नियमित माला एक करेंगे,
महायज्ञ में ऐसे साधक आकर भागीदार बनेंगे।

—दशम सर्ग, पृ० 177

इस प्रकार महायज्ञ में सम्मिलित होने के कठोर नियम बनाए गए। आचार्यश्री इसी यज्ञ के कार्य से एक बार सुसनेर गए तो वहाँ के न्यायाधीश श्री सत्यनारायण पंड्याजी से उनकी भेंट हुई। पंड्याजी आचार्यश्री के उद्बोधन एवं प्रेरक वचनों से बहुत प्रभावित हुए। पंड्याजी ने आचार्यश्री के विषय में सुन रखा था, किंतु देखा नहीं था। जब उन्होंने आचार्यश्री को खादी के कुर्ते और धोती के साधारण वेश में देखा तो आश्चर्यचकित रह गए। आडंबररहित सहज, सरल, स्नेहपूर्ण व्यवहार से वे भावविह्वल हो गए और परिवार के सदस्यों से परिचय कराया। अतिथि आचार्यश्री ने पुत्र प्रणव के संबंध में भविष्यवाणी की—

फिर बोले, 'यह शिशु जज साहब असामान्य मेधावी होगा,
सदा विघ्न-व्यवधानों पर वह निज कौशल से हावी होगा।
दूर भविष्यत-मध्य हमारा बहुत काम करना है इसको
देश, मिशन का तथा स्वयं का शीर्ष नाम करना है इसको।

—दशम सर्ग, पृ० 180

सर्ग एकादश 'तैयारी' शीर्षक अध्याय में गायत्री तपोभूमि का विकास एवं उसके स्वरूप में निखार, समृद्धि के संबंध में आचार्यश्री के उद्गार, आचार्यश्री द्वारा पुत्र मृत्युंजय एवं पुत्री शैलबाला को शैशव से ब्रह्मणत्व की साधना कराया जाना, आचार्यश्री द्वारा तृतीय हिमालय यात्रा के मध्य अनवरत चिंतन का क्रम बनाए रखना, हिमालय प्रवास का उद्देश्य युग निर्माण योजना का विस्तार करना, आचार्यश्री द्वारा हिमालय प्रवास से लौटकर गुरु से कई जन्मों के संबंध का रहस्योद्घाटन किया जाना, शत सूत्रों तथा कालांतर में युग-निर्माण सत्संकल्प का प्रकाशन, ग्रीष्मकालीन साधना-सत्र में तेरह वर्षीय प्रणव का सम्मिलित होना, धर्मतंत्र में लोकशिक्षण का निर्देश और इसके लिए सघन प्रशिक्षण का प्रारंभ किया जाना, क्रिश्चियन महाविद्यालय इंदौर में आचार्यश्री द्वारा उद्बोधन और प्राचार्य श्री मोर्जेज का प्रभावित होना, चार नए आत्मदानियों सर्वश्री वीरेश्वर उपाध्याय, रमेशचंद्र शुक्ल, पं० लीलापत शर्मा और द्वारकाप्रसाद चैतन्य का गायत्री तपोभूमि में आगमन, प्रदर्शनहीनता एवं आदर्श सादगी के साथ श्री मृत्युंजय शर्मा का विवाह संपन्न होना आदि संचयित हैं, जिसे शचींद्र जी ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि समस्त घटनाओं में पाठक स्वयं को सम्मिलित एवं साक्षी समझने लगता है। इस अध्याय का

संपूर्ण कथानक भावानुसार दंडक एवं सुगत छंदों में रचा गया है।

अकिंचन होते हुए भी सहस्रकुंडीय यज्ञ का आयोजन इतना विराट् एवं भव्य हुआ कि उपस्थित जनसमुदाय आश्चर्यचकित रह गया। यह आचार्यश्री की संगठनयोजना, सद्धर्म के प्रचार-प्रसार और साधकों के त्याग एवं श्रम का परिणाम था कि उनके आश्रम में ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ बरस रही थीं। यह गुरु के दिशा-निर्देश का भी परिणाम था कि उनके अनुसार आचरण कर उन्हें आशा से अधिक सहयोग मिला और चार आत्मदानी भी अपना परिवार छोड़कर आचार्यश्री का सहयोग करने आ गए। आचार्यश्री का जीवन प्रचुर धन आने के उपरांत भी पूर्ववत् सादगीपूर्ण रहा और वे कठोरतापूर्वक नियमों का पालन करते थे। निरभिमानी मितभाषी होने के साथ ही वे अविचलित रहकर ब्राह्मणत्व की साधना किया करते थे और केवल सारगर्भित तत्त्व की ही वार्ता करते थे। इन तथ्यों को शचींद्र जी ने निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त किया है—

यद्यपि था सुस्पष्ट कि दैवी अनुदानों का,
रूप लिए ईश्वर की कृपा बरसती उन पर,
किंतु अप्रभावित उन सबसे, पूर्ण सादगी
का करते वह जीवन में निर्वाह निरंतर।
अपने लिए कठोर, अन्य के हित उदार बन,
वह साधना अविचलित ब्राह्मणत्व की करते,
जब सब वाचालता दिखाते, वह मितभाषी
निरभिमान रह केवल बात तत्त्व की करते।
तपोभूमि का अनुदिन रूप निखरता जाता,
हर कोना होता जाता उसका उजला था,
किंतु व्यक्तिगत जीवन तपोनिष्ठ का अब भी,
ब्राह्मणत्व के सूत्रों के अनुसार ढला था।
कहते थे जन-जन के द्वारा किए गए हैं,
संचित तपोभूमि के ये सारे धन-साधन
हम सब तो हैं केवल ब्राह्मणत्व के साधक,
अतः जिएँगे औसत भारतीय का जीवन।
इस समृद्धि में अंशमात्र भी नहीं हमारा,
यदि कोई समझे तो यह केवल भ्रम होगा
हम कुटुंब के पाँच व्यक्ति उतना ही लेंगे,
जितना पाँच सदस्यों का अपना श्रम होगा।

—एकादश सर्ग, पृ० 201-202

पूर्व पत्नी से तीनों संतानों का विवाह हो गया और विभिन्न नगरों में उन्होंने अपनी गृहस्थी बसा ली और केवल शैल तथा मृत्युंजय ही आचार्यश्री के साथ रह गए, जिनसे परिवार में चहल-पहल बनी रहती थी। उन्हीं की भाँति दोनों बच्चों में भी त्याग और साधना की प्रबल भावना थी। कोई अतिथि अकस्मात् आ गए तो बच्चों का रखा हुआ खाना उन्हें खिला दिया गया। रसोई में केवल आधी रोटी शेष थी, जिसे दोनों बच्चों ने आपस में बाँटकर खाया कुछ

देर के पश्चात् माँ उनके लिए आटा, गुड़ का हलवा लाई, जिसमें घी नहीं पड़ा था। इस प्रकार आश्रम भी धन-संपत्ति से निस्पृह आचार्यश्री ही नहीं, उनके पूरे परिवार का जीवन भी था। गुरु ने पुनः निर्देश दिया कि वेद, पुराण, उपनिषद्, दर्शन आदि की पूर्व में की गई व्याख्याएँ दुरूह हैं, जिन्हें साधारण जन नहीं समझ पाते, अतः समाज के हितार्थ इनकी व्याख्या सरल शब्दों में होनी चाहिए, जिससे सभी लोग उसका लाभ उठा सकें और अपनी आध्यात्मिक प्रगति कर सकें। इस आदेश के अनुपालनार्थ व्यस्तता में व्यापक वृद्धि हो गई, अतः उन्होंने आश्रम तथा पत्रिका-संचालन का कार्यभार भगवतीदेवी को सौंप दिया। व्याख्या-कार्य में देश में उपलब्ध समस्त व्याख्याओं का अध्ययन करने के उपरांत एक वर्ष में आचार्यश्री ने दिन-रात के कठोर श्रम से यह कार्य पूर्ण किया और अब भविष्य की कार्यप्रणाली सुनिश्चित करने के लिए उन्हें तीसरी बार पुनः हिमालय की यात्रा करनी थी, जिसका वर्णन कवि के शब्दों में निम्नवत् है—

दुर्गम पथ था, विकट चढ़ाई थी यात्रा में
 कहीं लुप्त पत्थर भी थे संकेतों वाले,
 यात्रा थी अचिराम और पथरीला पथ था
 अतः पड़ गए थे उनके पाँवों में छाले।
 मात्र बहुत संकीर्ण शीर्ण पगडंडी थी अब,
 जिस पर थी आचार्यप्रवर को यात्रा करनी,
 जीवन-मरण मध्य था एक-एक पग रखना,
 गंगोत्री से गोमुख तक ऊँचाई चढ़नी।
 एक ओर विकराल वेग से बहती गंगा,
 हृदय कँपाता विकट भयंकर उसका स्वर था।
 और दूसरी ओर अनन्ताकाश छू रहा,
 अति उत्तुंग हिमालय गिरि सिर के ऊपर था।

—एकादश सर्ग, पृ० 210

साधारण व्यक्ति के लिए गोमुख से ऊपर तक जाना नितांत असंभव था, किंतु आचार्यश्री साधारण व्यक्तियों में नहीं आते। साहस एवं श्रम के साथ उन्होंने यह यात्रा पूर्ण की। शचींद्र जी ने हिमालय-यात्रा के प्रसंग का बहुत रोचक वर्णन किया है, जिसके द्वारा पाठक के सम्मुख वहाँ की प्रकृति, विपत्तियों, आपदाओं का चित्र खिंच जाता है। जहाँ भी हिमालय का वर्णन इस ग्रंथ में आया है, शचींद्र जी उसके सौंदर्य में डूब गए हैं और एक पवित्र हृदय व्यक्ति के चिंतन को अनेक उपमाओं, रूपकों, बिंबों के माध्यम से वे जीवन के यथार्थ को भी जोड़कर प्रासंगिकता प्रदान करते हैं। उनके सृजन में यदि कालिदास का सौंदर्यबोध है तो तुलसी की सहजता भी विद्यमान है। सौंदर्य-चित्रों के माध्यम से दर्शन के तत्त्वों, धर्म के सिद्धांतों एवं सामाजिक व्यवहार आदि का ज्ञान कराना भी उनकी विशेषता है। पर्वतीय क्षेत्र मनोरम एवं भयंकर प्रकृति-चित्रण के साथ ही वहाँ के निवासियों और जीवन-पद्धति, उनके सुख-दुख और रहन-सहन का भी ज्ञान कराना वे अपना कर्तव्य समझते हैं। शचींद्र जी के हिमालय-वर्णन में जहाँ मौलिकता है, वहीं स्पष्टा के वैराट्य भाव का सहज आनंद भी है। गोमुख का भी जीवंत चित्र उनके निम्नांकित दंडक छंदों में मिलता है, यथा—

वह अध्यात्म-पथिक अब गोमुख का दर्शन कर, अकथनीय अध्यात्मानंद विभोर हुए थे लगता था ज्यों बादल आध्यात्मिक तरंग के अगणित फैले उनके चारों ओर हुए थे। उच्च हिमाच्छादित गिरिश्रृंगों की गोदी में, हिमस्तूप से नीलवर्ण की निकली धारा क्षीणकाय, पर प्रबल वेग से बाहर आती, वातावरण ध्वनित करती सारा का सारा हिमपर्वत के विवर सदृश उस छिद्रभाग से वेगवती जलधार देख होता था अनुभव, प्रबल वेग से होता भागीरथी नदी के उस उद्गम से ज्यों अध्यात्म तत्त्व का उद्भव।

—एकादश सर्ग, पृ० 213

हिमालय से आचार्यश्री का संबंध कई जन्मों से अटूट था। उनके गुरु वहाँ देहेतर रूप में तपस्यारत थे। गुरु ने युग-निर्माण योजना के संबंध में विस्तार से बताया और गंगोत्री एवं उत्तरकाशी में एक वर्ष तक कठोर तपस्या करने का निर्देश दिया। इधर चारों आत्मदानियों का माता जी के समझाने पर भी अहंकार-भाव समाप्त नहीं हो सका। आचार्यजी जब वापस लौटकर आए तो संपूर्ण परिस्थिति का ज्ञान हुआ। उन्होंने तब तक का संपूर्ण प्रकाशन चार भागों में विभाजित कर प्रत्येक से एक-एक भाग उठाने का आग्रह किया और उन्हें धन, मार्गव्यय, पाथेय आदि देकर पृथक्-पृथक् स्थानों पर स्थापित होने के उद्देश्य से अलग कर दिया। जिससे शंभुसिंह कोटा में, चमनलाल बरेली में, भगवानसहाय जयपुर में और गिरिजासहाय बिलासपुर में भेजे गए। उन्हें स्थापित करने में आचार्यश्री ने भरपूर सहयोग किया और आवश्यकता पर वहाँ गए भी। जज साहब से आचार्यश्री की दार्शनिक चर्चा का विशद वर्णन शचींद्र जी ने इस कृति में किया है और प्रत्येक तत्त्व को सरल शब्दों में सहजता से समझाया है, जिससे अध्यात्म का उत्कृष्ट रूप दिखाई पड़ता है और उसका लोकमंगल भाव भी स्पष्ट होता है, मानव के मन में देवत्व भाव जाग्रत करना और उसको उसके मौलिक स्वरूप का बोध कराकर आत्मज्ञान देना ही अध्यात्म का उद्देश्य है।

धीरे-धीरे गायत्री तपोभूमि में आत्मदानियों की संख्या पुनः चार हो गई। इन्हें अपने-अपने क्षेत्रों में आचार्यश्री के सिद्धांतों एवं गायत्रीयज्ञ का प्रचार-प्रसार करना एवं संपन्न कराना था। आचार्यश्री ने स्वयं को प्रमुखतः मथुरा तक सीमित रखा और आत्मदानियों को क्षेत्रों में भेज दिया, जिससे मुख्य केंद्र एवं अन्य केंद्रों से एक साथ कार्य होता रहे।

सर्ग द्वादश का शीर्षक 'प्रस्थान' है, जिसमें आचार्यजी द्वारा आत्मदानियों में गायत्री तपोभूमि के कार्य-विभाजन करने की पृष्ठभूमि में निहित भावना का उद्घाटन, तत्कालीन धर्म-तंत्र का आडंबरपूर्ण स्वरूप एवं आचार्यजी द्वारा उसका स्वरूप-परिवर्तन, पुत्र मृत्युंजय द्वारा जनजागरण प्रेस तथा अखंड ज्योति संस्थान का कार्यभार ग्रहण करना, मध्यावधि में उनकी शिक्षा-समाप्ति का निर्णय, आचार्यश्री का अभिमत, भोपाल में श्री शंकरदयाल शर्मा से भेंट एवं

परिचर्चा, पत्रकार-सम्मेलन, शंकाओं का समाधान किया जाना, मेडिकल कालेज इंदौर में आचार्यश्री द्वारा वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर व्याख्यान, संपूर्ण देश में यज्ञ-सम्मेलनों की सघन शृंखला प्रारंभ किया जाना, पाँच सहस्रकुंडीय गायत्री महायज्ञों का आयोजन एवं समापन, राजस्थान विधानसभा अध्यक्ष श्री निरंजननाथ आचार्य का हृदय-परिवर्तन, पुत्री शैलबाला का सात्त्विक रूप से विवाह-संस्कार, विदाई-सम्मेलन में अंतिम उद्बोधन, सात प्रतिबंधों का निर्देश, जनसमूह का भावावेग और तपोभूमि से प्रस्थान आदि घटनाचक्रों को समायोजित किया गया है। यह संपूर्ण सर्ग दंडक छंद में निबद्ध है।

आचार्यश्री समय-समय पर आत्मदानियों को पृथक्-पृथक् अपने कक्ष में बुलाते और उन्हें उनका कार्य समझाते थे तथा उसका संपूर्ण उत्तरदायित्व उन्हें सौंप देते थे। उन्होंने आत्मदानियों को बताया कि पूर्व में जो आत्मदानी आए, उन्होंने संस्था के उत्तरदायित्व को मात्र कर्म समझा, उसे कर्तव्य नहीं माना और अपने अहंकार को भी नहीं त्याग सके। उनके अंतर्मन से छोटे-बड़े, ऊँच-नीच का भाव समाप्त नहीं हुआ, अतः उन्हें पृथक् कर अलग-अलग स्थानों पर स्थापित होने को निर्देशित कर दिया गया। अतएव ऐसी भूल पुनः न दुहराया जाना ही उत्तम होगा। पत्रों के माध्यम से दुखी जनों की समस्या का समाधान करना और उनका उचित मार्ग-दर्शन करना, जिससे दूर-दूर पर साधकों का कार्य सुचारु रूप से चलता रहे, ब्राह्मणत्व का विकास हो जिससे राष्ट्र का उत्थान हो सके, आचार्यश्री शचींद्र जी के शब्दों में कहते हैं—

रहे लक्ष्य के लिए अविचलित निष्ठा सबमें,
आत्मोन्नयन हेतु हर मानस हर पल ललके।
तथा रहे सम्मान वरिष्ठों के प्रति मन में,
समवयस्क जन के प्रति स्नेह हृदय से छलके।
तुम चारों संगठित रहोगे तथा परस्पर
ऐक्य भाव का यदि मुझको विश्वास मिलेगा।
तो बिखरे स्वजनों को मुझको एक सूत्र में,
बाँधे रखने को समुचित अवकाश मिलेगा।
सबने अपने कार्य, कार्य की पद्धति समझी,
समझ लिया था कार्यों के पीछे का दर्शन।
उन सबके अनुरूप स्वयं ही ढाल लिए थे,
आत्मदानियों ने फिर अपने-अपने जीवन।

—द्वादश सर्ग, पृ० 247

आत्मदानी अपने-अपने कर्तव्यों का पालन भली-भाँति करने लगे और आचार्यश्री को जहाँ से आमंत्रण मिलता, वे अपना बक्स तथा थैला लेकर चले जाते थे और कभी-कभी माताजी को भी ले जाते थे। आचार्यश्री सादा जीवन उच्च विचार के अनुसार ही जीवन-यापन करते थे। धन-संपत्ति का उन्हें तानिक भी मोह नहीं था। शचींद्र जी लिखते हैं—

एक बक्स या थैला साथ रहा करता था,
सहज उठाकर चल पड़ते थे उसे स्वयं ही।
उन्हें न भाती कभी कार-बस की यात्राएँ,

सड़क मार्ग से वह यात्रा करते थे कम ही।
साधारण श्रेणी में बैठ रेल के द्वारा
नाप लिया करते स्वदेश की सभी दिशाएँ,
कभी-कभी साइकिल चलाने वाले परिजन,
के पीछे भी करीं कैरियर पर यात्राएँ।

—द्वादश सर्ग, पृ० 149-250

आचार्यप्रवर के कथनानुसार साधना का मार्ग दया, प्रेम, सहानुभूति, संवेदनशीलता और परमार्थ की भावना के मध्य से ही अग्रसर होता है। यही मानवीय गुण ब्राह्मणत्व में प्राप्त होते हैं। अतः ब्राह्मणत्व की साधना का प्रचार-प्रसार एवं विस्तार ही राष्ट्र की एकता एवं प्रगति का आधार है। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, संस्कारों में आए समस्त विकारों का उच्छेदन कर वे उसका विशुद्ध सात्त्विक रूप विश्व के समक्ष रखना चाहते थे। उनके विचार तर्कपूर्ण तो थे ही, उनका वैज्ञानिक आधार भी था, जो श्रोताओं पर प्रभावी होते थे। धर्म पर किसी एक वर्ण का एकाधिकार और उसके माध्यम से समाज का शोषण एवं दोहन उन्हें स्वीकार नहीं था। उन्होंने धर्म को तथाकथित एकवर्णीय निरंकुशता से बचाकर समाज की वस्तु समाज को सौंप दी। यह शोषण, आडंबर एवं पाखंडपूर्ण धार्मिक व्यवस्था में, जिसकी पृष्ठभूमि केवल अंधविश्वास पर रखी गई थी, उन्होंने अभिनव प्रगतिशील चेतना का शंखनाद किया, जो पूर्णतः वैदिक एवं शास्त्रीय पद्धति तथा परंपरा थी। वास्तव में उन्होंने जो मार्ग दिखाया, उस पर चलना ही जीवन का श्रेयपथ है। आचार्यश्री भी इसी मार्ग का अनुसरण करने को प्रेरित करते थे। आचार्यप्रवर ने दुर्गाधित हो चुके सड़े-गले धर्म को वास्तव में नवजीवन प्रदान कर जीवंत किया और मानव-जीवन के लिए उपयोगी बनाया।

एक दिन जब आचार्यजी शयनपूर्व धर्म के भविष्य-चिंतन में लीन थे, तो उनके मन में विचार आया कि नई पीढ़ी बिना वैज्ञानिक कसौटी पर सिद्ध किए हुए धर्म को कभी स्वीकार नहीं करेगी, अतः धर्म को तर्कों, प्रमाणों एवं प्रयोगों द्वारा खरा सिद्ध करना ही होगा, अन्यथा कालांतर में धर्म का लोप हो जाएगा। इस क्रम में अपने देहेतर गुरु से भी उन्होंने विचार-विमर्श किया और इस कार्य के लिए विशेष योजना बनाई। इस कार्ययोजना को सम्पन्न करने हेतु उन्होंने वैज्ञानिकों, विद्वानों एवं मनीषियों, प्राध्यापकों, प्रतिभाशाली छात्रों आदि से विचार-विनिमय का निश्चय किया। इस कार्य में इंदौर रहते हुए भी प्रणव सहयोग करने लगे। वैज्ञानिक अध्यात्मवाद की अभिनव व्याख्या के समावेश से 'अखंड ज्योति' पत्रिका में भी नया तेवर आया। इस संदर्भ में श्री शंकरदयाल शर्मा से भी उन्होंने संवाद किया और उस समय श्री शंकरदयाल शर्मा ने आचार्यश्री के 'हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा' सिद्धांत की प्रशंसा की। मथुरा में यज्ञ में दूर-दूर के व्यक्ति भाग नहीं ले पाते थे, जिसके लिए आत्मदानियों ने सुझाव दिया कि पाँच प्रांतों में सहस्रकुंडीय यज्ञ के आयोजन किए जाएँ, जिससे अधिक जनसमुदाय लाभान्वित हो सके। ऐसे आयोजन स्वयंसेवकों के माध्यम से प्रारंभ होने लगे, जिसमें आचार्यप्रवर जाकर उद्बोधन किया करते थे। इस क्रम में प्रथम टाटानगर तथा बहराइच जनपद में दो सहस्रकुंडीय यज्ञ संपन्न हुए। श्री गुलजारीलाल नंदा ने बहराइच में अपने सचिव को यज्ञ में भाग लेने हेतु भेजा था और उसके द्वारा संपूर्ण समाचार सुनकर इतना प्रभावित हुए कि एकबार बिना किसी को बताए स्वयं आकर

आचार्यश्री से मिले और अनेक पक्षों पर वार्तालाप किया। दो सहस्रकुंडीय यज्ञ संपन्न हो चुके थे। बसंत पंचमी के अवसर पर तृतीय यज्ञ की तैयारियाँ चल रही थीं। आचार्यश्री जहाँ भी जाते थे, माँ का चरण-स्पर्श कर आशीर्वाद अवश्य लेते थे। उन्हें महासमुंद के यज्ञ में जाना था। जाते समय माँ का आशीर्वाद लिया तो कुछ उदास हो गए और आत्मदानी वीरेश्वरजी से एकांत में कहा कि यदि माँ को कुछ हो जाए, तो तार से उन्हें सूचना अवश्य दे दी जाए। राउरकेला के शतकुंडीय यज्ञ के अंतिम दिवस माता के दुखद निधन का समाचार प्राप्त हुआ, तो उपस्थित समुदाय आर्शंकित हो गया कि संभवतः पूर्णाहुति एवं आचार्यश्री के उद्बोधन में व्यवधान हो, किंतु आचार्यश्री ने समस्त कार्य धैर्य के साथ संपन्न कराए। बालाघाट के साधक भी चिंतित थे, किंतु वह भी यज्ञ समय से सकुशल संपन्न हुआ। माता का मरणोत्तर संस्कार एवं तर्पण आदि कार्यक्रम विधि-विधान द्वारा उनकी अनुपस्थिति में संपन्न हुआ और आचार्यश्री जहाँ थे, वहीं तर्पण एवं श्रद्धार्पण किया। बालाघाट में यज्ञ की पूर्णाहुति हो जाने के उपरांत अकस्मात् पधारे वीरेश्वरजी वहाँ पहुँचे और भगवतीदेवी का संदेश सुनाया कि 'किसी प्रकार प्रत्येक आवश्यक कार्य छोड़कर वे त्रयोदशी से पूर्ण एक दिन के लिए अवश्य मिल जाएँ; किंतु आचार्यजी ने जाने के स्थान पर उन्हें समझाया और कहा—

कल अपना कार्यक्रम जबलपुर में होना है,
दानाभाई का तैयार खड़ा है वाहन।
समय अधिक है नहीं शेष चलने में इससे,
पहले कर लो स्नान-ध्यान-पूजन, फिर भोजन।
माताजी से कहना लोगों की बातों से,
तनिक न अपने मन में भारीपन आने दें।
चर्चाओं पर ध्यान न देकर स्वयं शांत रह,
माँ की आत्मा को भी शांति वहाँ पाने दें।
माँ के लिए मुझे जो कुछ करना है वह सब,
मैंने यहाँ किया है, आगे भी कर लूँगा।
माताजी से कहना निज कर्तव्यों से मैं कभी,
न पीछे हटा न आगे कभी हटूँगा।

—द्वादश सर्ग, पृ० 268

इस प्रकार अपने कर्तव्यों एवं धार्मिक कार्यों के प्रति पूर्ण समर्पित होने का आचार्यजी ने परिचय दिया और उसके उपरांत भी अनेक यज्ञों को संपन्न कराया। जब वे जयपुर गए, तो चंद्रमुखी रस्तोगी के यहाँ रात्रि-निवास की व्यवस्था थी। उन्होंने आचार्य निरंजननाथ, जयपुर विधानसभा के अध्यक्ष से मिलवाया। निरंजननाथ प्रतिगामी धर्म के फलस्वरूप बाबाओं और कर्मकांडों के घोर आलोचक एवं विरोधी थे। आचार्यजी ने उन्हें भी यज्ञ में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया। निरंजननाथ ने कहा कि वे तो नास्तिक हैं, अतः ऐसे आयोजनों में उनकी क्या आवश्यकता है, किंतु आचार्यजी के समझाने पर वे गए और समस्त यज्ञ का कार्यक्रम देखकर बहुत प्रभावित हुए और जो उनके मन पर प्रभाव पड़ा उसका उल्लेख शचींद्र जी के शब्दों में—

आगामी दिन महायज्ञ में आए थे वह,

उन्हें लगा ज्यों वे कृतकृत्य हुए थे आकर।
सबकुछ शांत, व्यवस्थित, सुनियोजित, अनुशासित,
वहाँ न था अब कोई भी उन्माद भरा स्वर।

—द्वादश सर्ग, पृ० 272

देखा दीक्षा हो या गुरुदक्षिणा वहाँ पर,
अथवा देवदक्षिणा हो दी जानेवाली।
सबमें थी एकाग्रचित्तता, तन्मयता थी,
सबके मुख पर झलक रही थी शांति निराली।

—द्वादश सर्ग, पृ० 272

लगे सोचने इन आचार्यप्रवर ने मुझसे,
वहाँ दिशा देने की कल जो बात कही थी।
आज यज्ञशाला में आकर यूँ लगता है,
उनकी कलवाली घोषणा नितांत सही थी।

—द्वादश सर्ग, पृ० 273

धीरे-धीरे हिमालय की चतुर्थ यात्रा का समय आ गया। गुरु ने अपना अंतिम उद्बोधन किया और उपस्थित आश्रमवासियों, साधकों तथा परिवारीजनों को सांत्वना दी कि यह समय शोक या उदासीनता का नहीं है। गुरु ने जितना कार्य दिया था, उतना वे पूर्ण कर पुनः गुरु की शरण में आगामी दिशा-निर्देश हेतु जा रहे हैं। अतः आप लोग अवसादमय या वेदनाग्रस्त न हों। आश्रमवासी और अन्य सभी साधकगण साथ में चलने के लिए तत्पर हुए, किंतु उन्होंने किसी को साथ ले जाना स्वीकार नहीं किया। उस समय का वर्णन शचींद्र जी निम्नांकित पंक्तियों में करते हैं—

पुष्प चरण पर अर्पित करके, चरणस्पर्श कर,
कोई भारी मन से आगे बढ़ जाता था।
कोई युगल-चरण पर अपना मस्तक रखने
में ही शांति स्वर्ग-सी अकथनीय पाता था।

कोई कर से श्रीचरणों को थाम अश्रु की,
धारा से उनको नहलाना चाह रहा था।
दिव्य स्पर्श द्वारा कोई परिजन पल-भर में,
शत जन्मों के पुण्य कमाना चाह रहा था।

पता नहीं चल सका कि उस अंतिम प्रणाम में,
वह दो घंटे कैसे वहाँ व्यतीत हुए थे।
कुछ भावाकुल, भावमग्न, कुछ भावविह्वल थे,
कुछ भावाभिभूत, कुछ भावातीत हुए थे।

श्रीआचार्य युग्म जब आशीर्वाद सभी को
देते तपोभूमि को चले खुले वाहन में।
एक अनोखी हलचल-सी मच गई वहाँ पर,
नर-नारी में, बालवृद्ध में, हर युवजन में।

पीछे-पीछे लोग सहस्रों की संख्या में,
दौड़ रहे थे सब बौराए-से लगते थे।
किसी अछोर अथाह, अपार अश्रु-सागर में,
सब आकंठ डूबकर आए से लगते थे।

ऊपर कड़ी धूप, नीचे तप रही धूल में,
भाग रहे थे बिना पादुका-शिरस्त्राण के।
लगता था ज्यों प्राण चले जाते थे आगे,
कैसे जीवित रह पाएँगे बिना प्राण के।

—द्वादश सर्ग, पृ० 285

राम अयोध्या से वनवास के लिए जा रहे थे और पूरी अयोध्या के वासी भावविह्वल थे, उस समय का जैसा करुणचित्र गोस्वामी तुलसीदास ने खींचा है, उससे भी अधिक करुणाजनक चित्र शचींद्र जी ने उकेरा है। इस प्रकार 'प्रज्ञावतार लीलामृत' एक दिव्य एवं भव्य महाकाव्य है, जिसमें नवरस उपस्थित हैं, प्रकृति-वर्णन मन को मुग्ध करता है। ऐसा अद्भुत ग्रंथ आदरणीय शचींद्र जी को साहित्य में शीर्ष पर बिठाने के लिए पर्याप्त है।

□ विद्यायन एस०एम० 108-9
सेक्टर-ई, एल०डी०ए० कॉलोनी
कानपुर रोड, लखनऊ 226012
फोन : 0522-2437901, 9450447519

निर्गुण संत-साहित्य की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ० धर्मचंद्र विद्यालंकार

हिंदी विभाग

गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म

पी०जी० कॉलेज, पलमल

संस्कृत शब्द सम्+कृति के मेल से बनता है, जिसका अर्थ होता है श्रेष्ठ या उत्तम कृति। किसी भी देश या समाज के लोगों ने अपने बौद्धिक और मानसिक क्षेत्र में जो भी उत्तम उत्पादन किया है, वही संस्कृति है। संभवतः इसीलिए आचार्य नरेंद्रदेव जी ने संस्कृत को 'चित्तभूमि की खेती' कहा था। जो विचार या व्यवहार मानव मात्र के मन का दुविचारों से विरेचन कराकर मानव-मन का उन्नयन या उदारीकरण करते हैं, वे ही संस्कृति के उपादान हैं। फिर चाहे वह काव्य हो, या संगीत अथवा कला और शिल्प भी क्यों न हो। हमारे सुसंस्कृत आचार-विचार, मान्यताएँ और रीति-रिवाज, उत्सव और पर्व मेले व ठेले, ये सभी सांस्कृतिक समारोह ही हैं।

'सप्त-सिंधु' के संस्कृति विशेषांक में डॉ० पूर्णचंद्र शर्मा ने जो वैदिक संस्कृति किवां आर्य संस्कृति को ही भारतीय संस्कृति बताया है, उस बात से यह लेखक रंचमात्र भी सहमत नहीं है। क्योंकि भारतीय संस्कृति की अनाविल सरिता में न जाने कितने जन-संस्कृति रूपी नालों का निर्मल नीर प्रवाहित हो रहा है। इसमें आर्यों से अनार्यों का अवदान कहीं बढ़कर है, अतएव भारतीय संस्कृति एकाशम या इकहरी न होकर संश्लिष्ट और सामाजिक है। हमारा मध्यकालीन संत-साहित्य भारतीय संस्कृति के उसी समंजित स्वरूप का सच्चा प्रतिनिधि है। अतएव हम यहाँ पर संत-साहित्य के संदर्भ में ही विचार करना चाहेंगे।

(क) तत्त्व चिंतन पर बल

वर्तमान युग में संत-साहित्य की क्या प्रासंगिकता है, यही यहाँ पर हमारा चिंतनीय विषय है। सर्वप्रथम जैसाकि हमने पूर्व में भी कहा है कि संत-साहित्य हमारी साँझी विरासत का वास्तविक प्रतिनिधि है। जैसाकि हम जानते हैं कि भारत एक बहुसांस्कृतिक और बहुप्रजातिक राष्ट्र है। यहाँ पर बहुत सारे धर्मावलंबी नागरिक निवास करते हैं। वे पृथक्-पृथक् रक्त-वंश से भी संबंधित हैं। उनके अपने सबके आचार-विचार और रीति-रिवाज हैं। यथा, वैदिक किवां अनार्य संस्कृति पूजा प्रधान है, क्योंकि वह प्रकृतिपरक है। कुछ विद्वानों की यह मान्यता है कि पूजा शब्द पुष्पों के द्वारा उपसर्गों से ही निष्पन्न हुआ है। अनार्य आदिवासी लोग जलपूजा और अग्निपूजा किया करते थे, अतएव आजकल के आर्य पुरोहितों की आरती उसी का अवशेष है। भारतीय मध्यकालीन संतों ने वैचारिक विभेदों को महत्त्व न देकर तत्त्व-चिंतन पर कहीं अधिक

बल दिया था। तभी तो कबीर साहब ने कहा था—

साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुहाय। सार-सार को गहि रहै, थोथा देय उड़ाय।

यही तात्त्विक चिंतन उन्हें धर्म के बाह्य उपलक्षणों और कर्मकांडों से उपरत रखता था। वे मनुष्य मात्र की एकता के अटूट विश्वासी थे। जैसाकि गुरु नानकदेव जी ने गुरुग्रंथ साहब में रेखांकित किया है—‘एक ही पहचानिए, अस मानुस की जात’ आदि वचन ऐसे ही हैं।

(ख) सांप्रदायिक सद्भाव

जैन दर्शन के स्यादवाद और अनेकांतवाद का पूरा-पूरा पुष्ट प्रभाव निर्गुणियों संतों पर रहा है, तभी तो उनमें मानव-एकता और सहिष्णुता एवं सह अस्तित्व का भाव है। यह कहना नहीं होगा कि कबीर साहब के शिष्यों में हिंदुओं से लेकर मुस्लिमों तक हैं। फिर उन लोगों ने सबसे बड़ा सुकार्य यह किया कि धर्म और अध्यात्मिक के क्षेत्र में भी वर्णगत भेदभाव था, उसको उन्होंने स्वीकार नहीं किया। जैसा कि वैदिक या ब्राह्मण संस्कृति में चतुर्वर्णों में से केवल ब्राह्मणों को ही ईश्वर मुक्ति (मोक्ष) का उचित अधिकारी माना गया था। शेष वर्णों के लिए उसका दुर्गद्वार अवरुद्ध ही था। कबीर जैसे सुसंतों ने सभी वर्णों और धर्म वाले लोगों के लिए मुक्ति द्वार और सन्यास का अधिकार देकर मानवीय एकता का ही उद्घाटन किया था और सांप्रदायिक सौहार्द को ही बढ़ाया था।

वैदिक संस्कृति की वर्णव्यवस्था में जो ब्राह्मण-वर्ण की सर्व-श्रेष्ठता या सर्वोच्चता है, उससे संतकवि आतंकित नहीं थे, अपितु उन्होंने इस वर्णभेद अथवा वर्गभेद का प्रबल प्रतिकार ही किया है। इस विषय में कबीर साहब कहते हैं—

‘जो तू ब्राह्मण-ब्राह्मणी जाया। आन बाट ते क्यों नहिं आया।

हमें आजकल उनका यह कथन सामान्य-सा कथन प्रतीत होता है, लेकिन मध्यकालीन जड़ मानस के लिए यह बहुत बड़ी चुनौती थी। ब्राह्मणवाद के गढ़-काशी में बैठकर यह सब कहना शेर की माँद में जाकर उसको ललकारना या फिर उसके मुँह में हाथ डालने के ही समान था। संतों ने हिंदू और मुस्लिम दोनों ही धर्मों के अध्यात्मिकता की आँखों में उँगली डालकर उनसे बातें की हैं। यदि कबीर साहब हिंदुओं की मूर्तिपूजा को प्रश्नांकित करते हैं तो मुसलमानों के रोजा और नमाज़ पर भी उँगली उठाते हैं। कर्मकांड की कुटिलता और कट्टरता को देखकर वे यही कहते हैं—‘अरे, इन दोउन रहा न पाई’ यह उनका धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय चिंतन ही था।

(ग) आतर-साधना पर बल

मध्यकाल में भी धर्म-मार्ग में वाममार्ग की कृच्छ्र साधनाओं का प्रवेश हो गया था और वैष्णव धर्म में जोड़ोपचार पूजा का प्रचार प्रभावी था। संत कवियों ने धर्म के इन बाह्याडंबरों का नितांत निषेध ही किया है, क्योंकि ये उसके बाह्य आवरण मात्र ही हैं, कायिक कलेवर मात्र। ये धर्म की आत्मा या उसके आंतरिक तात्त्वभूत नहीं थे। चोटा बड़ा या पोथा बड़ा, लोटा बड़ा या सोटा बड़ा ये कोई धर्म के सार-सत्त्व नहीं थे, अपितु दिखावा मात्र थे। इसी प्रकार से तिलक, माला और कंठी या क्रॉस अथवा रामनामी दुपट्टा या दाढ़ी और चोटी कोई धर्म की पहचान नहीं है। केवल माला फेरने से ही मन का फेर (चक्कर) मिटने वाला नहीं है। तभी तो कबीर साहब ने चेताया था—

‘माला फेरत जुग भया मिटा न मन का फेर।

कर का मनका डारि के, मन का मनका फेर।’

उनका बल बजाय ऊपरी दिखावे के आंतरिक आत्मसाधना पर कहीं अधिक था। क्योंकि धर्म और संस्कृति का मूलकार्य तो मानव-मन की निर्मलता और उसकी उदात्तता ही है। इसीलिए निर्गुणियाँ संत कवियों ने तीर्थ, व्रत और मूर्ति-पूजा को भी महत्त्व नहीं दिया था, क्योंकि तीर्थ-यात्रा भी एक प्रकार से धर्म का व्यापार या दुकान ही बन गई और अब भी हैं। सारे ही पुरोहित और महंत अपने-अपने तीर्थों को ही बढ़-चढ़कर विज्ञापन करते हैं, जबकि वे स्वयं तत्त्वज्ञान से शून्य हैं। तभी तो कबीर जी ने कहा था—

जल बिच मीन प्यासी, सुन-सुन आवत हाँसी
आतम ज्ञान बिना सब झूठा, का मथुरा का कासी।
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया काशी जान
दस द्वारे का देहूरा, तामै जोति पिछान।

यदि धर्म के क्षेत्र से बाह्य कुटिल कर्मकांड और दिखावे का लोप हो जाए, तभी सच्ची आध्यात्मिकता आ सकती है। एक सच्चा आध्यात्मिक व्यक्ति कभी सांप्रदायिक नहीं हो सकता। क्योंकि वह सभी को आत्मवत् मानता है।

(घ) जीवन की क्षणभंगुरता का बोध

मध्यकाल में सामंती समाज-व्यवस्था थी, जिनमें जागीरदार लोग अपने बल, वैभव और भोग-विलासों में वृद्धि के लिए ही परस्पर में संघर्षरत रहते थे। शौर्य और शृंगार ये दो ही सामंती युगीन व्यवस्था के मुख्य मूल्य थे। यदि सामंत लोग युद्धक्षेत्र में अपना रणकौशल दिखाकर शौर्य-श्री का लाभ लेते थे, तो शांति के समय में वे रमणी रत्नों में नित्य निरत रहकर केलि विलास करके अपनी शृंगारप्रियता का ही प्रदर्शन करते थे। बड़ी-बड़ी कृषि भूमियाँ ही उनके लिए एक मात्र पूँजी थी, क्योंकि उससे उपलब्ध होने वाली राजस्व की आय पर ही वे लोग भोग-विलासपूर्ण जीवनयापन करते थे। यहाँ पर यह द्रष्टव्य है कि सारे ही संतकवियों ने कंचन और कामिनी को ही माया का कायिक कलेवर बताया है—

‘इक कंचन अरु कामिनी, दुर्गम घाटी दोय,
भक्ति करे कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोया।’

बार-बार मृत्यु का भय और जीवन की क्षणभंगुरता का बोध दिखाकर संत-कवियों ने मध्यकालीन राजन्य और संभ्रांत वर्ग को अधिकतम उपभोग से उपरत ही किया था। इसीलिए उन्होंने धन-धरती को माया कहा था तो कामिनी को भी ‘विष की बेल’ बताया था। जीवन की नश्वरता का सतत भाव-बोध, भोग-विषयों की निस्सारता को ही सिद्ध करता था। जैसाकि कबीर साहब ने कहा था—

‘आए हैं सो जाइगे, राजा रंग फकीर,
इक सिंहासन चढ़ि चलै, एक बंधे चले जंजीर
मन मुआ माया मरी, मर-मर गए शरीर
आसा तिदस्ना ना मरी, कह गए दास कबीर।’

भले ही इस क्षणभंगुरता के बोध ने तत्कालीन समाज को जागतिक समुन्नति से भी विमुख किया होगा, तदपि सामंती जड़ जीवन में अतिशय भोग-विलास के नितांत निरसन के

लिए यह सब जरूरी भी था।

(ड) अपरिग्रह का उपदेश

मध्ययुगीन सामंती व्यवस्था तो भोग-विलासों और संपत्ति-संचय पर अवलंबित थी ही। वर्तमान की पूँजीवादी व्यवस्था भी मानव-मन को लोभ और लाभ दिखाकर उसको स्वार्थी और स्वकेंद्रित तथा अतिसंचयी बना रही है। ऐसी स्थिति में आज संत-साहित्य के त्याग और संतोष जैसे महान मूल्य ही हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। संतों का मन निर्मल और निर्लोभी था। वे अपरिग्रह में विश्वास रखते थे, तभी तो संतोष और धैर्य का उपदेश करते थे। कबीर ने संपत्ति संचय के विषय में इतना ही कहा था—

साईं इतना दीजिए, जाँमै कुटुंब समाया।

मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाया।

यही है वह अपरिग्रही संतदृष्टि, जोकि धनसंपत्ति को केवल जीवन-निर्वाह का सहज साधन समझती है, उसको अपना एकमेव साध्य या लक्ष्य नहीं मानती। क्योंकि छाया और माया से भला आज तक कहीं कोई तृप्त हुआ है। सिकंदर जैसा विश्व विजेता सम्राट भी धन माया की भूख से संतुष्ट नहीं हुआ था। तभी तो कबीर साहब अपरिग्रह और संतोष पर बल देते हैं—

‘तन की भूख तनक है, आध पाव या सेर

मन की भूख अनंत है, भक्ष जाए सुमेर।

भोग-विलासों की कोई अंतिम सीमा नहीं है। यह तो वह अग्नि है जो कि भोगों की आहुति अनवरत भाव से पाकर और भी उत्तेजित होती रहती है। तभी तो मनुस्मृति में कहा गया है—

‘न हि कामानुमुपभोगेन न साम्यति कामाः।

यथा हविषा कृष्णवर्त्मैव भूयावेवाभिवर्धति।

संत-साहित्य का यह जीवन-मूल्य आज की उपभोक्तवादी सभ्यता के युग में हमारे लिए बहुत ही संदर्भ सापेक्ष है। यही भ्रष्टाचार निरोधक है।

(च) जाति-व्यवस्था का विरोध

जाति-पाँतिगत क्रमिक श्रेणीगत विषमता का आधार वैदिक वर्णव्यवस्था के कारण भारतीय समाज में पनपा था, उसके कारण समाज के बहुसंख्यक श्रमिक जनों को सामाजिक समानता और न्याय नहीं मिला था। संतों ने मनुष्य मात्र की एकता और समानता का प्रतिपादन करके जन्मगत जाति-व्यवस्था पर करारी चोट की थी। यह एक प्रकार के बौद्ध युग के बाद भारतीय समाज में पुनर्जागरण की प्रचेतस स्वरलहरी थी। सारी सामंती समाज-व्यवस्था के आतंक से श्रमिक, शूद्र अथवा कृषक और मजदूर वर्ग के लोग अत्यंत संतुष्ट थे। तभी तो अपनी पुस्तक ‘दूसरी परंपरा की खोज’ में डॉ॰ नामवर सिंह ने यह रेखांकित किया है कि भारतीय ग्राम समाज के किसानों और मजदूरों को दिल्ली और आगरा में बैठे विधर्मी बादशाह से उतनी शिकायत नहीं थी, जितनी कि सवर्ण जातियों के जमींदारों और पुरोहितों या सेठों से थी।’

संत लोग राज-व्यवस्था और समाज की संरचना को तो उस सामंती युग में बदल नहीं सकते थे। फिर भी उन्होंने कम-से-कम धर्म के क्षेत्र में तो जाति-व्यवस्था को निस्सार ही बताया था—

‘जाति-पाँति पूछै ना कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।’

यह एक प्रकार से तत्कालीन सामंती समाज-व्यवस्था और जड़ीभूत परिवेश के प्रति प्रखर विद्रोह ही था और तो क्या मीरा जैसी राकुल की भक्त-नारी रविदास जैसे अंत्यज शूद्र गुरु से संन्यास की दीक्षा ग्रहण करती है, यह अपने आप में कोई कम क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं था। यह संत-साहित्य की प्रगतिशील भूमिका ही थी, जोकि आज भी प्रासंगिक है।

(छ) श्रम का सम्मान

मध्यकाल के जितने भी निर्गुणियाँ संतकवि हैं। वे सारे ही श्रमिक और कृषक वर्ग के लोग हैं। उनमें से कोई भी याजक-याचक या पाचक (महाराज) नहीं था। कबीर स्वयं जुलाहे थे तो नानक खत्री किसान थे, तो धन्ना जाट राजस्थान के खेतिहर थे। दादू दयाल और रज्जब मुस्लिम छीपी या दर्जी थे तो रविदास चर्मकार थे। आर्थिक रूप से आत्मावलंबी यही श्रमिक शूद्र उस मध्यकालीन सामंती समाज में अपने लिए सामाजिक न्याय की माँग साहित्य के माध्यम से कर रहे थे। संत रविदास तो ‘रामराज्य’ का एक स्वप्न या यूटोपिया भी रचते हैं, जिसमें वे सभी के लिए अन्न, जल और धन की उपलब्धता की आवश्यक माँग करते हैं। इस सब को देखकर ही तो पंजाब के डॉ॰ मोतीसिंह ने निर्गुणिया भक्ति-साहित्य को एक प्रकार से किसानों और कामगारों का ही सशक्त आंदोलन माना है।

संतसाहित्य में अवतारवाद और बहुदेववाद का खंडन है और एकेश्वरवाद और निर्गुणवाद का मंडन है, क्योंकि यह सामाजिक समता और एकता के विधायक तत्त्व थे। जाति पाँतिगत श्रेणीक्रम सोपानीय सामाजिक संरचना का उन्होंने प्रबल प्रतिरोध ही किया है। मानव मात्र की समता और एकता का संतों ने सबल शंखनाद किया है। श्रमिक-शूद्रों एवं कृषक वर्ग की श्रमप्रियता को उन्होंने समुचित सम्मान समाज में दिलवाया है। धार्मिक आडंबरों और कुटिल कर्मकांड का उन्होंने निषेध और निरसन ही किया है। आत्मसाधन पर बल देकर उन्होंने सच्ची आध्यात्मिकता को ही अग्रसर किया है। हिंदू-मुस्लिम-एकता की बात करके संत साहित्य ने हमारी राष्ट्रीय एकता और सामासिक संस्कृति के संवर्धन का ही पथ प्रशस्त किया है। अतएव संत साहित्य हमारे लिए आज भी बहुत प्रासंगिक है और कल भी था।

□ 409/1 गांधी आश्रम कॉलोनी
पलवल (हरियाणा) 121102

वीरेंद्र जैन का उपन्यास-साहित्य

प्रा० डॉ० शिवाजी देवरे

डूब—प्रस्तुत उपन्यास वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 1991 प्रकाशित हुआ। 'डूब' उपन्यास की कहानी बुंदेलखंड क्षेत्र के गाँव लडैई की कहानी है। बेतवा नदी पर बन रही राजघाट बाँध परियोजना का क्षेत्र उत्तर प्रदेश से मध्यप्रदेश तक फैला है। झाँसी, ललितपुर, गुना आदि जिले इसके प्रभाव-क्षेत्र हैं। आजादी के बाद हमारे देश में जो विकास-योजनाएँ शुरू हुईं, उन्हीं की शुरुआती कड़ी में एक योजना बनी थी राजघाट बाँध योजना। इस योजना के तहत अनेक गाँवों को 'डूब' क्षेत्र में ले लिया गया। उन गाँवों में रहनेवाले अनेक जाति-धर्म के लोगों को अपना घर-परिवार, ज़मीन आदि छोड़कर दूसरी जगह जाना पड़ा। इसी विस्थापन की समस्या को गहराई से शब्दों में अपनी व्यथा व्यक्त करता है—'डूब'।

'डूब' से तात्पर्य उस डूब से भी है, जो स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी जन-जीवन में व्याप्त है। उपन्यास के पूर्वार्द्ध में चित्रित इस डूब को लेखक ने 'सतह के नीचे' नाम दिया है। यानी यह भी एक डूब है, जो डूब के रूप में प्रत्यक्ष दिखाई नहीं पड़ती। पहली डूब में पानी में डूब का कोई प्रसंग नहीं है, किंतु विकृत व्यवस्था भी तो बाँध ही है न, जो विशाल जन-समूह की जिंदगी को धीरे-धीरे अपने में जकड़ कर रही है। देश आजाद हुआ तो लगा कि विकृत व्यवस्था थमेगी और उसमें डूबती जिंदगियाँ राहत की साँस लेंगी, किंतु ऐसा हुआ ही नहीं, आम-आदमी चारों ओर से इसमें पिसता ही जा रहा है। इसी ज्वलंत विषय पर आधारित है 'डूब' उपन्यास।

उपन्यास का कथारंभ 'माते' नामक चरित्र से है, जो अनपढ़ है, पर गाँव के लोगों में उसका विशेष मान-सम्मान है। गाँव की हर एक समस्या का निर्वाह वह करता है। उपन्यास का समापन भी 'माते' से ही है, जो अपने गाँव और लोगों को 'डूब' से बचा नहीं पाता और रेडियो पर यह ख़बर सुनता है कि 'डूब' क्षेत्र के लोगों को यथा-स्थान सुरक्षित पहुँचा दिया गया है। यह सुनकर वह सरकार को गाली देता हुआ रेडियो बाढ़ के पानी में फेंक देता है।

'डूब' उपन्यास के माते के साथ-साथ गोरबाई, ठाकुर देवीसिंह, मास्साव, बामन महाराज, कैलाश, रघु साव, मोती साव, घूमा आदि डूब में घिरे रहते हैं। यह सब लडैई गाँव के उपन्यास के पात्र हैं। इनमें रामदुलारे जैसे लोग डूब की पेचीदा सुरंगों को चीरने की कोशिश जरूर करते हैं। मुक्ति की छटपटाहट की कोशिश में ये खुद डूब जाते हैं।

दरअसल, डूब एशिआई कृषक-समाज की गतिहीनता, शक्तिहीनता, आत्मग्रस्तता, बहुआयामी उत्पीड़न व शोषण सहित विभिन्न प्रकार की पेचीदगियों का प्रतिनिधित्व करता है।

लड़ैई के पात्र भी इस प्रक्रिया के अपवाद नहीं हैं। एक ओर कृषक समाज की गतिहीन आंतरिक संरचना है और दूसरी ओर आधुनिक आर्थिक, राजनीतिक संरचना के बढ़ते दबाव। दोनों संरचनाओं में अपने-अपने क्रिस्म की डूब से मध्य भारत के इस गाँव को मुक्ति मिलती है, किससे नहीं—और मिलती भी है या नहीं, यह प्रश्न अंत तक एक प्रश्न ही बना रहता है।

‘डूब’ उपन्यास के बारे में अरुणप्रकाश लिखते हैं—‘यह समस्या में घिरे मनुष्यों का ही उपन्यास है। मनुष्यों की समस्या का उपन्यास नहीं। यह जड़ऊ उपन्यास है, जो सिर्फ मध्यप्रदेश ही नहीं, आज़ादी के बाद भारतीय गाँव के बदलते यथार्थ को प्रमाणिकता ही नहीं, नए सौंदर्य के साथ उपस्थित करता है। यही इसकी गरिमा है। वीरेंद्र जैन हमें स्मरण कराते हैं कि उपन्यास डूबा नहीं है, क्योंकि यह महज भौतिक विकास ही नहीं, गाँवों में मनुष्य के सामाजिक विकास की भी कहानी है।’¹

‘डूब’ की कथा की गहराई को नापते हुए उसकी व्यथा को शब्दों में अंकित करते हुए महेश्वरदयालु गंगवार लिखते हैं—‘विकास चलता रहा, लोग उजड़ते रहे, दमन और शोषण का शिकार होते रहे और अंततः नारकीय जीवन जीने को विवश हो गए। यह देश के किसी एक अंचल की हकीकत नहीं है, सारे देश में बिखरी सच्चाई है।... मुआवजा दिया गया तो उसका एक बड़ा हिस्सा अफसरशाही निगल गई, जो मिला उसका एक बड़ा भाग गाँव के साह-साहूकार का कर्ज चुकाने में चला गया और बचा-कुचा शादी-ब्याह और जनम-मरण के आयोजनों में स्वाहा हो गया। विकास ने उन्हें ठन-ठन गोपाल बना दिया।’²

पूरा उपन्यास तीन वर्गों में विभक्त है, जिन्हें पहली डूबकी, दूसरी डूबकी और तीसरी डूबकी कहा गया है। हर डूबकी में अलग-अलग अध्याय है। हर अध्याय एक मुकम्मल तस्वीर खींचता है। चाहे वह घटना की हो, अथवा किसी पात्र की। इस कथा में एक पात्र रामदुलारे बड़ा होकर लेखक बनता है और अपने क्षेत्र की पीड़ा को एक पुस्तक के माध्यम से साहित्य-संसार के समक्ष प्रस्तुत करता है। उस पुस्तक को बाद में मध्य-प्रदेश सरकार पुरस्कृत भी करती है। यह तथ्य मानो लेखक की भविष्यवाणी है, क्योंकि लेखक स्वयं इसी क्षेत्र का रहनेवाला है और उसकी इस पुस्तक ‘डूब’ को भी प्रांतीय सरकार का ‘साहित्य परिषद् पुरस्कार’ प्राप्त हुआ है।

पार—प्रस्तुत उपन्यास वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 1994 में प्रकाशित हुआ। ‘पार’ की कथा आदिवासी खेरे ‘जीरोन’ से शुरू होती है। विकास, ज्ञान और मानव-सभ्यता से कटे इस भूखंड का आधार प्रकृति है या आदिमकालीन खेती का तरीका। उनकी ज़रूरतें प्रकृति और खेती से पूरी होती हैं या लड़ैई जैसे ग़ैर-आदिवासी गाँवों से चीजों के आदान-प्रदान वाले व्यापार से। जीरोन के आदिवासियों को विकास परियोजनाओं की कोई जानकारी नहीं है। वे प्रकृति पर बाहरी दखलों और उसके हरेपन के मिटने को ही देख रहे हैं या फिर लड़ैई आदि गाँवों से लोगों के खिसक जाने के कारण आदान-प्रदान की मात्रा में आ रही कमी को। वे समझ रहे हैं कि स्थितियाँ अब उनके लिए वैसी उपयुक्त नहीं रहीं, जैसी अब तक हुआ करती थीं। बाहरी दखलों को खदेड़ने का उपाय भी वे सोच रहे हैं उन्हें ऐसा आभास भी हो रहा है कि लोग उजड़कर इधर-उधर भाग रहे हैं। यही उनका केंद्रीय डर भी है कि कोई जीरोन में आकर न बस जाए।

खेरे का मुखिया चिंतित है। उसे अपने बाद का मुखिया घोषित करना है। नियम के अनुसार अगले मुखिया, जिसे राउतों की भाषा में गुनिया कहा जाता है, की घोषणा उसके जन्म पर ही करनी है। गुनिया घोषित होने के बाद गुनिया-माई को पुरुष सहवास से वंचित होना है। गुनिया का चुनाव-गुनिया माई का चुनाव भी है। जीरोन की यह कथा परोक्ष में स्त्री के प्रति एक सार्वभौमिक दृष्टि को खूबी से रेखांकित कर जाती है। समाज की बेहतरी या अभीष्ट को पाने के सारे तरीके स्त्री को प्रतिबंधित करके ही साधे जाते हैं। राउतों की कथा में मुइया और फुलिया की आंतरिक वेदना इस तथ्य को उजागर कर गई है कि जो समाज जितना ज्यादा अशिक्षित और विकास से कटा होगा, वहाँ स्त्री की स्थिति उतनी ही दारुण होगी।

‘पार’ में जीरोन के साथ-साथ लड़ैई की यात्रा भी चल रही है। लड़ैई और उसके चरित्रों का परिचय डूब में मिल गया था। यहाँ ग्रामसमाज के तीन छोर हैं। एक तरफ सावों का व्यापारीवर्ग है। दूसरी तरफ मंदिर के पुजारी बामन महाराज का पुरा कैलाश महाराज है और तीसरा छोर है-अमृतसिंह यादव उर्फ माते। साव लोग डूब में ही गाँव छोड़ गए थे। वे मुरैना, चंदेरी आदि बाहरी कसबों में बस गए थे। गाँवों में बची है उनकी स्मृति। केवल निर्मल सत्त्व उर्फ घूरे साव गाँव में है। उसका धंधा जीरोन से चलता है, इसलिए वह टिका हुआ है। गाँव के दुःख, दर्द, व्यथा की धुरी है-माते।

‘डूब’ में लड़ैई डूब-क्षेत्र में आ गया था। पार में आकर पता चला लड़ैई डूब में नहीं आएगा, वहाँ अभ्यारण्य बनेगा। यानी लड़ैई की बारी बाँध परियोजना पूरी होने के बाद आएगी। विस्थापन की तलवार मुआवजे पर लटकी हुई है, ज्यों की त्यों, पर विकास अब भी नहीं होगा-मुआवजे के इंतज़ार में कई वर्ष और बैठना पड़ेगा। अब घूरे साव और कैलाश महाराज को चिंता मुहावजे की है। वे किसी भी तरीके से अधिक-से-अधिक ज़मीन अपने नाम लिखवाकर मुआवजा हड़पने की ताक में हैं। माते की चिंता गाँव को बसाए रखने और विस्थापन की तलवार तले से निकलने की है। माते अपने मक़सद के लिए गाँव के पढ़े-लिखे और लेखक बेटे के लौट आने की उम्मीद में है। उपन्यास के आखिर में माते रामदुलारे की पत्नी से वादा माँगता है कि अपनी कोख से मुझे जनम देना। रामदुलारे की पत्नी ठकुरानी भी वादा करती है। उसे विश्वास भी है कि अपनी कोख से वह माते को जन्म देगी पर तब वह उसे उसका गाँव काह से लाकर देगा।

‘पार’ उपन्यास ‘डूब’ का ही दूसरा भाग यानी अगला पड़ाव लगता है। क्योंकि दोनों उपन्यासों का क्षेत्र एक ही है। लगभग पात्र भी वही हैं। फिर भी दोनों उपन्यास स्वतंत्र हैं। ‘डूब’ विस्थापन की समस्या है तो ‘पार’ विस्थापन के बाद की समस्याओं की व्यथा को प्रस्तुत करता है।

‘पार’ उपन्यास के बारे में ‘ज्ञानप्रकाश विवेक’ लिखते हैं कि ‘पार’ उपन्यास आक्टोपसी तंत्र की निस्संगता का बेबाक बयान है। आदिवासियों की बेचैनी से ज्यादा बदहाली, मुफ़लिसी और निराशाजनक स्थितियों का मार्मिक, लेकिन यथार्थवादी चित्रण है।¹³

तलाश-प्रस्तुत उपन्यास आयाम प्रकाशन, नई दिल्ली से 1992 में प्रकाशित हुआ। ‘तलाश’ शीर्षक के अंतर्गत एक पत्र के रूप में उपन्यास की रचना की गई है। इसमें ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। डाकुओं का आतंक, साहुकारों के फँता शिकंजे और मठाधीशों के निहित स्वार्थों के बीच मुश्किल से साँस भर लेकर जीने वाले आम

आदमी की व्यथा-कथा कही गई है इस उपन्यास 'तलाश' में।

'तलाश' उपन्यास के मुख्य पात्र पूजा बब्बा जैसे भले लोगों के सद्कार्यों के कारण ही यह दुनिया चल रही है अन्यथा भ्रष्टाचार इतना विस्तार पा चुका है कि हर क्षण, हर पल, पृथ्वी के रसातल में डूबने की आशंका बनी हुई है। 'मल्लू' को संबोधित अलग-अलग पत्रों में लेखक ने डाकुओं के आपसी झगड़े, पुलिसवालों के अवांछित आतंक जैसी विडंबनाओं के अच्छे चित्र खींचे हैं। डाकू लखनसिंह, रमेशसिंह सिकरवार के आतंक और लोकनायक जयप्रकाश नारायण की आत्मसमर्पण योजना की चर्चा भी इस उपन्यास में की गई है।

उपन्यास के बारे में संजीव सिंहल लिखते हैं कि ग्रामीण पृष्ठभूमि पर उपन्यास लिखना निस्संदेह एक दुष्कर कार्य है। ग्रामीण भाषा, जीवन-शैली, भावनाएँ और व्यवस्था नगरीय जीवन से अलग हैं।⁴

गैल और गन उपन्यास वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 2004 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास 'तलाश' उपन्यास का अगला पड़ाव (दूसरा भाग) लगता है। इसके पात्रों के नाम तथा कथा की बुनावट में थोड़ा-सा ही अंतर है। उपन्यास के आरंभ में ही लेखक आवेदक के पितामह लंबरदार द्वारा गोरी सरकार से लोहा लेने के संबंध में प्रतिज्ञा करता है। 'गैल और गन' का समाज ग्रामीण समाज है। 'डूब' की तरह ग्रामीण जीवन तो इसमें नहीं आया है, किंतु गाँवों के झगड़े, मुकदमे, जातिवाद आदि फिर भी आए हैं। 'साँप' शहर में ही नहीं, गाँव में भी बसते हैं, यह इस उपन्यासिका में देखा जा सकता है। गाँव के स्तर पर सरकारी मशीनरी किस तरह काम करती है, इसका बहुत सहज चित्रण उपन्यास में मिलता है। आज्ञाप्रसाद का जिला दिवस और तहसील दिवस जैसे सब्जबागी मौकों पर दरखास्त देना हो या कि महकमे में अपनी बिरादरी के सरकारी कारिंदे की खोज, नौकरशाही की लिजलिजी कार्यपद्धति की परत-दर-परत पोल खोलता है।

आज्ञाप्रसाद द्वारा दलितों को अर्जी के लिए जिला मुख्यालय साथ चलने के लिए राजी कर लेना और उसी सहजता से उनका भी राजी हो जाना, सवर्णों द्वारा दलितों के प्रबंधन की कूटनीति का उदाहरण है। 'गैल और गन' के बारे में अभिषेक 'जनतंत्र' वृत्तपत्र में लिखते हैं कि 'ग्रामीण पृष्ठभूमि के बारे में वीरेंद्र जैन की पकड़ की प्रामाणिकता पर दो राय नहीं हो सकतीं, क्योंकि इनकी कहानियों और उपन्यासों में स्वानुभूत का अधिकतम अंश होता है। दलितों के मकानों की संरचना और उसमें सवर्णों के सचेतन षड्यंत्र के बारे में वर्णन लेखन की अभूतपूर्व सूझ की एक बानगी है।'⁵

अनातित—यह उपन्यास प्रमोद प्रकाशन, नई दिल्ली से 1983 में प्रकाशित हुआ। इस लघु उपन्यास में लेखक ने प्रेम व भावना के आवेग का चित्रण किया है। प्रेम शरीर से बहुत आगे की वस्तु है तथा त्याग का प्रतिदान माँगता है। विधवा-विवाह स्त्री-चेतना एवं नारी-कल्याण की दिशा में एक सार्थक क़दम हो सकता है। उपन्यास की नायिका अंतरजातीय प्रेमविवाह करना चाहती है, पर उसके घरवाले बिरादरी के लड़के से उसकी शादी करते हैं। उसका पति एक हादसे में मारा जाता है। 'सुमी' अपने घर विधवा का जीवन जीती है। उसका दोस्त उसे इस उदासीनता-भरी ज़िदगी से निकालने के लिए उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है। वीरेंद्र जैन इस विषय के माध्यम से समाज के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं एवं समाज द्वारा

अभिषप्त नारी का जीवन सुधारने का एक प्रशस्त मार्ग दिखाते हैं।

प्रतिदान—यह उपन्यास जगताराम एंड संस, नई दिल्ली से 1994 में प्रकाशित हुआ। 'प्रतिदान' में लेखक ने दहेज-प्रथा पर चोट कर यह बताने का प्रयास किया है कि वर्षों से जमी हुई कुप्रथा को मिटाने का प्रयास कितना दुष्कर है, लेकिन दृढ़ संकल्प से इस पर विजय पाई जा सकती है। विवाहोपरांत निभाई जाने वाली सामाजिक रूढ़ियाँ जानलेवा भी साबित हो सकती हैं। लेखक ने सामाजिक कुरीतियों की भयावहता का चित्रण करते हुए समस्या का नवीन परिस्थितिजन्य सरल समाधान भी दिया है। धैर्य एवं संयम से बुजुर्गों के व्यवहार में परिवर्तन के सुधार का सकारात्मक प्रयास निष्फल नहीं जाता, इसका सुंदर चित्रण किया है। उपन्यास लगभग 25 वर्ष से अधिक पूर्व की सामाजिक स्थितियों को प्रकट करता है। वर्तमान में सामाजिक स्थितियाँ अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल हुई हैं। इसके अतिरिक्त निःसंतान दंपतियों के लिए एक सकारात्मक सामाजिक संदेश दिया गया है, जिसके द्वारा सामाजिक विसंगतियों से उत्पन्न नवजात शिशुओं को माता-पिता का स्नेह प्राप्त हो सकता है तथा माँ का मातृत्व भी संतुष्ट हो सकता है।

सुरेखा-पर्व—यह उपन्यास ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली से 1978 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में अनाथ आश्रम में रहने वाली बालिकाओं की मनःस्थिति एवं उनकी जीवन-शैली का चित्रण किया गया है। लेखक ने यह बताने का भी प्रयास किया है कि किन परिस्थितियों में बालिकाओं को मजबूरन अनाथ आश्रम में रहना पड़ता है तथा उनके तन-मन पर क्या बीतती है। लेखक द्वारा प्रस्तुत उपन्यास में नायिका व उसकी मम्मी के साथ युवक के संबंधों के लंबे व अवांछित चित्रण ने उपन्यास के मूल मर्म को क्षति पहुँचाई है। स्त्री के प्रति संकीर्ण पुरुष मानसिकता का सटीक चित्रण किया गया है।

पंचनामा—यह उपन्यास भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से 1996 में प्रकाशित हुआ। 'पंचनामा' एक प्रतिष्ठित परिवार के बुरे दिनों को छिपाने की मजबूरियों के बीच बड़े होनेवाले एक बालक 'पंचक' की जिंदगी की कठिनाइयों की दास्तान है। यह दास्तान इतनी मार्मिक और सजीव है कि लोग इसे वीरेंद्र जैन की आपबीती भी कह सकते हैं।

परिवार द्वारा पंचम को पालने-पोसने और पढ़ाने-लिखाने का बोझ उठाने में असमर्थ होने पर झूठी कहानी गढ़कर उसे अनाथाश्रम में भर्ती करवा दिया जाता है। पंचम वहाँ अकलंक कुमार बन जाता है। और फिर शुरू होता है बालक से किशोर और युवा होने तक का उसका संघर्ष। वह कई लोगों से स्नेह पाता है और कई से घृणा। घृणा सिर्फ इसलिए, क्योंकि कागजों में वह अनाथ है। उसके माता-पिता, कुल और वंश का पता नहीं है। इसलिए कर्मकांडी अध्यापक उसे अच्छूत मानते हैं। कई बार वह इन्हीं कारणों से स्नेह भी पाता है।

वह इतनी-सी उम्र में समाजसेवियों के चेहरे पहचान लेता है। अनाथाश्रम में व्याप्त भ्रष्टाचार से दो-चार होता है और नवीं कक्षा से ही अपना पेट भरने के लिए काम की तलाश करता है। घरेलू काम से लेकर कारखाने, छापेखाने, सब्जी मंडी, सिनेमा के टिकट बेचने आदि काम करता है, पर उसकी मानसिकता कभी-भी नकारात्मक नहीं होती। खुद का पालन-पोषण करने के साथ-साथ वह अपनी पढ़ाई भी पूरी करता है।

उपन्यास के कथ्य के संबंध में क्षमा शर्मा, सबरंग जनसत्ता में लिखती है, 'आए-दिन

अखबारों में हम इस तरह के क्रिस्से पढ़ते हैं कि भूख से तंग आकर अनाथालयों से बच्चे भागे या अनाथालय में उत्पीड़न से तंग आकर बच्चे ने आत्महत्या की अथवा बच्चे की इतनी पिटाई की गई कि उसकी मौत हो गई। अनाथालयों के पापाचारों को खबरों में पढ़ना और एक उपन्यास की शक्ल में पढ़ना दो अलग तरह की बातें हैं। वीरेंद्र जैन का नया उपन्यास 'पंचनामा' इन्हीं अनाथ बच्चों की करुण कथा कहता है।⁶

सबसे बड़ा सिपहिया—प्रस्तुत उपन्यास वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 1988 में प्रकाशित हुआ। 'सबसे बड़ा सिपहिया' उपन्यास में पुलिस-विभाग में नीचे से ऊपर तक होने वाले भ्रष्टाचार और पुलिस द्वारा आम जनता पर किए जानेवाले अत्याचार का पर्दाफाश किया गया है। इसकी कहानी संक्षेप में यह है कि आनंद नामक एक पत्रकार के घर में चोरी हो जाती है। वह थाने में रपट लिखाने जाता है। पुलिस उसकी सहायता करने के बजाए उसे जलील और परेशान करती है। वह पुलिस के ऊँचे अफसरों से शिकायत करता है। ऊँचे अफसर अखबार के माध्यम से पुलिस की अच्छी छवि बनाने के इच्छुक हैं, लेकिन पत्रकार की सत्यनिष्ठा उन्हें रास नहीं आती। नतीजा यह होता है कि समूचा पुलिस-तंत्र पत्रकार के विरुद्ध हो जाता है और उसी को चोर, झूठा और दुश्चरित्र सिद्ध कर देता है।

उपन्यास की आरंभिक दो पंक्तियाँ और अंत की दो पंक्तियों से उपन्यास के कथ्य का ज्ञान हो जाता है, जो इस प्रकार है—'जाने किस लाचारी, अभाव के चलते चोरी करने पर विवश उस अज्ञात चोर को, जो आर्थिक विपन्नता देने आया था और अनुभव संपन्नता दे गया।'... 'लोक बड़ा रूपैया, सबसे बड़ा सिपहिया।' उपन्यास के संदर्भ में विभांशु दिव्याल हंस पत्रिका में लिखते हैं, 'सबसे बड़ा सिपहिया' जिसमें आद्योपांत पुलिस-तंत्र की बखियाँ उधेड़ी गई हैं। आम आदमी के दिमाग में पुलिस की जो छवि है, यह उपन्यास मोटे तौर पर उसे ही पुख्ता करता है।⁷

शब्द-बध—यह उपन्यास सचिन प्रकाशन, नई दिल्ली से 1987 में प्रकाशित हुआ। कुटिल प्रकाशकों की दुनिया पर लिखा गया यह पहला उपन्यास है। लेखक ने आनंदवर्धन के माध्यम से कहानी कहते हुए बीच-बीच में बड़ी मार्मिक और महत्त्वपूर्ण बातें कह दी हैं। उपन्यास के नायक युवा, ईमानदार, मेधावी और कर्मठ लेखक को जीविका के लिए विभिन्न प्रकाशकों के यहाँ नौकरी करते दिखाया गया है। अपनी इन विभिन्न नौकरियों के दौरान वह प्रकाशन-जगत के काले कारनामों से परिचित होता है और अपनी ईमानदारी तथा स्वाभिमान के चलते या तो नौकरी से निकाल दिया जाता है या स्वयं ही नौकरी छोड़ने को विवश हो जाता है। उपन्यास के अंत में वह यह प्रतिज्ञा लेता है कि जो कुछ लिखूँगा स्वतंत्र रूप से ही लिखूँगा, अब किसी प्रकाशक के पास नौकरी नहीं करूँगा।

'शब्द-बध' उपन्यास के संदर्भ में धीरेंद्र अस्थाना 'वर्तमान साहित्य' (पत्रिका) में लिखते हैं— 'प्रकाशन अगर शब्द का सत्ता सौंपने वाला स्वप्न है, तो 'शब्द-बध' स्वप्न के पार खड़ा नरक है। प्रकाशन अगर शब्द का व्यापार करने वाला तंत्र है, तो 'शब्द-बध' इस तंत्र में पनपते षड्यंत्र की अस्वीकृति में उठा हाथ है।'⁸

दे ताली—यह उपन्यास वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 2003 में प्रकाशित हुआ। 'दे ताली' उपन्यास भी 'शब्द-बध' उपन्यास की तरह ही प्रकाशकों की कूटनीति पर आधारित है। वीरेंद्र जैन ने इस उपन्यास के माध्यम से प्रकाशकों की आपसी दुश्मनी और उससे होने वाले

नए लेखकों के नुकसान की कथा इस उपन्यास में कही है। साथ-ही-साथ पैसों के लिए सच्ची परिस्थिति को गौण रूप में व्यक्त करते हुए झूठी बातों का बतंगड़ बनाकर पत्रिकाओं में कैसे छापे जाते हैं यह भी बताया है। जो प्रकाशक सत्ता भोग रही सरकार की झूठभरी प्रशंसा करता है उसी को सबसे अच्छा प्रकाशक और प्रकाशन का खिताब दिया जाता है।

उसके हिस्से का विश्वास—प्रस्तुत उपन्यास प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली से 1988 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास का कथ्य 'प्रेम' के नाम पर समाज की नादान, कुलीन लड़कियों को ठगनेवाले धोखेबाज़ ढोंगी पुरुषों पर केंद्रित है। उपन्यास का नायक कबीर कविता नामक युवती को प्रेमजाल में फँसाकर घर से भागकर शादी कर लेता है। अंत में जब कविता को यह मालूम होता है कि कबीर के पास अपनी बीमारी ठीक करने के लिए पैसा नहीं था, उसने अपनी बीमारी का इलाज कराने के लिए ही कविता से शादी की है, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। वीरेंद्र जैन अपने इस उपन्यास के माध्यम से कबीर जैसे निकम्मे कापुरुषों पर अपना आक्रोश प्रकट करते हैं, जो भोलीभाली लड़कियों से अपने स्वार्थ के लिए प्रेम का नाटक रचते हैं एवं उनके विश्वास को चकनाचूर कर देते हैं।

रुका हुआ फ़ैसला—यह उपन्यास हिंदी साहित्य संसार, नई दिल्ली से 1989 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास की कथा देश की सेवा करनेवाले एक फ़ौजी की है, जिसके माँ-बाप को ज़मीन-जायदाद के लिए उनके ही सगे-संबंधी धोखे से मार देते हैं, तथा उनके बच्चों को घर से निकाल देते हैं। दुनियाभर की ठोकें खाते हुए उपन्यास का नायक फ़ौज में भर्ती हो जाता है। बहुत दिनों बाद वह छुट्टी लेकर गाँव लौटता है। उनके रिश्तेदारों को इस बात की भनक लग जाती है। वे संजय का मारने के लिए आते हैं। इस हादसे में संजय आत्मरक्षा करते-करते दो लोगों को गोली मार देता है। इसी बीच वह देश की रक्षा हेतु लड़ने के लिए चला जाता है। इधर पुलिस उसे ढूँढती रहती है।

वीरेंद्र जैन ने इस उपन्यास के माध्यम से एक प्रश्न उपस्थित किया है कि जो देश की सेवा कर रहा है, उसे आत्मरक्षा में हुए क़त्ल के लिए सज़ा मिलनी चाहिए या नहीं? यह प्रश्नचिह्न लेखक पाठकों को लिए छोड़ता है।

सुखफ़रोश—उपन्यास का कथ्य एक ऐसी कंपनी पर आधारित है, जिसमें सुंदर-सुंदर लड़कियों को नौकरी पर रखा जाता है। इन लड़कियों का कार्य यह होता है कि लोगों को फ़ोन करें और उन्हें इनाम आदि का लालच देकर ठगें अथवा उन्हें ब्लैकमेल करें। पत्रकार अविनाश को कंपनी के इस गोरखधंधे का पता चलता है, तो वह इसका भंडाफोड़ करने की योजना बनाता है।

उपन्यास के कथ्य के संबंध में राजेंद्र सहगल दैनिक हिंदुस्तान में लिखते हैं, 'राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण के इस दौर में सामाजिक-आर्थिक स्तर पर उपभोक्तावाद की तेज़ आँधी का भारतीय महानगरीय मध्यवर्ग कुछ इस तरह शिकार हुआ है कि उसकी दमित अतृप्त लालसाएँ-कामनाएँ सतह पर आकर मानवीय रिश्तों में विभिन्न बदलावों का कारण बन रही हैं। भौतिकता की अंधी दौड़ में अपनी स्वार्थपरताओं व लिप्साओं की पूर्ति में करणीय-अकरणीय के नैतिक स्खलन को खंगालती प्रतिष्ठित कथाकार वीरेंद्र जैन की औपन्यासिक कृति 'सुखफ़रोश' व्यक्ति-मन की उन परतों को हटाने में गहरी संलग्नता बरतती है, जिसका सामना करने में हमारा

बुर्जुआ समाज हमेशा बचता रहा है।”

व्यथा-कथा—‘व्यथा-कथा’ उपन्यास का कथ्य समाज द्वारा ठगी गई वेश्याओं के अभिशप्त जीवन पर आधारित है। निराश्रित, असहाय स्त्री आर्थिक समस्याओं से जूझते हुए समाज के प्रतिष्ठित लोगों की ‘दया’ से वेश्यालयों में शरण पाती है। इसी का यथार्थ चित्रण वीरेंद्र जैन ने इस उपन्यास में किया है।

प्रतीक एक जीवनी—वीरेंद्र जैन से साक्षात्कार के दौरान बताया कि एक अनहोनी घटना के कारण इस उपन्यास की एक भी कॉपी बाज़ार में उपलब्ध नहीं है। इतना ही नहीं इसकी पांडु लिपि भी आज इनके पास नहीं है। इस उपन्यास का जो कथ्य था इसी को थोड़ा विस्तृत रूप देते हुई—‘पंचनामा’ उपन्यास लिखा है। ‘प्रतीक एक जीवन’ ही ‘पंचनामा’ उपन्यास है।

वीरेंद्र जैन के उपन्यास साहित्य के संबंध में डॉ० गोपालराय लिखते हैं—‘जहाँ तक वर्तमान दशक के नई पीढ़ी के उपन्यासकारों की बात है, मेरी समझ से वीरेंद्र जैन में ही भविष्य में श्रेष्ठ उपन्यासकार बनने की संभावनाएँ दिखाई पड़ रही हैं।’¹⁰

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वीरेंद्र जैन हिंदी उपन्याससंसार में एक महत्वपूर्ण नाम है। वे बहुमुखी और विलक्षण प्रतिभा के धनी हैं। उनकी उपन्यास-यात्रा ‘डूब’ से लेकर ‘प्रतीक एक जीवनी’ तक हिंदी संसार में एक उपलब्धि मानी जा सकती है। उनके उपन्यास हिंदी साहित्य को निश्चित ही एक नई दिशा दे सकते हैं।

संदर्भ

1. अरुण प्रकाश, समय सूत्रधार (पत्रिका) जनवरी, 1993
2. महेश्वरदयालु गंगवार, संडे मेल (वृत्तपत्र), 1992
3. ज्ञानप्रकाश विवेक, जे०वी०जी० टाइम्स, 10 अगस्त 1996
4. संजीव सिंहल, नई दुनिया, भोपाल, 2 जून 1994
5. अभिषेक, जनतंत्र (वृत्तपत्र), 14 नवंबर 2004
6. क्षमा शर्मा, सबरंग जनसत्ता (वृत्तपत्र), मुंबई 18 अगस्त 1996
7. विभांशु दिव्याल, हंस (पत्रिका), जून 1989
8. धीरेंद्र अस्थाना, वर्तमान साहित्य (पत्रिका), फरवरी 1998
9. राजेंद्र सहगल, दैनिक हिंदुस्तान, दि 22 अगस्त 2010
10. डॉ० गोपालराय, आजकल, युवा लेखन अंक, मई-जून 1995

□ ‘शैलसागर’

प्लॉट नं० 17, सिद्धि विनायक कालोनी
देवपूर, धुले 424002

उदयशंकर भट्ट के उपन्यासों में आंचलिकता

डॉ० ईश्वरसिंह सागवाल

हिंदी उपन्यास-साहित्य में 'आंचलिकता' एक नया मोड़ रहा है। किसी विशिष्ट अंचल और वहाँ की लोकसंस्कृति को कथा, पात्र, भाषा, क्रिया-कलाप आदि के माध्यम से रूपायित करने में आंचलिक उपन्यासों का महत्त्वपूर्ण योगदान सिद्ध होता है। उदयशंकर भट्ट ने भी इस दिशा में दो ऐसी कृतियाँ सजित की हैं, जो उपन्यास के क्षेत्र में अभी तक अछूते विषयों का उद्घाटन करती हैं। इन दोनों कृतियों का विवेचन-विश्लेषण करने से पूर्व 'आंचलिक उपन्यास' नामक, विधा की संक्षिप्त व्याख्या भी अपेक्षित समझी गई है। अंचल, आंचलिक और आंचलिकता पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए 'आंचलिक उपन्यास' को परिभाषित किया गया है। यद्यपि आंचलिक उपन्यास के संबंध में हिंदी के समीक्षक एकमत नहीं हैं, तथापि उनकी परिभाषाओं के माध्यम से आंचलिक उपन्यास के तत्त्वों एवं स्वरूपों को निर्धारित करने का प्रयास भी किया गया है। उदयशंकर भट्ट के आंचलिक उपन्यासों का सामान्य परिचय देने से पहले आंचलिकता को स्पष्ट करना होगा। 'आंचलिक उपन्यास' के संदर्भ में बार-बार तीन शब्दों का प्रयोग होता है। अंचल, आंचलिक और आंचलिकता। अतः इन तीनों शब्दों पर संक्षेप में विचार करने से 'आंचलिक उपन्यास' को अधिक स्पष्ट समझने में सहायता मिलेगी। लोकसाहित्य एवं आंचलिक उपन्यास के सुप्रसिद्ध विश्लेषक डॉ० रामपंत यादव ने अपने एक ग्रंथ¹ में अनेक ग्रंथों एवं प्रमाणों के आधार पर इन तीनों शब्दों की विशद् व्याख्या की है। डॉ० रामपंत यादव के अनुसार- 'अंचल, आंचलिक एवं आंचलिकता शब्द प्राचीनकाल में किसी भी अर्थ में प्रयुक्त होते रहे हों, किंतु आधुनिक समीक्षाशास्त्र में ये तीनों ही शब्द प्राचीन भावबोध से कटकर एक विशिष्ट एवं रूढ़ संदर्भ से जुड़े हुए हैं।'² इसलिए इन तीनों शब्दों के आधुनिक अर्थों को संक्षेप में व्याख्यायित करने से 'आंचलिक उपन्यास' का अर्थबोध सरल हो सकेगा।

अंचल शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है।³ यह शब्द एकवचन, पुल्लिङ्ग तथा समूहवाचक संज्ञा है।⁴ वस्तुतः 'अंचल' शब्द संस्कृत की 'अच्' धातु में 'अल्य' प्रत्यय लगाकर बनाया गया है। उसके प्राचीन-नवीन अनेक अर्थों में से प्रदेश या भौगोलिक सीमाओं से घिरा हुआ कोई जनपद ही आज के युग में प्रमुख अर्थ रह गया है। अतः अंचल शब्द एक ऐसे भूखंड विशेष का वाचक है जो सांस्कृतिक, आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से अपने-आप में एक इकाई हो तथा जिसके जीवन की अपनी कुछ विशेषताएँ हों।

'आंचलिक' शब्द विशेषण है। अतः आंचलिक की विशेषता को स्थूलार्थ में आंचलिक कहा जा सकता है। अंचल से संबंध रखनेवाली किसी भी वस्तु को आंचलिक कहा जा सकता

है। किसी साहित्यिक कृति में जब किसी अंचल-विशेष के समाज और जीवन का उसी क्षेत्र के वातावरण, भाषा, क्रिया आदि के माध्यम द्वारा यथार्थोन्मुख चित्रण होता है, तो उसे 'आंचलिक' संज्ञा के अंतर्गत लिया जा सकता है। 'आंचलिक' शब्द का अर्थ 'अंचल' की विशेषता है। उपन्यास के संदर्भ में इसका सर्वप्रथम प्रयोग फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने अपने प्रथम उपन्यास 'मैला आंचल' की भूमिका में किया है। यथा—'यह है मैला आंचल एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है। मैंने इसके एक हिस्से के एक गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथा-क्षेत्र बनाया है।' इस उपन्यास के 'आंचलिक' प्रयोग से ही उपन्यासों के साथ यह शब्द भी प्रयुक्त होने लगा। आज उपन्यास के विविध प्रकारों में 'आंचलिक उपन्यास' की स्वतंत्र साहित्य-सत्ता स्वीकार की जाती है। हिंदी उपन्यास में भाषा, विषयवस्तु उसकी प्रस्तुति आदि को लेकर अनेक प्रयोग तो हुए, लेकिन आन्दोलन जैसी स्थिति केवल आंचलिक उपन्यासों को लेकर ही चल सकी।

इधर काफ़ी वर्षों से हिंदी साहित्य में 'आंचलिकता' की प्रवृत्ति भी बदल रही है। 'आंचलिकता' एक भाववाचक संज्ञा है। जो आंचलिक विशेषण से बना ली गई है। 'आंचलिकता' का अर्थ, किसी अंचल का समग्र रूप से चिंतन। जैनेंद्रकुमार ने भी 'आंचलिकता' को एक दिशा या प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है। यथा—'प्रगतिवादी विचारधारा के बाद हिंदी उपन्यास वैयक्तिक, प्रादेशिक यानी आंचलिक दिशा की ओर मुड़ा। मुझे यह कहते हुए संतोष है कि इसमें भी मुझे अच्छी सफलता मिली।'⁶ वास्तव में आंचलिकता के अंतर्गत अंचल के संस्कार विश्वास, लोकगीत, जीवन-मूल्य आदि का वर्णन रहता है। बहिरंग आंचलिकता के चित्रण में उस अंचल के पात्रों के खान-पान, वेशभूषा, रहन-सहन आदि के साथ-साथ वहाँ की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों आदि का निरूपण किया जाता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है, कि किसी भूभाग की सभ्यता-संस्कृति, रहन-सहन, भाषा-बोली तथा लोकधर्मिता आदि की स्वतंत्र इकाई को 'अंचल' मानना चाहिए। इस अंचल से संबद्ध और इस विशिष्ट अंचल की आंशिक या समग्र विशेषताओं का गृहिणीकरण ही 'आंचलिकता' कहलाता है। इस आंचलिक स्वरूप को भाषिक अर्थवत्ता में अभिव्यक्त तथा संप्रेषित करना ही आंचलिकता कहलाता है। आंचलिक उपन्यास के स्वरूप तथा तत्त्वों के आधार पर उदयशंकर भट्ट के उपन्यासों में दो उपन्यास ही 'आंचलिक-उपन्यास' की कोटि में आते हैं—

1. लोक-परलोक
2. सागर, लहरें और मनुष्य

हिंदी साहित्य के इतिहास-ग्रंथों और उपन्यास-संबंधी समीक्षात्मक ग्रंथों में 'लोक-परलोक' की चर्चा बहुत कम अर्थात् नहीं के बराबर हुई है। इनका 'सागर, लहरें और मनुष्य' प्रायः सभी ग्रंथों में चर्चित आंचलिक उपन्यास रहा है। 'लोक-परलोक' तथा 'सागर, लहरें और मनुष्य' में जहाँ अनेक समताएँ प्राप्त होती हैं, वहीं कुछ ऐसी विषमताएँ भी मिलती हैं, जो एक-दूसरे की पूरक प्रतीत होती हैं। दोनों उपन्यासों का संबंध ऐसे उपेक्षित और अछूते विषय से रहा है, जो हिंदी-उपन्यास के क्षेत्र में उपन्यासकारों ने अत्यल्प चयनित किया है। इसी प्रकार दोनों उपन्यासों का कथा संसार प्रधान रूप से ऐसी एक-एक नारी से संबद्ध है, जो पाठक के सम्मुख प्रमुख पात्र के रूप में उभर कर आती है। सैक्स (काम) की दृष्टि से भी दोनों उपन्यासों में नर-नारी

के विविध संबंधों का चित्रण यौन-विज्ञान के आधार पर किया गया मिलता है। दोनों ही उपन्यास 'जलाशयों' के तटवर्ती अंचल से संबद्ध हैं, एक में नदी-तट है, तो दूसरे में समुद्र-तट है। उपन्यासकार ने दोनों उपन्यासों का केंद्र-स्थल कोई विशिष्ट गाँव चुना है। एक में 'पदमपुरी' नामक गाँव है तो दूसरे में 'बरसोवा' नामक गाँव है। यदि विषमता रूपी पूरक तत्त्वों को देखें तो लोक-परलोक विषादांत है तथा 'सागर, लहरें और मनुष्य' सुखांत है। इसी प्रकार विषयवस्तु की दृष्टि से 'लोक-परलोक' जनजीवन से संबंधित है और दूसरा उपन्यास जनजाति से संबंधित है। पहले उपन्यास में उपेक्षित साधुवर्ग को लिया गया है, तो दूसरे में उपेक्षित समुद्री मछुआ-जीवन को लिया गया है। 'लोक-परलोक' में औघड़ बाबा की प्रेरणा से चमेली का जीवन असद् से सद् की ओर परिवर्तित हो जाता है। तो 'सागर, लहरें और मनुष्य' में डॉ० पांडुरंग के सान्निध्य में रत्ना का जीवन बदल जाता है। नर द्वारा नारी पर किए गए अत्याचारों के प्रति जहाँ चमेली समर्पित हो जाती है, वहीं रत्ना का प्रतिशोधात्मक विद्रोह दृष्टिगत होता है। इस प्रकार उदयशंकर भट्ट के ये दोनों आंचलिक उपन्यास हिंदी साहित्य की अनूठी देन हैं।

'लोक-परलोक' नामक उपन्यास में उत्तरप्रदेश का तीर्थ गाँव 'पदमपुरी' के विभिन्न वर्गों की जातिगत विशेषताओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। प्रत्येक जाति-वर्ण के पात्रों के द्वारा उनकी जातीय गतिविधियों का चित्रण ही लेखक का मूल उद्देश्य प्रतीत होता है। इस उपन्यास में लेखक ने तीर्थ-स्थानों में निरंतर होने वाली भीषण बुराइयों और जघन्य पापों की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित किया है। इसमें उद्घाटित किया है, किस प्रकार ढोंगी, पंडे-पुजारियों की कृत्रिम धार्मिकता एवं पाखंडमय भक्ति के बलियज्ञ में भोले-भाले निष्कपट ग्रामीण आहुति बनते हैं। वे अपनी दिखावटी पूजा-अर्चना के जाल में भक्तों का फँसाकर उनके धन का अपहरण ही नहीं करते, प्रत्युत् उनकी नारियों का सौभाग्य और नारित्व भी कलंकित करते हैं। इस उपन्यास में तीर्थ-भूमि का चित्रण करने के लिए जो कथा अपनाई है वह प्रधान न होकर गौण है। वह कथामात्र न होकर तीर्थ-स्थानों के लालची पंडों, ब्राह्मणों तथा पाखंडी साधुओं के वास्तविक चित्रण के साथ सच्चे साधु औघड़ बाबा का आदर्श चित्रण भी करती है। इस बाबा की कृपा से उपन्यास की प्रधान पात्र चमेली का मानसिक कायाकल्प हो जाता है। चमेली कौमार्य से ही बुरी संगति में पड़कर पतित हो गई थी। बचपन में माँ बाप की अशिक्षा और लापरवाही के कारण वह जिस वातावरण में पली, उसमें नियंत्रण का अभाव था। आठ-नौ साल की आयु में ही उसने उकसाने वाला यौवन-विज्ञान पा लिया। तेरह-चौदह साल की होते-होते वैश्य ललितप्रसाद के साथ भागी, पर स्टेशन पर पकड़ ली गई। माता-पिता ने पैंतीस-चालीस वर्षीय मुनीम के हाथ बेच दिया। उसका पति जैसे-जैसे निरीह हुआ, पत्नी जैसे-जैसे उच्छृंखल होती गई। अपने आसपास मँडराने वाले प्रत्येक भौरे को रस बाँटने में उसने आनंद अनुभव किया, शराब और जुए के साथ उसने लोगों को फँसाकर चकमा देना भी सीखा। फिर चोरी करने में निपुण हो गई तथा कारावास का अनिवार्य नियंत्रण भी उसे स्वीकार करना पड़ा।

छः महीने पश्चात् जेल से जब वह लौटी, तब तक उसके पति इस संसार से विदा ले चुके थे। कुछ दिनों के पश्चात् वह डाकुओं के सरदार के पास जाकर रहने लगी। ऊबड़-खाबड़ भूमि पर घोड़े की सवारी के साथ दौड़ना, पेड़ पर चढ़कर छिपना, बंदूक चलाना आदि उसने सरलता से सीख लिए। अचानक सरदार की मृत्यु के उपरांत वह 'पदमपुरी' लौट आई और

यात्रियों को ठगने में लग गई। अचानक उस तीर्थ के औघड़ बाबा के प्रभाव से उसमें परिवर्तन आया और वह आत्मविलोकन करने लगी, 'जिस गंगा के किनारे दर्शन करके नहाकर, अखंड पुण्य लूटने आते हैं। उसी किनारे मैं पापिन चोरी करती हूँ, डाका डलवाती हूँ, लोगों का मन मोहकर खुश कर देती हूँ और इसे अपनी जीत मानती हूँ। भीख माँगती हुई भी मैं पाप करती हूँ।जवान यात्रियों को देखकर मुस्कुराती हुई उनकी जेब से पैसा निकालती हूँ। क्या रूप है यह मेरा? क्या मैं वेश्या नहीं हूँ? वेश्या और कैसी होती है? मेरा सारा जीवन वेश्या बने रहने में बीता।" अंत में चमेली की सत्य एवं सुखमय जीवन की खोज की ओर उसकी करुणापूर्ण कहानी का निर्माण कर उपन्यासकार ने उपन्यास के उद्देश्य को और भी महत्त्वपूर्ण बना दिया। इस उपन्यास की कथा 'विषदांत' है। बीमार चमेली के प्राणांत का दृश्य संपूर्ण, कथा को करुणाभरी दुःखांतिका में परिवर्तित कर देता है। चमेली के शव को गंगा में प्रवाहित करते समय ग्रामांचल के सभी वर्णों और जातियों के लोगों ने अपने आँसुओं से उसे विदा किया।

'सागर, लहरें और मनुष्य' में लेखक ने बंबई के उपनगर 'बरसोवा' के मछुआं और 'माहिम' के कोलियों का जीवन चित्रित किया है। इन दोनों जातियों का रहन-सहन, स्वभाव, रीति-रिवाज, त्योहार जैसे नारियल-पूर्णमा, यौन-संबंध, आर्थिक स्थिति गरीबी, सिनेमा का प्रभाव आदि रस सजीवता के साथ चित्रित किए हैं। ऐसा लगता है, कि हम उपन्यास न पढ़कर बंबई के समुद्र-तट पर खड़े मछुआरों को देख रहे हैं। उनके गीत और नृत्य उनके सांस्कृतिक जीवन की झँकी प्रस्तुत करते हैं, तो शराब, गाँजा आदि मादक द्रव्यों का प्रयोग, उनके सेवन के बाद लड़ाई-झगड़े, मारपीट, गाली-गलौच उनकी हीन दशा का संकेत करते हैं। इस तरह उपन्यास में मछुआरों का जीवन-चित्र पूरी तरह से उतर आया है। सागर न केवल मछुआरों का जीविका-स्रोत और समृद्धि तथा विपत्तियों का अधिष्ठाता है, प्रत्युत् उनका राग- बोध, उनकी कल्पना, उनका विक्षोभ-पथ, उनका उल्लास अर्थात् समस्त भावनाएँ उससे बँधी हैं। मछुआ एक अशिक्षित एवं पिछड़ी हुई जाति विशेष है। उनके अपने आचार-विचार हैं और जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण है। अब उनके जीवन में धीरे-धीरे नगर की व्यष्टिवादी चेतना संचारित होने लगी है। उनके पुराने रूढ़िवादी संस्कार शिथिल पड़ने लगे हैं। इस चेतना को व्यंजित करने के लिए लेखक ने ऐसी नारी का चयन किया है, जो उपन्यास की केंद्रबिंदु है। जिसके चारों ओर समस्त घटनाचक्र घूमता है। वस्तुतः इस उपन्यास में बरसोवा के मछुआ-परिवार की रत्ना नामक अर्धशिक्षित महत्त्वाकांक्षी युवती की कथा है, जो शहर की चमक-दमक से वशीभूत हो संपन्न शहरी युवक की विवाहिता होना चाहती है। वंशी नामक महिला रत्ना की माँ है। मछुआ परिवार में पाई जाने वाली सभी स्त्रियोचित विशेषताएँ उसमें हैं। उसका पति नशेबाज और आलसी है। वह पति का अनुशासन करती है। रत्ना उसकी इकलौती कन्या है। मछुआ परिवारों में सर्वाधिक पैसे वाली होने के कारण वह रत्ना को शिक्षा दिलवाती है। रत्ना पढ़- लिखकर सुशिक्षित होना चाहती है। प्रारंभ में वह यशवंत से प्रेम करती है। उसमें असफल होती है, तो वह माणिक से विवाह कर लेती है। अपने आदर्शों के कारण इस संबंध से उसे संतुष्टि नहीं मिलती है, वह निराश होती है। बाद में धीरूवाला से गर्भवती होती है, परंतु धीरूवाला की धूर्तता से निराश होकर अंत में डॉ॰ पांडुरंग के अस्पताल में नर्स का कार्य करती है। वहाँ डॉक्टर की विश्वासपात्र बनती है और वह अपने पूर्वकालीन जीवन की कथा प्रकट कर देती है। इस प्रकार रत्ना पात्र के द्वारा

मछुआरों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन तथा बंबई के नागरिक जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। इस रूप में वह समग्र अंचल की और समग्र उपन्यास की प्रधान पात्र है। विवाह के पश्चात् रत्ना को दुःखों में भी माँ वंशी के पास आ इधर-उधर भटकने के कारण उसे (वंशी को) मानसिक आघात लगता है। वह अपने नेत्रों की ज्योति खो बैठती है। डॉ० पांडुरंग के आँखों के अस्पताल में उसका इलाज होता है, पर विशेष लाभ नहीं होता। जब रत्ना उसे वहाँ मिल जाती है, तो उसके नेत्रों की ज्योति भी पुनः वापिस आ जाती है। डॉ० पांडुरंग द्वारा गर्भवती रत्ना को स्वीकार किए जाने पर वंशी पूर्ण स्वस्थ हो जाती है और उपन्यास का भी पर्यवसान हो जाता है।

उदयशंकर भट्ट के 'लोक-परलोक' तथा 'सागर, लहरें और मनुष्य' नामक दोनों उपन्यास ऐसे अंचल से संबद्ध हैं, जो हिंदी-पाठकों के लिए अल्पज्ञात रहे हैं, तथा हिंदी साहित्य के भी अपेक्षाकृत अछूते विषय रहे हैं। 'लोक-परलोक' में पद्मपुरी तीर्थ-स्थल के पंडों, ब्राह्मणों, राजपूतों, लोधों आदि का जीवन यथार्थपरक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। दूसरे उपन्यास में बंबई के समुद्रीतट पर मछुआरों के जीवन में भीतर तक झाँककर पूरी-पूरी संवेदना के साथ एवं ईमानदार कोशिश करते हुए भावाभिव्यक्ति की गई है। उदयशंकर भट्ट ने अपने आंचलिक उपन्यासों में अंचल की बहिरंग के स्तर पर अंतर्जातीय विवाह, अनमेल-विवाह, साधु-महंतों के ढोंग और चरित्रहीनता, आर्थिक अभाव, परस्पर के द्वेष और झगड़े, रीतिरिवाज आदि का सजीव चित्रण किया है। इसी प्रकार अंचल की अंतरंगता की दृष्टि से निराशा, खेद, क्षोभ, प्रायश्चित्त, अकर्मण्यता, आशा, उत्साह, सत्यनिष्ठा, घृणा, लघुता की भावना, महत्वाकांक्षा आदि के निरूपण में भी लेखक सफल रहा है। अंत में हम कह सकते हैं कि लेखक में प्रवाहमान हिंदी-ग्रंथ लिखने की अनूठी क्षमता है और वे किसी अंचल-विशेष के समग्र रूपायन के समर्थ कथाकार हैं तथा औपन्यासिक कौशल की दृष्टि से लेखक के दोनों उपन्यास हिंदी-उपन्यास की आंचलिक चित्रण की धारा की परंपरा में एक विशिष्ट और श्रेष्ठ कृतियाँ हैं।

संदर्भ

1. डॉ० रामपंत यादव कृत 'उपन्यास का आंचलिक वातयन' अष्टक
2. डॉ० रामपंत यादव कृत 'उपन्यास का आंचलिक वातयन' अष्टक पृ० 32
3. शब्द चिंतामणि, पृ० 20
4. वाचस्पत्यम्, बृहत् संस्कृताभिधानम्, प्रथम भाग, पृ० 25
5. फणीश्वरनाथ 'रेणु' मैला-आंचल, प्रथम संस्करण की भूमिका
6. आकाशवाणी प्रसारिका, दिल्ली, अप्रैल, 1957, पृ० 49 पर जैनेंद्रकुमार का लेख
7. उदयशंकर भट्ट 'लोक-परलोक' पृ० 80

कथाकार प्रेमचंद : एक दृष्टिकोण

डॉ० प्रीति अरोड़ा

हिंदी साहित्य के इतिहास में सुप्रसिद्ध साहित्यकार प्रेमचंद का नाम जन-जन की जिह्वा पर विद्यमान है, क्योंकि उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों के प्रति सजग व सचेत होकर जनसाधारण की अनुभूतियों की सच्चाई को बखूबी बयान किया। मानवता के पुजारी प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय परिस्थितियों तथा समस्याओं पर विचार किया। वे जनता की कठिनाइयों एवं कष्टों से अविभूत थे। इसलिए वे जनता को उनके दुखों से मुक्ति दिलवाना चाहते थे। उनकी संवेदना उस पीड़ित, दलित, दमित व उपेक्षित व्यक्ति के साथ थी, जो मानवीय अधिकारों से वंचित जीवन व्यतीत कर रहा था। उनकी यही संवेदना उनके कथासाहित्य में अवतरित हुई। उनका साहित्य तत्कालीन समाज का विश्लेषक प्रतीत होता है, क्योंकि उसमें विविध सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक पक्ष अंतर्निहित हैं।

प्रेमचंद का संपूर्ण रचना-संसार भारतीय नवजागरण, त्रासदियों, जनसंघर्षों और पीड़ा का जीवंत दस्तावेज है। उनका साहित्य तत्कालीन भारत के विविध पक्षों पर प्रकाश डालता है। उन्होंने विदेशी शासन की औपनिवेशिक नीतियों के बीच पिसते हुए भारतीय वर्गों में निर्धनवर्ग, दलितवर्ग, नारीवर्ग के साथ-साथ जमींदारवर्ग, महाजन और पुलिसवर्ग की न्याय-प्रणाली का खुलासा किया। प्रेमचंद को ज्ञात था कि अंग्रेज भारत के किसी भी वर्ग की उन्नति नहीं चाहते। उनका मानना था कि खासकर किसानों व मजदूरों की स्थिति सबसे ज्यादा दयनीय बनी हुई है, इसलिए उन्होंने 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' जैसी सशक्त रचनाओं में दमन की चक्की में पिसते कृषक का चित्रण किया। 'गोदान' उपन्यास में होरी मुख्य पात्र के माध्यम से एक कृषक-जीवन की दास्तान लिखी गई है, जो शुरू से अंत तक शोषण की चक्की में पिसता है और डर के साये में जीता है। उपन्यास में जब थानेदार गोहत्या के मामले की जाँच-पड़ताल करने के लिए गाँव आता है, तब होरी की दशा को प्रेमचंद जी ने भलीभाँति प्रस्तुत किया है, 'होरी की तलबी हुई। जीवन में यह पहला अवसर था कि वह दरोगा के सामने आया। ऐसा डर रहा था, जैसे फाँसी हो जाएगी। धनिया को पीटते समय उसका एक-एक अंग फड़क रहा था। दरोगा के सामने कछुए की भाँति भीतर सिमट जाता था।' प्रेमचंद की सहानुभूति हर उस वर्ग के प्रति थी, जो समाज द्वारा उपेक्षित होकर जीवन व्यतीत करता था। इसलिए उन्होंने पुलिसवर्ग, महाजन व जमींदार-वर्ग पर भरपूर कटाक्ष किया। ऐसे ही 'रंगभूमि' उपन्यास में जब सिपाहियों को मुहल्ला खाली करवाने का आदेश मिला, तो वे तोड़-फोड़ करते हुए घर खाली करवाने लगे। उन्होंने काम की चीजों पर हाथ साफ़ किया। मकान खाली करवाने का हुक्म, मानो उनके लिए लूट मचाने का हुक्म था।¹²

पुलिस की धनलोलुपता, कुचक्र, अत्याचार और अवसरवाद का विशद् वर्णन प्रेमचंद के 'गबन' उपन्यास में भी मिलता है जिसमें निर्दोष भारतीयों के विरुद्ध झूठे मुकद्दमे बनाने और झूठे गवाह तैयार करने की प्रक्रिया का निरूपण हुआ है। प्रेमचंद ने स्पष्ट किया है कि पुलिस अधिकारियों की धनलिप्सा उनके विवेक का हरण कर लेती थी और वे न्याय का पक्ष लेने की बजाय धन का पक्ष लेते थे। उपन्यास 'गबन' का पात्र देवीदीन खटिक स्पष्ट कहता है, 'सैकड़ों खूनियों को जानता हूँ, जो यहाँ कलकत्ते में रहते हैं। पुलिस के अफसरों के साथ दावतें खाते हैं, पुलिस उन्हें जानती है फिर भी उनका कुछ नहीं कर सकती। रुपए में बड़ा बल है भैया।'³

प्रेमचंद ने अपने वर्तमान को ध्यान में रखकर लेखन-कार्य किया। उनके साहित्य में वर्तमान से जुड़े हुए, भविष्य को बेहतर बनाने का आग्रह विद्यमान है। देश में फैली विसंगतियों को दूर करने के उद्देश्य से उन्होंने साहित्य को अपना हथियार बनाया था जिसके माध्यम से उनके साहित्य का उद्देश्य व्यापक स्तर पर प्रसारित हुआ। 'प्रेमचंद जीवनपर्यंत भारत की स्वाधीनता के लिए साहित्य लेखन करते रहे। ये पूर्ण स्वाधीनता के पक्षधर थे और उपनिवेशों के स्वाधीनता-आंदोलनों का हृदय से समर्थन करते थे। उन्होंने भारतीय जनजीवन और स्वतंत्रता-संघर्ष की गाथा को अपने साहित्य का प्रतिपाद्य बनाया था।'⁴

प्रेमचंद को दलितवर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति थी। उन्होंने 'गोदान' उपन्यास और 'ठाकुर का कुआं, सदगति, दूध का दाम' जैसी कहानियों में दलित-जीवन की विडंबनाओं का चित्रण किया है। कुप्रथाओं से प्रभावित संकीर्ण मानसिकता के कारण होने वाली मानवीय अवनति के विषय में प्रेमचंद जी लिखते हैं, 'हमारे समाज में अभी ऊँच-नीच का विचार ज्यों का त्यों बना है।...मनुष्य की आत्मा की श्रेष्ठता, उसका गौरव, हम भूले बैठें हैं। हमारी दृष्टि स्थूल हो गई है वह शरीर के भीतर प्रवेश नहीं कर सकती। उसे आत्मिक समानता, पवित्रता और व्यापकता दिखलाई ही नहीं देती। हमारे कृषक अब भी नीच समझे जाते हैं।'⁵

प्रेमचंद ने अँग्रेजी शासन का कड़ा विरोध किया जिसके स्पष्ट उदाहरण उनके उपन्यासों एवं कहानियों में मिलते हैं। 'दंड' कहानी में प्रेमचंद विदेशी शासन-व्यवस्था को लक्षित करके लिखते हैं, 'कठोरता और असभ्यता, जो शासन का अंग समझी जाती है...'⁶ अर्थात् भारत पर निर्मम एवं अमानवीय शासन थोपकर विदेशी निवासी यहाँ के लोगों का शोषण कर रहे थे। प्रेमचंद के पात्र भी अँग्रेजी शासन के तहत पाश्चात्य संस्कृति पर कटाक्ष करते हैं। 'गुल्ली-डंडा' कहानी में वाचक कहता है—'हम अँग्रेजी चीजों के पीछे ऐसे दीवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीजों से अरुचि हो गई है।'⁷

प्रेमचंद ने किसी खास धर्म या संप्रदाय विशेष की बात नहीं की। वे मानवता के पुजारी थे। उनका लक्ष्य मानवता की भावना को स्थापित करना था। मैनेजर पांडेय के अनुसार, 'प्रेमचंद ने भारतीय समाज में मौजूद सांप्रदायिकता का रचना और विचार के स्तर पर अपनी ताकतभर लगातार विरोध किया। वे हर तरह की संकीर्णता के विरुद्ध थे, वह चाहे राष्ट्रियता से जुड़ी हो, धार्मिक हो या सांप्रदायिक हो। प्रेमचंद भारत के अकेले ऐसे लेखक हैं, जिन्हें मानवताप्रेमी हिंदू और मुसलमान दोनों ही अपना लेखक मानते हैं। यही नहीं, वे हिंदी और उर्दू की एकता के प्रतीक हैं और प्रमाण भी।'⁸

साहित्यकार प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से नारीवर्ग की समस्याओं को भी उद्घाटित किया। वे पुरुष और नारी को समाज में एक समान स्थान देने के पक्ष में थे। उन्होंने नारीवर्ग के माध्यम से बालविवाह, अनमेल-विवाह, दहेज-प्रथा, पर्दा-प्रथा जैसी कुरीतियों को समाज के सामने लाने का पूर्ण प्रयास किया। उनके नारी पात्रों में—‘सुमन, धनिया, सीलिया, निर्मला, जालपा, बूढ़ी काकी, गंगी आदि हैं जो सतह से उठती हैं और उसी तरह जलकर प्रोत्साहन के अभाव में तलहट में गर्क होती हैं। ...अलबत्ता धनिया जैसा सशक्त नारी पात्र आज भी नारी लेखन में दुर्लभ है।’⁹

‘गोदान’ उपन्यास में धनिया नारी सशक्तिकरण का प्रतीक है। वह बार-बार नेताओं और जमींदारों पर कटाक्ष करती है, चूँकि धनिया ऐसे लोगों का सच बखूबी जानती है। धनिया गाँव के नेताओं का कच्चा चिट्ठा खोलते हुए कहती है, ‘हम बाकी चुकाने को पच्चीस रुपए माँगते थे, किसी ने न दिया। आज अँजुली-भर रुपए ठनाठन निकाल के दे दिए। मैं सब जानती हूँ। यहाँ तो बाँट-बखरा होने वाला था, सभी के मुँह मीठे होते। ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले। सूद-ब्याज, डेढ़ी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो।’¹⁰

प्रेमचंद समाज को यह शिक्षा देना चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को शोषण से मुक्त होने के लिए जागरूक होना होगा। उनके अनुसार साहित्य ही लोकमत को शिक्षित करने तथा सामाजिक विकास को आगे बढ़ाने की प्रभावशाली शक्ति है। उन्होंने दृढ़ता से कहा, ‘हम तो समाज का झंडा लेकर चलने वाले सिपाही हैं। साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का साधन जुटाना नहीं है—उसका दरजा इतना न गिराए। वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।’¹¹

आधुनिक युग में प्रेमचंद जैसा साहित्यकार कोई दूसरा नहीं हो पाया। उन्होंने अपने जिन विचारों से साहित्य के प्रांगण में जिस नींव को रखा, आज उसी भूमि पर रचनाकार नई फसल के बीज बो रहे हैं। यानि की प्रेमचंद जी ने हिंदी साहित्य को वह पृष्ठभूमि दी, जहाँ आज हिंदी साहित्य की फसल हिलोरे खा रही है, ‘प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य को जनता का साहित्य बना दिया। उसके निर्मल जीवन में जनवर्ग के प्रतिबिंब दिखाई देने लगे हैं। प्रेमचंद के पात्र जनवर्ग के प्रतिबिंब हैं। प्रेमचंद के विचार वर्गों को उठाने और मिलाने के भगीरथ प्रयत्न के द्योतक हैं। स्वयं प्रेमचंद जनता के प्रतीक हैं। उनका स्थूल देह अदृश्य हो गया है, पर उनका यह उज्ज्वल प्रतीक तब तक रहेगा जब तक हिंदी रहेगी और उसके बोलने वाले रहेंगे।’¹²

संदर्भ

1. गोदान, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद (1976), पृ० 94
2. रंगभूमि, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद (1965), पृ० 498
3. गबन, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद (1982), पृ० 148
4. प्रेमचंद, त्रिलोकीनारायण दीक्षित, साहित्य निकेतन, कानपुर (1952), पृ० 138
5. स्वदेश का संदेश, सं० अमृतराय, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद (1981), पृ० 21
6. प्रेमचंद रचनावली (खंड-13), सं० रामआनंद, जनवाणी प्रकाशन, दिल्ली (1996), पृ० 224

7. प्रेमचंद रचनावली (खंड-15), सं० रामआनंद, जनवाणी प्रकाशन, दिल्ली (1996), पृ० 286
8. प्रेमचंद के आयाम, सं० अरविंदाक्षन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली (2006), पृ० 213
9. वही, पृ० 28
10. गोदान, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद (1976), पृ० 97
11. तेवर (पत्रिका), सं० कमलनयन पाण्डेय, अनुज प्रिंटर्स, लखनऊ (2003), पृ० 42
12. प्रेमचंद और गोरकी, सं० शचीरानी गुर्दू, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1955), पृ० 80

□405, गुरुद्वारे के पीछे
दशमेश नगर, खरड़
जिला मोहाली (पंजाब) 140301
मो० 08054617915

कथाकार संजीव की कहानियों में जीवनमूल्य

सतेंद्रकुमार

डॉ० ज्योतिसिंह, शोध निर्देशिका

वरिष्ठ प्रवक्ता

सनातन धर्म महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर

संजीव हिंदी-कहानी साहित्य में दैदीप्यमान नक्षत्र की भाँति अपना स्थान निश्चित कर चुके हैं, जो अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में अपनी रोजी-रोटी के लिए संघर्षरत आमजन के जीवनमूल्यों को बड़ी सजगता व निर्भीकता के साथ अभिव्यक्त कर रहे हैं। सामाजिक, धार्मिक, रूढ़िवादी और जातिभेद तथा आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप हास होते जीवनमूल्यों का संजीव की कहानियों में विशद वर्णन मिलता है। धन की प्रभुता पर आधारित सामंती व्यवस्था, जमींदारी-प्रथा, पूँजीवादी सभ्यता के कर्णधारों के आदिवासियों, जनजातियों पर किए गए अत्याचारों और पीड़ित निम्नवर्गीय समाज एवं आमजन की विवशताओं का वे बड़ा ही मार्मिक व यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

संजीव के साहित्य में स्पष्ट दर्शित होता है कि राजनीतिक दासता से भी अधिक क्रूर व हृदय को झकझोर देनेवाला मानसिक व आर्थिक शोषण ही संघर्षशील वर्ग की कमर तोड़ देता है। संजीव समाज के अंतर्गत आनेवाली उस इकाई का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो समाज में होनेवाले प्रत्येक परिवर्तन, अन्याय, शोषण को अपने लेखन के द्वारा समाज के समुख प्रस्तुत करता है।

संजीव समाज में आमजन की समस्याओं के एक सफल द्रष्टा के साथ-साथ एक सफल स्रष्टा की महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। संजीव निम्नवर्गीय समाज के दुख-दर्द उन पर हो रहे अत्याचारों, आर्थिक, राजनीतिक शोषण आदि दैनिक जीवन में आनेवाली प्रत्येक समस्या का वर्णन करते हैं।

इस संबंध में डॉ० शिवकुमार मिश्र लिखते हैं—‘साहित्यकार स्रष्टा, रचयिता और प्रजापति इसी अर्थ में कहा गया है कि विधाता द्वारा रची गई सृष्टि से असंतुष्ट होकर वह उसके समानांतर एक नई सृष्टि की रचना कर सके। इस नई सृष्टि की रचना वह सामाजिक बदलाव के लिए प्रयासरत और संघर्षरत शक्तियों के साथ मिलजुल कर करता है और अपने ढंग से उन्हें अपने इच्छित लक्ष्य तक पहुँचने में मदद करता है।’

संजीव निम्न परिवेश से अपनी पहचान बनाते हैं तथा जीवन के प्रत्येक मोड़ पर संघर्ष करते हुए आगे बढ़ते हैं। वे आमजन के संघर्ष एवं व्यवस्था की भ्रष्टता के परिणामस्वरूप बदलते हुए जीवन-संदर्भों और मानवीय मूल्यों की जिस प्रकार पहचान करके उनको समाज के

सम्मुख प्रस्तुत करते हैं, वह अद्भुत है। निम्नवर्गीय लोगों के प्रति उच्चवर्ग की जो उपेक्षा एवं घृणा की भावना बनी रहती है, उसे संजीव मानवता के विरुद्ध घातक मानते हुए प्रकारांतर से उसका विरोध करते रहे हैं।

संजीव प्रयोगधर्मी रचनाकार के रूप में भ्रष्टाचार, घूसखोरी, सामंतवादी व्यवस्था, जातिवाद के स्वरूप और उसके विरोध में संघर्षरत आमजन को ही लेखन के केंद्र में रखते हैं। संजीव के साहित्य में दरकते मानवीय मूल्यों और हास होते रिश्तों का बड़े ही मनोवैज्ञानिक तरीके से वर्णन हुआ है। आधुनिकता का दंभ भरनेवाला समाज, जो चाँद पर अपनी पताका फहराने के पश्चात् दूसरे ग्रहों पर अपना परचम लहराने का विश्वास रखता है, किंतु विडंबना देखिए अपने ही भाइयों-बंधुओं और समाज में आर्थिक रूप से पिछड़े समाज को मात्र भुनगा ही समझ रहा है— 'पूरा विजयी अंदाज़ ओढ़कर वह फुटपाथ पर चलने लगा तो उसे अपना व्यक्तित्व गुरु से गुरुतर तथा क्रद विशाल से विशालतर होता हुआ और सड़क पर आते-जाते लोग भुनगों की तरह रोटी के गोल दायरे में नाचते हुए, भुनगे पेट की अंधी खोट में कुलबुलाते हुए भुनगे।'¹²

संजीव के साहित्य में स्पष्ट दृष्टिगत होता है कि किस प्रकार वर्तमान समय में एक उद्योगपति, साहुकार दावतें खाने-खिलाने के लिए लाखों रुपए खर्च कर देते हैं। तरह-तरह के समारोह आयोजित किए जाते हैं, जिसमें मंत्री महोदय को पार्टी चंदा मानपात्र के रूप में लाखों रुपए भेंट दी जाती है, किंतु यह नहीं देखा जाता कि एक मज़दूर का परिवार दिनभर मज़दूरी करके अपने परिवार का भरण-पोषण कर भी रहा है या नहीं। उसके बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं या फिर किसी चाय की दुकान पर बर्तन साफ़ करने के लिए विवश हैं—'नए प्लांट का उद्घाटन करने मंत्री महोदय आ रहे हैं। उनके अभिनंदन समारोह के लिए एक सुंदर सा मानपात्र चाहिए।'¹³

संजीव की कहानियों में मानवीय मूल्यों की गिरती हुई स्थिति व्यथित और व्याकुल कर देने वाली है। देश के गरीब और आमजन का भविष्य आज भी अंधकार में है। स्वतंत्रता के पश्चात्, भी समाज कुछ असामाजिक तत्त्वों की निगरानी में असहाय, मजलूमों, गरीबों का शोषण कर रहा है और समाज में पूँजीपति वर्ग वर्तमान में भी सर्वसमाज का प्रतिनिधित्व कर रहा है। इसी के साथ वह मानवीय मूल्यों के साथ खिलवाड़ कर रहा है, जिससे लगातार असंतुलन कि स्थिति बन रही है तथा समाज में विद्रोह की भावना पनपने लगी है—

'सुरजा का जन्म 15 अगस्त सन 1947 को हुआ था। उसके चिथड़े कपड़ों पर न जाइए उसके निचुड़े हुए चेहरे पर न जाइए, उसकी बेतरतीब उगी दाढ़ी की फुनगियों पर टगी उदासी और उसकी फटी चराना शिखिसयत पर न घिनाइए। भला अपने देश से भी कोई घिनाता है..... और फिर सुरजा से घिनाकर जाइएगा कहा? वह तो एक चलता-फिरता दस्तावेज़ है गाँव के तीस वर्षों के इतिहास, भूगोल, सभ्यता और संस्कृति का।'¹⁴

संजीव का लेखन समाज में दरकते रिश्ते और गिरते हुए मानवीय मूल्यों की कभी न ख़त्म होनेवाली गाथा है। ज़िंदगी और मौत के साए में झिलमिलाते जाने कितने दर्द, जाने कितने पड़ाव, क्षण-क्षण बदलते जीवनमूल्य और सिर्फ़ एक प्रश्न? क्या मनुष्य का जीवन इतना सस्ता हो गया कि क्षण-क्षण उसके मूल्य घटते और उसकी पीड़ा हृदयविदारक रूप लेती जा रही है।

‘एक सैलानी परिवार ऐसी ही एक गाड़ी पर सैर कर रहा था कि वहाँ के सफ़ेद रीछों ने गाड़ी का पीछा किया। जैसे ही वे करीब आए, परिवार के मालिक ने बंदूक दागी। एक रीछ मर गया और बाक़ी रीछ गाड़ी की गति का पीछा करना छोड़कर अपने साथी को खाने में जुट गए। गाड़ी तब आगे निकल गई। रीछों ने फिर उसका पीछा किया। एक बार फिर गोली चली। एक मरा और बाक़ी रीछ गाड़ी का पीछा करना छोड़ उसे खाने में लग गए। उन्हें तो मांस से मतलब था किसी का भी, क्योंकि वे भूखे थे और चेतनाशून्य भी।’⁵

संजीव आमजन के जीवन को विडंबनाओं का सागर बताते हैं। वहीं उनका दृष्टिकोण है कि मानवीय समाज अपनी तृष्णाएँ मिटाने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है। इसी क्रम में वह इतना चेतनाशून्य हो गया है कि वह अपने ही रिश्तों का शोषण कर रहा है तथा मानवीय मूल्यों को पूरी तरह दरकिनार करता हुआ आगे बढ़ता जा रहा है—‘बाँगवाँ परेशान। क्या करे वह? कचनार में कली नहीं, गुलमोहर में गुल नहीं। जो भी फूल खिलता, अमरबेलि के साए में दम तोड़ देता।’⁶

इस तरह बदलते हुए मानवीय मूल्यों में समाज से मनुष्य के प्रति मनुष्य का प्रेम, सदभावना, अहिंसा की प्रवृत्ति, भाईचारे की भावना, वैसुधैव कुटुंबकम, की भावना क्षीण होती जा रही है। इसका सबसे बड़ा खतरा निम्नवर्गीय समाज, भूमिहीन मज़दूरवर्ग को ही हो रहा है, जिसके कारण वह अपने व अपने परिवार को असुरक्षित महसूस कर रहा है—‘मुझे इस पूँजीवादी, प्रतिक्रियावादी, न्यायवादी न्यायव्यवस्था में विश्वास नहीं है। आम जनता भी जिसे न्याय के मंदिर कहती है, वह लुटेरे, पंडों और जूताचोरों से भरा पड़ा है। यहाँ आते ही चपरासी अहलमद, नाज़िर पेशकार, क़ानूनगो से लेकर काला लबादा ओढ़े वकील गीता और गंगाजल की कसमें खाकर झूठी गवाहियाँ देने वाले गवाह, ये तमाम कुत्ते नोचने-खसोटने लगते हैं। उसे ये लाल थाने, लाल जेलखाने और लाल कचहरियाँ...इन पर कितने का खून पुता है।’⁶

संजीव वर्तमान समय में जीवनमूल्यों के हास का प्रमुख कारण पूँजीपति समाज में बढ़ता भ्रष्टाचार को बताते हैं, जिसके कारण संपूर्ण सामाजिक ढाँचा चरमरा गया है। भ्रष्टाचार का आलम यह है कि एक मामूली चपरासी से लेकर अधिकारी तक भ्रष्ट हो चुके हैं। आम आदमी की समस्याएँ छोटे अधिकारी से लेकर बड़े सत्ताधारी तक सभी जानते हैं, लेकिन उनके अंदर मानवीय संवेदनाएँ इतनी शून्य हो चुकी हैं कि उन्हें निम्नवर्गीय समाज की दयनीय स्थिति पर हँसने तथा मूकदर्शक बने रहने के सिवाय दूसरा विकल्प नज़र नहीं आता है—‘चोरी और सीनाजोरी तो कोई तुमसे सीखे मुंशीजी। तुमने जो खाद भंडार से दस बोरा डाई, दस बोरा सल्फेट पंद्रह बोरा युरिया की हेराफेरी करके झिनकुआ को फँसाया है, उसका क्या जवाब है? अनमोल सिंह ने गाँठों कपड़े किंवटलो चीनी किसको बाँटी? तुम्हारे राम सुमेर यादव ने ब्लॉक का उन्नत बीज पिसवाकर बी०डी०ओ० साहब को नहीं पहुँचाया? और तुम सबों ने मिलकर अन्त्योदय के मुर्गा-मुर्गी, बकरी, ऊँट, इक्के, सिलाई मशीन ही नहीं, सुअर तक नहीं हजम कर डाले?’⁸

संजीव ने इस तरह बदलते मानवीय मूल्यों और निम्नवर्गीय आमजन की दीन-हीन दशा का वर्णन किया है।

‘लाखों के मालिक और केवल बड़े लोगों ओर बड़े होटलों में चाय स्वीकार करनेवाले भी अपने को ‘सर्वहारा’ और आम आदमी मानते हैं। अपनी ज़मीन से तो हम बेदखल होते ही

आए थे, अब तो अपने परिचायक शब्दों से भी हमें बेदखल होना पड़ रहा है। हमारे जीते-जी हमारी खाल खींचकर ओढ़ ली है और बस टुकुर-टुकुर ताकने की स्थिति रह गई है, हमारी।⁹

संजीव के लेखन से जो संदेश आमजन तक पहुँच रहा है, उससे संजीव युवाओं के लिए प्रेरणास्रोत बने हुए हैं। सजीव अपने साहित्य के माध्यम से यह सिद्ध करते हैं कि बदलते मानवीय मूल्यों व पूँजीपति वर्ग, जमींदारी वर्ग, साहुकार आदि को स्वार्थसिद्धि के लिए समाज में पर्याप्त साधन प्राप्त हो रहे हैं। वास्तव में संजीव का लेखन भारतीय आमजन आदिवासियों के संघर्ष व सपनों को साकार करने का लेखन है।

ये वन विभाग के भ्रष्टकर्मी और कुछ वैसे ही भ्रष्ट महाजन, अफ़सर, जोतदार और इनके गुर्गे यही हैं न आपके शांतिप्रिय प्रतिष्ठित नागरिक...? आखिर ये त्रस्त क्यों हैं, उन भूमिहीन चासा और आदिवासियों से? गाँव की दस लाइसेंसशुदा और बीस अवैध बंदूकें तो इन्हीं के पास हैं। गाँव की अस्सी प्रतिशत ज़मीन, तालाब, बाग-बगीचे भी इन्हीं के हैं। गाँव में जब भी कोई मारा-पीटा गया, तो वह उस दूसरे भूमिहीन तबक़े का रहा, बलात्कार भी हुए तो उन्हीं पर। सत्यन का कसूर सिर्फ़ यही है कि ये गूँगे अब बोलने भी लगे हैं, सरकार क्या नहीं चाहती कि वे बोलें? आज वे अपने अधिकारों, भूमि, जंगल मज़दूरी और अस्मत के लिए खड़े होने लगे हैं तनकर, सरकार क्या नहीं चाहती कि वे खड़े हों तनकर।¹⁰

कथाकार संजीव ने आदिवासियों, आमजन के जीवन से जुड़े प्रत्येक क्षण और उनके जीवन में आनेवाली विषम परिस्थितियों का सजीव वर्णन किया है। संजीव बेरोज़गारी, बेकारी और लाचारी की व्यथा को आमजन के संघर्ष से जोड़कर चल रहे हैं—‘मैंने देखा, वह बच्ची जल्दी-जल्दी काँधकर रखने लगी थी उल्टी को वापस कटोरे में, उसे फिर खाने के लिए। मैं एकबारगी काँप उठा। वे मटियाले घरोंदे, वे लोग वे बच्चे, पता नहीं अब कहाँ हैं। किस लोक में, मुझे लगता है, बीस साल से मैं उसी जगह खड़ा हूँ जैसा का तैसा उस थराने वाले दृश्य को देखते हुए।’¹¹

संजीव के लेखन में निराशा, भय, कमज़ोरी तथा ईर्ष्या का तनिक भी विलय नहीं है। उन्होंने वर्तमान भ्रष्ट शासनतंत्र, सामंतवादी व्यवस्था, पूँजीवादी व्यवस्था पर स्वतंत्र लेखनी चलाई है। यही कारण है कि संजीव के लेखन में अपेक्षाओं और आकांक्षाओं की समाहार-शक्ति है।

‘अकूत ताकत है हनुमान के पास, लेकिन जिसे अपनी ताकत का पता नहीं.....और उसका इस्तेमाल क्या हुआ? ...ज़िंदगी-भर राजा रामचंद्र की गुलामी करता रहा, जिन्होंने उसे रावण व मेघनाद के खिलाफ़ इस्तेमाल किया और रावण मेघनाद का कसूर.....? सिर्फ़ यह कि उन्होंने हरामखोर और ऐय्याश देवताओं और उनके पुरोहितों, ऋषियों को पकड़कर काम पर लगा दिया था....आप और आपके साथी भी हनुमान हैं। दुश्मनी रावण से हो सकती है, चलो माना मगर लंका के साधारण लोगों ने उनका क्या बिगाड़ा था, जो लंका में आग लगा दी और बेकसूर लोग परिंदे और जानवर तक जल मरे, बच्चों तक को नहीं बख़्शा?’¹²

वर्तमान में इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता है कि सामाजिक संरचना और सामाजिक व्यवस्था पनपते विरोधाभास तथा पूँजीपतियों, साहूकारों, नेताओं आदि की कथनी व करनी में अंतर पाया जाता है। इसी कारण आमजन का क़ानून-व्यवस्था से मोह भंग हुआ है। यही कारण है आज देश के लोकतंत्र में आक्रोश दिखाई दे रहा है।

वास्तव में यह कुंठा, आक्रोश आमजन में तब पनपती है, जब समाज में विद्यमान मानक इतने अप्रभावी और निष्क्रिय हो जाते हैं कि आमजन का इस व्यवस्था पर से विश्वास उठ जाता है। उनका अलगाव उन्हें इन मानदंडों को बदल डालने के लिए मजबूर कर देता है। उदारीकरण के इस दौर में समाज का यह वंचित वर्ग सबसे अधिक प्रभावित हुआ है।

संजीव समाज में संघर्षों एवं संघातों से टकराता एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसके स्वभाव में जैसी कोमलता और निर्मलता है, वैसी ही प्रांजलता भी। कभी-कभी उनके संघर्षों से ऐसा प्रतीत होता है जैसे साहित्य ही उनका शरीर है, समाजवाद उनके प्राण और आदिवासी आमजन एवं निम्नवर्ग का प्रतिनिधित्व करना उनका कर्तव्य हम कह सकते हैं, इंसानियत से भरपूर महामानव।

संजीव ने संघर्षशील आमजन की सामर्थ्य को समझा तथा समष्टि के हित के लिए उसकी भूमिका को महत्वपूर्ण स्वीकार करते हुए समाज-निर्माण व उन्नति में उनके महत्वपूर्ण सहयोग को स्वीकार किया।

संदर्भ

1. साहित्य और सामाजिक संदर्भ, डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० 85
2. कहानी बागी, संजीव की कथा-यात्रा, प्रथम पड़ाव, पृ० 21
3. कहानी बागी, संजीव की कथा-यात्रा, प्रथम पड़ाव, पृ० 21
4. कहानी तीस साल का सफ़रनामा, संजीव की कथा-यात्रा, प्रथम पड़ाव, पृ० 34
5. कहानी भूखे रीछ, संजीव की कथा-यात्रा, प्रथम पड़ाव, पृ० 105
6. कहानी दास्तान ए चमन, संजीव की कथा-यात्रा, प्रथम पड़ाव, पृ० 111
7. कहानी अपराध, संजीव की कथा-यात्रा, प्रथम पड़ाव, पृ० 88
8. कहानी प्याज़ के छिलके, संजीव की कथा-यात्रा, प्रथम पड़ाव, पृ० 146
9. कहानी चाकरी, संजीव की कथा-यात्रा, प्रथम पड़ाव, पृ० 71-72
10. आपरेशन जोनाकी, संजीव की कथा-यात्रा, प्रथम पड़ाव, पृ० 308-309
11. कहानी महामारी, संजीव की कथा-यात्रा, प्रथम पड़ाव, पृ० 240
12. कहानी भूमिका, संजीव की कथा-यात्रा,, प्रथम पड़ाव, पृ० 289

□ पुत्र रतनलाल
ग्राम दलीपपुरा, पोस्ट चरथावल
ज़िला मुजफ़्फ़रनगर (उ०प्र०)

उदयप्रकाश कृत कहानी-संग्रह 'पॉल गोमरा का स्कूटर' की अंतर्वस्तु एकता जैन

आधुनिकयुग गद्य का युग है और इस युग में गद्य विभिन्न विधाओं के रूप में निरंतर विकसित होता रहा है। चूँकि कहानी सृजनात्मक साहित्य की लघुतम विधा है तथापि लेखक कहानी में जीवन की जटिलताओं को आँकने की भरपूर कोशिश करता है। वह कहानी को रचनाकर्म के साथ-साथ जीवन से जुड़ा मानकर एक निरंतरता में देखने की चेष्टा करता है। वह बदलती हुई प्रवृत्तियों और प्रक्रियाओं को कहानी का बाधक नहीं मानता, अपितु उसका मानना है कि अनुभव की यही संश्लिष्टता रचना में आकर अपना अर्थ खोलती है, जिसे हम अंतर्वस्तु कहते हैं। अंतर्वस्तु से अभिप्राय है—'अंदर की वस्तु'।¹ दूसरे शब्दों में कहानी के अंतर में व्याप्त जीवन-मूल्य और जीवन-दृष्टियाँ, जोकि बाह्य जीवन-जगत का ही एक मनोवैज्ञानिक रूप हैं, वही कहानी की अंतर्वस्तु हैं। लेखक की अंतर्तत्त्व-व्यवस्था का एक उद्दीप्त रूप ही कहानी का वस्तु-तत्त्व है। गजानन माधव मुक्तिबोध के अनुसार, 'कला के वस्तु-तत्त्व के अंतर्तत्त्व हैं, जो बाह्य जीवन-जगत् के आत्मसात् किए हुए जीवनमूल्यों द्वारा संयुक्त होकर मन की आँखों के सामने आलोकित और तरंगायित हो उठते हैं, और जिनके बारे में यह प्रतीत होता रहता है कि वे अभिव्यक्ति के लिए, अर्थात् कलात्मक बाह्यीकरण के लिए किसी-न-किसी प्रकार से महत्त्वपूर्ण हैं। इस महत्त्व-भावना के अभाव में कलाभिव्यक्ति असंभव है।'²

वस्तुतः 'वस्तु' किसी भी रचनाकार की वह भीतरी सोच है, जिस पर उसकी कृति का रूपाकार निर्मित होता है। क्योंकि साहित्यकार समाज का जागरूक और संवेदनशील प्राणी होता है, अतः उसका ऐंद्रियबोध उसे विभिन्न सामाजिक समस्याओं और प्रश्नों पर सोचने के लिए मजबूर करता है। इन्हीं अनुभवों से उसके भीतर विश्वासों की एक प्रक्रिया प्रारंभ होती है, जो अपनी अभिव्यक्ति के लिए छटपटाने लगती है। वास्तव में रचना की अंतर्वस्तु लेखक के इन्हीं विचारों का समुच्चय है, जो अभिव्यक्त होने पर कथानक, पात्र, परिवेश और भाषा के माध्यम से रचना के रेशे-रेशे में पिरोया जाता है। अतः किसी भी साहित्यिक विधा के समग्र विवेचन-विश्लेषण के लिए उसकी वस्तु को समझना अनिवार्य होता है, क्योंकि वस्तु के परिष्करण के लिए अनुभव-समृद्धि आवश्यक है। इतना ही नहीं, वस्तु को समझकर ही हम रचनाकार की उस चेतना तक आसानी से पहुँच सकते हैं, जिसने उसे अपने प्रवेश से संबद्ध किया था।

साहित्य की अन्य विधाओं में कहानी की अंतर्वस्तु का विश्लेषण इसलिए विशिष्टता

रखता है, क्योंकि वह कहानी में जीवन के किसी एक अंग में पनपी विकृतियों, जटिलताओं, विद्रूपताओं से अनायास ही जुड़ जाता है। उसका यही सामाजिकबोध उसमें तत्कालीन समाज से जुड़े अनेक बिंदुओं को आधार बनाकर कहानी के माध्यम से जीवन का पुनः सृजन करवाता है। इसका कारण यह है कि कहानीकार यथार्थ की कटुता का निर्वाह करने में सक्षम है। वह पलायन या मुक्ति नहीं, अपनी पूरी जिजीविषा के साथ संघर्ष चाहता है, जिससे व्यक्ति के आचरण एवं उसके अंतःसंघर्ष को व्यापक अनुभूति के धरातल पर प्रतिष्ठा प्राप्त हो सके। समकालीन लेखक उदयप्रकाश के मतानुसार, 'कहानी में एक साथ ही कहानी, संस्मरण, रिपोर्टाज, सर्वेक्षण, सूचना, डायरी, ग्राफ़िक आदि के तत्त्व भी मौजूद होंगे, इसलिए कि अब वे तत्त्व हमारे रोज़मर्रा की ज़िंदगी और अनुभव का हिस्सा हो चुके हैं।'³ स्पष्टतः यहाँ उदयप्रकाश कहानी को ज़िंदगी से जोड़ते हैं और यह कहना चाहते हैं कि कहानी का उपजीव्य अब हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी और उसकी अनुभूति है, क्योंकि ये ज़िंदगी का हिस्सा बन चुके हैं। इसलिए उनकी कहानियों में जो चित्र प्रस्तुत होता है, वह जीवन-जगत का चित्र है, आज के मनुष्य का चित्र है। इसमें यथार्थ भी है और जीवंतता भी।

उदयप्रकाश एक चर्चित कवि, कथाकार, पत्रकार और फ़िल्मकार हैं। उनकी कुछ कृतियों के अंग्रेज़ी, जर्मन, जापानी एवं अन्य अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं में अनुवाद भी उपलब्ध हैं। लगभग समस्त भारतीय भाषाओं में रचनाएँ अनुदित हैं। उदयप्रकाश की कई कहानियों के नाट्यरूपांतर और सफल मंचन हुए हैं। इनके पाँच कविता-संग्रह, सात कहानी-संग्रह, एक उपन्यास तथा निबंध और आलोचना-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'उपरांत' और 'मोहनदास' के नाम से इनकी कहानियों पर फ़ीचर फ़िल्मों भी बन चुकी हैं। उदयप्रकाश स्वयं भी कई टी०वी० धारावाहिकों के निर्देशक-पटकथाकार रहे हैं तथा भारतीय कृषि का इतिहास पर महत्त्वपूर्ण पंद्रह कड़ियों का सीरियल 'कृषि-कथा' राष्ट्रीय चैनल के लिए निर्देशित कर चुके हैं। उन्हें भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार, ओमप्रकाश साहित्य सम्मान (1982), श्रीकांत वर्मा स्मृति सम्मान (1990), साहित्य अकादमी पुरस्कार (2010) इत्यादि पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।

'पॉल गोमरा का स्कूटर' में चार कहानियाँ संकलित हैं—'छतरियाँ', 'पॉल गोमरा का स्कूटर', 'भाई का सत्याग्रह', 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड'। इस कहानी-संग्रह में तत्कालीन परिवेश की सच्चाइयों को उजागर किया गया है। लेखक इसमें आम आदमी की पीड़ा से रू-ब-रू ही नहीं हुआ, अपितु उसे भोगा भी है। पंकजसिंह का यह मत अवलोकनीय है—'उदय का अप्रतिम निजीपन उन चरित्रों और प्रसंगों के साथ आता है, जो स्वप्न, लोकजीवन के रंग, यथार्थ, इतिहास, मिथकों और संस्कृतियों में आवाज़ करते हुए हमारी स्मृति और संवेदना में अपनी रलमल उपस्थिति महसूस कराने लगे हैं।... रचना का यह व्यक्तिगत स्मृति का हिस्सा बन जाना ही सामूहिक स्मृति में उतरकर घर करने की शुरुआत हुआ करता है।'⁴

वस्तुतः यह कहानी-संग्रह समय के यथार्थ की प्रस्तुति है। शासन-तंत्र तथा बढ़ते पूँजीवाद के कुप्रभाव को अत्यंत यथार्थ रूप में प्रस्तुत करना कहानीकार का उद्देश्य है। इसी के साथ कहानीकार ऐसे तथ्यों से भी अवगत कराता है कि भारत में अपसंस्कृति का विकास कैसे हुआ, सामाजिक स्तर क्यों बदलें, जीवनमूल्यों में संक्रमण कैसे उत्पन्न हुआ, अनेक नए जीवनमूल्यों ने क्यों स्वरूप पाया, उपभोक्तावादी संस्कृति का कैसे विस्तार हुआ और किस तरह वैश्विक चेतना

ने जन-मन को प्रभावित कर मानवीय संवेदना का स्वरूप परिवर्तित किया। कुल मिलाकर लेखक राजनीति के छल-छद्म पर करारा प्रहार करता है। उक्त बिंदु ही 'पॉल गोमरा का स्कूटर' की अंतर्वस्तु निर्धारित करते हैं, जिनका अध्ययन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है।

1. भूमंडलीकरण के सांस्कृतिक संकट :

नवें दशक से ही आधुनिकता के बाद 'उत्तर-आधुनिक दर्शन' ने अपने पैर जमाने शुरू कर दिए थे और अंतिम दशक के प्रारंभिक काल में ही इस दर्शन का एक प्रमुख हथियार 'भूमंडलीकरण' के रूप में सामने आया, जिसने भारत में संस्कृति के नाम पर 'बाजार की संस्कृति' व 'उपभोक्तावाद की संस्कृति' को जन्म दिया। यह संस्कृति मनुष्य को सदैव एक उपभोक्ता की दृष्टि से देखती है, जिसका दर्शन है—येन-केन-प्रकरेण लाभ कमाना। इस नव-पूँजीवादी संस्कृति ने भारत के बाजार में उपभोक्ता को रिझाने एवं अपना माल बेचने के लिए सभी प्रकार के हथकंडों का प्रयोग किया। यद्यपि आर्थिक लाभ कमाने के लिए महिलाओं का भी प्रयोग किया गया। प्रभा खेतान का मत द्रष्टव्य है कि—'भूमंडलीकरण जीवन के हर कोने में अस्तित्व के हर रूप का वस्तुकरण करता है।⁵ वास्तव में भूमंडलीकरण का आधार है—बहुदेशी कंपनियों का फैलाव, समूचे व्यापार का अधिग्रहण, निजी घरानों की कंपनियों का विकास, वैयक्तिक हितों का पोषण।

फलस्वरूप पूँजी राष्ट्र या साधारण मानव की न होकर व्यक्तिगत या निजी घरानों के हाथों में चली गई। लेकिन इस निजीकरण के कारण देश की प्रभुसत्ता को बहुराष्ट्रीय कंपनियों से खतरा उत्पन्न हो सकता है। इसी ओर संकेत करते हुए उदयप्रकाश स्पष्टतः लिखते हैं कि 'फ्रांसीसी कंपनी और ईस्ट इंडिया कंपनी में सबसे मुख्य अंतर यह था कि जहाँ फ्रांसीसी कंपनी सरकारी या पब्लिक सेक्टर की थी, वहाँ ईस्ट इंडिया कंपनी एक प्राइवेट कंपनी थी। इसीलिए उसके अफसर और मुलाजिम ज्यादा-से-ज्यादा मुनाफ़ा कमाने के लिए ज्यादा जी-जान लगाते थे। यानी आज से ढाई सौ साल पहले भी, एक विदेशी सार्वजनिक कंपनी इंग्लैंड की एक प्राइवेट कंपनी से हार रही थी।⁶

अतः कहानीकार इस बात को लेकर चिंतित दिखाई देता है कि जिस प्रकार आज से ढाई सौ साल पहले एक प्राइवेट कंपनी ने अपने माल की बिक्री के लिए भारत को अपना गुलाम बनाया, उसी प्रकार आज के समय में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को बिना सोच-विचार किए व्यापार करने की छूट देने का सीधा अर्थ है—पुनः देश को विकसित देशों की आर्थिक गुलामी के कुएँ में धकेलना। इतना ही नहीं, कहानी की अंतर्वस्तु हमें इस तथ्य से अवगत भी करवाती है कि किस प्रकार उदारवाद के पक्षधर ये तथाकथित विकसित देश अपने मुनाफ़े के लिए हज़ारों लोगों को मौत के घाट उतार सकते हैं, उतारते हैं, इसी बीच खाड़ी युद्ध हुआ और आपने टीवी सेट पर पॉल गोमरा का सीएनएन चैनल पर मीर अनीस के अवधी में लिखे गए मर्सिया का वह भयावह दृश्य देखा, जिसमें अरब के रेगिस्तानी भूखंड में तीन हज़ार से ज्यादा मनुष्यों का नरसंहार तेल के कुएँ की खातिर किया जा रहा था। सभ्यता नई मिथक गाथाएँ भविष्य के लिए गढ़ रही थी। यूरोप एक बार फिर उठकर खड़ा हो रहा था। दुनिया एकध्रुवी हो गई थी।⁷

निःसंदेह, उदयप्रकाश कहानी के माध्यम से भूमंडलीकरण से होने वाले ख़तरे से हमें अवगत करवाते हुए बताते हैं कि कैसे तथाकथित विकसित देश दूसरे देशों से मुनाफ़ा कमाने

के लिए हज़ारों लोगों को मौत के घाट उतारते हैं।

भूमंडलीकरण का दूसरा आधार था—टेक्नॉलॉजी का विकास। वस्तुतः टेक्नॉलॉजी के प्रसार से ही भूमंडलीकरण ने स्वरूप पाया और उत्तर आधुनिक दर्शन का प्रमुख औज़ार टेक्नॉलॉजी निरंतर प्रभावशाली बनता गया और उसने मनुष्य को विस्थापित-सा कर दिया। इस प्रकार 'तकनीकी और संचार-क्रांति ने विश्व को समेटकर एक विश्वग्राम यानी 'ग्लोबल विलेज' में बदल दिया है।⁸ अतः कहानीकार बदलते परिवेश के प्रति जागरूक कर रहा है। यह वह युग है, जिसका टेक्नॉलॉजी पर आधिपत्य होगा, उसकी विजय होगी। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहानीकार कहानी के माध्यम से लिखता है कि—'उनके जीवन में मशीन युग की, पेट्रोल-ईंधन से चलने वाली यह पहली टेक्नॉलॉजी थी। इस टेक्नॉलॉजी पर स्वामित्व और नियंत्रण के बाद उन्हें राज्य परिवहन की यातनादायक, ठसाठस भरी बस से मुक्ति मिल रही थी, अपनी कविताओं की पंक्तियाँ दोहराते उन्हें इस स्कूटर की चमकीली, काली गद्दीदार सीट पर होना था।⁹ इस प्रकार उदयप्रकाश भूमंडलीकरण के कारण बदलते परिवेश के प्रति चेतनता को कहानी के पात्र 'पॉल गोमरा' के माध्यम से व्यक्त कर रहे हैं और कहना चाहते हैं कि समकालीन युग में टेक्नीक का प्रसार हो रहा है अर्थात् यह युग टेक्नीक का युग बन गया है।

दरअसल, आज की कहानी में भूमंडलीकरण की जो समस्याएँ और चुनौतियाँ सामने आ रही हैं, उसमें सब-कुछ बदल रहा है। बाज़ार सीधे हमारे घर में प्रवेश कर रहा है और हम इसे रोक नहीं पा रहे हैं। इस बिंदु को उदयप्रकाश कहानी के माध्यम से व्यक्त करते हैं—'उनके घर का दरवाज़ा उनकी पत्नी स्नेहलता सक्सेना ने नहीं, मशहूर मॉडल मेहर जेस्सिया ने खोला था। रोलर और कंडीशनर से घुँघराले हो गए बाल, जिन्हें ड्रायर से सुखाकर चमकीला बना दिया गया था, भूरे और कल्थई होकर पंखे की हवा में काँप रहे थे। साँवला रंग बदलकर हलका हरा और आसमानी हो गया था। पलकों में सुनहरा शैडो। शरीर में मॉर्टियल की प्रसिद्ध यू डि कोलन शैटिली की खुशबू आ रही थी। उसने हलके गुलाबी और सलेटी रंग की जो लिंगरी पहन रखी, उसकी मूल डिज़ाइन की परिकल्पना पेरिस के फ़ैशन डिज़ाइनर रोम्यॉ कातिएँ ने की थी।¹⁰ अतः उदयप्रकाश कहानी के ज़रिए स्पष्ट करते हैं कि विज्ञापन कैसे घरेलू महिला को भी एक मॉडल के रूप में रूपांतरित कर देता है। क्योंकि इन विज्ञापनों के ज़रिए मॉडलों द्वारा सुंदरता के ऐसे मानक गढ़े जाते हैं, जिन्हें देखकर बहुसंख्यक युवतियाँ हीन भावना व कुंठा का शिकार हो जाती हैं और अपने-आपको गोरा व दुबली-पतली बनाने लगती हैं। इस तरह उपभोक्तावादी संस्कृति सुबह से शाम तक विज्ञापन के माध्यम से यह समझाने में लगी हुई है कि सुंदर बनने के लिए कौन-सी क्रीम, पाउडर, लिपस्टिक, कपड़े और परफ्यूम इस्तेमाल किया जाए। अतः भूमंडलीकरण के कारण बाज़ार जब सीधे घर में घुसता है तो वह हमारी संस्कृति को छिन्न-भिन्न करता है।

लेकिन यह ध्यातव्य है कि भूमंडलीकरण और बाज़ार एक-दूसरे से गुंथे हुए हैं। ये पूँजी भी निवेश करते हैं और समस्याएँ भी पैदा करते हैं। इस बाज़ार की ताकतें बहुत चालाक हैं और वे लिब्रेशन को भी अपने फ़ायदे के लिए भुनाने लगती हैं। जैसे—आज की नारी, मुक्त नारी सरीखे विज्ञापन यही दर्शा रहे हैं। इस पर टिप्पणी करते हुए कहानीकार लिखता है—'इस विज्ञापन की राष्ट्रीय स्तर पर मीडिया विशेषज्ञों और अन्य बौद्धिकों के बीच बहुत चर्चा हुई थी। लेकिन इस विज्ञापन को बनाने वाली 'एड कंपनी' ने दावा किया था कि आशा मिश्रा के अंडरवियर

से निकलती हुई बियर की बोतल का शॉट और छाती में बियर उलटते ही आशा मिश्रा के स्तनों का झाग में रूपांतरण इतना प्रभावशाली है कि इससे इस नए ब्रांड की मार्केटिंग का टेकऑफ़ ही ज़बरदस्त होगा। इस विज्ञापन के प्रिव्यू सर्वे के दौरान कंपनी ने पाया था कि बीस सेकंड के इस विज्ञापन को देखते हुए हर दस में से सात पुरुषों ने, जिनका आयुवर्ग 15 से 60 वर्ष का था, 'मास्टरबेट' की इच्छा का प्रभाव स्वीकार किया था।...आशा मिश्रा पिघलकर बियर का फेन बन गई थी और अपने समय की सामूहिक चेतना में चुपचाप प्रवाहित हो गई थी... और 'द ब्लैक हार्स' बियर अनुमानित लक्ष्य से 27 प्रतिशत ज्यादा बिक्री दर्ज करा गई थी।¹¹

अतः लेखक स्पष्ट करता है कि बाज़ार बहुधा इस प्रकार से विज्ञापनों को प्रसारित करता है, जिससे दर्शकों पर कामुक प्रभाव पड़ता है और उपभोक्ता का ध्यान इस भूमंडलीय अर्थव्यवस्था में माल की जाति और क्रिस्म से हटकर केवल माल के ब्रांड में ही केंद्रित हो जाता है, जिससे बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अधिकाधिक मुनाफ़ा प्राप्त करती हैं। ऐसी लालसा से यह कंपनियाँ हर चीज़ को पैकेज और ब्रांड में परिवर्तित करती हैं। यह अपसंस्कृति है, जिससे अनेक सामाजिक समस्याएँ सामने आ रही हैं तथा समाज में विशृंखलता उत्पन्न हो रही है। वहीं दूसरी ओर इस बाज़ारवाद अपसंस्कृति में साहित्यकारों और साहित्य की कीमत शून्य के समान है। यहाँ ब्रांड के नाम पर चलने वाली एक वस्तु की कीमत भी हजारों में है, जोकि कम समय में तैयार होती है, वहीं दूसरी ओर इस बाज़ार में कठिन परिश्रम की कोई जगह नहीं। इस तथ्य को लेखक 'भाई का सत्याग्रह' कहानी के माध्यम से व्यक्त करता है—'तो यह उसकी सृजनात्मक लेखन और बीस साल के दौरान लिखी गई किताबों की कमाई थी। उसका पारिश्रमिक। इस व्यावसायिक, बाज़ारू और ग्लोबलाइजेशन के युग में एक लेखक के रूप में उसका दाम सिर्फ़ इतना ही था। इतने पैसे में दिल्ली का मध्यवर्गीय नागरिक अपने संडास का दरवाज़ा भी नहीं खरीद सकता था।... वुडलैंड के जूते चौदह-पंद्रह सौ में मिलते थे। चार किताबों की पाँच साल की रायल्टी कुल मिलाकर एक हजार रुपए।'¹²

लेखक का कहना है कि इस बाज़ारवाद में श्रम का कोई मोल नहीं है। उसे इन किताबों को लिखने के लिए अपनी जिंदगी के पाँच साल देने पर भी उन किताबों का मूल्य सिर्फ़ हजार रुपये निर्धारित हुआ, क्योंकि उनके साथ किसी ब्रांड का नाम नहीं जुड़ा था।

उदयप्रकाश की विशेषता इस बात में निहित है कि वह अपनी कहानी के माध्यम से जहाँ एक ओर भूमंडलीकरण के फलस्वरूप नव-उपनिवेशवाद के ख़तरे को उजागर करते हैं, वहीं दूसरी ओर इन साम्राज्यवादी ताक़तों के इतिहास की जाँच-पड़ताल करते हुए लिखते हैं, 'बैंक, शेयर बाज़ार और वाणिज्य पूँजी का विकास हो चुका था। दुनिया भर में नए-नए बाज़ार-बन रहे थे। पूँजी, माल और मुनाफ़े के लिए कंपनियाँ और राष्ट्र-राज्य एक-दूसरे का गला काट रहे थे, धरती और समुद्र में लड़ाइयाँ जारी थीं...'¹³

उदयप्रकाश इस बात की तरफ़ संकेत करते हैं कि यह वह समय था, जब बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पास अत्यधिक मात्र में माल तैयार था, पर उन्हें बेचने के लिए कोई स्थान नहीं था। इसलिए इन कंपनियों ने भारत में अपना वाणिज्य स्थापित किया, जिससे अधिक-से-अधिक माल की बिक्री कर उस मुनाफ़े को अपने देश में ले जाया जाए। इसी कारण उन कंपनियों में एक-दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ शुरू हो गई और उन्होंने धरती और समुद्र के ज़रिए अपने

व्यापार को आगे बढ़ाया।

परंतु नवउपनिवेशवाद की कार्य-शैली प्रत्यक्ष साम्राज्यवाद से सर्वथा भिन्न है। इसके अंतर्गत कोई भी देश किसी दूसरे देश की राजनीतिक सत्ता पर प्रत्यक्ष रूप में नियंत्रण नहीं करता, बल्कि उसे अपने बाज़ार के रूप में परिवर्तित करता चलता है। आज के भारत की इसी सच्चाई की ओर संकेत करते हुए विष्णु नागर लिखते हैं—‘भारत एक बाज़ार है। यहाँ कुछ भी बेचा जा सकता और कुछ भी खरीदा जा सकता है। ज़हरीले कचरे से लेकर हथियार तक, भावनाओं से लेकर विचार तक, विनम्रता से लेकर अक्खड़पन तक। भारत एक बाज़ार है, जहाँ वैसे तो अब भी एक सरकार होती है, मगर वह भी यही सोचती है कि इस देश में इंसान नहीं बसते, सिर्फ़ ख़रीददार बसते हैं और जो ख़रीददार नहीं हैं, वे इंसान भी कैसे हो सकते हैं और जो इंसान नहीं हों, वे भला भारत के नागरिक भी कैसे माने जा सकते हैं।’¹⁴ इसी तथ्य को उदयप्रकाश अपनी कहानी के माध्यम से व्यक्त करते हैं—‘केंद्र सरकार का वित्तमंत्री चार-पाँच साल से बिना खाए, बिना पिए, बिना सोए, बिना जागे और बिना सोचे क़र्जों और विदेशी कंपनियों के तमाम अनुबंधों पर धड़ाधाड़ दस्तख़त करता चला आ रहा था। देश के सभी बैंकों का रुपया निकालकर एक विशाल सूटकेस में भर दिया गया था, जो समूचे आकाश पर टँगा था। सूरज भविष्य के साथ उस सूटकेस के पीछे टँक गया था और लोग अँधेरे में एक-दूसरे को टटोलते, रास्ते पूछते, गड्डों और खाइयों में गिर रहे थे। एक भयावह रेखा थी, जिसके नीचे पहले हर सौ में से छत्तीस लोग गिरे हुए थे। अब यह संख्या बढ़कर बयालीस हो गई थी।’¹⁵

लेखक का कहना है कि इस समय विदेशी कंपनियाँ देश में दखल दे रही हैं, जिससे आर्थिक तंत्र और राजनीतिक तंत्र उसके हाथों की कठपुतली बनता जा रहा है। देश की तमाम राजनीतिक-सामाजिक कार्यप्रणालियों में जो घटित हो रहा है, उससे आम इंसान की क़द्र-क़ीमत कम होती जा रही है तथा इन्हीं विदेशी कंपनियों की वजह से भारत की प्रभुसत्ता को ख़तरा बढ़ता जा रहा है।

अतः उदयप्रकाश की कहानियों के इस अंतर-विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी कहानियों में भूमंडलीकरण के कारण भारत जैसे विकासशील देशों में विदेशी कंपनियों के बढ़ते हस्तक्षेप के कारण उत्पन्न होनेवाले संकटों के प्रति पाठक को अवगत करवाया गया है।

2. उपभोक्तावादी संस्कृति का बढ़ता वर्चस्व

भारत एक ऐसा देश है, जहाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र एवं कृत्य में धर्म रचा बसा है। जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने लिखा है, ‘यदि कोई मुझसे पूछे कि इस आकाश के नीचे वह स्थान कौनसा है, जहाँ मानव-मानस का अपूर्व, अलौकिक और पूर्ण विकास हुआ है, प्लेटो और कांट के भक्त भी जिसकी सराहना किए बिना नहीं रहेंगे, तो मैं असंदिग्ध रूप से कहूँगा कि वह स्थान भारत है।’¹⁶ परंतु भूमंडलीकरण के पश्चात् भारत की एक नई पहचान स्थापित हुई है। यह नई पहचान उसकी आध्यात्मिक पहचान से सर्वथा विपरीत है। भूमंडलीकृत भारत का समाज एक ऐसे उपभोक्तावादी समाज के रूप में विकसित हो रहा है, जहाँ बाज़ारवाद भारतीयों की एक नई जीवन-शैली बनकर उभरा है। आज भारत का मध्यवर्ग एक नई दुनिया में प्रवेश कर चुका है, जहाँ उपभोग का संबंध केवल उसकी आवश्यकता एवं संतुष्टि से नहीं रह गया है बल्कि यह

व्यक्ति की पहचान से भी संबंधित हो गया है, जिसका अवलोकन उदयप्रकाश 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी के माध्यम से करते हैं—'लोगबाग मारुति, एस्टीम सिएलो, जेन, सियेरा, सुमो, होंडा, कावासाकी, सुजुकी और पता नहीं किन-किन गाड़ियों में चलने लगे थे; और पॉल गोमरा को साइकिल तक चलानी नहीं आती थी...समय के पीछे-पीछे किसी तरह रेंगने-घिसटने वाले कनखजूरे, गोजरा, केंचुआ या घोंघा बनते जा रहे थे।... उस रात लगभग दो बजकर दस मिनट पर स्कूटर खरीदने का निर्णय कुछ ही देर पहले रामगोपाल सक्सेना से रूपांतरित होने वाले हिंदी कवि पॉल गोमरा द्वारा लिया गया।'¹⁷

अतः लेखक का कहना है कि बाज़ार व्यक्ति को इतना अभिभूत कर लेता है कि पॉल गोमरा जैसे साधारण व्यक्ति, जिन्हें कि साइकिल तक चलाना नहीं आता, वे भी स्कूटर खरीद लेते हैं तथा इस मशीनरी को खरीदने के लिए अपने प्रॉविडेंट फंड की राशि, जो कि इनके भविष्य की सुरक्षा थी, उसे इस उपभोग की वस्तु पर खर्च कर देते हैं।

इस उपभोक्तावादी संस्कृति का विस्तार सूचना-क्रांति के माध्यम से हुआ। क्योंकि संचार का पहला उद्देश्य है—नई से नई बातों की खोज करना और उन्हें व्यापक स्तर पर संप्रेषित करना और दूसरा उद्देश्य नक़ल की संस्कृति को बढ़ावा देना। मगर उपभोक्ता संस्कृति का अर्थ केवल भोग नहीं है, क्योंकि जनता ने तो हमेशा ही उपभोग किया है। औद्योगिक व्यवस्था के दौरान समाज में जो चीज़ें निर्मित हुईं, उन्हें खरीदा-बेचा गया और उनका उपभोग किया गया।

उपभोग एक प्रकार की आत्माभिव्यक्ति और आदमी की पहचान का माध्यम है। 'उपभोक्ता वस्तुओं की छोटी-छोटी भिन्नताओं, उनके रूप-रंग और आकार में ज़रा सी हेरा-फेरी बाज़ार में उनकी माँग और क्रीमत को प्रभावित करती है। इसे ही ब्रांड का विकास कहा जाता है।'¹⁸ वस्तुतः उपभोक्तावादी संस्कृति का सृजन विज्ञापन के माध्यम से होता है, क्योंकि विज्ञापन ही उपभोक्तावाद का सबसे सशक्त माध्यम है। 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी के माध्यम से उदयप्रकाश आधुनिक जीवन में बाज़ार के प्रवेश को उजागर करते हुए लिखते हैं—'बाज़ार अब सभी चीज़ों का विकल्प बन चुका था। शहर, गाँव, क़स्बे बड़ी तेज़ी से बाज़ार में बदल रहे थे। हर घर दुकान में तब्दील हो रहा था। बाप अपने बेटे को इसलिए घर से निकालकर भगा रहा था, कि वह बाज़ार में कहीं फिट नहीं बैठ रहा था।... औरत बिकाऊ और मर्द कमाऊ का महान् चकाचक युग आ गया था।'¹⁹

इससे कोई संदेह नहीं कि आज आदमी उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव से अनेक विकृतियों का शिकार हुआ है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने शहरी मध्यवर्ग को भीतर तक झकझोरा है और उसकी समूची जीवन-प्रक्रिया को अस्त-व्यस्त कर दिया है। आज रिशतों में पहले जैसी ऊष्मता नहीं रही। मानवीय रिशतों का आर्थिकीकरण हुआ है। आज पैसा ही सर्वमान्य हो गया है। इसी उपभोक्तावादी मानसिकता के प्रसार के चलते हमारे अर्जित संस्कारों, संस्कृति और मूल्यों का विघटन हुआ। इस तथ्य की पुष्टि लेखक अपनी कहानी 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड़' के माध्यम से करता है—'मोना, दुनिया तेज़ी से बदल रही है। यूरोप में औद्योगिक क्रांति हो गई है। ईस्ट इंडिया कंपनी सारी इंडिया को अपने कब्जे में करेगी। तुम ज़रा-सा प्रैक्टिकल हो जाओ, तो हम ऐश करेंगे।'²⁰

वस्तुतः रिशतों के मायने बदल रहे हैं, मूल्य परिवर्तित होते जा रहे हैं। पिता अपनी ही

पुत्री को पैसा कमाने की ललक में वेश्या बनाने पर उतारू हो रहा है। केवल इसीलिए कि वह बाज़ार की दूसरी वस्तुओं का उपभोग कर सके। इस प्रकार आलोच्य कहानी-संग्रह की कहानियों में उपभोक्तावादी संस्कृति के फलस्वरूप लोगों में पनपी उस विलासिता को उजागर किया है, जो एक स्वस्थ समाज के निर्माण में सहायक नहीं होती और न ही हो सकती है। कारण यह है कि इस तरह का उपभोग जब मनुष्य का ध्येय बन जाता है तो वह उन सभी मूल्यों, आदर्शों और संस्कारों को ताक़ पर रख देता है, जो समष्टि जीवन के कल्याण में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इतना ही नहीं बल्कि वह ऐसे कार्यों में लीन हो जाता है, जो उसे तो मालामाल कर देते हैं, मगर समाज को विशृंखलता की ओर ले जाते हैं।

उदयप्रकाश की कहानियाँ इस तथ्य को स्पष्टतः उजागर करती हैं कि जब धन-लोलुपता को ही मनुष्य अपना चरम उद्देश्य बना लेता है तो अध्यापक, जोकि अपने देश और संस्कृति का निर्माता होता है, वह भी पथ भ्रष्ट हो जाता है। उदय अपनी बात का स्पष्टीकरण 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी के माध्यम से करते हैं, 'इसी तरह बिहार के छपरा ज़िले के प्राइमरी स्कूल की टीचरी का काम छोड़कर अपने उचक्के प्रेमी के साथ दिल्ली भाग आनेवाली आशा मिश्रा नाम की लड़की कंटेसा क्लासिक में चल रही थी।... काले घोड़े की खुरदुरी पीठ पर एक सिर्फ़ आशा मिश्रा का फेन बचा था, जो धीरे-धीरे उस बियर की ब्रांड में बदल रहा था।'²¹ इसी तरह एक अन्य स्थान पर उदयप्रकाश उक्त बिंदु को रेखांकित करते हैं कि 'अभी आठ महीने किशनगंज के जनता फ्लैट में रहने वाली, सर गंगाराम हॉस्पिटल के सफ़ाई कर्मचारी राम औतार आर्य की सत्रह साल की बेटी सुनीला रातोंरात मालामाल हो गई थी, क्योंकि किसी टीवी के विज्ञापन में वह आठ फुट बाइ चार फुट साइज़ के विशाल ब्लेड के मॉडल पर नंगी सो गई थी।'²²

वास्तव में उपभोक्तावादी संस्कृति ने महिलाओं की छवि एवं देह का प्रयोग अपने लाभ कमाने के लिए किया है। बाज़ार की शक्तियाँ महिलाओं का शोषण इतनी चालाकी से कर रही हैं कि स्वयं महिलाओं को भी यह आभास नहीं हो पाता कि वे बाज़ार की कुटिल चाल की शिकार बन रही हैं और धन के आकर्षण में अपनी स्वतंत्रता, सम्मान और गरिमा खो देती हैं।

इस प्रकार जाहिर है कि उपभोक्तावादी संस्कृति व्यक्ति की सोच को कैसे तक कुंठित करती है, लेकिन इस प्रकार की सोच भारतीय समाज को गर्त की ओर धकेल रही है। इस चकाचौंध के भीतरी अँधेरे पक्ष का उद्घाटन करते हुए उदयप्रकाश लिखते हैं—'उस रात वे अपने रंगीन', 'हॉटलाइन' टीवी सेट पर हॉलीवुड की फ़िल्म 'किस मी गुडबाय' देखते हुए 'हॉटलाइन कंपनी' के मालिक मुकेश अग्रवाल की नियति और विडंबना के बारे में सोच रहे थे, जो पहले मेरठ के किसी वैष्णव ढाबे में कप-प्लेट धोता था। और बाद में...लाल डिब्बी बनाते-बनाते इस उदारीकरण और वैश्वीकरण के नए चमत्कार से 'हॉटलाइन' ब्रांड का रंगीन टीवी सेट बनाने लगा था और अरबपति बन गया था। लेकिन बॉलीवुड की मशहूर हीरोइन में अपने वैष्णव ढाबे के पूर्व के बचपन की लड़की को खोजने की त्रासदी में उसने गले में फंदा लगाकर आत्महत्या कर ली थी।... बियर का फेन बन जाने वाली आशा मिश्रा की त्रासदी, जिसे पिछले दिनों राजधानी के पर्यटन विभाग के एक बार्बेक्यू में काट-काटकर तंदूर में भून डाला गया था।'²³

ध्यातव्य यह है कि ऊँची उड़ान, एकाएक प्रसिद्ध और धनवान बनने की दौड़ लड़कियों को अधिक लुभाती है, लेकिन वे किसी के भावनात्मक साए में रहने की पारंपरिक भूमिकाएँ

छोड़ने को भी तैयार नहीं होती हैं और इस टकराव की अंतिम परिणति होती है—आत्महत्या। इस प्रकार उदय की कहानियों में उसका अपना समकालीन यथार्थ मौजूद है, जिसने उसकी कहानियों के अंतर्वस्तु तत्त्व को प्रौढ़ता प्रदान की है।

3. स्त्री-पुरुष-संबंधों का अधुनातन भाव-बोध

स्त्री-पुरुष-संबंधों के विविध स्तरों को उद्घाटित करने में उदयप्रकाश जिस रूप में प्रवृत्त हुए हैं, उसका कारण हमारा परिवर्तित सामाजिक परिवेश है। क्योंकि वर्तमान समय में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों में बहुत बदलाव आया है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया इतनी तेज़ है कि वर्तमान युग के मूल्य पिछले युग के जीवनमूल्यों से बिल्कुल अलग दिखाई देते हैं। क्योंकि आज प्रत्येक व्यक्ति अपने छोटे से जीवन में तथा कम समय में ही मूल्य-दृष्टि के इस परिवर्तन का अनुभव करता है। मूल्यों का यह द्रुत परिवर्तन विज्ञान, तकनीक और प्रौद्योगिकी में हुए तीव्र विकास का परिणाम है। तकनीक का यह विकास कुछ मूल्यों को बिल्कुल ही समाप्त कर देता है, कुछ मूल्यों में संस्कार कर उनको समयानुकूल बनाता है और कुछ एकदम नए मूल्यों का सृजन करता है। इन सबके परिणामस्वरूप 'आज हमारे समाज में पुरातन मूल्यों का पुनःसंस्कार हुआ तथा कुछ नए मूल्य स्थापित हुए।'²⁴

मूल्यों के प्रति यह बदलता नज़रिया ही उदयप्रकाश के कहानी-संग्रह 'पॉल गोमरा का स्कूटर' में पूरी तरह रूपायित हुआ है। आज मानवीय जीवन में जितने भी सुदृढ़ संबंध हैं—प्रेम, स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्री, माँ-बाप, पति-पत्नी, माँ-बेटी के मध्य स्थापित संबंधों को उदयप्रकाश ने अपनी कहानी के माध्यम से उघाड़ा है। लेकिन 'वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में सबसे अधिक जटिल, पेचीदा और अंतर्ग्रस्त संबंध स्त्री-पुरुष संबंध हैं।'²⁵ अधुनातन समय में स्त्री-पुरुष संबंधों के इतने वृत्त हैं कि जिनको उदय ने अपनी कहानी में उजागर किया है—'वह लड़की के पास रहना चाहता था, उसे खुशी देना चाहता था।... 'भले ही छतरियों ने लड़की को प्रभावित न किया हो, लेकिन यह कीड़ा अपने जादू में लड़की को बाँध लेगा। वह अपनी प्यास भूल जाएगी।' उसका गला फिर से तर और ठंडा हो जाएगा और तब वे दोनों देर तक जंगल में झाड़ियों के पीछे किसी पेड़ की चितकबरी छाँह के भीतर साथ-साथ रहे आएँगे।'²⁶ उदय जी ने स्त्री-पुरुष संबंधों में प्रेम के जिस भाव को व्यक्त किया है, वह सराहनीय है। इस प्रेम में निस्वार्थता की भावना है। कुछ पलों में उस लड़की को अनगिनत खुशी देने की भावना है। उस समय जंगल में जब इतनी तेज़ गर्मी में यत्न करने पर भी आस-पास पीने के लिए पानी नहीं मिल रहा था तो कैसे लड़का-लड़की को जिससे कि वो प्रेम करता था, सोनकीड़े की खूबसूरती में उलझाना चाह रहा था, जिससे लड़की अपनी प्यास को भूल जाए। एक अन्य स्थान पर कहानी में उदयप्रकाश कहते हैं—'पूरे इत्मीनान और पूरी निकटता से। यह मौक़ा उसे इस सोनकीट की बदौलत मिलेगा।'²⁷ इस प्रकार लड़का कहानी में अपने प्रेम को सीधे-स्पष्ट शब्दों में लड़की के सामने व्यक्त न करके प्रकृति के जीव के सहारे अपनी भावनाओं को उसके समक्ष रखता है। यह प्रेम का वह रूप है, जो पवित्र है और कहानी के ज़रिए पुराने मूल्यों को एक बार फिर से उजागर किया गया है। पवित्रता से भरे प्रेम के एक अन्य रूप को उदय उजागर करते हुए लिखते हैं—'यह एक अबोध, बचपने और उमंग से भरी एक ऐसी पवित्र और भावनात्मक ज़िद थी, जो लड़की के लिए एक नशीला यातनाघर थी।'²⁸

इस प्रकार स्पष्ट है कि कहानीकार एक तरफ़ यहाँ स्त्री-पुरुष संबंधों में निस्वार्थ और पवित्र प्रेम का चित्रण करता है तो दूसरी ओर भूमंडलीकरण के इस दौर में स्त्री-पुरुष के संबंधों में केवल पैसा ही प्यार बनकर रह गया है, इस बात को कहानी के माध्यम से स्पष्ट करता है। भूमंडलीकरण के माध्यम से बाज़ारवाद व उपभोक्तावाद ने जिन नए मूल्यों व प्रतिमानों को जन्म दिया है, वे व्यक्ति के पारंपरिक मूल्यों के बारे में एक असुरक्षा-बोध को जन्म देते हैं, जोकि स्त्री-पुरुष संबंधों में दरार उत्पन्न करते हैं। 'पत्नियाँ अपने पतियों को छोड़-छोड़कर भाग रही थीं, क्योंकि बाज़ार में उनके पतियों की कोई खास माँग नहीं थी।'²⁹

उदयप्रकाश का कहना है कि आज मनुष्य की हर लालसा का बाज़ारीकरण हो रहा है यहाँ तक कि आपसी रिश्ते भी बाज़ार के सौदे की तरह बिकने लगे हैं। प्रेम, करुणा, सहानुभूति सभी बराबर की क्रीमत चाहते हैं। आज इन्हीं वैयक्तिक महत्वाकांक्षाओं की टकराहट से पति-पत्नी के मध्य सहनशीलता घटी है, जिससे यह संबंध अस्थायी बनते जा रहे हैं।

उदयप्रकाश कहानी में पिता-पुत्री के परिवर्तित होते संबंधों की भी पुष्टि करते हैं—'तीन सवर्ण हिंदू परिवार ऐसे थे, जो डाउनटाउन की कोठी में दी जानेवाली पार्टी में अक्सर आते थे और उन्होंने बीफ खाना शुरू कर दिया था। मोहिनी ठाकुर उन्हीं में से एक परिवार की लड़की थी।'³⁰

निःसंदेह पुत्री के जनक पिता द्वारा ही यौनात्याचार का विकृत रूप कहानी में दिखाया गया है। आज नारी की पारंपरिकता और मर्यादा की चूनर को पिता द्वारा ही पैसा कमाने की चाह ने तार-तार कर दिया। अपने ही संरक्षक भक्षक बने हुए हैं। पिता द्वारा अपनी ही पुत्री को पैसा कमाने का यंत्र समझना भारतीय संस्कृति का तेज़ी से दम तोड़ना है। एक अन्य स्थान पर कहानीकार का मोहिनी के मुख से यह कहलवाना—'माँ मुझे लगता है जैसे मेरी नसों में सारे यूरोप की गंदी नालियों का विषाक्त उच्छिष्ट बह रहा है.... पिता जी को कितनी दौलत चाहिए।'³¹

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि देह-व्यापार सदियों पुराना धंधा है। उस समय भी औरत की भावनाओं को कुचला जाता था। वह अपनों के बीच सुरक्षित रहते हुए भी असुरक्षित थी। वह भीतर-ही-भीतर घुटकर किस असहाय वेदना को अनुभव करती है, यह सब-कुछ कहानी की अंतर्वस्तु में देखने-योग्य है।

4. महानगरीय बोध

नगर ही नहीं, महानगर भी आधुनिक कहानी की संवेदना का केंद्र बन गया है। आज महानगरीय जीवन समाज के तीन वर्गों उच्च वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग के बीच बँटकर रह गया है। इस स्थिति में व्यक्ति महानगरीय जीवन में अपने-आपको बहुत छोटा महसूस करता है। उसे अपने अस्तित्व के बोनेपन का अहसास होता है। 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी में लेखक गाँव से आकर महानगर में बसे ऐसे ही व्यक्ति की व्यथा का वर्णन करते हुए लिखता है—'पाल गोमरा तो जन्मजात उत्तर प्रदेश थे, जैसा कि हिंदी के ही एक कवि स्वर्गीय धूमिल ने अपनी एक कविता में लिखा था, मैं भाषा में भदेस हूँ, इतना कायर हूँ कि उत्तर प्रदेश हूँ।' तो कवि पॉल गोमरा भी खासे भदेस थे।... क्योंकि तमाम जलालत के बावजूद वे पिछले सालों से उसी दफ़्तर में नौकरी करते आ रहे थे, जहाँ न कभी कोई उनको कोई प्रमोशन मिला था, न कोई सम्मान।'³²

अतः लेखक ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि महानगर में व्यक्ति को अपनी यह

अभावग्रस्त ज़िंदगी तब और अधिक तिरस्कृत लगती है, जब वह यह देखता है कि उनके देखते ही देखते लोग भ्रष्ट जीवन, व्यवहार अपनाकर भी उन्नति के सोपानों पर चढ़ रहे हैं। उस समय यह मध्यवर्गीय प्राणी अपने अर्थाभावों-भरी ज़िंदगी में उन सब मूल्यों की निरर्थकता देखता है, जिनको लेकर वह जिया है। इस पीड़ा से उसे लघु मानव होने का एहसास होता है तथा धीरे-धीरे महानगर की इस भीड़ और शोर भरी ज़िंदगी में उसे अपनी पहचान, निजता कहीं विलुप्त होती नज़र आती है। महानगर की इस व्यस्त ज़िंदगी में संबंधों में एक प्रकार का सन्नाटा छाया रहता है। अपनी बात को स्पष्ट करते हुए लेखक कहानी में लिखता है—‘उनका बेटा मंटू ज़रूर इस बीच कई बार पापा के इस लोहे के जानवर को उत्सुकता और लालच के साथ देखता, लेकिन बाबा साहब अंबेडकर के नाम पर स्थापित अँग्रेज़ी माध्यम के पब्लिक स्कूल का पाठ्यक्रम और होमवर्क इतना ज़्यादा था कि स्कूटर चलाना तो दूर, उसे पाखाने के लिए भी ठीक से समय निकालना मुश्किल हो जाता था।¹³³

दरअसल, लेखक इस बात पर ध्यान केंद्रित करता है कि दिल्ली जैसे महानगर की ज़िंदगी ने बच्चों को भी लपेट लिया है। शिक्षा के अत्यधिक बोझ के कारण उन्हें अपने माता-पिता के पास बैठने की फुरसत नहीं होती। आलोच्य कहानी में लेखक अन्य स्थान पर उजागर करता है कि—‘दिल्ली के लोगों के पास दूसरों के लिए रास्ता बताने का तो वक्त होता नहीं था, अब उन्हें भला स्कूटर कौन सिखाए? तीन दशकों तक दिल्ली में नौकरी करने के बावजूद धनीराम शर्मा को यह पता नहीं था कि इस शहर में कनॉट प्लेस, साउथ एक्स, ग्रीन पार्क... जगहें भी हैं।¹³⁴.... इस तथ्य को उद्घाटित करते हुए लेखक लिखता है—‘दिल्ली एक ऐसा शहर था....उस व्यक्ति के प्रति धारणाएँ ख़राब हो जाती थीं।¹³⁵

अतः कहानीकार इस बात से अवगत करवाता है कि महानगर की भागमभाग-भरी और व्यस्त ज़िंदगी में एक-दूसरे से बात न कर सकने, एक-दूसरे के साथ तादात्म्य न होने का अलगाव और परायापन है।

सारांशतः कहा जा सकता है कि उदयप्रकाश की कहानियाँ जहाँ एक ओर शहरीकरण के कारण बढ़ते आर्थिक वैषम्य को उघाड़ती हैं, वहीं दूसरी ओर महानगर में व्यक्ति के लघु मानव में परिवर्तित होते चले जाने की व्यथा-कथा को भी वाणी प्रदान करती हैं।

5. वर्गीय अंतराल का चित्रण

भारतीय समाज निरंतर कई तरह के संरचनात्मक बदलावों से गुज़र रहा है, जिससे विभिन्न वर्गों में आर्थिक वैषम्य का रुझान हमेशा दृष्टिगोचर होता रहा है। इसी आधार पर ऊँच-नीच के भेदभाव भी सामने आए। यद्यपि आज भारत में अमीर और ग़रीब के बीच खाई पहले से कहीं ज़्यादा चौड़ी और गहरी होती जा रही है तथापि भारतीय राजनीति तथा शासन-तंत्र ने इस खाई को और गहरा कर दिया। अमीर-ग़रीब का यह वर्गसंघर्ष उदयप्रकाश की कहानी ‘वारेन हेस्टिंग्स का साँड़’ के साथ अन्य कहानियों में भी उजागर है। उदय ने यहाँ की जनता की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है—‘यहाँ औरतें भी ऐसी ही थीं। वे लकड़ियाँ काटतीं, भारी बोझ सिर पर उठातीं, नदियों से मछलियाँ पकड़ लातीं और अनाज के बदले उन्हें बाज़ार में बेचतीं।¹³⁶ इसी प्रकार उदयप्रकाश की कहानी ‘छतरियाँ’ का अंश द्रष्टव्य है—‘हम अक्सर जिन चीज़ों को बहुत कोमल और लाचार समझ लेते हैं, काफ़ी ठोस और कठिन काम वे चीज़ें कर लेती हैं। हो सकता

है, बड़ी-बड़ी चट्टानों को बहुत नन्हे-नन्हे लिजलिजे कीड़े ने बनाया हो।...³⁷

अतः उदयप्रकाश ने अपनी कहानी में तथाकथित निचली जातियों अर्थात् अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़े वर्ग में सबसे गरीब वर्ग निम्नवर्ग का चित्रण बड़ी यथार्थता से किया है।

उदयप्रकाश की कहानियों में मध्यवर्ग का एक ऐसा तबक़ा बड़ी प्रामाणिकता के साथ दिखाई पड़ता है, जो जीवन जीने के अपने संघर्षों को सँभालने की कोशिश में कभी तो मानवीय मूल्यों का पक्षधर बनकर भयावह यथार्थ से टकराता है और कभी अपने आधे-अधूरे आदर्शवाद और लालसावादी मन के आत्मद्वंद्व से। आधुनिक परिवेश में मध्यवर्गीय समाज के साथ होने वाले भेदभाव पूर्ण व्यवहार को उजागर करते हुए उदयप्रकाश लिखते हैं—‘लेकिन ऑल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट के न्यूरोलॉजी विभाग में हिंदी कवि पॉल गोमरा के पहुँचने की कोई सूचना नहीं है... वहाँ वीआईपी लोगों, ऊँचे अफ़सरों और साख-रसूखवालों का ही इलाज होता है।... दूसरे सबसे बड़े उपन्यासकार जैनेंद्र को भी भगा दिया गया था।³⁸

इस प्रकार उदय ने मध्यवर्गीय पात्रों की दिक्कतों, दुविधाओं, चिंताओं व तनाव को बड़ी मार्मिकता व प्रामाणिकता के साथ उद्घाटित किया है। ‘वारेन हेस्टिंग्स का साँड़’ कहानी में वह मध्यवर्गीय जीवन का कारुणिक चित्र प्रस्तुत करते हैं—‘गाय की आँखों से लगातार आँसू बहते रहे। इंग्लैंड के औद्योगिक-पूँजीवादी समाज में किसी ने उन आँसुओं को नहीं देखा।... बछड़े की मृत्यु या हत्या के बाद उसके जीवन में अब कुछ नहीं बचा था।³⁹ वस्तुतः उदयप्रकाश इस कहानी के माध्यम से पशुओं की कारुणिक भावनाओं का मानवीकरण करते हैं तथा मध्यवर्गीय व्यक्ति के निजी व सामाजिक जीवन के उलझावों, वलवलों व द्वंद्वों, उसके व्यवहारवाद व विभ्रमों की बारीक़ पड़ताल भी इनकी कहानियों में मिलती है।

6. साहित्यकारों की दयनीय स्थिति

भूमंडलीकृत भारत समाज में एक ऐसे उपभोक्तावादी समाज के रूप में विकसित हो रहा है, जहाँ बाज़ारवाद भारतीयों की एक नई जीवन-शैली बनकर उभरा है। इस तकनीकी युग में तकनीक और ब्रांड की क्रीमत है जोकि पश्चिमी संस्कृति की देन है। हिंदीभाषा और उससे जुड़े कवियों की इस समाज में क्रीमत शून्य के समान है। इसका संकेत उदयप्रकाश अपनी कहानी ‘पॉल गोमरा का स्कूटर’ के माध्यम से करते हैं—‘पॉल गोमरा को याद आ जाता कि पिछले पाँच सालों में हिंदीभाषा के उनके जैसे ही लगभग डेढ़-दो दर्जन कवियों-लेखकों ने कीटाणुनाशक द्रव पीकर या सीलिंग के हुक में रस्सी से फंदा लगाकर आत्महत्याएँ कर डाली थीं। ... फंदा लगाने के अलावा और कोई दूसरा विकल्प नहीं है।⁴⁰ कहानी में एक अन्य स्थान पर लेखक स्पष्ट करता है—‘वे कुछ नहीं रह गए थे। न कवि, न नागरिक, न शायद ठीक-ठीक ढंग से मनुष्य ही।⁴¹

इस प्रकार उदय ने कहानी में दिल्ली के एक मध्यवर्गीय हिंदी-पत्रकार और कवि को केंद्र में रखा है। कहानी में सांस्कृतिक मूल्यों के टूटने की चरमराहट भी है, साथ-ही-साथ हमारी राष्ट्रभाषा और उससे जुड़े साहित्यकारों की शोचनीय दशा को देखकर लेखक निराश हो जाता है। उदयप्रकाश ‘पॉल गोमरा का स्कूटर’ कहानी में उद्घाटित करते हैं—‘मैं हूँ दलित हिंदी कवि रामगोपाल।’ क्विट इंडिया, क्विट इंडिया, क्विट इंडिया।⁴²

वास्तव में जब कवि महानगर में अपनी दुर्दशा को देखता है तो वह तिलमिला उठता है और क्विट इंडिया, क्विट इंडिया की परेड करता हुआ उत्तर आधुनिकता के इस समय में तमाशा बन जाता है। अतः उदय कहानी के जरिए आज के समय में साहित्यकारों की दयनीय स्थिति को उकेरते नज़र आए हैं।

7. राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार और व्यवस्था-विरोध

मूलतः राजनीति का मुख्य उद्देश्य मानव-कल्याण है, परंतु आज की राजनीति छल और प्रपंच से भरी हुई है। जो दिखाई देता है, वह वास्तव में होता नहीं है और जो कुछ पीछे होता है, वो दिखाई नहीं देता। पैसे की अंधी दौड़ में भूमंडलीय आँधी ने राजनेताओं को इस कदर भ्रष्ट किया है कि वे अपनी ही जेबें भरने में लगे हुए हैं। चुनावों के दौरान वे बड़ी-बड़ी परियोजनाएँ सफल करने के दावे ज़रूर करते हैं, पर चुनाव जीतने के पश्चात् पूर्ण नहीं करते। वे परियोजनाएँ केवल कागज़ों में ही बंद होकर रह जाती हैं। इसी व्यवस्था के प्रति व्यंग्य करते हुए उदयप्रकाश कहानी में लिखते हैं—‘उनकी पीठ पर कागज़ की छोटी-छोटी चिप्पियाँ चिपकी थीं। जिन पर ग्रामीण विकास, रोज़गार, आवास, सड़क, साक्षरता, प्लेग, ग़रीबी, चेचक, परिवार-कल्याण, राहत, भूकंप, पर्यावरण, शोचालय, संस्कृति, एड्स, साहित्य आदि लिखे हुए थे। हर शब्द के अंत में एक अंतःसर्ग था, जो हर चिप्पी पर मौजूद था—परियोजना।’⁴³

वास्तव में राजनीति भ्रष्टाचार का पर्याय बनकर रह गई है, क्योंकि यह भ्रष्ट तंत्र सबसे पहले राजनीति में आया और फिर उसके बाद प्रत्येक विभागीय व्यवस्था में। जिस राजनीतिक आदर्श की ताकत पर कभी देश आज़ाद हुआ था, आज पूरा का पूरा देश उसी राजनीति का गुलाम बनकर रह गया है। व्यक्ति से लेकर पूरे राष्ट्र को आज राजनीतिज्ञ अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी दिशा में मोड़ सकते हैं। इसी तथ्य को उदयप्रकाश कहानी के माध्यम से व्यक्त करते हैं, ‘सुनो, सुनो, सुनो! इतिहास का अब अंत हो गया है। अब इस नई सभ्यता के केंद्र में मनुष्य नहीं, व्यवस्था और सत्ता है यानि सिस्टम एंड पावर। मनुष्य तो अब सिर्फ़ पर्यावरण का हिस्सा है। सत्ता और बाज़ार पूँजी और व्यापार की सेवा ही अब शब्दों और भाषा का धर्म है। अब कहीं कोई यथार्थ नहीं है। चारों ओर सिर्फ़ सूचनाएँ हैं।’⁴⁴

इस प्रकार लेखक कहानी के जरिए कहना चाहता है कि आज की राजनीति केवल स्वार्थ-पूर्ति और सत्ता-प्राप्ति की लोलुपता मात्र बनकर ही रह गई है, जिसमें मनुष्य को उपेक्षित किया जा रहा है और सत्ता, पूँजीपति और चापलूसों का बोलबाला है।

कहानी में एक अन्य स्थान पर उदयप्रकाश आज के राजनीतिक जीवन का सच प्रत्यक्ष रखते हैं—‘यह दलित सरकार सवर्णों और सांप्रदायिकों के समर्थन से सत्ताधीन हुई थी। जिस मंत्री का वह वीआईपी एस्कोर्ट था, उसका पिछला रिकार्ड अपराधिक था और वह घोषित हिस्ट्रीशीटर था। मंत्री बनने से पहले तक उसके फ़ोटोग्राफ़ पुलिस थानों में टँगे रहते थे।’⁴⁵

वस्तुतः लेखक इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि आज राजनीति चंद लोगों के हाथों की कठपुतली बनकर रह गई है। गुंडागर्दी ने लोगों की जुबान बंद कर दी है। आज देश का आम नागरिक घुट-घुटकर जीने के लिए विवश हो गया है। इसी प्रकार ‘भाई का सत्याग्रह’ कहानी में लेखक का द्रष्टव्य है—‘एक पुलिसवाला एक गुंडे के साथ दोबारा जीप के पास आया और उसने ड्राइवर से कहा, ‘साले, पैसे क्यों नहीं देता? नौटंकी कर रहा है।’... तुम लोग ग़ैरक़ानूनी

काम कर हरे हो। पुलिस की वर्दी तुम लोगों ने पहन रखी है और डाकू बनकर राहजनी कर रहे हो।⁴⁶ एक अन्य स्थान पर लेखक लिखता है—‘हर छोटे-बड़े चुंगी नाके पर ठेकेदार के गुंडे बैठे रहते थे और इस बात की बिना परवाह किए कि किसी ने पहले पर्ची काट ली है या नहीं, वहाँ से गुजरने वाली गाड़ी से दुबारा पैसा वसूलते थे। इसमें पुलिस और स्थानीय प्रशासन के कुछ कर्मचारियों की भी मिलीभगत होती थी।⁴⁷

निःसंदेह, आज पुलिस की कार्य-प्रणाली के कारण ही उसकी छवि धूमिल होती जा रही है, क्योंकि पुलिस अपराधों को रोक तो नहीं रही, अपितु उनकी बढ़ोतरी में सहायक सिद्ध हो रही है। इस प्रकार उदयप्रकाश देश में घटने वाली राजनीतिक घटनाओं और राजनीति के दाँव-पेंच को चित्रित करने में चूके नहीं है। क्योंकि आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राजनीति का यह भ्रष्ट-तंत्र अपना वर्चस्व स्थापित किए हुए है, अतः उदयप्रकाश ने भ्रष्ट हो चुकी संपूर्ण व्यवस्था को बखूबी यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया है।

8. मिश्रित संस्कृति की पक्षधरता

भारतवर्ष प्राचीन काल से ही अनेक धर्मों और जातियों का आश्रय-स्थल रहा है। यहाँ हिंदू, बुद्ध, जैन और सिक्ख धर्म उत्पन्न हुए और मुस्लिम और ईसाई धर्म बाहर से आए। इन सभी धर्मों और जातियों ने एक-दूसरे को न केवल प्रभावित किया, बल्कि एक-दूसरे की भावनाओं का सम्मान भी किया। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति को किसी धर्म-विशेष की विशुद्ध संस्कृति नहीं माना जा सकता है बल्कि यह एक ऐसी सामाजिक संस्कृति है, जिसमें सभी जातियों और धर्मों को अपनाने और उन्हें अपना बनाने की शक्ति मौजूद है। ‘भारतीय संस्कृति का मुख्य लक्षण यह रहा है कि यह सहनशीलता और समझदारी का वातावरण बनाती है, धर्म के मामलों में आज्ञादख़याली की जगह ‘जियो और जीने दो’ की नीति इसका अंग है।⁴⁸ वास्तव में यही सहनशीलता और उदारता लोगों को अपना चुना हुआ जीवन जीने की आज्ञा देती है, यही भारतवर्ष की सबसे बड़ी उपलब्धि है। परंतु उपनिवेशवादी शासकों ने शुरू से ही भारत के लोगों को जाति, भाषा, धर्म और इलाकों के आधार पर बाँटने की कोशिश की तथापि वह अपनी इस नीति में सफल न हो सके। इस बात को ‘वारेन हेस्टिंग्स का साँड़’ कहानी में उद्घाटित करते हुए उदयप्रकाश बताते हैं कि जब मिस्टर एलिस ने नवाब को गोमांस पर लगी पाबंदी को समाप्त करने को कहा तो नवाब ने उसे जो जबाब दिया उससे भारतीयों की एक-दूसरे की भावनाओं को समझने की उदारता का पता चलता है, ‘सुनो जनाब एलिस, तुम लोग तो यहाँ दौलत कमाने और तिजारत करने आए हो। एक-न-एक दिन तुम्हें अपने वतन लौट जाना है, लेकिन हमें तो यहीं रहना है। इसी मिट्टी में हम पैदा हुए, खेले-कूदे और इसी में एक दिन हमें दफ़न भी हो जाना है। तो हम यहाँ के बाशिंदों के, यहाँ के लोगों के जज्बात को क्यों चोट पहुँचाएँ।⁴⁹

अतः उदय इस बात को उधेड़ना चाहते हैं कि ब्रिटेन की ईस्ट इंडिया कंपनी भारत के उद्योगों को नष्ट करके भारत का सारा धन अपने देश में ले जाने के बावजूद भारतीयों में फूट डलवाना चाहती थी, जिसके लिए वह मुस्लिम नवाब को नशे में चूर करके गाय को काटने पर लगी बंदिश को खुलवाना चाहती थी, जिससे कि भारत में हिंसा भड़के और लोग आपस में ही लड़ते रहें। परंतु नवाब नशे में चूर होते हुए भी ऐसा करने से इंकार करता है, क्योंकि वह अब भारतीय संस्कृति को छिन्न-भिन्न नहीं होने देना चाहता। वह जानता है कि हिंदू-मुस्लिम

एक-दूसरे को समझने लगे हैं, जिससे देश में सद्भावना का माहौल बन गया है।

ध्यातव्य है कि चाहे हम भारतीय धर्म, भाषा, क्षेत्र, जाति और संस्कृति के मामले में बहुत विविध हैं, फिर भी एक साझा सूत्र हमें बाँधता है। यह सूत्र अनेकता में एकता का है। यही मिश्रित संस्कृति है और यही भारत की पहचान भी। यही कारण है कि प्रत्येक भारतीय अपनी उदारवादी मनोवृत्ति के कारण किसी दूसरे धर्म में कमियाँ ढूँढने के मुकाबले अपना आत्म-विश्लेषण करना ही बेहतर समझता है। आलोच्य कहानी में एलिस द्वारा हिंदुओं को क्राफ़िर कहे जाने पर नवाब उसे कहता है, 'मिस्टर एलिस, क्राफ़िर वो हिंदू नहीं है, जो गाय की पूजा करता है। क्राफ़िर तो हम हैं, जो हज़रत की पाबंदी के बावजूद ये शराब पीकर कुपका गुनाह कर रहे हैं।'⁵⁰

अतः कहानीकार साम्राज्यवादी शक्तियों की साजिशों का पर्दाफ़ाश करते हुए बता देना चाहता है कि इनका उद्देश्य हमेशा मानवता को बाँटकर अधिकाधिक मुनाफ़ा कमाना रहा है। लेकिन अंग्रेज़ इस बात से भली-भाँति परिचित हो चुके थे कि भारतीयों से उनकी स्मृतियों को छीना नहीं जा सकता। इस संदर्भ में लेखक कहानी में कहता है—'वारेन हेस्टिंग्स को पता चला कि इस देश में इतने ग्रंथ और अभिलेख हैं और इतनी दंतकथाएँ और मिथक गाथाएँ मौखिक रूप में प्रचलित हैं कि अगर उन्हें पूरी पृथ्वी पर फैला दिया जाए तो उनकी अनगिनत परतों के नीचे यूरोप, अमेरिका, एशिया और अफ्रीका ही नहीं, सारे समुद्र ही ढक जाएँगे।'⁵¹ अतः स्पष्ट है कि कहानीकार उदयप्रकाश अपनी कहानियों के माध्यम से भारत की मिश्रित संस्कृति की पक्षधरता करते हुए उन सभी कारणों को तलाशने की कोशिश करते हैं, जो इस मिश्रित संस्कृति को नष्ट करना चाहते हैं।

उपसंहार

अस्तु, उदयप्रकाश एक ऐसे कथाकार हैं, जिनकी नज़र इक्कीसवीं सदी के समाज पर है, जो अप्रत्याशित रूप से बदल रहा है। उनकी कहानियों की अंतर्वस्तु अपने समय के यथार्थ को उजागर करने में सक्षम है, जिसमें भूमंडलीकरण, उपभोक्तावादी अपसंस्कृति एवं बाज़ारवाद का बोलबाला है, क्योंकि ये शक्तियाँ दुनिया-भर में स्वयं को संगठित कर रही हैं। चाहे आज मनुष्य बाज़ार और बाज़ार की शक्तियों का मात्र दास बनकर रह गया है, परंतु कहीं-न-कहीं उसके संस्कार उसमें विद्यमान रहते हैं। इसलिए रामगोपाल का पुराने नाम को उलटकर नया नामकरण पाल गोमरा कर लेना जितना आसान है, उतना ही कठिन है, अपने संस्कार, शख़्सीयत और तहज़ीब को उलटकर नई आईडेंटिटी पाना। बेशक घर के दरवाज़े पर नया चमचमाता स्कूटर खड़ा करके वह स्टेटस को बाज़ार के मानदंडों पर ले आता है, लेकिन मूलतः वह रामगोपाल है अपनी मर्यादाओं और सीमाओं में बँधा। इसी प्रकार बाज़ार की शक्तियाँ स्त्री को भी अपने जाल में फँसा लेती हैं और वह पैसा कमाने की होड़ में एकाएक प्रसिद्धि पाने के लिए अपनी अस्मिता की परवाह किए बिना अश्लील विज्ञापन देती है, पर कहीं-न-कहीं उसकी भावनाएँ उसे झकझोरती हैं और वह अपने अस्तित्व को तलाशने लगती है। इस प्रकार आलोच्य कहानियों में भूमंडलीकरण के फलस्वरूप भारतीय समाज में आने वाले परिवर्तनों को उद्घाटित करते हुए कहानीकार इसके परिणामस्वरूप पनपनेवाली उपभोक्तावादी संस्कृति के छद्म स्वरूप को निरावरण करता है। चूँकि इसी उपभोक्तवादी संस्कृति के फलस्वरूप मूल्य-संक्रमण की परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं। समय के इस बदलाव ने मानवीय संवेदना के पारंपरिक स्वरूप को

तोड़ा है, जिससे संबंधों में विश्रुंखलता और टूटन दिखाई देती है। ये कहानियाँ महानगरीय जीवन पर भी केंद्रित हैं। ऐसा महानगर, जहाँ संवेदनाएँ मर चुकी हैं और आर्थिक विषमता निरंतर बढ़ती जा रही है। इसीलिए महानगर में व्यक्ति अपनी अस्मिता को खोता जा रहा है और उसकी स्थिति निरंतर लघु होती जा रही है। उदय की कहानियाँ महानगर में मानव के लघु होने की व्यथा-कथा को, साहित्यकारों की दयनीय स्थिति को बड़ी ही यथार्थता से अपनी वस्तु में अंतर्निहित करती है। इन्हीं महानगरों से वर्गीय अंतराल उत्पन्न हुआ। उदय ने कहानियों में जहाँ एक ओर सामाजिक परिवेश में आए बदलावों को उजागर किया है, वहीं दूसरी ओर समकालीन राजनीति में फैले भ्रष्टाचार और जनता में पनपी व्यवस्था-विरोध की प्रवृत्ति को भी रेखांकित किया है। कहानीकार की मान्यता है कि आज की राजनीति धन-सत्ता के हाथों का खिलौना होने के कारण देश की मिश्रित संस्कृति को नष्ट कर उसे मात्र बाज़ार की वस्तु बना देना चाहती है। इसलिए उदय की कहानियाँ राजनीति के उस भ्रष्ट चेहरे को सामने लाती हैं, जो देश की साझी विरासत को नष्ट करने पर तुली हुई है।

अंततः कहा जा सकता है उदय की कहानियों की वस्तु न केवल अपने परिवेश की सच्चाइयों को उजागर करती है, बल्कि पाठक को उन समस्याओं के प्रति चौकन्ना भी करती है, जो तत्कालीन परिवेश से उत्पन्न हुई हैं।

संदर्भ

1. हरदेव बाहरी, राजपाल हिंदी शब्दकोश, राजपाल एंड संस, दिल्ली : 2002, पृ० 5
2. गजानन माधव मुक्तिबोध, मुक्तिबोध रचनावली (भाग-पाँच), नेमिचंद जैन (संपा०), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1980, पृ० 105
3. उदयप्रकाश, 'नयी पीढ़ी की दिशा, सोच और तैयारी' (आलेख), हंस, अंक सात वर्ष 15 (फरवरी, 2001), पृ० 96
4. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर, (आवरण पर पंकजसिंह की टिप्पणी)
5. प्रभा खेतान, बाज़ार के बीच : बाज़ार के खिलाफ़ भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ० 13
6. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर (वारेन हेस्टिंग्स का साँड़), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ० 111
7. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर, 2004 पृ० 54
8. सच्चिदानंद सिन्हा, भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003, पृ० 13
9. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ० 52
10. वही, पृ० 40
11. वही, पृ० 38
12. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर (भाई का सत्याग्रह), पृ० 89
13. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर (वारेन हेस्टिंग्स का साँड़), पृ० 119
14. विष्णु नागर, भारत एक बाज़ार है, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011, पृ० 102
15. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ० 55
16. उद्धृत, भानुप्रताप मेहता, 'संस्कृतिमय राष्ट्र है हिंदुत्व' (आलेख), आउटलुक (पत्रिका), 14 अक्टूबर, 2006, पृ० 22

17. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ० 48-49
18. प्रभा खेतान, बाज़ार के बीच बाज़ार के ख़िलाफ़ भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ० 187
19. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ० 37
20. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर (वारेन हेस्टिंग्स का साँड़), पृ० 125
21. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ० 38
22. वही, पृ० 37
23. वही, पृ० 44
24. पुष्पपाल सिंह, समकालीन कहानी नया परिप्रेक्ष्य, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011, पृ० 131
25. पुष्पपाल सिंह, समकालीन हिंदी कहानी, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, 1987, पृ० 110
26. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर (छतरियाँ), पृ० 27
27. वही, पृ० 28
28. वही, पृ० 26
29. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ० 37
30. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर (वारेन हेस्टिंग्स का साँड़) पृ० 122
31. वही, पृ० 125
32. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ० 35-36
33. वही, पृ० 59
34. वही, पृ० 53-54
35. वही, पृ० 65
36. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर (वारेन हेस्टिंग्स का साँड़), पृ० 106
37. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर (छतरियाँ), पृ० 14
38. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ० 74
39. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर (वारेन हेस्टिंग्स का साँड़), पृ० 154
40. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर, पृ० 62
41. वही, पृ० 66
42. वही, पृ० 75
43. वही, पृ० 55
44. वही, पृ० 64
45. वही, पृ० 73
46. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर (भाई का सत्याग्रह), पृ० 98
47. वही, पृ० 9748 विपिन चंद्रा, 'सांप्रदायिकता एक प्रवेशिका, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नयी दिल्ली, 2008, पृ० 43
49. उदयप्रकाश, पॉल गोमरा का स्कूटर (वारेन हेस्टिंग्स का साँड़), पृ० 121
50. वही, पृ० 113

□ सुपुत्री श्री नरेश जैन
हाउस नं० 85/14, जैन मोहल्ला, पट्टी
(तरनतारन) 143416

भीष्म साहनी के नाट्यसाहित्य में मानवाधिकार-हेतु संघर्ष

डॉ० (श्रीमती) ज्योति सिंह

सहायक प्रोफेसर

एस०डी० कालेज, मुजफ्फरनगर

कोई भी रचना एवं रचनाकार अपने युग से सर्वथा अछूता एवं अप्रभावित रह सके यह अकल्पनीय है। युग के संघर्ष एवं घात-प्रतिघात उसके व्यक्तित्व को कहीं-न-कहीं प्रभावित अवश्य करते हैं और जितना अधिक प्रभावित करते हैं, उतना ही वह रचनाकार अपनी रचना में मानवीय सत्तों के अधिकाधिक निकट होता है। भीष्म साहनी के विषय में उक्त कथन सर्वाधिक सटीक है। उनका जन्म बीसवीं शती के इतिहास के अत्यंत बेचैन और अशांत समय सन् 1915 में हुआ था, जब प्रथम महायुद्ध की प्रचंड लपटों ने संसार को अपने आगोश में ले लिया था। पूँजीवाद, सामंतवाद और जारशाही के विरुद्ध सोवियत संघ के उदय ने विश्व-जगत् को बता दिया था कि मानवता-विरोधी शक्तियों के प्रत्युत्तर में मानव-अधिकार की सत् कामनाएँ सदैव जीवित रहेंगी। इधर भारत में अँग्रेजों के क्रूर शासन से मुक्ति के लिए संघर्षरत भारतीयों के विभिन्न आंदोलनों ने भी भीष्म साहनी के व्यक्तित्व को अत्यंत प्रभावित किया। स्वतंत्रता से पूर्व के समस्त वर्ष एक प्रकार से अपनी तमाम बेचैनियों के चलते और अभिव्यक्तियों के अभाव में भीष्म साहनी के व्यक्तित्व का निर्माण कर रहे थे। इधर सन् 1947 के दंगों में मनुष्य के भीतर जागते नर-पशु को देखकर भीष्म साहनी का हृदय विलुप्त हो रही मानवता के प्रति चिंतित हो उठा। फलतः अपनी रचनाओं में मनुष्यता के हनन के प्रति लेखन जगत को सचेत करके वे मानवाधिकारों के पोषण-हेतु आजीवन प्रतिबद्ध रहा।

भीष्म साहनी ने हानूश, कबिरा खड़ा बजार में, माधवी, मुआवजे, रंग दे बसंती चोला तथा आलमगीर नामक नाटकों में मनुष्य के अधिकारों के अतिक्रमण हेतु प्रयासरत शोषकवर्ग तथा अपने अधिकारों के लिए सजग शोषितवर्ग का अत्यंत सजीव चित्रण करते हुए इस कथन को पुष्ट किया है, 'मानव सम्मान से जीने एवं स्वाधीन रहने के लिए सदैव संघर्ष करता रहा है। मानव-सभ्यता और संस्कृति के विकास ने इन अधिकारों को विकसित किया, परंतु मनुष्य ही मनुष्य के अधिकारों का अतिक्रमण करने लगा।'

सन् 1977 में प्रकाशित हानूश साहनी जी का प्रथम नाटक है, जो मध्ययुगीन सामंती मानसिकता द्वारा कलाकार के शोषण का अत्यंत भयावह चित्र प्रस्तुत करता है। राजनीति, धर्म और पूँजी यद्यपि मनुष्य के कल्याण-हेतु प्रयुक्त होनी चाहिए, किंतु सत्तापक्ष द्वारा इनका दुरुपयोग किस प्रकार किसी कलाकार को अपने चंगुल में फसाकर उसे क्षत-विक्षत कर डालता है, इसका सजीव अंकन 'हानूश' में किया गया है।

हानूश एक सीधा-सादा संवेदनशील तालासाज है, जो घड़ी बनाने का स्वप्न अपनी आँखों में सँजोए हुए है। यद्यपि धन के अभाव ने उसके परिवार की झोली में भरण-पोषण, ईंधन जुटाने और जीविका निर्वहण हेतु ताले बनवाने की चिंताएँ ही डाली है, अतः यह परिवार सामान्य जीवन जीने तक से वंचित है। यद्यपि पत्नी का नैतिक एवं भावनात्मक संबल पाकर और अपने अदभ्य उत्साह, लगन, संकल्प और जीवन के प्रति आस्थापरक दृष्टिकोण के कारण ही हानूश प्रतिकूलताओं और आपदाओं से घबराकर हथियार नहीं डालता, बल्कि निरंतर संघर्षरत रहता है। सृजन के दौरान उपस्थित होने वाले द्वंद्व संकट एवं छटपटाहट भले ही उसके काम की गति को अवरुद्ध करते हैं, किंतु यह भी सत्य है कि वे ही उसकी संघर्ष-शक्ति आत्मबल और मानसिक शक्ति को भी निखारते हैं। घड़ी बनाने के उपरांत वह व्यवस्था के जिस दमनचक्र में फँसता है, उसकी कथा अत्यंत कारुणिक है।

‘हानूश’ में नगरपालिका के सौदागर गरीब हानूश का मनचाहा इस्तेमाल करके घड़ी के व्यापार से मालामाल हो जाना चाहते हैं तो दूसरी और बादशाह को अपनी अर्थशक्ति और संगठनशक्ति दिखाकर दरबार में प्रतिनिधित्व पा लेना चाहते हैं। उनकी मान्यता है कि हानूश द्वारा निर्मित घड़ी निर्विवाद रूप से उनकी है क्योंकि जो पैसे देता है चीज़ उसकी की होती है।²

धर्मशक्ति (अर्थात् पादरी समुदाय) भी ईश्वर की सत्ता को सर्वोपरि घोषित कर व्यक्ति के स्वप्न देखने और सृजन करने की स्वतंत्रता छीनकर अपना वर्चस्व क्रायम कर लेना चाहती है। ईश्वर का भय दिखाकर पादरियों ने राजशक्ति को अपने प्रभावाधीन कर लिया है। अन्याय और भ्रष्टाचार को प्रश्रय देकर मात्र अपनी भोगलिप्सा पर ध्यान केंद्रित कर मनुष्य के अधिकारों को कुचलने का कोई मौक़ा वे नहीं छोड़ते और भूखे व्यक्ति द्वारा सुअर चुराने के मामूली से अपराध के लिए तीन वर्ष के कठोर कारावास का दंड देते हैं। अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए वे हानूश के मस्तिष्क में कूट-कूटकर यह भर देना चाहते हैं कि ‘तुम शैतान की औलाद हो, जो घड़ी बना रहे हो। घड़ी बनाना इंसान का काम नहीं, शैतान का काम है।’³ किंतु हानूश धर्मभीरु नहीं है। उसके भीतर बसा कलाकार किसी के सम्मुख नत नहीं होता। वह तो मात्र अपनी कला का उपासक है। इसलिए वह घड़ी बनाने के स्वप्न को पूर्ण कर पाता है।

राजशक्ति अथवा सत्तापक्ष का उद्देश्य यद्यपि नागरिकों के कल्याण-हेतु नियम-क्रानून आदि का निर्माण करना होता है, किंतु इतिहास ने मनुष्यता पर निर्मम प्रहार करनेवाले अनेकानेक ऐसे तानाशाहों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जिन्होंने अपने क्रूर कर्मों द्वारा मानवता को बार-बार शर्मसार किया है। हानूश में भी बादशाह प्रजा की भलाई से पहले अपनी भलाई देखता है और चाहता है कि गिरजे के अधिकारी भी उसके सामने हाथ बाँधे खड़े रहें और सौदागर सनअतकार भी। वह इंसान को नहीं, ताक़त को देखता है, इसीलिए हानूश की आँखें निकलवाने का आदेश देकर वह किसी भी संभावित विरोधी को कुचलने की ताक़त का ऐलान करता है। राजा की क्रूरता और कृत्रिम मधुरता पर व्यंग्य करते हुए संवाद द्रष्टव्य है—‘हमने सोचा इसके हाथ कटवा दें, लेकिन आँखें मौजूद हों तो हाथों के बिना भी घड़ी बन सकती है। पर आँखें निकल जाने से घड़ी बनाना मुश्किल होगा।’⁴

हानूश यद्यपि सत्तापक्ष से लड़ नहीं सकता, वह व्यवस्था के दमनचक्र में पिसने को विवश है। अंधापन उसके जीवन को निरर्थक कर देता है, अतः कई बार वह आत्महत्या करने

का प्रयास करता है, किंतु उसके भीतर का सर्जक कलाकार बंद आँखों से सदा सृजन का ही स्वप्न देखता रहता है और अपने दामाद जेकब को घड़ी बनाने का भेद बताकर आतताई राजा के राज्य की सीमा से बाहर भेज दाता है ताकि कलाकार हानूश कभी भी मर न सके और उसके सृजन का स्वप्न सदा जीवित रहे।

भीष्म साहनी का दूसरा नाटक 'कबिरा खड़ा बाज़ार में' सर्वप्रथम 1981 ई० में छपकर आया। यह रचना मध्यकाल के सुप्रसिद्ध संत कवि कबीर के माध्यम से कबीर के काल, तत्कालीन समाज की धर्मांधता तथा तानाशाही⁵ तथा शासन-व्यवस्था की मानवाधिकार-विरोधी नीतियों को उजागर करती है। भीष्म साहनी सृजित कबीर एक संघर्षशील आम आदमी है, जो उन गरीब जुलाहों की बस्ती में रहता है, जिनके घर में खाने को अन्न का दाना भी नहीं है। जाति बहिष्कृत, आर्थिक रूप से विपन्न, यह वर्ग समाज के उच्चवर्ग के लोगों के साथ-साथ सत्तापक्ष की ज्यादतियों का शिकार है। पंडे-पुजारी, नीच कार्य करके भी पवित्र बने रहते हैं और शूद्र वर्ग को अपवित्र मानकर उन पर अत्याचार करते हैं। कबीर अपने निर्भोक, सत्यान्वेषी और प्रखर व्यक्तित्व के कारण इस अनाचार का विरोध करता है, इसी कारण वह सदा कट्टरपंथियों और मदांध, मानवाधिकार के हंता सत्ताधारियों की घृणा का पात्र बनने को विवश है। उसकी माँ नीमा का विचार है 'मौलवी-मुल्लाओं से भी कभी कोई सवाल पूछता है। वे चिढ़ जाते हैं।'⁶ कबीर अपनी सीधी बानी के कारण जब-तब कुछ कठमुल्लाओं के अत्याचारों का शिकार बनता है और बेगुनाह लोगों को बचाते-बचाते स्वयं लहलुहान हो जाता है। शक्ति-संपन्न लोग उसकी कोड़े से पिटाई करते हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कितने ताले हैं, जिन्हें नीमा इंगित करती है, 'जिन लोगों के हाथ में ताकत होती है, उन लोगों के दिल में रहम नहीं होता, बेटा। तू अपनी औकात देख। तू मेरी बात मान, बेटा, तू सुनकर अनसुनी कर जाया कर, पर मुँह से कुछ न बोला कर।'⁷

पंडे-मौलवी ही नहीं, ताकतसंपन्न सत्ताधारी भी निर्धन, निचले तबकों पर अत्याचार के दोषी हैं और चाहते हैं कि इन लोगों की आवाज़ बंद हो जाए। कबीर के कवित्त गाने पर कोतवाल जो '...बड़ा बेरहम आदमी है, लोगों को जिंदा दफना देता है।'⁸ गरीब भिखारी पर कोड़े लगवाने का हुक्म देता है, जिससे वह वहीं दम तोड़ देता है। परंतु कबीर अपने साथियों के साथ यह ऐलान कर देता है, 'हम स्वयं मिलकर अपना समागम लगाएँगे। कोतवाल तो यही चाहता है कि हम चुप हो जाएँ, हमारी आवाज़ बंद हो जाए। पंडे-मौलवी भी यही चाहते हैं। नहीं, रैदास जी अब हम मिलकर अपने कवित्त गाएँगे, गली बाज़ार में गाएँगे, समगम करेंगे, हम सत्संग लगाएँगे।'⁹

इस प्रकार सत्संग करके कबीरदास मानो गांधीजी की भाँति शांतिपूर्ण ढंग से आतताइयों और मनुष्य के अधिकारों का हरण करनेवाले तानाशाहों को प्रत्युत्तर दे देना चाहते हैं कि दमनकारी शक्तियाँ भले ही मनुष्य की अस्मिता का हनन करने की कितनी ही पुरजोर कोशिश करें, दमितवर्ग उनके आगे घुटने नहीं टेकेगा।

'माधवी' साहनी जी का तीसरा अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं चर्चित नाटक है, जो सन् 1984 ई० में पाठकवर्ग के सम्मुख आया। महाभारत के उद्योगपर्व के 106 वें अध्याय से 123 वें अध्याय में माधवी के आख्यान का वर्णन है।¹⁰ इसी आख्यान पर आधारित यह नाटक स्त्री के

अधिकारों के हनन की करुण गाथा प्रस्तुत करते हुए यह बताता है कि पुरुष मानसिकता किस प्रकार से स्त्री को वस्तु के रूप में मानकर उसे दानस्वरूप एक निर्धन ऋषि को सौंप देती है। माधवी दैवीय गुणों से युक्त है जिसे चिरकौमार्य का वरदान प्राप्त है। उसके विषय में भविष्यवाणी हुई थी कि उसके गर्भ से चक्रवर्ती राजा का जन्म होगा। अतः गालव को माधवी सौंपने का अर्थ है कि वह इस कन्या के बदले में किसी राजा से 800 अश्वमेध घोड़े प्राप्त करें। चूँकि एक साथ 800 अश्वमेध अश्व किसी एक राजा से प्राप्त नहीं हो सकते, अतः एक-एक करके चार पुरुषों की अंकशायनी बनकर माधवी गालव को 800 घोड़े दिलवा देती है और अलग-अलग पुरुषों के चार पुत्रों की जननी बनकर क्षत-विक्षतमना हो जाती है।

माधवी नारी के रूप में पिता से छली जाती है, प्रेमी गालव की महत्त्वाकांक्षा की शिकार होती है, जन्मदात्री होकर भी ममता का गला घोटकर कर्तव्यपथ पर चलने को विवश है, क्योंकि वह पिता द्वारा दान में दी गई वस्तु है, उसकी अपनी कोई इच्छा, मान-मर्यादा नहीं है। महाभारत की माधवी यद्यपि कोई प्रश्न नहीं करती किंतु भीष्म साहनी सृजित माधवी चुप नहीं रहती। वह मानो समस्त पुरुष-समाज पर व्यंग्य करती है। 'यही तो विडंबना है और संसार तुम्हें ही तपस्वी और साधक कहेगा, मेरे पिता को दानबीर कहेगा, और मुझे? चंचलवृत्ति की नारी, जिसका विश्वास नहीं किया जा सकता। यही ना?.....'¹¹

इस प्रकार 'माधवी' नाटक स्त्रियों की सामाजिक दशा और त्रासद स्थिति को दिखाता है, साथ ही आज की स्त्री की अस्तित्व चेतना पर भी प्रकाश डालता है।

सन् 1993 ई० में प्रकाशित 'मुआवजे' नाटक में मनुष्य की स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, लोलुपता, निकृष्ट सोच एवं चरित्रहीनता की पराकाष्ठा को दर्शाया गया है कि सांप्रदायिक दंगों और उसके शिकार लोगों को मिलने वाले मुआवजे को लेकर पुलिस, प्रशासन, राजनेता और व्यावसायिक तबके के लोगों का रवैया कितना स्वार्थी और संवेदनहीन हो जाता है। मुआवजा पाने के लालच में लोग अपने संबंधों तक की बलि चढ़ा देते हैं जो खुद मरना चाहेगा, वह पगलैट ही होगा। अगर वह अभी तक नहीं मारा गया तो चिंता की कोई बात नहीं, हम अब उसे पार लगा देंगे। तुम्हारा मुआवजा खरा कर देंगे। सुन बुढ़ऊ! हम तुझे मुआवजा दे देते हैं, तू उसे मरा हुआ ही समझ।¹²

इस प्रकार नाटक व्यंग्यात्मक शैली में समाज और राजनीतिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार का नग्न रूप सामने लाता है जिसमें गरीब और लाचार तबका पिस रहा है।

रंग दे बसंती चोला (1998) के माध्यम से साहनी जी ने जलियाँवाला बाग हत्याकांड की घटना को पुनर्जीवित कर मानवाधिकारों के बर्बर हंताओं की मानसिकता की पड़ताल की है साथ ही स्वतंत्रता की कामना सँजोए उन क्रांतिवीरों के बलिदान पर भी प्रकाश डाला है जो यह समझ चुके थे कि उन्हें भी शोषण, अन्याय, बर्बरता, अतिक्रमण आदि का विरोध कर यातनामुक्त जीवन जीने का अधिकार है।

नाटक में स्थानीय कालेज का प्रिंसिपल मिस्टर वाथुर मानवाधिकारों का मानो पैरोकार है तथा बर्बरता का विरोधी है। उसका मानना है कि सत्ता का इस्तेमाल दहशियाना ढंग से भी हो सकता है और समझदारी के साथ, विवेक और इंसानी हमदर्दी के साथ भी हो सकता है।¹³ जबकि इर्विंग और जनरल डायर जैसे लोग साम, दाम, दंड, भेद आदि किसी भी उपाय द्वारा

अपना वर्चस्व कायम कर लेना चाहते हैं। इर्विग सत्ताधारी मानसिकता को प्रकट करता हुआ कहता है, कोई भी सत्ताधारी इंसानी हमदर्दी को प्राथमिकता नहीं देगा। हम यहाँ हुकूमत करने आए हैं, किसी की सेवा करने नहीं आए हैं। जिन लोगों पर मैं हुकूमत करता हूँ अगर वे कमजोर होंगे, आपस में बँटे होंगे, एक-दूसरे के खून के प्यासे होंगे, तो मेरे लिए हुकूमत करना ज़्यादा आसान होगा।¹⁴ इसी प्रकार जनरल डायर की साम्राज्यवादी मानसिकता को प्रकट करता अत्यंत सटीक संवाद है। 'मैं हिंदुस्तानियों का मनोबल तोड़ना चाहता था। पूरी तरह से बगावत को कुचल डालना चाहता था। मुझे साम्राज्य को बचाना था।'¹⁶

'आलमगीर' सन् 1999 में प्रकाशित साहनी जी का छठा और अंतिम नाटक है जो औरंगजेब के चरित्र का पुनर्सृजन कर इतिहास के अत्यंत क्रूर एवं आत्मकेंद्रित शासक की मानसिकता की पड़ताल करता है कि वर्चस्व की अंतहीन कामना किसी व्यक्ति को मानवता से किस हद तक गिरा देती है कि वह पिता, भाई, बहन, यहाँ तक की अपनी संतानों को भी निज महत्वाकांक्षा की बलि चढ़ा देता है, किंतु पश्चात्ताप तक नहीं करता, 'हक की लड़ाई में अपने बेटे को भी कुर्बान कर दूँगा।'¹⁶ अंत में वह नितांत अकेला रह जाता है और गहरे महसूस करता है कि सब जा चुके हैं। अकेला मैं पीछे रह गया हूँ। या अल्लाह! ... लगता है ज़िंदगी का सफर एक काफ़िले के साथ शुरू किया था, पर काफ़िला तो दूर निकल गया है और मैं अकेला बियाबानों में भटक रहा हूँ।¹⁷ संपूर्ण जीवन तलवार से शासन करनेवाला एक आततायी बादशाह और क्रूर मनुष्य अंत में किस प्रकार उन्माद का शिकार हो जाता है यह नाटक अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से दर्शाता है कि शक की लड़ाई में औरंगजेब स्वयं को ही समाप्त करने लगता है। शेख बुरहानुद्दीन उसके चरित्र का अत्यंत सटीक विश्लेषण करता है, तुमने दहशत का रास्ता चुना औरंगजेब, अगर खलक की खिदमत का रास्ता चुनते तो तुम्हें कामयाबी मिलती। सच्ची फतह का रास्ता दूसरों को तबाह करने का रास्ता नहीं है।¹⁸

इस प्रकार अपने समस्त नाटकों में भीष्म साहनी मानवाधिकारों के पैरोकार के रूप में खड़े होकर मानो संपूर्ण मनुष्यता को वसुधैव कुटुंबकम् का संदेश देते प्रतीत होते हैं। हानूश का आतताई बादशाह, कबिरा खड़ा बाज़ार में का शोषक वर्ग, माधवी का पितृसत्तात्मक समाज, रंग दे बसंती चोला का इर्विग, तथा डायर, मुआवज़े का सत्तार्तत्र तथा 'आलमगीर' का औरंगजेब भले ही मनुष्यता के हनन के लिए प्रयासरत दर्शाए गए हैं। शोषित वर्ग अपनी अस्मिता को लेकर सजग है। सत्ता पक्ष के अत्याचारों से त्रस्त होकर भी उसमें अपने बचे-खुचे जीवन को संजोने की अभिलाषाएँ शेष हैं। इस संघर्ष में उस शक्तिहीन आदमी की जीत भले ही सुनिश्चित न हुई हो, अत्याचारों के अंत का दृढ़संकल्प अवश्य छिपा हुआ है। इस प्रकार मानवाधिकारों के संघर्ष को साहनी जी ने अपने नाटकों के माध्यम से अत्यंत सफलतापूर्वक चित्रित किया है।

संदर्भ

1. अभियचरण बैनर्जी-स्टडीज इन बंगाल रेनेसां, पृ० 92
2. हानूश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 63
3. वही, पृ० 62
4. वही, पृ० 99

5. कबिरा खड़ा बज़ार में, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 8
6. वही, पृ० 21
7. वही, पृ० 25
8. वही, पृ० 21
9. वही, पृ० 50
10. पल प्रतिपल (पत्रिका) दिसंबर 2005, मार्च 2006, पृ० 139
11. माधवी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 93
12. मुआवज़े, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 12
13. रंग दे बसंती चोला, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 65
14. वही, पृ० 66
15. वही, पृ० 93
16. आलमगीर, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 76
17. वही, पृ० 76
18. वही, पृ० 77

□ 878 बी, स्टाफ क्वार्टर्स
एस० डी० कॉलेज, कैम्पस
साउथ भोपा रोड, मुजफ्फरनगर
मो० 9358915610

दलित साहित्य के प्रतिमान : एक विवेचन

डॉ० जगदीश शरण

हिंदी विभाग

विजयसिंह पथिक राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

कैराना (शामली) उ०प्र०

‘दलित साहित्य के प्रतिमान’¹ डॉ० एन० सिंह की सद्यःप्रकाशित कृति है जिसमें दलित साहित्य की रूपरेखा, उसके विकास-क्रम और विवेचन से संबंधित कुल 16 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय को जिस तरह विस्तार से प्रस्तुत किया गया है उससे डॉ० एन० सिंह की कठोर श्रम-साधना का पता चलता है। यह पुस्तक दलित साहित्य पर शोध करने वाले अध्येताओं और दलित चिंतकों के लिए अत्यंत उपयोगी है।

पुस्तक की विस्तृत भूमिका में डॉ० एन० सिंह ने सर्वप्रथम समस्त दलित जातियों को एकजुट होने का आह्वान किया है। वह लिखते हैं—‘जब तक शूद्र जातियाँ ही आपस में कम-से-कम रोटी का संबंध नहीं जोड़ेंगी, तब तक यह एकता मजबूत नहीं होगी। जब हम आपस में ही ऊँच-नीच के भेदभाव को समाप्त नहीं करेंगे, तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों से इस ऊँच-नीच को समाप्त करने के लिए कैसे कह पाएँगे?’² वृहत् भूमिका का सम्यक् अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि लेखक ने इस पुस्तक की रचना बड़े उद्देश्य को लेकर की है। स्वयं लेखक के शब्दों में ‘हिंदी दलित साहित्य पर वर्तमान में किए जा रहे आक्रमणों तथा दलित-लेखकों के बीच पनपते भ्रमों और उनकी कार्यवाहियों पर दृष्टिपात करने के उपरांत ही मैंने यह ग्रंथ लिखने का निश्चय किया है।’³ निःसंदेह लेखक अपनी उद्देश्य-पूर्ति में सफल हुआ है।

पुस्तक के प्रथम अध्याय में दलित कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, नाटक, आलोचना एवं निबंध का उद्भव एवं विकास प्रस्तुत किया गया है, किंतु इन विधाओं का परिचय और विवेचन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ही हुआ है। दलित-कविता के बारे में डॉ० एन० सिंह यह तो कहते हैं कि हिंदी दलित-कविता मध्यकाल के निर्गुण संत कवि रैदास और कबीर से होती हुई हीरा डोम और अछूतानंद तक आयी है। ... सन् 1914 के बाद भी दलित-कविता कभी लोकगीत के रूप में हो तो कभी रैदास और कभी अंबेडकर के जीवन और विचारों के काव्यात्मक आख्यानों के रूप में निरंतर विकसित होती रही।⁴ किंतु उन्होंने प्रथम हिंदी दलित-कविता किसे माना है, यह नहीं बताया। लगभग यही स्थिति नाटक, कहानी, आलोचना और निबंध के विषय में भी है। हाँ, पहली दलित-आत्मकथा उन्होंने डॉ० भगवानदास कृत ‘मैं भंगी हूँ’⁵ को माना है। इसी अध्याय के अंतर्गत शोध-प्रबंधों पर भी विचार किया गया है।

दूसरे अध्याय 'ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में दलित' में हिंदूधर्म में दलित की स्थिति का विवेचन मनुस्मृति के सूत्रों पर हुआ है। यहाँ डॉ० एन० सिंह अपना मौलिक चिंतन प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि 'हिंदूधर्म की व्यवस्थाओं के अनुसार किसी भी देवता और सम्मान के लिए पुरुष के भी पैर ही स्पर्श किए जाते हैं। फिर ऐसा कैसे हो गया कि ब्रह्मा के उन्हीं पूज्य पैरों से उत्पन्न शूद्र अस्पृश्य हो गया? वैसे भी दुनिया के विकास का इतिहास गवाह है कि मनुष्य चाहे वह दुनिया के किसी भी कोने में पैदा हुआ हो अथवा किसी भी वर्ण का हो, पुरुष उसके जन्म का उपकरण तो है, लेकिन वह स्वयं जन्म नहीं दे सकता। स्त्री के गर्भ से जन्म लेने का भी एक ही रास्ता है, वह भी अपने मुख, बाहु, उरू और पैर से किसी शिशु को जन्म नहीं दे सकती।'⁶

इसी अध्याय में वैदिक युग, सामंती युग, मुगलकाल, ब्रिटिश काल एवं स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय दलित-चिंतन की परंपरा को प्रस्तुत किया गया है। तीसरे अध्याय में दलित-साहित्य की अवधारणा प्रस्तुत कर दलित साहित्य की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। इसी के अंतर्गत दलित-साहित्य के नामकरण, हिंदी और मराठी दलित-साहित्य के आंदोलनों की चर्चा के बाद हिंदी दलित-साहित्य का संक्षिप्त विकास-क्रम प्रस्तुत किया गया है। इस विकासक्रम में डॉ० एन० सिंह संत कवि रैदास की दलित-चेतना को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वह लिखते हैं कि 'सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काम संत रवि रैदास ने किया जिन्होंने अपनी वाणी में सीधे-सीधे वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया है।'⁷

चौथे अध्याय में बौद्ध एवं जैन, सिद्ध और नाथ, संत तथा अंबेडकर साहित्य और विचारधारा को डॉ० एन० सिंह ने दलित-साहित्य का आधार-स्रोत माना है। मध्यकालीन संतों की धार्मिक विचारधारा पर प्रकाश डालते हुए डॉ० एन० सिंह लिखते हैं कि 'संत कबीर, रैदास, पीपा, धन्ना, सहजोबाई आदि ने ईश्वर को अपने मन के अंदर ही ढूँढ़ा और पाया। यह आकस्मिक नहीं था बल्कि एक विवशता थी, क्योंकि हिंदुओं ने इन्हें अपने मंदिरों में जाना तथा अपने धर्म-ग्रंथों को पढ़ना वर्जित कर रखा था। अतः इन्होंने अपने मन को ही मंदिर माना।'⁸

'दलित-साहित्य का विकास' शीर्षक से लिखा गया पाँचवाँ अध्याय पुस्तक का सबसे बड़ा अध्याय है। इस अध्याय में डॉ० एन० सिंह ने सर्वप्रथम हिंदी में दलित-कविता के विकास के अंतर्गत दलित-साहित्य के शीर्ष कवियों माताप्रसाद, राजपाल सिंह 'राज', एन० आर० सागर, लक्ष्मीनारायण सुधाकर, डॉ० दयानंद बटोही, डॉ० सोहनपाल सुमनाक्षर, लालचंद राही, डॉ० सुखवीर सिंह, डॉ० प्रेमशंकर, डॉ० पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, मंशाराम विद्रोही, मलखानसिंह, मोहनदास नेमिशराय, तेजपालसिंह 'तेज', डॉ० धर्मवीर, ओमप्रकाश बाल्मीकि, डॉ० चंद्रकुमार वरठे, अ०ला० ऊके, कैवल भारती, डॉ० सुशीला टाकभौरे, कर्मशील भारती, सूरजपाल चौहान, कुसुम वियोगी, डॉ० एन० सिंह, डॉ० सी०बी० भारती, डॉ० जयप्रकाश कर्दम और डॉ० श्यौराज सिंह 'बेचैन' का जीवन परिचय देकर उनके कृतित्व की संक्षिप्त समीक्षा भी प्रस्तुत की है। इसके साथ ही महत्त्वपूर्ण काव्य-कृतियों का स्वतंत्र मूल्यांकन भी किया है। इन कृतियों में माताप्रसाद का 'दिग्विजयी रावण' खंडकाव्य, डॉ० श्यौराज सिंह बेचैन का 'क्रौंच हूँ मैं' कविता-संग्रह, डॉ० जयप्रकाश कर्दम का 'तिनका-तिनका आग' कविता-संग्रह, नवेदु महर्षि का 'संसद तो सवर्ण है' कविता-संग्रह, एन० आर० सागर का 'आजाद हैं हम', माताप्रसाद मित्र (माताप्रसाद और

माताप्रसाद मित्र दोनों एक ही कवि के नाम हैं) की 'राजनीति की अर्द्ध सतसई' और डॉ० सी०बी० भारती का 'आक्रोश' नामक कविता-संग्रह शामिल है। इसी प्रकार कहानी-संग्रहों में 'सलाम' (ओमप्रकाश बाल्मीकि) 'तलाश' (जयप्रकाश कर्दम), 'पुट्स के फूल' प्रहलादचंद्र दास तथा बांग तथा अन्य लघुकथाएँ (रत्नकुमार साँभरिया) नामक कथा-संग्रहों की विशद विवेचना प्रस्तुत की गई है। उपन्यासों में जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' नामक उपन्यास की समीक्षा की गई है। इस उपन्यास को डॉ० एन० सिंह ने पहला दलित उपन्यास माना है। नाटकों में शिवप्रसन्न दास के 'हरिजन', माताप्रसाद के 'अंतहीन बेड़ियाँ' और डॉ० एन० सिंह तथा ललित मैदोला के 'कठौती में गंगा' नामक नाटकों की विवेचना प्रस्तुत की गई है। आत्मकथाओं के अंतर्गत 'अपने-अपने पिंजरे' (मोहनदास नैमिशराय), जूठन (ओमप्रकाश बाल्मीकि) तथा 'झोपड़ी से राजभवन' (माताप्रसाद) नामक आत्मकथाओं का मूल्यांकन किया गया है। डॉ० एन० सिंह 'अपने-अपने पिंजरे' को पहली दलित आत्मकथा मानते हैं। आलोचना के अंतर्गत 'दलित-विमर्श की भूमिका (कँवल भारती), दलित साहित्य : दशा और दिशा (माताप्रसाद) नामक आलोचना-ग्रंथों की विवेचना की गई है। अनेक दलित साहित्यकारों ने 'दलित साहित्य : चिंतन के विविध आयाम' (डॉ० एन० सिंह) नामक कृति को पहली दलित-आलोचना कृति माना है। अध्याय के अंत में दलित-निबंधों और पत्र-पत्रिकाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। डॉ० एन० सिंह ने 'पत्ते क्यों गिरते हैं' (पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी) को हिंदी दलित साहित्य का पहला ललित निबंध-संग्रह माना है। इस अध्याय को लिखने में डॉ० एन० सिंह की श्रम-साधना की जितनी प्रशंसा की जाए, उतनी कम है। सबसे महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने दलित पत्र-पत्रिकाओं का परिचय देकर किया है।

'दलित-साहित्य की सामाजिक प्रतिबद्धता' नामक छठे अध्याय में डॉ० एन० सिंह ने भारत में उदारीकरण और भूमंडलीकरण के तहत निजीकरण पर भारत सरकार की खिचाई की है और साथ ही शिक्षा के निजीकरण पर 'भोपाल घोषणा-पत्र' पर भी कटाक्ष किया है। इस अध्याय के अंत में दलित-समाज के सर्वांगीण विकास के लिए डॉ० एन० सिंह ने सभी दलित संगठनों से 18 सूत्रीय विकास कार्यक्रमों को लागू कराने पर जोर दिया है। बेशक, ये 18 सूत्रीय विकास कार्यक्रम ऐसे हैं, जिन्हें लागू कर दलित-समाज को सुदृढ़ बनाया जा सकता है। ये कार्यक्रम हैं—दलित बच्चों की सुंदर नामावली प्रकाशित कराना, स्कूल न जाने वाले बच्चों का पता लगाना, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, सफ़ाई पर विशेष ध्यान, शराबबंदी, मांस-भक्षण एवं धूम्रपान निषेध, दहेज-प्रथा का बहिष्कार, स्त्री-शिक्षा पर जोर, बाल-विवाह-प्रथा का विरोध, सांस्कारिक कार्यक्रमों पर अनावश्यक धन खर्च करने का बहिष्कार, अंधविश्वास का विरोध, बौद्धधर्म का प्रचार-प्रसार, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, सेवानिवृत्त दलितों को सुधार-कार्यक्रमों से जोड़ना, शिक्षण-संस्थाओं का निर्माण, दलित-साहित्य के पठन-पाठन का प्रचार, रैदास एवं अम्बेडकर जयंती को कौमी त्योहार के रूप में मनाना और दलित राजनीतिज्ञों को दलित-हितों का प्रशिक्षण देना।⁹

सातवें और नवें अध्याय में दलित साहित्य पर मार्क्सवाद, गांधीवाद और अंबेडकरवाद के प्रभावों की गवेषणा की गई है। मार्क्सवादी विचारधारा से डॉ० एन० सिंह खिन्न नहीं हैं, उन्हें गांधीवाद से परहेज़ है, क्योंकि वह मानते हैं कि 'दलितोद्धार के मार्ग में जो सबसे बड़ी रुकावट थी, वह थीं गांधीवाद की मान्यताएँ। डॉ० अंबेडकर को वह दलित-साहित्य का प्रेरणास्रोत मानते

हैं। उनका मानना है कि 'संत कवि रैदास के बाद डॉ० अंबेडकर ही ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके जीवन और विचारधारा पर हिंदी दलित-साहित्य में सर्वाधिक लिखा गया है और लिखा जा रहा है।' पुस्तक के दसवें अध्याय में डॉ० एन० सिंह दलित स्त्री की स्थिति को सवर्ण स्त्री से कही बेहतर समझते हैं। वह लिखते हैं कि 'दलित-समाज में नारी-पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चलती है, अतः हम कह सकते हैं कि दलित-समाज में स्त्री को समानता का अधिकार प्राप्त है। वह भी खेत में अपने पति के साथ काम करती है, सड़क पर रोड़ी डालती है, भवन-निर्माण में मजदूरी करती है या इसी तरह अनेक काम-झाड़ू लगाने से लेकर मैला उठाने तक के वह करती है। कई बार तो यह भी देखने में आया है कि जब पुरुष शराब आदि के चक्कर में पड़कर बर्बाद हो जाता है तो मजदूरी करके स्त्री ही घर और पुरुष दोनों को सँभालती है। ऊपरी तौर पर देखने से पता लगता है कि दलित-समाज में स्त्री की हैसियत अन्य भारतीय हिंदू समाज की स्त्रियों से कहीं बेहतर है, क्योंकि हिंदू-समाज में औरत का जितना शोषण हुआ है, उतना दुनिया के किसी समाज में नहीं हुआ।'¹⁰

ग्यारहवें अध्याय में डॉ० एन० सिंह ने दलित-साहित्य की राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक मान्यताओं का विवेचन प्रस्तुत किया है। हिंदू मानसिकता को बदलने के लिए डॉ० एन० सिंह दलितों को हाथ में हथियार लेकर संघर्ष करते हुए देखने के पक्षधर नहीं हैं। इसके लिए वह बड़ा ही सरल उपाय खोजते हैं। वह लिखते हैं कि '...यह उत्पीड़न कैसे समाप्त हो? इसके लिए आवश्यक है, दलितों में एक ऐसी समझ पैदा करना, जिससे वे हिंदुओं के साथ 'बारगेन' कर सकें। यह मुख्यतः चुनाव के समय पर किया जाना चाहिए, जब किसी हिंदू के मुक्काबले कोई और मुसलमान, ईसाई, सिक्ख या पारसी खड़ा हो, तब सभी दलित उसे वोट दें तथा दूसरे, यदि किसी हिंदू के खेत या कारखाने में काम करने की बात आए तो दलित विधर्मी के यहाँ काम करने को प्राथमिकता दें। इसका मतलब है हिंदुओं का पूर्ण बहिष्कार, तभी हिंदुओं को अपनी मानसिकता पर पुनः सोचना पड़ेगा और वे तभी इसे बदलने पर विवश होंगे।'¹¹

पुस्तक के बारहवें अध्याय में दलित-साहित्य की भाषा-शैली पर विचार किया गया है। इस संदर्भ में डॉ० एन० सिंह लिखते हैं कि 'जब किसी वर्ग-विशेष से कोई रचनात्मक व्यक्ति साहित्य में प्रवेश करता है तो वह अकेला ही प्रवेश नहीं करता, बल्कि उसके साथ उसका पूरा परिवेश, संस्कार और समाज साहित्य में प्रवेश करता है। इसलिए जब दलित-साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य में प्रवेश किया तो उनके साथ दलित-बस्तियों की सारी सड़ांध और गालियों ने भी साहित्य में प्रवेश किया। जिस प्रकार दग्ध अनुभव दलित-साहित्यकारों को हुए, उनकी अभिव्यक्ति के लिए वैसी ही दग्ध भाषा का भी प्रयोग दलित-साहित्यकारों ने किया। चूँकि आभिजात्य समीक्षकों एवं साहित्यकारों के लिए दलित-संस्कार, गंदी बस्तियों की स्थिति, गलियों में घूमते नंग-धड़ंग बच्चे, ये सब अनजाने थे, इसलिए उन्हें यह भाषा अश्लील लगी। संभवतः उन्हें ये पता नहीं था कि जब पेट भरा हो और व्यक्ति के पास फुर्सत हो, तभी भाषा को कलात्मक बनाया जा सकता है। ...लेकिन अब धीरे-धीरे दलित-साहित्यकार परिष्कृत और प्रांजल भाषा का प्रयोग कर रहे हैं। शैली की दृष्टि से भी दलित-साहित्य महत्त्वपूर्ण है।'¹²

तेरहवें अध्याय में डॉ० एन० सिंह ने दलित-साहित्य में बिंब, प्रतीक, छंद एवं अलंकार-योजना पर विस्तृत विचार प्रस्तुत किए हैं। डॉ० एन० सिंह लिखते हैं कि 'हिंदी दलित-कविता

में ऐसे ऐसे बिंब देखने को मिलते हैं, जो हिंदी साहित्य में शायद ही कहीं देखने को मिलें। प्रतीकों के बारे में उनका कथन है कि 'दलित साहित्य का प्रतीक-विधान भी समय की आवश्यकता पर यथार्थ और सजीव अभिव्यक्ति के लिए ही गढ़ा गया है और निरंतर नए-नए प्रतीक गढ़े-रचे जा रहे हैं। 'दलित कवियों ने दोहा, कवित्त, सवैया आदि छंदों का प्रयोग किया है।' अलंकारों के विषय में डॉ० एन० सिंह दलित साहित्य में सर्वथा एक नवीन अलंकार को जन्म देते हुए लिखते हैं कि 'दलित-काव्य की सहज, सरल और स्पष्ट भाषा में अलंकार कहीं भी दिखाई नहीं देते। दलित कवि अपनी अभिव्यक्ति को धारदार बनाने के लिए आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं। उनकी इस अभिव्यक्ति को अधिक-से-अधिक 'सरलौक्ति' अलंकार ही कहा जा सकता है।'¹³

चौदहवें अध्याय में दलित साहित्य में मिथकीय चेतना पर विचार प्रस्तुत करते हुए डॉ० एन० सिंह ने लिखा है कि 'पुरातन हिंदी साहित्य में धार्मिक मिथकों की रचना करके भारत में दलितों का उत्पीड़न किया गया है।हिंदी के दलित साहित्यकारों ने हिंदू धर्म के लगभग सभी मिथकों पर चोट की है और उन्हें तोड़ा है।'¹⁴ इन मिथकों में डॉ० एन० सिंह ने ईश्वर, पूजा, मंदिर, पुजारी, आत्मा, द्रोणाचार्य, राम आदि को शोषक और शम्बूक, अश्वत्थामा, बाली, बलि, अभिमन्यु, कुंती, सीता, द्रौपदी, शबरी, शूर्पणखा, गोपी आदि को शोषित के रूप में माना है।

पुस्तक के पंद्रहवें अध्याय में दलित-साहित्य के सौंदर्य-शास्त्र पर विचार किया गया है। इस संदर्भ में डॉ० एन० सिंह का दो टूक कहना है कि 'दलित साहित्य का शब्द-सौंदर्य प्रहार में है, सम्मोहन में नहीं। वह समाज और साहित्य में शताब्दियों से चली आ रही सड़ी गली परंपराओं पर बेदर्दी से चोट करता है। वह शोषण और अत्याचार के बीच हताश जीवन जीने वाले दलित को लड़ना सिखाता है, वह सिर पर पत्थर ढोनेवाली मजदूर महिला को उसके अधिकारों के विषय में बतलाता है। उसे धर्म की भूल-भूलैया से निकालकर शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाता है। उसके लिए जिस शाब्दिक प्रहार-क्षमता की आवश्यकता है, वह उसमें है और यही दलित-साहित्य का शिल्प-सौंदर्य है।'¹⁵

पुस्तक का सोलहवाँ अर्थात् अंतिम अध्याय 'दलित साहित्य : उपलब्धि और संभावनाएँ' हैं, जिसके अंतर्गत डॉ० एन० सिंह ने संत कवि रैदास से लेकर आज तक दलित-साहित्य की उपलब्धियों पर विहंगम दृष्टि डालकर दलित-साहित्य में भावी संभावनाओं की तलाश की है। उनकी अपनी मान्यता है कि 'हिंदी दलित-साहित्य की उपलब्धियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं तथा उनका भविष्य बहुत उज्ज्वल है, जिसमें अनेक संभावनाएँ विद्यमान हैं।'

निःसंदेह डॉ० एन० सिंह कृत 'दलित-साहित्य के प्रतिमान' दलित-साहित्य के प्रत्येक पहलू को स्पर्श ही नहीं करती, प्रत्युत उसे इस सलीके से खोलती है कि कोई तथ्य अवगुंठित नहीं रह पाता। अपने इन्हीं गुणों के कारण यह कृति हिंदी दलित-साहित्य के प्रथम इतिहास के रूप में जानी जाएगी।

संदर्भ

1. दलित-साहित्य के प्रतिमान, डॉ० एन० सिंह; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली-110002; प्रथम संस्करण 2012,

2. दलित साहित्य के प्रतिमान: डॉ० एन० सिंह, पृ० 18
3. वही, पृ० 21
4. वही, पृ० 23
5. वही, पृ० 41
6. वही, पृ० 55
7. वही, पृ० 76
8. वही, पृ० 84-85
9. वही, पृ० 220-221
10. वही, पृ० 240-241
11. वही, पृ० 255-256
12. वही, पृ० 263 तथा 268
13. वही, पृ० 273
14. वही, पृ० 280
15. वही, पृ० 290-291

दलितों की वेदना ही दलित साहित्य की जननी है

डॉ० सुधारानी सिंह, डी० लिट्०
वरिष्ठ प्रवक्ता, हिंदी शहीद मंगल पांडे
राजकीय महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय माधवपुरम, मेरठ

दलित शब्द का तात्पर्य है—दमित, दरिद्र या दबा-कुचला, नष्ट किया हुआ, मसला या रौंदा हुआ, उत्पीड़ित और शोषित अर्थात् समाज का वह वर्ग जो सबसे महत्वपूर्ण होते हुए भी सबसे निम्न कोटि का माना गया हो और जिसे उच्चवर्ग के लोगों द्वारा स्वार्थपूर्तिवश ऊपर न उठने दिया गया हो। इसके पीछे वर्णव्यवस्था, जो कर्म के आधार पर निर्धारित की गई थी, काफी हद तक उत्तरदायी है, क्योंकि सामान्य तौर पर यह बात समझ से परे है, कि जिस समाज में प्राणिमात्र में ईश्वरीय सत्ता स्वीकार की जाती है और सभी को एक ही ईश्वर की संतान माना जाता है, वहीं उस समाज में मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद क्यों किया जाता है? हजारों वर्षों से दलितों को शिक्षा, संपत्ति, सत्ता और प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया है। दलित इस व्यवस्था के खिलाफ आवाज़ न उठाए तथा किसी भी तरह की बगावत न करें। इसलिए 'यह व्यवस्था ईश्वर ने निर्मित की है' ऐसा सिद्धांत रखा गया।

संस्कृत को देववाणी मानने के फलस्वरूप शूद्रों के संस्कृत पढ़ने पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। इसी का परिणाम है कि—बाबा साहब अंबेडकर संस्कृत भाषा पढ़ नहीं सके, उन्हें संस्कृत की बजाय पारसी भाषा पढ़नी पड़ी। समाज का उच्च वर्ग यह बात अच्छी तरह से समझता था कि यदि दलितवर्ग शिक्षित एवं जागरूक हो जाएगा तो उसकी दासता नहीं सहेगा। यह सोच समाज में आज भी देखी जा सकती है। उदाहरण के तौर पर 'वर्ष 2005 में उत्तर भारत के गोहाना और 2012 में दक्षिण में सामने आए नाथम कांड में समानता दिखती है। हमलावरों ने लूटपाट के अलावा अपना निशाना उन साइकिलों को बनाया, जिनसे दलित बच्चे स्कूल जाते थे और पाठ्य पुस्तकें व प्रमाण-पत्र भी जलाए गए। स्पष्ट है कि वर्चस्वशाली जातियाँ चाहे दक्षिण की हों या उत्तर की, अच्छी तरह समझती हैं, कि उत्पीड़ित तबके इसी वजह से आगे बढ़ रहे हैं, क्योंकि उन्हें ज्ञान पाने का हक मिल गया है।'² दलित किसी भी प्रकार से आगे न बढ़ने पाएँ इसीलिए यह अमानवीय व्यवस्था समाज के उच्चवर्ग द्वारा लागू की गई। 'शूद्रों के लिए वेदाध्ययन तो मना ही था पर शूद्र वेद सुन न सके या शूद्र के समीप भी वेदाध्ययन के लिए प्रतिबंध था। शूद्र जो आसपास हो तो भी वेदों का अध्ययन, किसी और को भी नहीं करना

चाहिए, क्योंकि शूद्र श्मशान जैसा है-

अथापि यमगीता श्लोकानुदाहरन्ति।

श्मशानमेतत्प्रत्यक्षं ये शूद्राः पादचारिणा

तस्माच्छूद्रः समीचे तु नाधयेतव्यंकदाचन्।

इतनी मनाही के बावजूद यदि शूद्र जानबूझ कर स्मरण करने के लिए वेदपाठ सुने तो उसके कान में सीसा और लाख भर देना चाहिए और यदि किसी तरह से उसने वेद पर अधिकार पा लिया, मतलब शूद्र ने वेद को जान लिया तो उसकी जान ले लेनी चाहिए। उसकी हत्या कर देनी चाहिए, वह वेद को बोले तो उसकी जिह्वा काट लेनी चाहिए।³ दलितों को कोई भी ऐसा कार्य करने की इजाजत नहीं थी, जो उन्हें गुलामी तथा चाकरी के दलदल से बाहर निकालकर स्वतंत्रता की ओर सोचने का अवसर प्रदान करे। उनके लिए वेदों से लेकर स्मृतियों तक में हेय-से-हेय विधान बनाए गए तथा इस घृणित व्यवस्था ने प्राणी को बद से बदतर जीवन जीने के लिए मजबूर किया। द्रष्टव्य है-‘हिंदू धर्मशास्त्रों में शूद्रों के लिए निकृष्ट कार्यों को करके अपने जीवन-निर्वाह करने की धार्मिक आज्ञा दी गई है और इन आज्ञाओं को भगवान का वचन बनाकर समाज में बिना प्रतिकार सामाजिक, धार्मिक-भगवत-वचन करार दिया गया।’⁴

जहाँ एक ओर मनुस्मृति, गौतमधर्मसूत्र, वशिष्ठधर्मसूत्र जैसे ब्राह्मण-ग्रंथों में शूद्रों के लिए घृणित, निंदनीय, अमानवीय तथा प्रतिबंधित कार्य निर्धारित किए गए और करने योग्य कार्यों से अधिक न करने योग्य कार्यों के नीति-नियम मानवता की सारी हदों को पार करते हुए अत्यधिक कठोर बनाए गए, वहीं दूसरी ओर यह बात भी सामने आती है कि धर्म घृणा, द्वेष व ईर्ष्या करना नहीं सिखाता, प्रेम उसका मूल तत्त्व है। जैसा कि प्रेमचंद जी ने भी वर्णित किया है-‘धर्मशास्त्र अहंकार, दंभ और ऊँच-नीच का भेद सिखाते हैं, वह मान्य नहीं हो सकते। यह भेद ही ईश्वर-विमुख है और हमें विश्वास नहीं आता कि धर्मशास्त्र कोई ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं, जो सर्वथा अन्याय संगत और सर्वात्मा की व्यापकता की विरोधी हो। अवश्य ही ऐसी बातें हिंदू धर्मद्रोहियों ने पीछे से बढ़ा दी हैं।’⁵ वास्तव में प्रेमचंद जी का उक्त कथन शत-प्रतिशत उचित है।

दलितों को अपने साहित्य में स्थान देने वाले प्रेमचंद उच्च वर्ग के स्वार्थी और षडयंत्रों की पोल खोलते हुए लिखते हैं, ‘अछूत के पैसे तो आप बेघड़ ले लेते हैं, अछूत कोई मंदिर बनाए, आप दलबल के साथ जाएँगे, मंदिर में देवता की स्थापना करेंगे, तर माल खाएँगे, दक्षिणा लेंगे इसमें कोई पाप नहीं, न होना चाहिए। लेकिन अछूत मंदिर में नहीं जा सकता, इससे देवता अपवित्र हो जाएँगे। अगर आपके देवता ऐसे निर्बल हैं कि दूसरों के स्पर्श से ही अपवित्र हो जाते हैं, तो उन्हें देवता कहना ही मिथ्या है। देवता वह है, जिसके सम्मुख जाते ही चांडाल भी पवित्र हो जाए।’⁶

शूद्रों को नीचा समझने वालों पर कबीर ने ऊँच-नीच, जाति-पाँति का विरोध करते हुए इस भेद को जन्म के आधार पर मानने से इंकार किया। कबीर के अनुसार व्यक्ति करनी से ही ऊँचा बनता है, ऊँचे कुल में जन्म लेने से नहीं। वे कहते हैं-

ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय।

सुबरन कलश सुरा भरा, साधू निंदा सोय।⁷

अर्थात् सोने का कलश यदि शराब से भरा हुआ हो तो भी साधुओं की निंदा का ही पात्र रहेगा। वे आगे कहते हैं कि यदि ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण श्रेष्ठ है, तो वह किसी अन्य मार्ग

से क्यों नहीं आया।

‘जे तू बामन-बामनी जाया तो आन बाट काहे न आया।’⁸

उन्होंने जाति और वर्ग भेद के संबंध में भी अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं-विभेद की समस्त रेखाएँ तो वर्ग स्वार्थ से जन्मी मनुष्य निर्मित हैं। विधाता के यहाँ कोई भेद नहीं-‘एक जाति से सब उत्पन्न को बामन को सूदा।’

परिवर्तन संसार का नियम है। सदियों से शोषित, पीड़ित और दमित निम्न वर्गीय समुदाय में भी समय परिवर्तन और शैक्षिक विकास के साथ परिवर्तनकारी चेतना जाग्रत हुई, जो आंदोलन के रूप में दलित अस्मिता, स्वावलंबन, स्वतंत्रता और न्याय की माँग करते हुए संघर्ष कर रही है। दलित वर्ग ने समय के साथ-साथ अपने आप को पहचानना शुरू कर दिया है। उसके ऊपर उठने और आगे बढ़ने के प्रयासों से उच्च वर्ग बुरी तरह से भयभीत है। यही कारण है कि आज आरक्षण का भी चहुँओर पुरजोर विरोध हो रहा है। आरक्षण दलितों को चाहिए भी नहीं बशर्ते उन्हें हर क्षेत्र में समानता दी जाए। इसी संदर्भ में कालीचरण स्नेही की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

एक बात बताऊँ

समझौता कर लीजिए

आरक्षण आपस में बदल लीजिए

बालकों की तरह न खीजिए

आप मैला ढोइए, कपड़े धोइए, गंदगी में खोइए

फुटपाथ पर सोइए।

जूठन खाइए, झाड़ू लगाइए, बाल बनाइए

पोलिस कीजिए, दान में अगूँठा दीजिए, खेतों में सीजिए

सिर पर मल का टोकरा लीजिए

अपमान का घूँट पीजिए

हमें अपने तिलक, तराजू, तलवार और ताज दे दीजिए

आप अपना आरक्षण आज ही वापस ले लीजिए।⁹

पर शायद यह इतना आसान नहीं, क्योंकि समानता की बात तो दूर उन्हें अपना हक तथा परिश्रम का परिणाम तक नहीं मिल पाता है। ‘किसी भी अकादमिक संस्थान पर निगाह डालने पर पा सकते हैं कि सामाजिक तौर पर उत्पीड़ित तबके के तमाम छात्रों के भेदभाव के कितने तरीके अपनाए जाते हैं। भेदभाव का सिलसिला छात्रों के स्तर पर ही रुकता नहीं दिखता। इन तबकों से आने वाले पात्रता प्राप्त प्रत्याशियों के अध्यापक बनने के रास्ते में भी अनेक बाधाएँ खड़ी की जाती हैं।’¹⁰ इसीलिए कि कहीं एक दलित शूद्र सम्माननीय, शक्तिशाली, योग्य और समाज का पथ-प्रदर्शक न बन जाए। अपनी साधना और ज्ञान के बल पर श्रेष्ठ धनुर्धर बनने वाले एकलव्य के दाहिने हाथ का अगूँठा गुरुदक्षिणा में माँगने के पीछे द्रोणाचार्य की भी शायद यही मंशा रही होगी। लेकिन बदलते हुए परिवेश में दलित उत्पीड़न का रूप भी बदला है। डॉ॰ दयानंद बटोही के शब्दों में-

‘अब दान में अगूँठा माँगने का साहस कोई नहीं करता, प्रैक्टिकल में फेल करता है प्रथम अगर आता हूँ तो छठा या सातवाँ स्थान देता है, जातिगंध टाइटिल में खोजता है

वह आत्मा को बेमेल करता है।¹¹

संघर्ष की यह चेतना सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक हर क्षेत्र में दृष्टिगोचर हो रही है। साहित्य में यही चेतना दलित साहित्य के रूप में क्रियाशील है। दलित साहित्य से तात्पर्य है, 'जिसमें दलितों की आशाओं, आकांक्षाओं और दुःख-दर्द की अभिव्यक्ति, सामाजिक, आर्थिक विषमताओं से मुक्ति, शोषण, उत्पीड़न के प्रति विद्रोह की चेतना, आत्म-सम्मान और स्वाभिमान के साथ जीने की ललक पैदा हो। जो उन्हें संघर्ष के लिए तैयार करने के साथ-साथ उन्हें समाज में अपनी अलग पहचान के निर्माण के लिए प्रेरित करे।'¹² अपने अधिकारों के प्रति सजग होते ही उनके मन में आक्रोश की भावना जाग उठती है। शोषण के विरुद्ध हाथ में हथियार उठाने की शक्ति भी उनमें आ जाती है। दासता से मुक्ति पाने के लिए ये लोग संघर्ष भी करते हैं।

जिस प्रकार सेना में लोग मातृभूमि के लिए लड़ते हैं उसी प्रकार दलित साहित्यकारों को अपनी पहचान के लिए लड़ना पड़ रहा है। राष्ट्रीय स्तर की हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ दलित साहित्य के प्रकाशन को विशेष महत्त्व नहीं दे रही हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इन पत्र-पत्रिकाओं का संचालन एवं संपादन करने वालों में अधिकतर लोग वर्णवादी मानसिकता के हैं। इसलिए दलित साहित्य का तेवर उन्हें आसानी से हजम नहीं होता। पत्र-पत्रिकाओं में जो चर्चा होती है, उसके पार्श्व में अंतर्विरोध है। पहले तो विद्वान, संपादक दलित रचनाकारों की रचनाएँ पढ़ने से ही कतराते हैं, दलित साहित्य के अस्तित्व पर आपत्ति करते हैं। लेकिन दलित साहित्यकारों की लंबी जद्दोजहद ने जो स्थिति बनाई है, उसकी प्रतिक्रिया में वे तमाम विद्वान हिंदी में दलित चेतना की परंपरा सिद्ध करने लगे हैं। ढूँढ़कर ऐसे नाम और रचनाएँ सूचीबद्ध कर रहे हैं, जहाँ दलित चेतना से सहानुभूति तो है लेकिन दृष्टिकोण नकारात्मक है। दलित साहित्य को सही पहचान दलित वर्ग में जन्मे लेखकों ने ही दी है। गैर दलित लेखकों प्रेमचंद, नागार्जुन और अमृतलाल नागर ने भी दलितों की पीड़ा को बहुत गहराई से अनुभव किया और लिखा, किंतु जो पीड़ा अपनी हथेली पर रखे हुए जलते अंगारे की तरह दलित लेखकों ने महसूस की, उसे वे ही व्यक्त कर सकते हैं अन्य नहीं।

संदर्भ

1. दलित दखल डॉ॰ यौराज सिंह 'बेचैन' रजत रानी 'मीनू' पृ॰ 37
2. राष्ट्रीय सहारा (संपादकीय) 12 दिसंबर, 2012
3. हिंदी कविता में दलित चेतना : एक अनुशीलन डॉ॰ जयंती लाल माकड़िया पृ॰ 07
4. हिंदी कविता में दलित चेतना : एक अनुशीलन - डॉ॰ जयंती लाल माकड़िया पृ॰ 06
5. समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद साहित्य डॉ॰ सतीश दुबे पृ॰ 220
6. समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद साहित्य डॉ॰ सतीश दुबे पृ॰ 221
7. नई सदी में कबीर फिरोज खान, पृ॰ 47
8. नई सदी में कबीर फिरोज खान, पृ॰ 47
9. हिंदी कविता में दलित चेतना : एक अनुशीलन, डॉ॰ जयंतिलाल माकड़िया पृ॰ 248, 249
10. राष्ट्रीय सहारा 17 अक्टूबर, 2012
11. हिंदी कविता में दलित चेतना : एक अनुशीलन डॉ॰ जयंती लाल माकड़िया पृ॰ 157
12. मुखर पत्रिका, नई दिल्ली (16-30 अप्रैल, 2012) पृ॰ 5

प्रणय की सशक्त अभिव्यक्ति : इतनी पत्थर रोशनी

डॉ० वंदना श्रीवास्तव

वरिष्ठ प्रवक्ता, हिंदी विभाग

डी०एस०एन० कॉलेज, उन्नाव

‘कविता प्रारंभतः और अंततः एक संवेदनशील के अनुभवों की भाषिक सृजनात्मक दुनिया है।’ चंद्रकांत देवताले जी की कविता-संबंधी यह मान्यता ही उनके मनुष्य बने रहने के उत्कृष्ट मोह का परिचय देती है। इसीलिए आज के अन्य कवियों की तुलना में उनकी कई कविताएँ आज के इस भूमंडलीकरण और बाषारवाद के दौर में भी प्रणय और प्यार की माँग को सुरक्षित रखती हैं। ‘इतनी रोशनी पत्थर’ काव्य-संग्रह में संकलित कविताएँ इसका प्रमाण हैं। सन् 2002 ई० में प्रकाशित देवताले जी का आठवाँ काव्य-संकलन है—इतनी पत्थर रोशनी जिसमें कुल 63 कविताएँ संकलित हैं। इस संकलन की अधिकांश कविताएँ प्रेम व दांपत्य जीवन पर आधारित अथवा उससे उद्भूत हैं। श्री निशिकांत ठकार के अनुसार, ‘यह बात साफ़ है कि इस संकलन में कथित प्रतिबद्धता या मुखर सामाजिक चेतना की कविताएँ नहीं हैं और आत्मकथा को ही काव्यानुभव में तब्दील करनेवाली रचनाओं की प्रधानता है, जिनमें कभी-कभी व्यक्तिगत स्तंभ हावी होकर कविता में कुछ रहस्यों का सिर्फ संकेत देते रहते हैं। इसके बावजूद इन निजी कविताओं में कवि की आत्सजगता से उद्भूत आत्मालोचना मित्र संवाद बनकर हमें उसकी अंतरंग दुनिया में आसानी से ले जाता है और उन्हें आत्मकथा की तरह सुनते हैं।’²

इस संकलन की कविताओं में उन्होंने अपने अनुभूत सत्य को रागात्मकता की डोरी में पिरोने का प्रयास किया है। उनके जीवन का अहम हिस्सा है—अपना परिवार। ‘वे जीवन को उसकी समग्रता और अभिभूतता के साथ निभाना चाहते हैं। व्यक्ति को अकेला और बेबस करने वाले उत्तर आधुनिक समय में देवतालेजी का पारिवारिक और सामाजिक दर्शन उनकी कविता को पाश्चात्य उत्तर आधुनिकता से कहीं ऊपर उठा देता है। वे हमेशा देशी प्रदेशी संस्कृति व पारिवारिक संगठन को उचित महत्त्व देते हैं।’ पारिवारिक विघटन व रिश्तों के संकट के इस समय में भी परिवार और रिश्तों को सबसे प्यादा अहमियत देनेवाले कवि हैं देवताले। इनकी विविध रूपों या पक्षों को काल व समय के साथ मिलाकर उजागर करने की कोशिश की है। पर वे सिर्फ नारी-सहानुभूति के कवि नहीं बल्कि नारी-जीवन के सभी पक्षों पर बल देनेवाले कवि हैं। श्री विष्णु खरे लिखते हैं, ‘चंद्रकांत व्यापक और प्रतिबद्ध अर्थों में इस देश के कठिन समय में अपनी निजी पारिवारिक और सामाजिक पिंदगी भारतीय समाज के अपने विडंबनात्मक जीवन तथा उसमें अपनी और किसी प्रकार से संघर्ष कर रहे अन्य असंख्य लोगों की तनावपूर्ण जिजीविषा के कवि हैं। मानव-जीवन के साथ चंद्रकांत की कविता का रिश्ता सुख-दुख की

संगति का, जागरूकता तथा ऐंद्रियता का है।⁴

देवताले जी की कविता में नारी के प्रति सतत विकासशील दृष्टि मिलती है। स्त्री चंद्रकांत जी के लिए उनके काव्य की ऊर्जा है। उनके काव्य में आम औरत से लेकर वैश्विकयुगीन स्त्री तक के विभिन्न स्वरूप हैं। इसीलिए श्री विष्णु खरे कहते हैं—‘चंद्रकांत के यहाँ स्त्री के तीन रूप हैं—एक वह जिसे चाहा गया और जो अब साथ है। दूसरा वह प्रेम किया गया और जिसके कारण सुखद, त्रासद और सृजनात्मक तनाव पैदा हुई और तीसरा वह विशिष्ट नहीं है, जिसमें भारतीय स्त्री और वैश्विक स्त्री का अद्भुत समन्वय है—औरत का रहस्यमय किसी आदिम देवी-जैसा रूप है। यह उसकी सारी ऐंद्रिकता, त्रासदी, सर्वहारापन तथा औदात्य के साथ।⁵ इतनी पत्थर रोशनी संग्रह इसका प्रमाण है। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ नारी-सौंदर्य, गरिमा, पत्नी के प्रति कवि की भावनाओं और प्रणय पर आधारित हैं। जल समाधि के बाद शीर्षक कविता में कवि स्त्री की गरिमा और उसकी अनुभव संपन्नता को उभारते हुए कहते हैं—

देखा आईने में धुंध का प्रपात
आग की खिड़की से झाँकता गुलाब
तभी जलगर्भ में
बजने लगी बेसुध करने वाली घंटियाँ।⁶

पत्नी का सान्निध्य देवताले की कविता का अहम हिस्सा है। पत्नी उनके लिए संपूर्ण नारी-जाति की प्रतिनिधि है। वे स्पष्ट कहते हैं—

अगर मुझे औरतों के बारे में
कुछ पूछना हो तो मैं तुम्हें ही चुनूँगा
तहकीकात के लिए।⁷

पत्नी उनके लिए सृजन की ताकत एवं प्रेरणा है। ‘पत्नी के साथ जुड़ा गृहस्थ का रूप देवताले जी की कविताओं की आम विशेषता है। इसमें गृहस्थ के रूप का चित्रण है, व्यक्ति-चित्रण नहीं। इसलिए व्यक्ति की समस्याएँ यहाँ परिवार की समस्याएँ हैं। पत्नी की समस्याएँ पति की भी हैं। इसलिए अभिभूतता से बढ़कर इन कविताओं में सहजीवन का दर्शन है।⁸

चंद्रकांत जी ने अपनी पत्नी के साथ सहजीवन की गरिमापूर्ण अभिव्यक्ति इस संग्रह की कविताओं में की है। उन्हें अपनी पत्नी पर पूर्ण विश्वास है। वे कहते हैं—

और यह भी मुमकिन है
कि मुझे खंदक या खाई में कूदने को कहा जाए
मरने के लिए
तब भी तुम ही होगी जिसमें कूदकर
निकल जाऊँगा सुरक्षित दूसरी दुनिया में
और तुम वहाँ भी होगी विहँसते हुए
मुझे क्षमा करने के लिए।⁹

कवि अपनी पत्नी के साथ उसके पास सुरक्षित-सा अनुभव करता है। उनमें प्रेम एक वृक्ष की तरह सुलगता है। उसका मन बेचैन हो उठता है—

बसंत के फेफड़ों में मृत्युगंध की तरह
आधी रात
फटी आँखों में प्रवेश करती है
और तब इजाजत की परवाह किए बगैर
एक सफ़ेद कुत्ते की काली आवाष
पत्थर को चाटती रहती है।¹⁰

कवि प्रेम में अंदर ही अंदर सुलगता रहता है—
पेड़ पर बैठकर कोयल पता नहीं किसे बुलाती है
पेड़ सुलगता रहता है
उसके शब्द मुझ पर पत्थर की तरह बरसते हैं
कभी-कभी लगता है
वह सिर्फ़ मेरा नंबर मिला रही है
जबकि हकीकत यह है
कि मेरा कोई नंबर ही नहीं है।¹¹

व्यक्ति जब स्वयं को अकेला पाता है, तो विभिन्न चिंताओं से उसका मन आंदोलित हो जाता है, और वह दुःख के झंझावातों से घिर जाता है। देवताले जी भी जब स्वयं को अकेला व दुःखी पाते हैं तो उन्हें प्रिय पत्नी का स्मरण हो आता है और उनकी सृजनात्मकता जाग्रत हो उठती है। वे कहते हैं—

मुझे कहीं भी
अकेला नहीं जीने देती
जितनी दूर जाता हूँ
उतनी ही नषदीक होती हो तुम
मुझे कहीं भी
अकेलेपन में मरने तक नहीं देतीं।¹²

इसी प्रकार इसी संकलन की एक अन्य कविता में देवताले जी कहते हैं कि पत्नी की ग़ैरमौजूदगी में मरना भी उनके लिए बेमौत मरने की तरह है—

बेमौत मरने की तरह होगा
तुम्हारी ग़ैरमौजूदगी में
अकेले मर जाना।¹³

उनके जीवन के सुख-दुःख में भाग लेने वाली अपनी संगिनी की चमकती आँखों के कारण सभी बेजान वस्तुओं में वे एक आत्मीयता का स्पर्श ढूँढते हैं। वे कहते हैं कि—

कोई भी चीष तुमसे बढ़कर नहीं
आकाश जिसके भीतर तुम ऐसी नदी
तुममें जलती हुई सुंदरता
तुम्हारी आँच की छाया में
सुस्ताते हुए परिंदे

गाते हुए पत्थर।¹⁴

प्रणय-चित्रों की प्रस्तुति में प्राकृतिक दृश्यों का उपयोग इस संग्रह की अनेक कविताओं की विशेषता है। कवि के लिए पत्नी आकाश के भीतर की नदी के समान है। फिर भी कवि कहते हैं कि—

हवा की खिड़कियों से तकती तुम्हारी आँखें
मुझे ढूँढेंगी आसमानों में
जबकि मैं धड़कता रहूँगा
अपने उन असंख्य हस्ताक्षरों की रोशनी में
जो मैंने तुम पर किए।¹⁵

‘अंतिम प्रेम में’ कविता में कवि इस प्रेम का अगला रूप व्यक्त करता है। यहाँ वह अपनी प्रेयसी को एक सूखे पेड़ की तरह पाते हैं, अर्थात् वह बुढ़ापे की दहलीष पर है—

जैसे कभी-कभी मरने के ठीक पहले
या मरने के तुरंत बाद
कोई अंतिम प्रेम के लिए तैयार खड़ा हो जाता है
मैं इस उजाड़ में इसी तरह खड़ा हूँ
मेरे शब्द मेरा साथ नहीं दे पा रहे
और तुम सूखे पेड़ की तरह सुंदर
मेरे इस जनम का अंतिम प्रेम हो।¹⁶

बुढ़ापे में भी पत्नी की आवाष कवि को नया जीवन और काव्य करने की ऊर्जा उसी प्रकार प्रदान करती है, जैसे पानी की आवाष पतझर से मुरझाए पेड़-पौधों के लिए नई प्णिदगी लाती है। इस प्रेम में ऐंद्रिकता नहीं है। इसी विशेषता को स्पष्ट करते हुए जवरीमल्ल पारख कहते हैं, ‘यह सिर्फ ऐंद्रिकता नहीं है और न ही परंपरागत अर्थ है प्रेम। इन कविताओं के द्वारा कवि हमें अहसास कराता है कि प्रगाढ़ता के आत्मीय क्षणों को जीते हुए किस तरह जीवन के रिक्तानुभवों के बावजूद स्त्री और पुरुष उन पुलों का निर्माण करते हैं, जो जीने के लिए बेहद षरूरी हैं।’¹⁷ यही उनका अंतिम प्रेम है।

देवताले जी का यही प्रेम उन्हें प्रकृति के प्रति भी सह्य और प्रणयी बनाता है। प्रकृति के ऋतु, आकाश, समुद्र, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे सभी कवि की संवेदना से जुड़े हैं। प्रकृति की सुंदरता, उसका हरियाली मानव के जीवन और सृजन में नई उमंग भरती है, कवि प्रकृति की सुंदरता से अभिभूत हो कहा है—

बजते हुए पानी के पठार के
इस बाजू इच्छाओं का जंगल
दूध के पहाड़
दौड़ते खुशबुओं के घोड़े
मैं कब तक पीता रहूँगा
इतनी पत्थर रोशनी
यहाँ चुपचाप।¹⁸

कवि का कहना है कि प्रकृति की सुंदरता को देखकर उसके मन में इच्छाएँ अब जंगल की तरह भड़क रही हैं। इच्छाओं का फेन दूध के पहाड़ के समान है और ये इच्छाएँ खुशबुओं के घोड़े को दौड़ाती हैं।

देवतालेजी फाल्गुन महीने का वर्णन करते हुए कहते हैं कि फाल्गुन में प्रकृति के चराचर में परिवर्तन और अत्युत्साह देखा जा सकता है। यह महीना सभी को अलग-अलग अनुभव देता है। प्रेमियों के लिए यह सपनों का महीना है, तो कवि के लिए यह स्मृतियों का अदृश्य दरवाषा है—

कवि के लिए उजाड़-घूसर में खुलता
मंजरी गंध का अदृश्य दरवाषा
फाल्गुन
तेरी नदी में हर बार
मुझे ले डूबी वे नावें
जिनमें मैं कभी नहीं बैठा।¹⁹

इस प्रकार प्रेम में सुलगते कवि के मन के विविध विचारों के अनेक रंग इस संग्रह की कविताओं की विशेषता है। चंद्रकांत देवताले की प्रेम-कविताओं पर टिप्पणी करते हुए श्री कुमार कृष्ण कहते हैं, 'चंद्रकांत देवताले जी की प्रेम-कविताएँ सामान्य अर्थों में प्रेम-कविताएँ नहीं हैं। इनमें जीवन के जख्मों के बीच दैहिक संबंधों से गुषरते हुए स्त्री और पुरुष का एक दूसरे को पाने का ऐसा अहसास है, जिस पर प्यार की इमारत खड़ी होती है।'²⁰

'इतनी पत्थर रोशनी' काव्य-संग्रह में जहाँ एक ओर चंद्रकांत जी के प्रेम के विभिन्न रागात्मक भावों की कुंजी निहित है, वहीं दूसरी तरफ़ इस संग्रह की कविताएँ स्त्री के विविध रूपों या पक्षों को काल व समय के साथ मिलाकर उजागर करने की कोशिश करती हैं और प्रमाणित करती हैं कि वे सिर्फ़ नारी सहानुभूति के कवि नहीं बलिक नारी जीवन के सभी पक्षों पर बल देने वाले कवि हैं। स्त्री और प्रेम इस संकलन की कविताओं का आधार है और वास्तव में यही दोनों चंद्रकांत देवताले जी की कविता और जीवन की ताकत भी है।

संदर्भ

1. कवि कविता और समय की चर्चा में, मशहूर कवि चंद्रकांत देवताले से बातचीत, चंद्रकांत देवताले की कविता, ऊषस पी०एस०, पृ० 114
2. परछाइयों की आवाष की कविता, निशिकांत ठकार, पृ० 160
3. चंद्रकांत देवताले की कविता, ऊषस, पी०एस० दो शब्द
4. उसके सपने, भूमिका, विष्णु खरे, पृ० 9
5. उसके सपने, भूमिका, विष्णु खरे, पृ० 12
6. जल समाधि के बाद, इतनी पत्थर रोशनी, चंद्रकांत देवताले, पृ० 22
7. तुम वहाँ भी होगी, इतनी पत्थर रोशनी, चंद्रकांत देवताले, पृ० 77
8. चंद्रकांत देवताले की कविता, ऊषस पी०एस०, पृ० 53
9. तुम वहाँ भी होगी, इतनी पत्थर रोशनी, चंद्रकांत देवताले, पृ० 77
10. आसानी से, इतनी पत्थर रोशनी, चंद्रकांत देवताले, पृ० 30

11. पेड़ सुलगता रहता है, इतनी पत्थर रोशनी, चंद्रकांत देवताले, पृ० 79
12. पुणे 7 जून 89 तुम, इतनी पत्थर रोशनी, चंद्रकांत देवताले, पृ० 64-65
13. तुम्हारी ग़ैरमौजूदगी में मर जाना, इतनी पत्थर रोशनी, चंद्रकांत देवताले पृ० 87
14. तुममें जलती हुई सुंदरता, इतनी पत्थर रोशनी, चंद्रकांत देवताले, पृ० 60
15. तुममें जलती हुई सुंदरता, इतनी पत्थर रोशनी, चंद्रकांत देवताले, पृ० 60
16. इतनी पत्थर रोशनी, इतनी पत्थर रोशनी, चंद्रकांत देवताले, पृ० 68
17. लेकिन जो सच है, जवरी मल्ल पारख, पश्यंती, जुलाई-सित० पृ० 44
18. फाल्गुन, इतनी पत्थर रोशनी, चंद्रकांत देवताले, पृ० 21
19. फाल्गुन, इतनी पत्थर रोशनी, चंद्रकांत देवताले, पृ० 74
20. समकालीन कविता का बीजगणित, कुमार कृष्ण, पृ० 87

□के 83 सी आशियाना

लखनऊ 226012

मो० 09415917170

समकालीन हिंदी-कविता की शैलिक संरचना

डॉ० ओमप्रकाश सैनी

एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग
आर०के०एस०डी० कालेज, कैथल (हरि०)

परिवेश का पर्याप्त प्रभाव मनुष्य की कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा पर पड़ता है। परिवेश की सीमा में ही मनुष्य अपनी परिस्थितियों के अनुरूप समाज व चिंतन को विकसित करता है। सामाजिक प्राणी के रूप में वह अपनी परंपराओं, मान्यताओं आस्थाओं आदि को साहित्य के माध्यम से संचित करके वर्तमान का यथार्थ चित्रण करता हुआ भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। परिवेश की यथार्थ स्थितियों से उपजा हुआ साहित्य ही सच्चा साहित्य होता है।

समकालीन हिंदी कविता वस्तुतः एक जनचेतना है, जो समकालीन कवि को मूल्यान्वेषी बनाती है। 'समकालीनता' वास्तव में अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं के साथ उलझना है, जो वर्तमान का सत्य होता है। इससे कटकर कोई भी साहित्यकार स्थायी रूप से जीवित नहीं रह सकता है।

समकालीन एवं समसामयिक शब्द प्रायः पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयुक्त हैं, किंतु सूक्ष्म रूप में इनमें अर्थ-भिन्नता परिलक्षित होती है। समकालीन का अभिप्राय वर्तमान होता है। समकालीन बोध एक समय का बोध है, उस क्षण का बोध है, जिसमें हम जी रहे हैं। वास्तव में समकालीन केवल वही नहीं होता, जो नया होता है बल्कि वह भी होता है, जो समकाल में अर्थवान होता है। इस दृष्टि से कबीर, सूर, तुलसी आदि मध्यकालीन कवि आज भी प्रासंगिक एवं अर्थवान हैं। अतः वे सब समकालीन हैं—प्रायः सभी समकालीन साहित्यकारों ने अपने समय की सामाजिक समस्याओं तथा परिस्थितियों से प्रभावित होकर उन्हें नए दृष्टिकोण के अनुरूप व्याख्यायित तथा रूपायित करने का प्रयास किया है।¹

वस्तुतः प्रत्येक युग अपनी एक विशिष्ट अथवा सामान्य विचारधारा से बँधा हुआ है। युग का संबंध जितना अर्थबोध से है, उससे कहीं अधिक मूल्यबोध से है। डॉ० मिश्र का यह कथन उचित ही है—'युग विभिन्न परिवेशों में विभिन्न मूल्य निर्मित करता है और मूल्यों के कारण वह अपने विभिन्न अर्थों का प्रसार करता है।'²

प्रत्येक युग की अपनी चेतना व अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं। सर्जक कवि परंपरागत धाराओं को पोषित नहीं करता, वह लीक से हटकर नई चेतना के आलोक में नया सृजन करता है। यह सत्य है कि आज का व्यक्ति किसी बात को आसानी से नहीं पचा पाता है। विज्ञान के उदय के कारण ही आज नए कवि में अनास्था का भाव विकसित हुआ है। 'विज्ञान ने विश्वास के स्थान में परीक्षण, श्रद्धा को तर्क, प्रेम को इंद्रिय तृप्ति तथा परंपरा को

विश्लेषण के प्रतिमानों में लाकर खड़ा कर दिया है।’³

विज्ञान में डारविन, आइंसटीन, स्पेंगलर ने मनुष्य की चेतना को आस्तिक संस्कृति से दूरगामी बना दिया है। परिणामस्वरूप विश्व में औद्योगीकरण की प्रवृत्ति का जन्म हुआ। औद्योगीकरण के कारण भौतिकतावादी (पूँजीवाद) सभ्यता का फैलाव हुआ। मानव-मन की गरिमा का हास होने लगा। वह अंतर्द्वंद्व, जटिलता एवं संघर्ष का पर्याय बन गया है। वस्तुतः ब्रिटिशकालीन पराधीनता के बाद लोगों की आशाओं व आकांक्षाओं की सीमा बढ़ी है, वे क्रांतिकारी परिवर्तनों की आशा में थे। द्वितीय महायुद्ध विश्व रंगमंच पर ऐसी घटना थी, जिसने मानव-जीवन को एक नए मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया। 1960 के बाद का दौर अस्थिरता का दौर है। टुकड़ों-टुकड़ों में बँटकर भारतीय राजनीति पदलोलुपता, दिखावटीपन और बड़बोलेपन के सहारे किसी तरह जीवित है। आर्थिक जीवन के यथार्थ पहलू को समकालीन कवि ने बड़ी गहराई से पकड़ा। मध्यमवर्ग पर सर्वाधिक प्रभाव आर्थिक दबाव का है, क्योंकि उसे अपना स्तर बचाएँ और रखने की चिंता है। समकालीन कवि को इस बात की चिंता है कि आज हमारी सांस्कृतिक परंपरा नष्ट होने के कगार पर है। अतः वह खुलकर संस्कृति के नैतिक, सामाजिक व धार्मिक आदर्शों की चर्चा करता है।

समकालीन कविता की वैल्पिक संरचना पर विचार करते हुए कहा जा सकता है, कि यह कविता दुर्बोध है, जटिल है, गहरी है, बहुआयामी है। कविता का शिल्प जैसी माँग कर रहा है, वह उसके अनुरूप नहीं है। इन कवियों के लिए यद्यपि भाषा का महत्त्व सर्वोपरि है। अज्ञेय का मानना है कि काव्य सबसे पहले ‘शब्द’ है और अंत में यही बात बच जाती है, कि काव्य ‘शब्द’ है। कवि के सामने सदैव यही समस्या बनी रहती है, कि वह किन शब्दों का प्रयोग करे जिससे उसकी भाषा प्रभावशाली बनी रहे। कुँवर नारायण विरचित एक प्रसिद्ध कविता है, ‘बात सीधी-सी पर’ में वह कहते हैं-बात सीधी थी, पर एक बार/भाषा के चक्कर में/जरा टेढ़ी फँस गई/उसे पाने की कोशिश में/भाषा को उलटा-पलटा/तोड़ा-मरोड़ा/घुमाया-फिराया/कि बात या तो बने/या फिर भाषा से बाहर आए/लेकिन इससे भाषा के साथ-साथ/बात और भी पेचीदा होती चली गई।’

भाव यह है कि समकालीन कवि भाषा गढ़ने के चक्कर में अपनी सरल बात को उत्तरोत्तर इतना अधिक जटिल बनाता चला गया कि उसकी अभिव्यक्ति होना कठिन हो गया। वास्तव में उसकी भाषा गढ़ी गई, टकसाली भाषा बनकर रह गई। रघुवीर सहाय समकालीन कविता के ऐसे विरल हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं में यथार्थ की ऐसी तमाम तस्वीरें दी हैं, जो हमारे जीवन, जीवन-बोध और काव्य-बोध को बहुत समृद्ध करती हैं। रघुवीर सहाय ने शब्द को जितना अर्थवान बनाया है, उतना किसी अन्य कवि ने नहीं। संभवतः यही कारण है कि रघुवीर की कविता के रामदास और गिरीश के सामने प्रेमचंद का सूरदास और निराला का महँगू याद आता है।’⁴

उन्होंने राजनीतिक और सामाजिक संघर्ष को मानवीय ऊर्जा के लिए अनिवार्य माना और कला, परंपरा, भाषा और शिल्प को इतनी गरिमा दी कि वह किसी के मातहत न हो सके।

रघुवीर सहाय एक स्थान पर कहते हैं, ‘हम दूरदर्शन पर बोलेंगे/हम समर्थ शक्तिवान/हम एक दुर्बल को लाएँगे/एक बंद कमरे में/उससे पूछेंगे तो क्या आप अपाहिज हैं?/तो आप क्यों

अपाहिज हैं?/(कैमरा दिखाओ इसे बड़ा-बड़ा)/ हाँ तो बताइए आपका दुःख क्या है/जल्दी बताइए वह दुःख बताइये/बता नहीं पाएगा।’

‘कैमरे में बंद अपाहिज’ इस कविता के माध्यम से वह बताना चाहते हैं कि कैसे संचार-माध्यम वाले कारोबारियों के लिए अपंग व्यक्ति की पीड़ा भी उत्पाद बन जाती है। यहाँ काव्य-भाषा में, रस की अपेक्षा यांत्रिकता एवं बौद्धिकता का समावेश है।

प्रजातंत्र की तलाश के कवि सुदामा पांडेय ‘धूमिल’ की भाषा बड़ी परिचित और झकझोरने वाली है। भारतीय प्रजातंत्र की बारीकियों का सूक्ष्मता से उद्घाटन करते हुए वे कहते हैं—‘जनतंत्र एक तमाशा है, जिसकी जुबान मदारी की भाषा है।’ धूमिल की ‘मोची राम’ और ‘बीस साल बाद’ जैसी कविताओं में आज के जीवन की असहजता और भयावहता का स्पष्ट चित्रण मिलता है।

श्रीराम शर्मा ‘नवीन’ परिवेश के जागरूक कवि हैं। वे सामान्य जीवन का अत्यंत संवेदना युक्त, यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करने में सफल हैं। उनकी संस्कृत बहुल भाषा सामान्य शब्दों के साथ मिलकर अत्यंत मार्मिक प्रभाव उत्पन्न करती है। जैसे ‘लौट आए थके पाँव अनायास/लौट आई धँसी आँखें/पंक पीड़ित कमला वाली मानसर की सिसकियाँ/लौट आई नसें ठीली/पुरनम धूल की पगडंडियाँ।’⁵

वास्तव में श्रीराम शर्मा उन कवियों में से हैं—‘जिनके पास नई कविता की संपूर्ण शब्दावली, छंद-विधान, प्रतीक-योजना और काव्य-बोध मौजूद है।’⁶

भवानी प्रसाद मिश्र अपनी सादगी, सहजता और ताजगी के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके काव्य में दुरूहता देखने को नहीं मिलती। इन्होंने सरल हिंदी भाषा का प्रयोग करते हुए तत्सम शब्दों के स्थान पर तद्भव और देशज शब्दों का बहुतायत में प्रयोग किया है, लेकिन ये व्याकरण विरुद्ध अशुद्ध भाषा का प्रयोग करते हैं। मिश्रजी के काव्य में विभिन्न छंदों का प्रयोग हुआ है तथापि वे छंदमुक्त कविताएँ भी लिखते हैं। ‘गीत-फरोश’ में व्यंग्य के माध्यम से कवि ने आधुनिक जीवन की विवशता का बड़ा ही सटीक चित्रण किया है—‘जी हाँ हजूर मैं गीत बेचता हूँ/मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ।’⁷

कवि दुष्यंत जनमानस के गजलकार हैं। ‘जलते हुए वन का वसंत’ में कवि ने स्वीकार किया है, ‘मेरे लिए मनुष्य मात्र की अवमानना सबसे अधिक कष्टप्रद है।’⁸

कवि ने सामाजिक विद्रूपताओं, दोहरे व्यक्तित्व, देश, राजनीति आदि विषयों पर तीखा व्यंग्य किया है। ‘एक कंठ विषपायी’ में सर्वहत्तः देवताओं से दो घूँट रक्त माँगता हुआ कहता है—‘आप लोग शासक हैं/और शासकों को कहीं/रक्त की कमी हुआ करती है/आप लोग चाहें तो मेरे लिए/ रक्त का समुंद्र भर सकते हैं।’

नरेश मेहता एक कुशल शिल्पी हैं। उन्होंने काव्य में भाषा-संबंधी अनेक नए प्रयोग किए हैं, जो नई कविता की प्रवृत्ति के अनुकूल हैं। उन्होंने उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर अनेक नवीन शब्दों का निर्माण किया है। अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए कवि ने कहीं-कहीं शब्दों के साथ छेड़खानी भी की है। उन्होंने अर्थपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है तथा साथ में बिंब, उपमान तथा प्रतीकों का नया प्रयोग भी किया है—राज्य या अन्याय/संबंध नहीं होता/सत्ता के गोमुख पर बैठकर/उसके सारे शक्तिजनों को/अपने ही अभिषेक के लिए/सुरक्षित रखना/यह कौन सा/दर्शन

है लक्ष्मण?' ९

कवि ने प्रश्नवाचक वाक्यों, मुहावरों, लोकोक्तियों एवं सूक्तियों के प्रयोग द्वारा काव्य भाषा में चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भाषा शिल्प की दृष्टि से समकालीन कविता जिस काव्यभाषा का व्यवहार करती है, वह न तो अभिजात है और न ही उसे हम कलापूर्ण कह सकते हैं। वह अन्यंत अनौपचारिक और व्यावहारिक है। काव्यभाषा की इस अनौपचारिकता और व्यावहारिकता ने समकालीन कविता को यथार्थ के स्तर पर प्रतिष्ठित किया है। समकालीन कवियों ने अभिव्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुरूप हिंदी की विभिन्न बोलियों से अनेक शब्द लिए हैं। नवीन कथ्य के लिए कवियों ने विदेशी शब्दों के व्यवहार में अपनी रूचि का परिचय दिया है। संस्कृत के शब्दों को काँट-छाँटकर अथवा उन्हें थोड़ा-सा परिवर्तित करके नया आशय देने का प्रयास भी समकालीन कविता की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। नई अथवा समकालीन कविता में बिल्कुल नए अप्रस्तुतों का प्रयोग हुआ है। छंद के संबंध में नई कविता में प्रयोगवाद का ही विकास हुआ है। अर्थ की लय, वृत्तगंधी, गद्य आदि हिंदी कविता के इतिहास में पहलीबार नई कविता के दौर में ही सामने आए। शब्द की लय से आगे बढ़कर अर्थ की लय की स्थापना हुई। अभी तक हिंदी कविता शब्द-संगीत के लिए उपयोगी ही नहीं, अवांछनीय भी है। नए कवियों में बिरला ही कोई कवि मिलेगा जो अपनी कविता गाकर सुनाता हो। वास्तविकता यह है कि अभी तक हिंदी कविता जिस गद्य से दूरी बनाए रहती थी, आज वह उसके काफ़ी करीब है। समग्रतः केवल इतना ही—

मीठी लगने लगी है नीम की पत्ती-पत्ती, लगता है यह दौर साँप का डसा हुआ है।

संदर्भ

1. डॉ॰ हरिचरण शर्मा, नई कविता का धरातल, पृ० 29
2. डॉ॰ हुकमचंद राजपाल, विविध बोध नए हस्ताक्षर, पृ० 10
3. डॉ॰ ओमप्रकाश अवस्थी, नई कविता रचना-प्रक्रिया, पृ० 31
4. डॉ॰ कांतिकुमार, नई कविता, पृ० 193
5. रघुवीरसहाय, कोई दूसरा नहीं (काव्य-संग्रह)
6. आधुनिक काव्य-विवेचना, मानविकी विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
7. भवानीप्रसाद मिश्र, गीत-फरोश (काव्य-संग्रह)
8. दुष्यंतकुमार, एक कंठ विषपायी (प्रबंधकाव्य)
9. नरेश मेहता, प्रवादपर्व (प्रबंधकाव्य)

☐ मो॰ 094665-44566

ई-मेल Sainiop100@gmail.com

महादेवी वर्मा का आधुनिक हिंदी साहित्य को अवदान

एकता जैन

हिंदी साहित्य का आधुनिककाल खड़ीबोली काव्य और विशेषकर गद्य की विभिन्न विधाओं, यथा उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक तथा एकांकी, आलोचना, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, रिपोर्टाज आदि का प्रवेशद्वार है। गद्य के प्रभुत्व के कारण जहाँ आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे गद्य काल की संज्ञा से अभिहित किया, वहीं कविता की दृष्टि से यह काल अत्यंत समृद्ध वैविध्यपूर्ण, शिल्प की दृष्टि से अत्यंत प्रौढ़ एवं समय और परिस्थिति के अनुसार परंपराबद्ध होता हुआ भी परंपरा के स्वस्थ विकास का परिणाम है। आधुनिककाल के आरंभ के संबंध में लगभग सभी विद्वान एवं साहित्येतिहासकार एक मत हैं और इसका समय सन् 1850 ई० अर्थात् भारतेंदुयुग से स्वीकार करते हैं। भारतेंदुयुग में काव्य के क्षेत्र में ब्रजभाषा की प्रधानता थी, परंतु खड़ीबोली में काव्य-सृजन के प्रयोग आरंभ हो चुके थे। स्वयं भारतेंदु ने कुछेक कविताएँ सुंदर और सरल खड़ीबोली में लिखीं, परंतु संकोचवश इसे पूर्णरूपेण अपना नहीं सके। सन् 1900 ई० अथवा 1903 ई० में जब महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन प्रारंभ किया, तबसे लेकर सन् 1920 से 1925 ई० तक का काल द्विवेदीयुग के नाम से जाना जाता है। कविता की दृष्टि से आधुनिक हिंदीकाव्य का यह दूसरा पड़ाव अथवा उत्थान है। कविता की समृद्धता और विविधता के आधार पर यह काल उल्लेखनीय है। इस युग में सभी काव्यरूपों जैसे मुक्तक, खंडकाव्य, एकार्थ काव्य, प्रबंध एवं महाकाव्य तथा गीत, प्रगीतों के दर्शन होते हैं। इस कालावधि के प्रमुख कवियों में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', 'मैथिलीशरण गुप्त', 'नाथूराम शंकर शर्मा', 'श्रीधर पाठक', 'मुकुटधर पांडेय', 'रूपनारायण पांडेय', 'रामनरेश त्रिपाठी', 'गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि का नाम उल्लेख्य है।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति अथवा 1920 ई० के पश्चात् तथा 1936 ई० जब सुमित्रानंदन पंत की कृति युगांत का प्रकाशन होता है, के बीच का समय छायावाद का है। छायावाद आधुनिक हिंदी कविता का उत्कर्ष काल है। आधुनिक हिंदीकाव्य को सुंदर शब्दकोश और कोमल मधुर अनुभूतियाँ छायावाद की ऐतिहासिक देन हैं। इस युग के साहित्यकारों का दृष्टिकोण रोमांटिक होते हुए भी वह अपने भावों की अभिव्यक्ति सीधे न करके प्रकृति के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी इस युग के ऐसे आधार-स्तंभ माने जाते हैं, जिन पर यह छायावादीयुग टिका हुआ है। 'इसी छायावादीयुग ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवना।' महादेवी का छायावाद के क्षेत्र में ठीक उस समय आगमन हुआ, जब वह अपने सौंदर्य, यौवन एवं आकर्षण की चरम-सीमा पर था। यह सौभाग्य निश्चित ही न पूर्ववर्ती छायावादियों को प्राप्त हुआ और न ही परवर्तियों को। इस बात में भी कोई संदेह

नहीं है कि महादेवी के अतिरिक्त छायावाद को अधिक समर्थ अधिकारी आलोचक आज तक नहीं मिल पाया। महादेवी ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिए जो प्राचीनकाल से बिंब-प्रतिबिंब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। इसलिए छायावाद के वसंत-वन की सबसे मधुर, भाव मुखर पिकी 'महादेवी वर्मा' को छायावादी भाव-साधना के युग की प्रेमसाधिका मीरा भी कहा जाता है।

महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य की ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य की भी महान् विभूति हैं। ये एक ऐसी कवयित्री हैं, जिनको कविता ने अपने हाथों से रचा है। महादेवी आधुनिक हिंदीसाहित्य के निर्माताओं में अपना एक विशिष्ट एवं निराला स्थान रखती हैं। 'इस विशिष्टता के दो कारण हैं, एक तो उनका कोमलहृदया नारी होना और दूसरा अँग्रेजी और बँगला के रोमांटिक और रहस्यवादी काव्य से प्रभावित होना। भावना, विचार और चिंतन के क्षेत्र में उन जैसी प्रौढ़ और आत्मविश्वासी नारी का जोड़ मिलना अत्यंत कठिन है। वे आस्था, आनंद और सौन्दर्यमय जीवन की गायिका हैं। उनके समान सरस कल्पना एवं गीत की रचना करने में कोई भी छायावादी कवि समर्थ नहीं है। इसलिए इन्हें आधुनिक कविता कानन की ऐसी कोकिला माना जाता है, जिसके मृदुल कोमल कंठ से शत-शत मधुर गीत फूटकर निकले हैं, जिनकी अश्रुत-पूर्व मधुरिमा से हिंदीकाव्य का समस्त उपवन झंकृत हो उठा। उनका काव्य प्रेम, करुणा, वेदना व पीड़ा की कहानी है और काव्य में आँसू, माधुर्य, आनंद तथा उल्लास उन्हीं लहरों की भाँति है, जो एक ही जल के विभिन्न रूप हैं। वह करुणरस की सबसे अधिक सफल कवयित्री हैं, उन्हींने जीवन के संपूर्ण करुण चित्रों को साक्षात् देखा और उन्हीं अपने आँसुओं से लिखा है। एक अन्य स्थान पर वे लिखती हैं—'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे सुख चाहे हमें मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक पहुँचाने में बाधा उत्पन्न करें, परंतु हमारा एक बूँद आँसू भी हमें जीवन का यथार्थ सिखा जाता है।' अर्थात् महादेवी को वेदना से अथाह प्रेम है और उनके काव्य में वेदना-भाव की सर्वाधिक अभिव्यक्ति हुई है। महादेवी ज्यों-ज्यों काल की सीढ़ियाँ लाँघती रहीं, त्यों-त्यों उनके स्फूर्ति भरे शरीर एवं मानस में एक व्यापक दृढ़ता आती रही। वे जो कुछ सोचतीं, वही लिखतीं, वही करतीं। उनके जीवन तथा काव्य में कहीं भी बनावटीपन नहीं था, बल्कि उनके व्यक्तित्व में जिस सबलता, सफलता एवं आत्मविश्वास की झलक मिलती है, उसी की अनुगूँज उनकी पंक्तियों में सुनी जा सकती है :

‘पथ रहने दो परिचित,
प्राण रहने दो अकेला,
और होंगे चरण हारे।
अन्य हैं जो लौटते दें,
शूल को संकल्प सारे।’

वस्तुतः कभी न हारने वाले चरणों का दावा करने वाली और रास्ते के समस्त कटकों को चुनौती देकर आगे बढ़ जाने वाली इस कवयित्री का व्यक्तित्व इतना सबल है कि यदि उस पर प्रलय भी विस्मित हो तो कोई आश्चर्य नहीं। महादेवी की एक-एक कविता, एक-एक गीत

अपने आपमें अनेक अनमोल मोतियों को छिपाए हुए है। उनकी कविता की प्रत्येक पंक्ति में विरह और वेदना मुखरित होती है और यह सुख का प्रमुख आधार वेदना को ही ठहराती हैं। 'महादेवी का मन क्रमशः व्यक्तिगत पीड़ा को लोक-व्यापी बनाता हुआ दुःख-सुख का सामंजस्य स्थापित करता रहा है।' इनका काव्य वेदना और करुणा से ओत-प्रोत है और वेदना की अभिव्यक्ति उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। कहा जाता है कि महादेवी ने कविता नहीं लिखी है कविता ने महादेवी को लिखा है, क्योंकि 'कविता लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को प्राप्त हुई, वैसी और किसी को नहीं मिली। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की भावभंगिमा। जगह-जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है। उनके स्वाभाविक प्रयास के कारण ही छायावाद अपनी शिशुता त्यागकर साहित्य के धरातल पर स्वतंत्र रूप में खड़ा हो सका है।

चाहे महादेवी का कवयित्री रूप ही पहले प्रकाश में आया, परंतु गद्य के क्षेत्र में भी वे नौसिखिया नहीं हैं। यहाँ उन्होंने अपने काव्यों में नारी की संपूर्ण गरिमा, भावुकता, करुणा, पीड़ा को स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है, वहीं वह गद्यकार के रूप में एक साधारण व्यक्ति से जुड़ी हुई नज़र आई हैं—'महादेवी की दृष्टि बड़ी पैनी है। उन्होंने वस्तुओं, प्राकृतिक दृश्यों, व्यक्तियों तथा ग्रामीणों की भावनाओं को कुशलता से परखा है।' यहाँ तक कि अपने रेखाचित्रों व संस्मरणों के माध्यम से उन्होंने समाज में प्रचलित उपेक्षित दलित, शोषित और पीड़ित व्यक्ति के प्रति मानवीय सहानुभूति व्यक्त की है और समाज की रूढ़ परंपराओं के प्रति आवाज़ भी उठाई है। इस प्रकार अपने पद्य में महादेवी वर्मा जहाँ व्यक्ति केंद्रित दिखाई देती हैं, वहीं अपने गद्य में वे समष्टि से संबंध जोड़ती हुई जान पड़ती हैं। जहाँ उनका पद्य कल्पना-लोक की वस्तु है, वहीं उनका गद्य ठोस यथार्थ जगत् से संबंधित है। जिसमें जन-जन के पीड़ित जीवन का आर्तस्वर है, वह किसी हारे हुए विद्रोही का स्वर नहीं, बल्कि अँगड़ाई लेकर उठने को बेचैन विद्रोही की हुंकार है। यदि पद्य में 'नीर भरी दुःख की बदली' के रूप में महादेवी हमारे सामने आई हैं, तो उनका गद्य चौकाएगा नहीं, अपितु झकझोरकर अस्त-व्यक्त भी कर देगा। क्योंकि इनका गद्य कर्मनिष्ठ, आक्रोशपूर्ण, निर्भय, सहज, संवेदनशील और प्राणों में ओज भरने की प्रेरणा देनेवाला है। एक वाक्य में यही कहा जा सकता है कि कवि रूप में महादेवी जितनी कोमल, करुण और पीड़ित दिखाई देती हैं, गद्यकार के रूप में वे उतनी ही संवेदनशील हैं। यदि महादेवी की काव्य-रचनाओं में उनका आत्मदर्शन मुखरित हुआ है तो गद्य में उनके जीवन-दर्शन ने विकास पाया है। उनके संस्मरण समवित रेखाचित्र 'अतीत के चलचित्र' तथा 'स्मृति की रेखाएँ' इस सत्य के ज्वलंत उदाहरण हैं। महादेवी का काव्य जहाँ पीड़ा-लोक में ले जाकर थपकियाँ देकर सुलाने का प्रयास करता है, वहीं उनका गद्य मुरदे में धूल झाड़कर उठ बैठने की शक्ति संचरित करता है। उन्होंने अपने गद्य के माध्यम से जीवन व जगत् की कठोर वास्तविकताओं के सत्य को उजागर किया है अर्थात् आज के समाज रूपी कच्चे मकान के आँगन को अपने गद्य द्वारा महादेवी सदा लीपकर स्वच्छ और सुंदर बनाती रही हैं। उनके शब्दों में, 'विचार के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अच्छा लगता है, क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं, बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है।' इनका संपूर्ण गद्य मानवता का संचार करने वाला, समानता, जाँति-पाँति का विरोध करनेवाला एवं सामाजिक रूढ़ियों का विरोध

करके जनमानस का पथ प्रशस्त करनेवाला है।

समग्रतः गद्य के माध्यम से महादेवी हमें जीने की कला सिखाना चाहती हैं। 'स्मृति की रेखाएँ' रेखाचित्र में महादेवी ने अपने व्यक्तित्व को इस सीमा तक गुँथा है, कि वह रचना आत्मकथा की सीमा तक पहुँच गई है। इसप्रकार 'महादेवी के संस्मरण और रेखाचित्र सामाजिक पृष्ठभूमि में उभरते हैं, जो बात कवयित्री महादेवी न कह पाई, वह इन संस्मरणों और रेखाचित्र की लेखिका महादेवी ने बड़ी आसानी से कह दी।' महादेवी ने अपने रेखाचित्रों में किसी नेता, ऐतिहासिक व्यक्ति या किसी महान् पुरुष-स्त्री को न लेकर समाज के विपन्न, अनाथ, अछूते, अशिक्षित तथा निम्नवर्ग के व्यक्तियों को ही चित्रित किया है तथा इन चित्रों के द्वारा जीवन को यथार्थ रूप में देखने-परखने और भोगने की जिस प्रवृत्ति का महादेवी जी ने दिशा-निर्देश किया है, उसमें मानव-हृदय की अलग गहराइयों में उतरने और आत्मा को जगाने की अद्वितीय क्षमता है।

विलक्षण बात तो यह है कि न तो उन्होंने उपन्यास लिखा, न कहानी, न ही नाटक फिर भी श्रेष्ठ गद्यकार लेखिका हैं। बिना कल्पनाश्रित काव्य-रूपों का सहारा लिए कोई रचनाकार गद्य में इतना कुछ अर्जित कर सकता है, यह महादेवी के गद्य को पढ़कर ही जाना जा सकता है। भारत की किसी भी भाषा में कोई ऐसा ललित गद्य लिखनेवाला नहीं—जैसी महादेवी। महादेवी की लेखनी में एक कसक और टीस, वेदना और पीड़ा की तीव्रता विद्यमान है। उनकी लेखनी में गद्य किसी क्षेत्र-विशेष तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु यहाँ संस्कृति, देश, भाषा, साहित्य, समाज, नारी-जीवन, राष्ट्रीयता सब कुछ नापा गया है। ऐसा कोई भी विषय नहीं जिस पर महादेवी की दृष्टि न पड़ी हो, उस पर उनकी कलम न चली हो। इनके संस्मरण और रेखाचित्र विषय की स्पष्टता के कारण ही हिंदी का वरदान बन गए। अतः महादेवी ने संस्मरण, रेखाचित्र, निबंध-संग्रह, भाषण-संग्रह इत्यादि के माध्यम से विपुल कथेतर साहित्य हिंदी जगत् को दिया है। महादेवी के गद्य में उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप संस्मरण लेखिका का है। इनके संस्मरण सत्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं। वे एक ऐसी लेखिका हैं, जिन्हें अपने युग के विशिष्ट व्यक्तियों को नज़दीक से देखने और मिलने का अवसर प्राप्त हुआ, जिसके कारण वह उनके जीवन के आचरित आदर्शों और अडिग आस्था से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाईं तथा उनके जीवन को अपने संस्मरण का विषय बनाया। 'चाहे जीवन सामाजिक हो या राजनीतिक, आध्यात्मिक या प्राकृतिक वह विषयों का पुंज होता है और इसमें समता लाने का प्रयत्न जिस व्यक्तित्व ने किया, उसे निश्चित ही संघर्षों से जूझना पड़ता है, विरोधी प्रहार सहन करने पड़ते हैं।' इस प्रकार भयंकर रुकावटों के बीच भी जो अपना अस्तित्व बनाए रखते हैं और जीवन-यात्रा को सुख और आनंद की कीमत पर स्वीकार करते हैं, वही महान् व्यक्ति कहलाते हैं। ऐसे ही महान् व्यक्तियों के जीवन का उल्लेख महादेवी जी ने अपने संस्मरणों में किया है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि आधुनिक हिंदी साहित्य की लेखिका महादेवी में एक कवि, दार्शनिक, चिंतक, समाज-सुधारक के गुण एक रूप हो जाते हैं। आशा-निराशा, जय-पराजय, सुख-दुःख के अनेक क्षणों में भी वे अपने मार्ग से विचलित नहीं हुईं, अपितु इन क्षणों ने भी उनके जीवन पर गहरा प्रभाव छोड़ा। महादेवी वर्मा एक ऐसी साहित्यकार हैं, जो साहित्य के माध्यम से ही साहित्यकारों का अभिनंदन करती हैं, इसका उल्लेख हमें उनकी पुस्तक 'संस्मरण' के माध्यम

से ज्ञात होता है। कुल मिलाकर संस्मरण एवं रेखाचित्र विधा उनके लेखन से समृद्ध एवं प्रौढ़ हुई है और इन विधाओं पर महादेवी ने अपनी विशिष्ट छाप छोड़ी है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आधुनिक हिंदी साहित्य के समाज में महादेवी जैसा कोई उदाहरण विश्व साहित्य के इतिहास के किसी भी युग में, किसी भी देश में शायद ही पाया गया हो। हिंदी साहित्य जगत् में महादेवी वर्मा का स्थान उनका अवदान और परिचय आज किसी का मोहताज नहीं। वे आधुनिक हिंदी साहित्य के स्वर्ण युग अर्थात् छायावाद तथा छायावादयुगीन गद्य-विधाओं के समय की समर्थ लेखिका हैं। वस्तुतः यह भी स्वीकार्य तथ्य है कि उनका गद्य-लेखन भी अपना सानी नहीं रखता। उनकी रचनाओं का अनुशीलन करने से उनके व्यक्तित्व का बहुमुखी रूप प्रकट होता है तथा उनका व्यक्तित्व जितना सरल, कोमल, मधुर और करुण है उनका बहुमुखी साहित्य उतना ही उदात्त, व्यापक, विराट एवं महान् है। ये हिंदी की उत्कृष्ट कवयित्री, कुशल चित्रकार तथा प्रसिद्ध गद्य-लेखिका हैं। ये एक सर्वविदित तथ्य है कि प्रत्येक महान् लेखक एवं साहित्यकार परंपरा से आबद्ध होता है। समसामयिक परिवेश, लेखकों तथा महान् व्यक्तियों से प्रभावित होता है और परवर्ती लेखकों अथवा साहित्य को प्रभावित करता है। महादेवी भी इसमें अपवाद नहीं हैं। साधारण-से-साधारण जन, परिवेश में स्थित पशु-पक्षियों से लेकर युग के महान् व्यक्तियों अथवा विशिष्ट जनों तक उनकी पहुँच हुई है। इनका साहित्य मानवतावाद से परिपूर्ण है, इन्होंने मनुष्य को किसी दूसरे मनुष्य का दुःख समझने की ओर प्रेरित किया, ताकि मनुष्य-जीवन की समस्याओं का समाधान हो सके। इस प्रकार महादेवी हिंदी साहित्य की एक ऐसी प्रमुख कवयित्री एवं गद्य-लेखिका हैं, जिन्होंने हिंदी साहित्य को अमूल्य निधि प्रदान की है।

संदर्भ

1. हुकुमचंद राजपाल, महादेवी का काव्य-सौंदर्य, (पुस्तक सदन, जयपुर, 1978), पृ० 43
2. हिंदी साहित्य कोश (भाग-2) नामवाची शब्दावली, धीरेंद्र वर्मा, (ज्ञान मंडल प्रकाशन, वाराणसी, 1985), पृ० 407
3. गणपतिचंद्र गुप्त, महादेवी : नया मूल्यांकन, (भारतेंदु भवन, शिमला, 1961), पृ० 211
4. गंगाप्रसाद पाण्डेय, महीयसी : महादेवी, (लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969), पृ० 58
5. इंद्रनाथ मदान, महादेवी चिंतन व कला, (राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1967), पृ० 42
6. कुमार विमल, महादेवी के गीत (आलेख), 'हिंदी विद्यापीठ' (पत्रिका), अंक 13, पृ० 15
7. चरनसखी शर्मा, महादेवी का संस्मरणात्मक गद्य, (शोध प्रबंध प्रकाशन, दिल्ली, 1971), पृ० 77
8. पद्मसिंह चौधरी, महादेवी साहित्य का नया दृष्टिकोण, (अपोलो प्रकाशन, जयपुर, 1974), पृ० 56
9. खुशीराम शर्मा, महादेवी वर्मा का गद्य : एक दृष्टि, साहित्य-संदेश (पत्रिका), अंक 1-2, पृ० 46
10. वीरेंद्रकुमार बड़सूवाला, महादेवी वर्मा, (ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली, 1969), पृ० 183
11. संतकुमार शर्मा, राजर्षि का बहुमुखी व्यक्तित्व : नैतिक या राजनीतिक (आलेख), 'सम्मेलन पत्रिका', पृ० 532

□ सुपुत्री श्री नरेश जैन

हाउस नं० 85/14 जैन मौहल्ला, पट्टी

तरनतारन 143416

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के काव्य का शिल्पगत सौंदर्य

दीप्ति गोयल

शोध-छात्रा, हिंदी विभाग

प्रो० आदित्य प्रचण्डिया, डी० लिट्०

शोध-निदेशक, हिंदी विभाग

दयालबाग एजकेशनल इंस्टीट्यूट

(डीम्ड यूनिवर्सिटी), दयालबाग, आगरा

सौंदर्य किसी भी रचना का आत्मतत्त्व है। सौंदर्य से विमुख किसी भी सुंदर कृति की कल्पना करना असंभव है। सौंदर्य व्यक्ति को किसी-न-किसी माध्यम से आकर्षित करता है। यद्यपि सौंदर्य का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसे कम शब्दों में व्यक्त करना मुश्किल है। साहित्यिक दृष्टि से सौंदर्य साहित्य की आत्मा है। यदि सौंदर्य को साहित्य से अलग कर दिया जाए, तो साहित्य मृत शरीर के समान हो जाएगा। साहित्य, जो कि रचनाकार की अभिव्यक्ति का साधन है, वह उसकी अंतश्चेतना की उपज है। साहित्यकार साहित्य को अपनी आवाज़ बनाकर प्रस्तुत करता है। साहित्य के दो पहलू हैं—गद्य व पद्य। गद्य लेखक की सीधी वैचारिक व प्रवाहमान अभिव्यक्ति है, जबकि काव्य में गेयता, सांगीतिक प्रभाव, लयात्मकता आदि समाहित होती है।

काव्य वह विधा है, जिसके बिना प्रत्येक कार्य-आयोजन अपूर्ण है। गीत, गज़ल, कविता, दोहे, मुक्तक, रूबाइयाँ आदि काव्य के भेद हैं। काव्य का श्रवण प्रत्येक मनुष्य को रुचिकर लगता है। अकेले बैठे व्यक्ति को संगति देता है। दूसरी ओर काव्य में शिल्प की चर्चा करना स्वयं में कलात्मक तथ्य को उभारने के समान है। शिल्प किसी भी रचना का वह भाग है, जिसके अंतर्गत रचना को प्रस्तुत करने की विधि का ज्ञान कराया जाता है। शिल्प के माध्यम से हम यह ज्ञात करते हैं कि सर्जक ने अपनी सर्जना में किन तत्त्वों का किस प्रकार प्रयोग किया है? शिल्प के उपादान हैं—भाषा, अलंकार, बिंब, प्रतीक, रस व छंद। इन तत्त्वों के माध्यम से किसी भी रचना में शिल्पगत सौंदर्य का समीक्षात्मक अध्ययन किया जाता है।

साहित्यभूषण डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल सिर्फ एक कवि ही नहीं, अपितु सफल नाटककार, निबंधकार, कहानीकार, बालसाहित्यकार, व्यंग्यकार एवं संपादक भी हैं। उनके व्यक्तित्व व कृतित्व की शृंखला इतनी लंबी है कि उसे संक्षिप्त रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता। व्यक्तित्व के विषय में कहें तो वे स्वभाव से गंभीर, सरल हृदय, उदारमना, कर्तव्यनिष्ठ, सहयोगी व अनुशासनप्रिय हैं। डॉ० अग्रवाल के व्यक्तित्व के विषय में निश्चर खानकाही का कथन है—‘गिरिराजशरण को मैंने जब भी उनके भीतर से टटोलकर देखा, पाया कि उनके भीतर जो

व्यक्ति है, उसमें सामाजिकता, सहयोग, सहानुभूति और दूसरों के प्रति भला की भावना प्रबल है। वे किसी के लिए भी किसी-न-किसी सीमा तक सहायक हो सकते हैं, अवरोधक नहीं। शुभचिंतक हो सकते हैं, हानिकारक नहीं। उनमें दया की भावना है, प्रतिशोध की भावना नहीं है।¹¹

अनेक पुरस्कार व सम्मान से नवाजे गए डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के काव्य का शिल्पगत सौंदर्य निम्नवत् है—

भाषा—भाषा वाणी की शोभा है, विचारों की जननी है। भाषा के द्वारा ही व्यक्ति अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है। डॉ॰ अग्रवाल के काव्य की भाषा खड़ीबोली, तत्सम, तद्भव, देशज, अरबी, फ़ारसी, अँग्रेज़ी, संस्कृत, शब्दावली से युक्त है। कतिपय स्थानों पर लोकोक्ति-मुहावरों व सूक्ति का प्रयोग अभिदर्शित होता है। ग़ज़ल-संग्रहों में अरबी-फ़ारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। यथा—

मुझ-से आवारा परिंदे को यह तोहफ़ा दे गया,
काट डाले पंख, उड़ने की तमन्ना दे गया।

मुनासिब जो हो तो बदलना भी सीखो,
वो पत्थर है जो रुख बदलता नहीं है।¹²

उपर्युक्त उदाहरणों में आवारा, परिंदे, तोहफ़ा, तमन्ना, मुनासिब, रुख, शब्द अरबी फ़ारसी के हैं। तत्सम शब्दों के उदाहरण इनके कविता-संग्रह में दिखाई देते हैं—

द्वेष-दंभ पाखंड
दिशाओं में/ ऐसा विष घोल रहे हैं
अपने फूल, चमन, तरु अपने
अपना उपवन, अपने सपने
अंतर में अंतर पैदा कर
संघर्षों की भाषा के स्वर
ऐसे मिलकर बोल रहे हैं,
जैसे हो संघर्ष सत्या।¹³

इसमें तत्सम शब्द द्वेष, दंभ, पाखंड, विष, तरु, उपवन, संघर्ष, सत्य आदि हैं। तद्भव, देशज, अँग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग कवि की हास्य-व्यंग्य कविताओं में दृष्टिगोचर होते हैं। यथा—

फिर भी लड़के और लड़कियों की फ़ौज
तुम्हारी अंगुलियों पर नाचती है
तुम्हें ही जानती है, मानती है।
एक हम हैं कि
साल-भर क़िताबों का जूस
नोट्स के गिलास में पिलाते हैं,
भाषणों के थर्मस में
परिभाषाओं की कॉफी
प्रतिदिन लाते हैं,

आवश्यकता होते ही

रिकार्ड की तरह धुआँधार बजते हैं।⁵

उक्त उदाहरण में तद्भव, देशज व अँग्रेजी शब्दों का सम्मिश्रण है। ऐसे ही अनेक उदाहरण हैं, जिनमें इन तीनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है। लोकोक्ति, मुहावरे व सूक्ति के उदाहरण मुक्तक, रूबाई व दोहे में अधिक मिलते हैं—

मुहावरा—

बदलाव तेरी आँख से ओझल क्यों था।⁶

नमक छिड़कते घाव पर।⁷

लोकोक्ति—

जल के रस्सी के बल नहीं जाते।⁸

सूक्ति—

साफ़ करो अंतःकरण, त्यागो चित्त-विकार।⁹

अतः डॉ० अग्रवाल के काव्य में भाषा के विविध रूप द्रष्टव्य हैं।

अलंकार—अलंकार काव्य की शोभा में वृद्धि करते हैं। डॉ० अग्रवाल के काव्य में अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, व्यतिरेक, मानवीकरण आदि अलंकारों की छटा दर्शनीय है—

अनुप्रास—

अतुलित, अतुल, अधिक, अमित, अतिशय, अपरंपार,
अतुलनीय, निस्सीम का वंदन बारंबार।¹⁰

यमक—

नज़र पड़े, नज़रें मिलीं, नज़र किया सब प्यार
नज़रों में रक्खा उन्हें, दीन्हीं नज़र उतारा।¹¹

श्लेष—

देह का सूरज भी सच है, मन का सागर भी है सच
सिर्फ़ पैसा सच नहीं, पैसे के बाहर भी है सच।¹²

उत्प्रेक्षा—

आधी रात के अंधे पल ने मानो सब-कुछ नष्ट किया
भोर हुई तो हाथ में मेरे टूटा-फूटा सपना था।¹³

उपमा—

वो हम हैं जो अँधेरे में उजाला ढूँढ लेते हैं
दिए की तरह जलते हैं, सवेरा ढूँढ लेते हैं।¹⁴

रूपक—

कागज़ के कई चाँद उजाले हमने।¹⁵

व्यतिरेक—

जिसे एक बार देखा तो लगा था चाँद भी फीका
सभी चेहरों में हम चेहरा उसी का याद रखते हैं।¹⁶

मानवीकरण—

सिर्फ एक ओस का आँसू नहीं देखा हमने
फूल भी हँसता हुआ सुबह-सवेरे देखा।¹⁷

बिंबगत सौंदर्य—बिंब किसी भी रचना के वे शब्दचित्र होते हैं, जिनके माध्यम से पाठक रचना का आस्वादन करते हुए चलचित्र का अनुभव करता है। डॉ० अग्रवाल के काव्य में चाक्षुष, श्रव्य, गंध, स्पर्श, आस्वाद्य, भाव, प्रेम, व प्राकृतिक बिंब के दर्शन होते हैं। बिंब भेदों के उदाहरण निम्न होते हैं—

चाक्षुष—

दूर तक एक ही तस्वीर नज़र आती है
अप्सरा क्या है, परीलोक की रानी क्या है।¹⁸

श्रव्य—

नदियों की कल-कल
नए-नए पत्तों की मर-मर
और प्रकृति की धड़कन के स्वर
सब खोजते हैं अपने चिह्न।¹⁹

गंध—

चिंता नहीं आँखों में रहो या न रहो, पर
खुशबू की तरह तुम मेरे अहसास में रहना।²⁰

स्पर्श—

तट की छाती से लिपटकर जल की धारा ने कहा
यों तो पानी हूँ मगर चाहूँ तो पत्थर काट दूँ।²¹

आस्वाद्य—

दो घड़ी मिल-बैठने से प्यार बढ़ता है सदा
आए हैं तो बैठिए, जलपान करते जाइए।²²

भाव—

भरा रहे सद्भाव से प्रेम-प्रीति आगार
संकल्पों से पूर्ण हो, मेरा यह घर-वारा।²³

प्रेम-संबंधी—

बाग़-बाग़ दिल हो गया, दिल में बसा सुजान
दिल से दूर न यार हो, ये दिल का अरमान।²⁴

प्राकृतिक—

पेड़ कुछ ऐसे थे जिन पर मेरे सपनों की तरह
टहनियाँ ही टहनियाँ थीं, पर कोई पत्ता न था।²⁵

प्रतीक सौंदर्य—प्रतीक किसी भी अप्रस्तुत प्रसंग को प्रस्तुत के माध्यम से व्यक्त करने का साधन है अर्थात् रचनाकार अप्रस्तुत का वर्णन करने के लिए प्रस्तुत का आश्रय ग्रहण करता

है। डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के काव्य में पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, प्राकृतिक, प्रतीक भेदों के उदाहरण निम्नवत् हैं—

पौराणिक—

गीता और कुरआन लिए, हर दिन लड़ते लोग यहाँ।²⁶

ऐतिहासिक—

इक आम-सा इंसान हूँ, सुकरात नहीं मैं
हाथों में मेरे जहर का प्याला नहीं आता।²⁷

सामाजिक—

खेत खाली पड़े हुए हैं यार
आदमीयत में आदमी बो दो।²⁸

राजनीतिक—

कहने को बहुत तेज चले हैं हम लोग
रफ्तार में तूफ़ान रहे हैं हम लोग।
सच्चाई मगर यह है धरा पर अब भी
चींटी की तरह रेंग रहे हैं हम लोग।²⁹

सांस्कृतिक—

जिस तरफ़ देखो उधर रंगों की बौछारें, दिए!
आपके आते ही दीवाली कहाँ से आ गई।³⁰

आध्यात्मिक—

अरे, अरे तुम्हारी आत्मा सोई हुई है
जो जगा रहे हो
क्यों हमें धोखा दे रहे हो
खुद को ठगा रहे हो
आत्मा सोई हुई है तो
तुम कैसे जागे हुए हो?³¹

मनोवैज्ञानिक—

खुली पड़ी हैं मेज़ पर ये पुस्तकें अतीत की
अभी न खोल खिड़कियाँ कि तेज़ है हवा अभी।³²

प्राकृतिक—

चंदन-वन में रात-भर, ऐसी भड़की आग
क्षार-क्षार जीवन हुआ, भूला राग-विराग।³³

छंदगत सौंदर्य—

रचना में वर्णों और मात्राओं का सुनियोजन छंद है। छंद-विधान के अंतर्गत रचनाकार अपनी रचना को एक निर्धारित क्रम में सजाता है। डॉ० अग्रवाल ने दोहा, रूबाई, मुक्तक, मुक्त छंद, ग़ज़ल छंदों में काव्य सृजन किया है—

दोहा—

ख़त तो भेजा आपने, पर भेजा गुमनाम
एक पहेली बन गया, प्रियवर का पैगाम।³⁴

रूबाई—

किस लोक को जाता है यह रस्ता साधू
क्यों साथ चला ये तेरा साया साधू।
संसार को तू त्याग रहा है लेकिन
साधू को नहीं त्यागती दुनिया साधू।³⁵

मुक्तक—

यह आग है, इसके लिए क्या महल, कुटी क्या?
छप्पर में लगेगी तो हवेली न बचेगी।
दीवार के हर जोड़ की रक्षा है ज़रूरी
इक ईंट जो खिसकेगी तो दूजी न बचेगी।³⁶

मुक्त छंद—

वक्त
कब आता है
आदमी के हाथ में?
आता है कभी-कभी
तो फिसल जाता है
बालू की तरह।³⁷

गज़ल—

गोद में उसकी सिर रखकर, वह नीर बहाना भूल गया
तनहा-तनहा रो लेना अब कितना अच्छा लगता है।³⁸

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के काव्य में शिल्प के विविध उपादानों को सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि से विवेचित करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि उनका काव्य अंतरंग की परछाई है, स्थूल से सूक्ष्म तक की यात्रा है। लेखन में स्पष्टता, गंभीरता है। कथन-शैली में व्यंग्यात्मक रूप से अपनी बात को कहना या लोकोक्ति व मुहावरे के माध्यम से अपनी बात समझाना उनके काव्य की विशेषता है। उनका उद्देश्य मानव-जाति में उम्मीद के दीप प्रज्वलित करना है। आशावाद का दामन थामे हुए उनका यह काव्य-वृक्ष पाठकों के लिए शीतल छाया बनकर साहित्य की वसुंधरा पर दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है।

संदर्भ

1. सं० डॉ० अजय जनमेजय, सफ़र साठ साल का, पृ० 42
2. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, मौसम बदल गया कितना, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 1999, पृ० 39
3. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, शिकायत न करो तुम, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2006, पृ० 47

4. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, अक्षर हूँ मैं, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2008, पृ० 23-24
5. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2007, पृ० 118
6. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के मुक्तक एवं रूबाइयाँ, पृ० 57
7. डॉ० गिरिराजशरण, मुहावरा दोहा, पृ० 4
8. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के मुक्तक एवं रूबाइयाँ, पृ० 10
9. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पर्यायवाची दोहा, पृ० 11
10. वही, पृ० 2
11. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, मुहावरा दोहा, पृ० 12
12. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, आदमी है कहाँ, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2010, पृ० 121
13. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, सन्नाटे में गूँज, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1987, पृ० 95
14. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, रोशनी बनकर जिओ, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2003, पृ० 31
15. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के मुक्तक एवं रूबाइयाँ, पृ० 34
16. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, रोशनी बनकर जिओ, पृ० 120
17. वही, पृ० 144
18. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, भीतर शोर बहुत है, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 1995, पृ० 21
19. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, अक्षर हूँ मैं, पृ० 121-122
20. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, मौसम बदल गया कितना, पृ० 87
21. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, रोशनी बनकर जिओ, पृ० 121
22. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, आदमी है कहाँ, पृ० 129
23. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, भीतर शोर बहुत है, पृ० 69
24. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, मुहावरा दोहा, पृ० 13
25. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के दोहे, पृ० 8
26. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, सन्नाटे में गूँज, पृ० 28
27. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, आदमी है कहाँ, पृ० 91
28. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, भीतर शोर बहुत है, पृ० 34
29. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के मुक्तक एवं रूबाइयाँ, पृ० 57
30. डॉ० गिरिराजशरण, आदमी है कहाँ, पृ० 79
31. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ, पृ० 20
32. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, सन्नाटे में गूँज, पृ० 48
33. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, के दोहे, पृ० 6
34. वही, पृ० 1
35. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के मुक्तक एवं रूबाइयाँ, पृ० 48
36. वही, पृ० 15
37. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, अक्षर हूँ मैं, पृ० 61
38. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, मौसम बदल गया कितना, पृ० 82

लोककवि संत ब्रह्मानन्द

डॉ० उषादेवी

हमारे देश में संतों की एक लम्बी परम्परा रही है। ऋषि-मुनियों की इस धरती पर समय-समय पर अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया और भूले-भटके समाज को सही राह दिखायी। जब भी किसी समाज में बुराइयां व्याप्त हो जाती हैं और वह सत्य, सदाचार का मार्ग छोड़ अन्याय और अधर्म के रास्ते पर चल पड़ता है तो कोई न कोई महापुरुष अवतरित होकर समाज सुधार के लिए आगे आता है। अपने समय से आगे की सोच रखने वाले चिंतक, समाज सुधारक, संत और दूरदर्शी विचारक हमेशा जन कल्याण के लिए अपनी पूरी जिन्दगी होम कर देते हैं। कवि, रचनाकार या साहित्यकार अपने युगीन परिवेश से ही अपनी रचना के लिए विषय वस्तु ग्रहण करता है। कवि या चिंतक अपनी समसामयिक सामाजिक शक्तियों के अन्तर्विरोधों और संघर्ष से रूबरू होता है और उन पर विजय पाकर अपनी रचना से समाज को एक नयी दिशा देता है।

मध्यकाल में ऐसे अनेक संत कवि हुए जिन्होंने तत्कालीन समाज को नयी दिशा दी। भक्तिकाल का समाज उस समय बड़े परिवर्तनों से गुजर रहा था। इस विषय में के. दामोदरन ने लिखा है — ‘भक्ति आंदोलन ने देश के भिन्न-भिन्न भागों में, भिन्न-भिन्न मात्राओं में तीव्रता और वेग ग्रहण किया। यह आंदोलन विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ। किन्तु कुछ मूलभूत सिद्धांत ऐसे थे जो समग्र रूप से पूरे आंदोलन पर लागू होते थे — पहले, धार्मिक विचारों के बावजूद की एकता को स्वीकार करना; दूसरे, ईश्वर के सामने सबकी समानता; तीसरे, जाति प्रथा का विरोध; चौथे, यह विश्वास कि मनुष्य और ईश्वर के बीच तादात्म्य प्रत्येक मनुष्य के सद्गुणों पर निर्भर करता है, न कि उसकी ऊंची जाति अथवा धन सम्पत्ति पर; पांचवें, इस विचार पर जोर कि भक्ति ही आराधना का उच्चतम स्वरूप है; और अन्त में, कर्मकांडों, मूर्ति पूजा, तीर्थाटनों और अपने को दी जाने वाली यंत्रणाओं की निंदा। भक्ति आंदोलन मनुष्य की सत्ता को सर्वश्रेष्ठ मानता था और सभी वर्गगतएं जातिगत भेदभावों तथा धर्म के नाम पर किये जाने वाले सामाजिक उत्पीड़न का विरोध करता था।’¹¹

ठीक यही भावना बीसवीं सदी के आरम्भिक दशक में पैदा हुए संत कवि ब्रह्मानन्द सरस्वती की थी। वे लोक कल्याण के लिए गांव-दर-गांव और शहर-शहर घूमे। 24 दिसंबर, 1908 को कुरुक्षेत्र (अब कैथल जिला) के गांव चूहड़माजरा में पैदा हुए स्वामी ब्रह्मानन्द ने हिमालय में घोर तप करने के बाद सिद्धि प्राप्त कर वापस अपने समाज में लौट आये। आत्म साक्षात्कार के बाद स्वामी ब्रह्मानन्द ने समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का बीड़ा उठाया और पचरंगा झंडा लेकर समाज सुधार और लोक कल्याण के उद्देश्य के साथ वे मैदान में कूद पड़े। उन्होंने समाज सुधार के कार्यक्रमों में शिक्षा के प्रचार को सर्वोपरि रखा। लोक जीवन में शिक्षा को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हुए संत ब्रह्मानन्द ने

गुरु और माता-पिता को सबसे ऊंचा दर्जा दिया। उन्होंने स्वयं ही कहा है —

माता-पिता गुरु, इन तीनों से विद्या शुरू।

इन तीनों को जो फटकारे, वे फिरते हैं मारे मारे ॥

ब्रह्मानन्द जी करें विचार, इनके बिना न नैया पार।

जो तुम चाहो भव से तरना, ले लो ऊँ गुरुजी की शरणा ॥²

स्वामी ब्रह्मानन्द ने शिक्षा के व्यवहारिक पक्ष पर जोर दिया। वे अक्षर ज्ञान से ज्यादा संस्कारों पर बल देते थे। अगर व्यक्ति अपने माता-पिता और गुरु का निरादर करता है और उन्हें फटकारता या नकारता है तो वह ज़िन्दगीभर मारा-मारा ही फिरेगा। इन तीनों के बिना न तो इस लोक में हमारी कोई गति है और न ही हम भवसागर पार कर सकते हैं।

लोक कवि संत ब्रह्मानन्द आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा पद्धति को भारतीय समाज और परिस्थितियों के अनुकूल नहीं मानते थे। लार्ड मैकाले द्वारा तैयार की गयी शिक्षा पद्धति केवल नौकरी करना और उदरपूर्ति करना ही सिखाती है। केवल 'बाबू' पैदा करने वाली यह शिक्षा आज के भारत को उसकी जड़ों से काट रही है। हमारी सभ्यता और संस्कृति की अनदेखी करने वाली यह विलायती शिक्षा पद्धति हमें हमारी परम्परा से काट रही है। उन्होंने पूरी दुनिया में समानता की वकालत करते हुए सभी के लिए रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य पर बल दिया। संत ब्रह्मानन्द ने प्राचीन ऋषि-मुनियों की सांस्कृतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक परम्परा को फिर से पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से गुरुकुलों और आश्रमों की स्थापना की। उन्होंने उपेक्षित ग्रामीण जनता को नया जीवन प्रदान करने के लिए कई पाठशालाएं भी खोलीं। जींद, सफीदों, जौली, पिंडारा आदि में ये पाठशालाएं खोली गयीं। इन सभी पाठशालाओं में विशेष रूप से यह ध्यान रखा गया कि आत्मज्ञान संबंधी शिक्षा आवश्यक है, केवल वर्ण ज्ञान की शिक्षा मुख्य नहीं है।³

लोक कल्याण और लोकोपकारी कार्यों की इस परम्परा को और आगे बढ़ाते हुए संत ब्रह्मानन्द ने करनाल जिले के फफड़ाना, दुपेड़ी, जयसिंहपुरा, जबाला गांवों के मध्य असंध के पास जंगल में गुरुकुल ओ३मपुरा की स्थापना की। काफी समय ब्रह्माचारियों को इस गुरुकुल में वैदिक शिक्षा प्रदान की, परन्तु इस कार्य में कोई बहुत तीव्रता और परिणाम आशानुरूप न आते देख स्वामी जी ने इसका परित्याग करना ही बेहतर समझा। स्वामी जी चाहते थे कि वे आम जन को जल्दी जागृत किया जाये, उसके लिए आपने बहुत से मार्ग अपनाये, जिनमें अनेक विघ्न बाधाएं आती रहीं, परन्तु आप अविचल रहे।⁴

लोककल्याण की भावना को लेकर ही संत कवि ब्रह्मानंद ने जगह-जगह आश्रमों का निर्माण कराया। उन्होंने आने अनुयायियों व शिष्यों के लिए आश्रमों की आवश्यकता को समझते हुए फतेहपुर पूंडरी आश्रम की पहले पहल स्थापना की। इसके बाद मुंदड़ी आश्रम, बनी आश्रम, देहरादून आश्रम, लालडू आश्रम, हरिद्वार में भी आश्रम बनाये।

संत ब्रह्मानंद जी ने भी सतगुरु ब्रह्मानंद पयासा, श्री सतगुरु ब्रह्मानंद ब्रह्म विचार, श्री सतगुरु ब्रह्मानंद नीति विचार, श्री सतगुरु ब्रह्मानंद शरीरकोपनिषद् की रचना की। इन सभा ग्रंथों में उन्होंने लोकमंगल की भावना को प्रमुखता दी। वे लोक के बीच में रहकर उनके कल्याण की मंगलकामना करते थे। लोकमंगल के लिए दया और करुणा का महत्व है। अहिंसा के मार्ग पर चलकर जनहित की भावा, करुणा और प्रेम की भावना की वरीयता देने वाले संत ब्रह्मानंद शिक्षा के प्रसार

और समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने के जबरदस्त समर्थक थे। उन्होंने ओ३म संयुक्त पंचरंगे झंडे के माध्यम से धर्म प्रचार करते हुए मानव समाज को जागृत करने के लिए अथक प्रयास किया। यह पंचरंगा झंडा पंचभूतों का प्रतीक है। इन पंचभूतों से आगे एक सूक्ष्म जगत है, उसमें प्रवेश करने का मानव का उद्देश्य है। ब्रह्मानंद पचास में उन्होंने आरंभ में ही लिखा है :-

हमारा पंचरंगा झंडा पंचायती।
अखिल विश्व को देवे आजादी ॥ (5)

इनका पंचरंगा झंडा पांच रंगों-पीला, सफेद, लाल, हरा, काला क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश का द्योतक है। इन पांचों के मध्य स्थित ओ३म-ब्रह्म अर्थात् विशुद्ध जीवात्मा का प्रतीक है। श्री असीमानंद ने इसी संबंध में लिखा है—‘झंडा किसी भी जाति के उत्थान और पतन की महत्ता का प्रतीकात्मक घोष करता है। मानव क्या, सृष्टि ही क्षितिज, जल, पावक, गगन, समीर के अणु-परमाणुओं से बनी है। (6)

सृष्टि रचना में पांच तत्वों के महत्व को सभी मनीषियों और संतों ने भी स्वीकार किया है। इस संदर्भ में कबीर आकाशादि पंचभूतों की उत्पत्ति ब्रह्म से ही मानते हैं :-

पंचतत्त्व अविगत के उतपनां, एके किया निवासा।
बिछुरे तत फिर सहजि समानां,
केख हनीं रही आसा ॥ (7)

स्वामी ब्रह्मानंद जी द्वारा दिये गये पंचरंगा झंडे के पांचों रंग-पंचतत्त्व, पंच तन्मात्राओं, पंचगुण, पांच ज्ञानेंद्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों, पंच प्राण, पांच उपप्राया, पंच केश, पंच यम-नियम, पांच क्लेश, पांच वृत्तियां, पांच चित्र भूतियां, पांच महायज्ञ, पंच स्वर, पांच शत्रुओं आदि के भी प्रतीक हैं। (8) इतना ही नहीं यह पंचरंगा झंडा हिंदू-मुस्लिम-सिख-ईसाई, जैन-बौद्ध धर्मों की पारस्परिक एकता, सद्भाव और विश्वशक्ति का परिचायक भी है।-

हिंदू-मुस्लिम-सिख-ईसाई।
जैन-बौद्ध सब करे कविताई।
भूले-बिसरे हैं सब भाई।
ब्रह्मानंद दे सबकी दुहाई ॥ (9)

अपने सभी ग्रंथों में संत ब्रह्मानंद ने बाह्यआडंबरों का खंडन किया और आचरण की शुद्धता पर बल दिया। वे सत्यता और स्पष्टता के पक्षधर थे। बाल-विवाह, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह मृत्युभोज जैसी सामाजिक बुराइयों को दूर करने पर विशेष बल देते थे। वे किसी को भी कोई उपदेश देने से पहले उस पर स्वयं आचरण करने में विश्वास रखते थे। उनका मानना था कि कोई भी उपदेश देने से पहले उस पर स्वयं अमल करना जरूरी है वरन् जनता पर उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। वे मानते थे कि—

बदल दे सारी दुनिया को बदलना ही तेरा काम है।
सबसे पहले आप बदल जा इसी में तेरा नाम है ॥ (10)

स्वामी ब्रह्मानंद जी ने सामाजिक रूढ़ियों, ढोंग और सब प्रकार की फिजूलखर्ची रोकने के लिए स्थान-स्थान पर उपदेश दिये। वे मनुष्य के सद्आचरण और सच्चरित्र होने के साथ-साथ अपने आस-पास के पर्यावरण की शुचिता बनाये रखने पर भी खास जोर देते थे। उन्होंने पाठशालाओं, आश्रमों,

गुरुकुलों में पौधरोपण की परंपरा आरंभ की। वे बाह्य और आंतरिक शुद्धि पर विशेष बल देते थे और स्वच्छता को ईश्वर का ही स्वरूप मानते थे।

शरीर शुद्ध वस्त्र शुद्ध बर्तन शुद्ध स्थान।
 विचार शुद्ध मन शुद्ध बुद्धि शुद्ध मकान ॥
 जल शुद्ध अन्न शुद्ध दूध घी शुद्ध।
 अग्नि शुद्ध पृथ्वी शुद्ध आकाश शुद्ध ॥
 प्राण शुद्ध हवन शुद्ध सामग्री शुद्ध।
 लोक शुद्ध परलोक शुद्ध ॥ (11)

वे पीपल, वट, नीम और आम जैसे पेड़ों के संरक्षण को विशेष महत्व देते थे। तुलसी (वृंदा) से उनका विशेष लगाव था। प्रत्येक घर में तुलसी का पौधा लगाने का उपदेश देते थे क्योंकि तुलसी बहुत ही गुणकारी और स्वास्थ्यवर्धक मानी जाती है।

‘ श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा ’ में संत कवि ब्रह्मानंद ने वेद-वेदांत के सार को लोक शैली में दिया है। ध्वज, ओंकार महिमा, सद-उपदेश, गीता का तत्व, अपने को पहचानो, कर्म विवेचन, श्रद्धांजलि, अर्थशास्त्र का तत्व, तिथि नक्षत्र देवता विचार, योग-दर्शन विचार, वेद-वेदांत एवं संस्कार, न्याय दर्शन सार, ब्रह्म का स्वरूप, मैं कौन हूँ, ओ३म निरूपण, ब्रह्मानंद आराम आदि शीर्षकों से अपने आत्मानुभवों को व्यक्त किया है। इसी प्रकार ‘ श्री सतगुरु ब्रह्मानंद ब्रह्म विचार ’ में उन्होंने ‘ ब्रह्म ’ की अनुभूति पर विचार किया है। इस रचना में वेदांत एवं दार्शनिक चिंतन की गहरी छाप मिलती है।

‘ श्री सतगुरु ब्रह्मानंद नीति विचार ’ में सं ब्रह्मानंद ने कुछ सूक्तियां देते हुए नीति शास्त्र का वर्णन किया है। उन्होंने शुक्राचार्य, बृहस्पति, चाणक्य और विदुर नीति का अध्ययन किया था। समाज को व्यवहार कुशल बनाने की गरज से उन्होंने कुछ सूक्तियां भी दी। इसी तरह ‘ श्री सतगुरु ब्रह्मानंद शरीरकोपनिषद् ’ में वेद और उपनिषदों के मंत्र समाविष्ट हैं। उन्होंने तपस्या करके आध्यात्मिक शक्ति का अर्जन किया और उस अर्जित शक्ति को लोकोत्थान के लिए लगाया। उन्होंने नारी उत्थान और गौ रक्षा के लिए प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने सामाजिक पिछड़ापन दूर करने, ग्रामीण जनता की पीड़ा को मिटाने के लिए शिक्षा के प्रचार को ही मार्ग चुना और इसके लिए गुरुकुल ओ३मपुरा तथा आश्रमों की स्थापना की। उन्होंने पचरंगे झंडे को लेकर संसार को कल्याण का मार्ग दिखाया और भूली भटकी जनता को सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया तथा अपना ‘ ब्रह्मानंद ’ नाम सार्थक किया। (12) वस्तुतः संत ब्रह्मानंद सही अर्थों में लोक को समझने वाले, उसका भला चाहने वाले और उसके लिए निरंतर प्रयासरत रहने वाले संत कवि थे।

संदर्भ

1. के. दामोदर; भारतीय चिंतन परम्परा, पृष्ठ 330
2. ब्रह्मानन्द सरस्वती, श्री सतगुरु ब्रह्मानन्द पचासा, चौहान प्रिंटिंग प्रेस, पूंडरी, पद 65, पृष्ठ 3
3. पं. विद्यानिधि शास्त्री, श्री गुरु ब्रह्मानन्द स्तोत्रम, पृष्ठ 25
4. श्री जगतगुरु स्वामी ब्रह्मानन्द विद्या निकेतन स्मारिका, 1966 के स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती की साधना लेख से उद्धृत।
5. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासर, सप्तम संस्करण-1974 पृष्ठ 9
6. वही, असीमानंद मंबई द्वारा लिखित भूमिका से।

7. श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 80
8. संत जगदीशानंद ओ३म संयुक्त पचरंगा झंडा ही क्यों ? पृष्ठ 39-51
9. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, सप्तम संस्करण 1974, पृष्ठ 26
10. वही,
11. वही, पृष्ठ 468
12. डा. बाबूराम, संत शिरोमणि ब्रह्मानंद सरस्वती, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, पृष्ठ 54

□ मकान नंबर 3011, ट्रिब्यून कालोनी
सेक्टर 29 डी
चंडीगढ़

सुदर्शन रत्नाकर का काव्य-शिल्प

डॉ० रीटा खर्ब

‘शिल्प’ शैली का ही एक अंग है। प्रत्येक साहित्यकार के लिखने का अपना नज़रिया और शैली है। अतएव उसकी शैली में उसके व्यक्तित्व की छाप होती है। धीरेन्द्र वर्मा ने शैली के संदर्भ में लिखा है कि ‘शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है, जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति के संप्रेषण का सशक्त एवं सार्थक माध्यम हो, शिल्प कहलाता है।’ ‘शिल्प’ शब्द को अँग्रेज़ी में ‘टेकनीक’ कहा जाता है, बृहत् हिंदी कोश में शिल्प का शाब्दिक अर्थ है—‘किसी चीज़ को बनाने या रचने का ढंग अथवा तरीका।’² डॉ० ओम शुक्ल ने शिल्प को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ‘अपनी मनोगत भावनाओं को स्थापित करने के लिए कलाकार जो विधि, ढंग या तरीका अपनाता है, वही रूपयित विधि उस कला की शिल्प-विधि के नाम से प्रख्यात हो जाती है।’³ डॉ० जे०बी०बेट के मतानुसार ‘किसी कला अथवा व्यवसाय को शिल्प की संज्ञा दी जा सकती है।’⁴ अँग्रेज़ी में ‘टेकनीक’ शब्द के लिए शिल्प, ढाँचा, रूप आदि पर्यायवाची शब्द मिलते हैं। इनमें सर्वाधिक प्रयोग रूप का ही किया जाता है। रूप शब्द का संबंध ‘रूप’ धातु से है, जिसका अर्थ होता है—बनाना या गढ़ना।⁵ डॉ० रामेश्वरलाल खंडेलवाल के मत में रूप शब्द प्रायः सीमित व व्यापक दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त होता है। सीमित अर्थों में वह काव्य या साहित्य में अभिव्यक्ति पक्ष मात्र का ‘जिसमें ढाँचा आकार और भाषा, छंद, अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति सब-कुछ समाविष्ट हो जाते हैं’ द्योतक है।⁶ प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तु का मानना था कि ‘रूप केवल आकार ही नहीं अपितु आकारक है। वह केवल ढाँचा या चरित्र नहीं है बल्कि वह ढाँचागत पद्धति है, जो चरित्र की सृष्टि करती है।’ कहने का तात्पर्य यही है कि किसी भी विषय अथवा कथ्य को कहने या अभिव्यक्ति देने के लिए जो विधि, टेकनीक, रीति अथवा शैली अपनाई जाती है, वही शिल्प-विधि है। शिल्प के अंतर्गत भाषा, छंद, अलंकार, बिंब, प्रतीक, रस और गुण-दोष आदि तत्त्व आते हैं। किसी भाव या विचार को एक निश्चित रूप एवं आकार देने के लिए जो विधान प्रस्तुत किया जाता है, वही किसी कला-विशेष की शिल्प-विधि कहलाएगी।

सुदर्शन रत्नाकर की कविताओं में उनके संवेदनशील भाव, जीवन की विडंबना, निराशा, दुःख, संकल्प, विकल्प, आशा एवं विश्वास के विविध उद्गार मिलते हैं। मानव-जीवन से संबंधित गहरे प्रश्नों की अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। इन कविताओं में विविध रंगों, विचारों और चिंतन के दर्शन होते हैं। वे कहती हैं कि आँखें बहुत से दर्द देखती हैं, लेकिन कुछ दर्द मन पर बोझ बन जाते हैं। जो सहे नहीं जाते और मवाद की तरह बह निकलते हैं। कविता इसी दर्द की अभिव्यक्ति है, दर्द जो अपना भी है और दूसरों का भी। यह दर्द कई रूपों में जन्म लेता है,

लेकिन अनचाहे दर्द का अहसास जब सालता है तो कविता झरने की तरह फूट पड़ती है। ऊँची पहाड़ियों को पार करती, गहरी खाइयों को लाँघती सपाट मैदान में बहती है। इसमें प्यार की मिठास है, रिश्तों की टूटन का अहसास है। कहीं बेबसी की पुकार है तो कहीं नवयुग के निर्माण का संदेश है। उनकी कविताओं की भावभूमि भी यही है, जो केवल उनकी अंतश्चेतना में छुपे दर्द को ही प्रदर्शित नहीं करती, अपितु संपूर्ण नारी-जगत् की पीड़ा को मुखरित करती है। उसकी मुक्ति की माँग अपने लिए ही नहीं, सबके लिए है। जीवनमूल्यों के परिवर्तन के साथ जीवन के जहाँ अर्थ भी रहते हैं, वहाँ कविता के मूल में भी परिवर्तन आया है। एक व्यक्ति की समस्या पूरे समाज की समस्या है। यही कारण है कवयित्री की आवाज़ सबकी आवाज़ बन गई है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति है, जो समान रूप से सबको कचोटती है।⁸ सुदर्शन रत्नाकर का काव्य-शिल्प वस्तुतत्त्व को व्यवस्थित करने, अनुभूतियों को सशक्त अभिव्यक्ति देने में अपनी सार्थकता समझता है। वह परंपरागत काव्यरूढ़ियों और छंद-योजना को नहीं अपनाता। मूल संवेदना ही उसके स्वरूप का निर्धारण करती है। वह नये प्रतीकों और उपमानों को अपनाता है। किसी विशिष्ट विचारधारा प्रधान शब्दावली से कविता को मुक्ति दिलाता है। वह मानवीय अनुभूतियों की अभिव्यंजना के लिए मानवीय शब्दावली को प्रश्रय देता है। उसमें विविधता, अनेकरूपता और मौलिकता है। वह कहीं सरल एवं सहज है और कहीं गहन तथा प्रौढ़ है। उसमें व्यंग्यात्मकता का सौष्ठव भी मिलता है। उनके कोमल शब्द खर-शर भी बन जाते हैं—

तुम्हारे नारों की आवाज
सूखे पातों का शोर है।
जो आँधी के एक झोके से बिखर जाता है।⁹

सुदर्शन रत्नाकर कविता को दर्द की अभिव्यक्ति मानती हैं। दर्द का अहसास जब उन्हें सालता है तो उनकी कविता झरने की तरह फूट पड़ती है। मानवीय दर्द की अभिव्यक्ति के लिए वे उसी के अनुरूप प्रतीकों और उपमानों का प्रयोग करती हैं—

तारकोल से रँगें शरीर की
आज भी प्रदर्शनी लगी है,
चीथड़ों से लिपटे वे बेजान चेहरे।¹⁰

इन प्रतीकों के माध्यम से वे शोषितवर्ग की दीन-हीन स्थिति और विवशता को वाणी देती हैं। ये पीड़ित नर-नारी जानदार होकर भी बेजान हैं और उनका जीवन चेतन होते हुए भी बेजान प्रदर्शनी के समान जड़ है। रत्नाकर की कविताओं में व्यंजना बहुत धारदार है। 'नर कंकालों का नर्तन' कविता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

सुना है, तुम बहुत व्यस्त रहते हो,
चींटियों और जोंकों से घिरे रहते हो।

चींटी और जोंक के लाक्षणिक प्रयोगों से पददलित लोगों की उपेक्षा करनेवालों की अच्छी ख़बर ली गई है।¹¹ सुदर्शन रत्नाकर की कविताओं की भाषा पीड़ितवर्ग के दर्द को अभिव्यक्त करने के लिए वैसे ही उपमानों को ग्रहण करती है, दावाग्नि-सी भूखे गिद्ध की तरह नोचती है।¹² उनकी भाषा शब्दों का ऐसा चयन करती है, जिससे शब्दों में अधिक-से-अधिक भरा जा सके और वे पाठकों के हृदय को छू सकें। फलतः उनकी भाषा बड़ी मर्मस्पर्शी है और

मानवीय संवेदना को जगाने में सफल रही है। सुदर्शन रत्नाकर का काव्य मुक्तक शैली में निर्मित हुआ है। उनका भावुक एवं संवेदनशील व्यक्तित्व भी उनकी शैली में यत्र-तत्र मुखरित हो गया है। युगों से पीड़ित नारी अब जाग रही है। उसका स्वाभिमान, उसका आत्मविश्वास और आगे बढ़ने का निश्चय उसे यह कहने के लिए विवश कर रहा है—आसमान मेरा भी है। कवयित्री नारी-समाज की प्रतिनिधि बनकर कह उठती है—

मैं काँटों पर चलकर भी
आसमान छू सकती हूँ
अपनी ऊँचाई का
तुम्हारी ऊँचाई का
सहारा लेकर नहीं।¹³

सुदर्शन रत्नाकर की कविताओं में 'मैं' शब्द का प्रयोग नारी और 'तुम' शब्द का प्रयोग पुरुष के लिए हुआ है। पुरुष के अभिमान और दमन का शिकार बनी नारी शताब्दियों तक मौन रही, अंदर-ही-अंदर घुटती रही। पुरुष के अत्याचारों को सहती रही, पर अब यह सब-कुछ उसके लिए असह्य हो उठा है और वह प्रतिशोधस्वरूप कह उठती है—

तुम्हारी ऊँचाई अधिक हो सकती है
तुम्हारे हाथ भी ऊँचे हो सकते हैं
जिससे तुम आसमान को
पहले छू सकते हो
पर बौनी तो मैं भी नहीं हूँ।
छोड़ दो अपने बड़प्पन की बात
अपनी चेतना में लौट आओ तुम।¹⁴

सुदर्शन रत्नाकर ने खड़ीबोली में काव्यरचना की है। वह विषयानुसारणी है। वह कहीं तत्सम् शब्दों से युक्त परिष्कृत, प्रौढ़ और गहन है और कहीं बड़ी ही सहज, सरल और व्यंग्यात्मक है। नशे में धुत जैसी कविताओं की भाषा बड़ी सरल, प्रवाहमयी और व्यंग्यमय है यथा—

पड़ोस में शादी हो रही थी
कन्या की माँ रो रही थी
मैंने पूछा बहिन जी, क्या बात है?
क्या बताऊँ शोर क्यों हो रहा है?
इधर बताऊँ शोर क्यों हो रहा है?
इधर कन्यादान का समय हो रहा है
उधर कन्या का पिता नशे में
धुत सो रहा है।¹⁵

देश-प्रेम-संबंधी कविताओं का सृजन बड़ी ही मर्मस्पर्शी भाषा में हुआ है। कवयित्री देशवासियों के हृदय में राष्ट्रीय भावों को जगाने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग करती है, जिससे उनका सोया राष्ट्र-प्रेम उदबुद्ध हो सके। वे अपने देश के गौरव को पहचाने। 'एक प्रवासी का पत्र' जैसी कविताओं की भाषा बड़ी ओजमयी और हृदय को स्पर्श करने वाली है—

तुम नहीं जानते देश क्या होता है
 यह तो मैं ही जानता हूँ
 एक प्रवासी।
 जब भी वर्षा आती है तो मुझे
 इस देश को नहीं
 अपने देश की मिट्टी की
 सौंधी सुगंध आती है
 वह मिट्टी जिसमें मेरा बचपन बीता है,
 जिसकी याद मुझे आज भी आती है
 मेरे देशवासियो तुम्हें मेरे
 उसी देश की सौगंध है।”¹⁶

सारांश यह है कि सुदर्शन रत्नाकर का काव्यशिल्प मूल संवेद्य के अनुरूप है। वह नवीन और मौलिक है। उसमें नए प्रतीकों और उपमानों का सौष्टव भी मिलता है। वे रूपक, उपमा, अनुप्रास आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग करती हैं। उसमें मुक्तक छंद का प्रयोग हुआ है। कवयित्री विषयानुरूप भाषा और मुक्तक शैली में विविध अनुभूतियों को अभिव्यक्त करती है। उसकी शैली में वर्णनात्मकता, चित्रात्मकता और प्रतीकात्मकता मिलती है। उसका संवेदनशील व्यक्ति उसकी शैली में अभिव्यंजित हुआ है।

संदर्भ

1. डॉ० धीरेंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, पृ० 837
2. डॉ० कालिकाप्रसाद सहाय, बृहत् हिंदी कोश, पृ० 1334
3. डॉ० ओम शुक्ल, हिंदी-उपन्यास की शिल्प-विधि का विकास, पृ० 18
4. डॉ० जे०बी०बेट, ए डिक्शनरी ऑफ द हिंदी लैंग्वेज, पृ० 701
5. द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० 98
6. डॉ० रामेश्वरलाल खंडेलवाल, जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला, पृ० 2
7. शिल्प, द डिक्शनरी ऑफ वल्ड लिटरेरी टर्म्स, पृ० 87
8. सुदर्शन रत्नाकर, युग बदल रहा है, के आमुख से
9. सुदर्शन रत्नाकर, युग बदल रहा है, जीवन की व्यर्थता, पृ० 32
10. सुदर्शन रत्नाकर, युग बदल रहा है, प्रतीज्ञा, पृ० 18
11. रामेश्वर कंबोज हिमांशु : दैनिक विश्वमानव बरेली, मार्च 1986
12. सुदर्शन रत्नाकर, युग बदल रहा है, मनुष्यता मरती है, पृ० 22
13. सुदर्शन रत्नाकर, आसमान मेरा भी है, कविता से
14. सुदर्शन रत्नाकर, आसमान मेरा भी है, कविता से।
15. सुदर्शन रत्नाकर, नशे में धुत, कविता से।
16. सुदर्शन रत्नाकर, एक प्रवासी का पत्र, कविता से।

□म० नं० 1339 अर्बन एस्टेट

जी०द-126102

रश्मि मल्होत्रा द्वारा रचित 'हथेलियों पर रखी आग' काव्य-संग्रह में जीवनमूल्य सुनीताकुमारी

'जीवन' एक चरित्रगत विशेषता है, जो पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों और मनुष्यों में समान रूप से पाई जाती है और यही विशेषता उन सभी जीवधारी प्राणियों को अन्य प्राणियों से पृथक् करती है। सामान्यतः जीवन शब्द का प्रयोग जीवधारियों के क्रिया-कलापों, उनकी मान्यताओं, विश्वासों और उनके अनुभवों के लिए किया जाता है। अतः कर्मशीलता ही जीवन है। आज 'मूल्य' शब्द केवल क्रीमत एवं दाम का पर्याय न रहकर विस्तृत अर्थ ग्रहण कर चुका है। यह जीवन की विविध संवेदनाओं से संपृक्त होकर अनेक संदर्भों का पर्याय बन चुका है। वस्तुतः जीवनमूल्यों का संबंध मनुष्य के साथ है। मानव की यह मूल्यवादी धारणा ही उसके परिवार और समाज को निर्बाध गति प्रदान करती है। मानवीय मूल्यों के दो पक्ष माने गए हैं—आंतरिक पक्ष और बाह्यपक्ष। आंतरिक पक्ष स्थिर और बाह्यपक्ष परिवर्तनशील रहता है। आंतरिक पक्ष उसको जन्म देनेवाली संस्कृति से जुड़ा रहता है, जबकि बाह्यपक्ष धीरे-धीरे परिवर्तित होता रहता है और उसी संस्कृति की आंतरिक चेतना की संगति के अनुरूप ढलता रहता है। अतः समुदाय-विशेष की जीवन चेतना को अनुशासित करनेवाले जीवन के परम लक्ष्य को ही उसका 'जीवनमूल्य' कहा जा सकता है। 'हथेलियों पर रखी आग' काव्य-संग्रह में कवयित्री रश्मि मल्होत्रा की संवेदना, चिंता और जीवन का समग्र रूप उभरकर आया है। इस काव्य-संग्रह में विविध जीवनमूल्यों पर दृष्टिपात किया गया है, जो कि मानवीय, सामाजिक, नैतिक, प्रणय की अंतर्पीड़ा के यथार्थ को चित्रित करते हैं। उनके विविध जीवनमूल्यों के आयाम निम्नलिखित हैं—

मानवीय भावनाओं का चित्रण

मानवीय चेतना आज के कवियों की संवेदना का मुख्य स्वर है। वह भावना चाहे उसके व्यक्तिगत जीवन-संदर्भों से ही क्यों न उठी हो, उन्होंने सामूहिक उन्नयन को अपना लक्ष्य माना है। रश्मि मल्होत्रा मानवता के लिए सदैव छटपटाती रहती हैं। वे सामूहिक जनजागरण से संघर्ष के लिए आह्वान करती हैं। उन्होंने हृदय में बहनेवाली करुणा, प्रेम और अपनेपन का उद्घाटन किया है। मानवीय संवेदना का परम कर्तव्य है कि वह अपनी स्वार्थ-साधना का परित्याग कर किसी के मन से अंधेरा दूर कर दे। किसी के प्राणों में सरगम बजा दे। विश्वबंधुत्व की प्रतिष्ठा के लिए आजादी की कल्पना को भी मिथ्या भ्रम मानती हैं और कहती हैं कि—

आजाद होने को तड़पती है रूह
पता नहीं कहाँ खो गई है आजादी।'

सामाजिक मूल्यों का चित्रण

आज आपाधापी की ज़िदगी में कुटिलता या कृत्रिमता ही रह गई है। अधिकतर लोग आडंबरपूर्ण जीवन जीते हैं। समाज निरंतर परिवर्तनशील रहता है। उसे जोड़े रखने वाले संबंध भी बड़े जटिल होते हैं। वे समाज में पारस्परिक सौहार्द और आत्मविश्वास को जगाने का कार्य बड़ी शिद्दत से करती हैं। आज लोग अत्यधिक सुविधाओं का संग्रह कर रहे हैं। यह हर व्यक्ति की नियति बन गई है। आज समाज में मात्र औपचारिकता ही रह गई है। आज मनुष्य भावनाशून्य हो चुका है। किसी अजनबी की सहायता करना तो दूर, दोस्ती में भी छुरा घोंपने से हिचकिचाता नहीं है। उनकी ये पंक्तियाँ देखिए—

किसको कहें पराया और किसे अपना
यहाँ तो दुश्मन की तरह दोस्त खड़ा।
जिस किसी को समझा दोस्त खुदा
उसी से पाने लगे सज़ा-दर-सज़ा।²

नैतिक मूल्यों का चित्रण

रश्मि मल्होत्रा ने अपने काव्य में चित्रित किया है कि मानवता के नाते हमें दूसरों की सेवा में ही असीम सुख की अनुभूति करनी चाहिए। निम्न पंक्तियाँ इस तथ्य को बखूबी चित्रित करती हैं—

आओ कुछ रोशनी लेकर किसी अँधेरे को मिटाया जाए
किसी रोती हुई रूह को आज हँसाया जाए।³

सामाजिक मूल्यों को भी नैतिक मूल्य धर्म का पर्याय माना जाता है। एक समय जो विद्रोह राजद्रोह है, दूसरे समय वह विद्रोह नैतिक बन जाता है। इसी का चित्रण उन्होंने अपने काव्य-संग्रह के माध्यम से किया है।

प्रेमपरक मूल्यों का चित्रण

नर-नारी का सहज आकर्षण ही प्रणय-रूप में परिणत होता है। यही आकर्षण सृष्टि के अस्तित्व के लिए ज़रूरी भी है। अन्य प्राणियों की तुलना में उसमें भावात्मकता अधिक होती है। अतः इसी कारण प्रणय एक कोमल और मधुरतम संबंध बन जाता है। समाज की संरचना और उसकी विकासशील स्थितियों के अनुसार प्रणय के रूपों में परिवर्तन होता रहता है। कवयित्री ने प्रणय के अनेक रूपों की ओर संकेत किया है। प्रेम शारीरिक आवश्यकता भी है, एक पावन अनुभूति भी, एक ओर यह प्रेरणा है तो दूसरी ओर तन्मय कर देनेवाली भावना, एक ओर अलौकिक आनंद का स्रोत है, दूसरी ओर सर्वस्व समर्पण की भावना। अनेक बाधाओं और कष्टों के बावजूद प्रेमी प्रियपात्र के ध्यान में डूबा रहता है। संयोग में तो सुख है ही, वियोगजन्य टीस को भी प्रेमी सुखद मानता है, क्योंकि वह भी प्रिय की ही देन है—

हम ईंट हैं तेरे इस दरो-दीवार की
लिखी है जिसपे दास्ताँ हमारे प्यार की।⁴

उनका मानना है कि प्रेम की अपनी मर्यादा, निष्ठा और समर्पण है। मानव की सभी गतिविधियों का लक्ष्य अंततः प्यार ही है। 'संसार की समस्त समृद्धि प्रेम के सम्मुख तुच्छ है।

प्रेम अमूल्य है, उसका मूल्य प्रेम ही हो सकता है। प्रेम के बिना मानव-जीवन वास्तविक अर्थ में संभव नहीं।' प्रेम जीवनी शक्ति का स्रोत है। जीवन की विषमताएँ एवं कठिनाइयाँ जब मनुष्य को हताश कर देती हैं, तब उसे प्रेम के बल का अहसास होता है।

व्यक्ति की अंतर्पीड़ा का चित्रण

आज का कवि वेदना को जीवन के लिए ज़रूरी मानता है, क्योंकि उसके बिना मानव-जीवन नीरस और निर्मम हो जाता है। वे मानती हैं कि जीवनमूल्यों के टूटने से जहाँ सामाजिक जीवन में टूटन, घुटन और निराशा आई है, वहीं वैयक्तिक जीवन भी अंतर्मन की पीड़ा से भर जाता है। आज मानव की संवेदना और सहानुभूति क्षीण होती जा रही है। लोग दूसरे के दुःख को बाँटने की बजाएँ उसको बढ़ाने में लगे रहते हैं। मानव की वेदना इतनी अधिक हो गई है कि वह अपने भीतर एक जटिल विकृत मानसिकता को पनपा रही है। व्यर्थता का बोध उसके भीतर पलता जा रहा है। मनुष्य के पास देह है तो पीड़ाएँ उसे झेलनी ही पड़ेंगी। फिर क्यों नहीं वह इन पीड़ाओं को हँस-हँसकर सहन करे। व्यक्ति को सामाजिक मूल्यों से कटकर अपनी व्यक्तिगत सीमाओं में बँधकर रह जाना चाहिए। अपनी एवं अपनी आत्मा के विकास के लिए उसे वास्तविक जगत से जुड़ना ही होगा। प्राचीन संतों, साधकों ने विराट् परमसत्ता से एकाकार होकर भी जनकल्याण की भावना को नहीं छोड़ा था, क्योंकि किसी भी साधना की अंतिम परिणति वैयक्तिक श्रेष्ठता में नहीं होती। वह तो 'बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय' में होती है। व्यक्ति की अपनी भावनाएँ ही उसके बाह्य जीवन की सफलता और असफलता का कारण बनती हैं। निराशा और आशा हमारे भीतरी चिंतन और दृष्टि के अनुरूप उभरती और विकसित होती है। मनुष्य को संघर्षशील होना चाहिए, समझौतावादी नहीं। उसे दूसरों के दुःख-सुख का साझीदार बनना चाहिए। दृष्टव्य है—

यूँ ही है अँधेरा बहुत ज़िदगी की राहों में
चलो लौ से लौ जलाओ कि रात आखिरी है।⁶

उन्होंने माना है कि मानव को दर्द में पिसकर पराजित नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे सामाजिक समस्याओं से उद्भूत होना चाहिए। वे जीवन के विशाल क्षेत्र में फैली विविध समस्याओं और परिस्थितियों को अभिव्यक्ति देती हैं। कवयित्री अपने अंतर में उमड़े भाव की अंतरंगता को छूना चाहती हैं—

सतरंगी मंजर है आसमाँ पर झूलता-सा
तू ही बता तेरे नाम का रंग किस लिबास में कातूँ।
क्रतरा-ए-शबनम है या है आवाज़ तुम्हारी
संदली हवाओं बताओ आज कैसी फिज़ा कातूँ।⁷

कवयित्री ने अपनी छटपटाहट को महामरुस्थल की संज्ञा दी है। उनका मानना है कि चाहे व्यक्ति के ऊपर मौत का साया हो, वह ज़िदगी में संघर्ष करते-करते थक गया हो, संसार फिर भी चलता रहता है। वर्तमान में व्यक्ति के जीवन में सर्वत्र असंतोष, अनिश्चय और दुविधा फैली है। वह खुद ही अपने से भी अजनबी हो गया है।

मृत्युबोध का चित्रण

जीवन सुख-दुःख का ताना-बाना है, जीवन की भाँति मृत्यु भी सत्य है। आज भी विसंगति और अनिश्चितता के युग में मृत्यु का भय सदैव छाया रहता है। कवयित्री ने जीवन के अंग के रूप में मृत्यु को ग्रहण किया है। उसे अवश्यंभावी माना है—

मौत को ढूँढ़ा बहुत ढूँढ़ा, पर जब उसको पाया
फैलायी बाहें गले लगाने को उसने यूँ झटकाया।
हार फिर जिंदगी को अपनाया हमदर्द उसे बनाया
उसी ने तनिक फिर से नीना हमें सिखाया।⁸

यथार्थवाद का चित्रण

साहित्यकार बौद्धिक रूप से जाग्रत होने के कारण समाज के प्रत्येक स्तर पर यथार्थ की पहचान कर उसे अभिव्यक्त करता है। आज का कवि अपनी दुर्बलताओं को छिपाने की बजाए उसे यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त देता है। जब भी वह अकेलेपन में तड़प जाता है तो वह उसे खुले शब्दों में अभिव्यक्त करता है। उनका मानना है कि जीवन बाहर से देखने पर जितना सरल लगता है, वह उतना ही पेचीदा होता है। मनुष्य जब घर और बाहर की परिस्थितियों में फँस जाता है तो उसे आने-जाने वाले मौसमों की सुध-बुध नहीं रहती—

ये अर्थी है या सज रही है कोई डोली
मैं यों ही चुपके से इसी के साथ हो ली
पतझड़ है या बसंत ऐसा भी क्या मौसम
बरंग इस शहर में कहो किसने होली खेली।⁹

उनका मानना है कि जीवन में ज्वार की तरह उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। कहीं मुसीबतों से मैं फूल की तरह मुरझा न जाऊँ, कहीं नागफनी की तरह लहू-लुहान न हो जाऊँ, कहीं मैं बाज़ी हार न जाऊँ। अतः हर क़दम पर असफल होने का डर उसे लगा रहता है। उनका मानना है कि मनुष्य की हर इच्छा की पूर्ति होना संभव नहीं है। जीवन में व्यक्ति को धूप, जो दुःख का प्रतीक है, सुखद महसूस होती है। वहीं उसे कई बार चाँद भी आग उगलता प्रतीत होता है। कई बार व्यक्ति के अंदर इतनी टीस, पीड़ा और दर्द होता है कि वह भीड़ में रहते हुए भी अपने-आपको अकेला महसूस करता है। व्यक्ति जब पैदा होता है तो वह एक तपस्वी, निर्लिप्त, वैरागी और सादगी से भरा होता है, लेकिन जैसे-जैसे वह होश सँभालता है तो स्वर्ण-मृग की भाँति भटकता रहता है। व्यक्ति तरह-तरह के नक्राब ओढ़े रखता है। व्यक्ति खुद की ख़रीदी हुई मुसीबतों से घिरा रहता है। उसे नींद तक की गोलियाँ खानी पड़ती हैं। आज जीवनमूल्य टूट रहे हैं। उसके खुद के व्यक्तित्व की कोई पहचान ही नहीं रही। व्यक्ति जिंदगी की भाग-दौड़ में कई बार जीता और मरता है, लेकिन व्यक्ति को संघर्षों से मुकाबला कर आगे बढ़ना चाहिए।

एकाकीपन का चित्रण

वर्तमान युग संक्रमणशील है। व्यक्ति में जटिल विकृतियों ने अपना घर बना लिया है। वह भीड़ में भी अकेला ही रहता है, लेकिन एकाकी क्षणों में वह पलायन नहीं करता, बल्कि

और भी मुखर हो उठता है। उसकी भीतरी पीड़ा ही उसे जीने के लिए विवश करती है। आज के मनुष्य को असुरक्षा, एकाकीपन, ऊब, घुटन, निराशा के भाव सताते रहते हैं—

चमगादड़-सी घूरती रहती हैं वक्त की आँखें
दोस्त को दुश्मन समझकर दबोच रहे हैं आज।¹⁰

आज झूठ की बुनियाद पर जीवन टिका हुआ है लेकिन कवयित्री उसमें भी विरोध के स्वर अपनी हिचकियों में साफ़ सुन रही है।

भाग्य का चित्रण

व्यक्ति कभी अपने जीवन से, कभी संसार से, कभी अपने भविष्य के प्रति चिंता करता है। इसी अनास्था में कई बार उसकी आशाएँ बिखर जाती हैं लेकिन वह टूटता नहीं बल्कि आगे बढ़ने की प्रेरणा ले अपने जीवन-संघर्षों में आगे बढ़ता जाता है। एक क्षण के लिए निराशा के भाव मन में आते हैं। यही भाव उसे दुःख से उभरने का हौसला भी देते हैं। वैयक्तिक जीवन की बहुत सारी संवेदनाएँ ऐसी होती हैं, जिन्हें हम सीधे-सीधे व्यक्त नहीं कर पाते। इन जटिल संवेदनाओं को व्यक्ति विभिन्न उपादानों और चित्रों के माध्यम से व्यक्त करता है। कवयित्री अंतरंग छिपी पीड़ा के संगीत के माध्यम से वाणी दी जो हृदय को पारदर्शी, साफ़, पवित्र करती चली गई।

कहा जा सकता है कि कवयित्री रश्मि मल्होत्रा की कविताएँ केवल औपचारिकता मात्र न होकर समसामयिक परिवेश की जटिलताओं, मनःस्थिति की दुरूहता, चिंतन को धुंध व धुएँ के बीच में से व्यक्तिगत सरोकारों का उल्लेख करती हैं। आपने नितान्त एकाकी क्षणों को अति कोमलता से उभारा है। उन्होंने अपने मानसिक तनाव के दिनों में पलायन न कर अपने साहस को संबल के रूप में अपनाया है। साथ ही जीवनमूल्यों की परंपरा को भी पुनर्जीवित करने का साहस किया है। किसी-किसी कविता में वे बौद्धिकता के कारण संशयशील दिखाई देती हैं। उनकी कविताओं में प्रश्नाकूल जिज्ञासा के भाव भी हैं। वे यथार्थ की पूर्व-निर्धारित धारणा को नकारती हैं। वे वर्तमान जीवनपरिवेश में आज के व्यक्ति की व्यथा, अंतर्पीड़ा, टीस, निराशा एवं अंतर्गाथा को सशक्त भाषा के माध्यम से भी व्यक्त करती हैं।

संदर्भ

1. रश्मि मल्होत्रा, हथेलियों पर रखी आग, पृ० 73
2. वही, पृ० 15
3. वही, पृ० 27
4. वही, पृ० 5
5. रमानाथ अवस्थी, काव्यधारा (सं० शिवदानसिंह चौहान), पृ० 126
6. रश्मि मल्होत्रा, हथेलियों पर रखी आग, पृ० 21
7. वही, पृ० 74
8. वही, पृ० 31
9. वही, पृ० 36
10. वही, पृ० 37

□मं क्रं० 1339 अर्बन एस्टेट

जींद 126102

मो० 09896083136

धर्मवीर भारती के नाट्य-साहित्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन

डॉ० रीटा खर्ब

प्रसिद्ध काव्य-नाटक 'अंधायुग' में धर्मवीर भारती ने महाभारत के मिथक द्वारा विश्वयुद्ध की बाढ़ से उपजे विनाशक चिह्नों का साक्षात्कार करवाते हुए 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की तलाश की है। दो-दो विश्वयुद्धों ने मानव की आस्था को हिला दिया। चारों तरफ़ भय, निराशा, अनास्था, अमर्यादा, हिंसा, आत्मघात जैसी विघटनकारी प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लगीं। विघटन की यह प्रक्रिया बाह्य और आंतरिक दोनों स्तरों पर घटित हुई। युद्ध एक ऐसी जटिल एवं प्रमुख समस्या है, जिसकी कालिमा कदाचित् सभी कालों में छाई रही। युद्ध की काली छाया सामाजिक इकाई को तोड़कर समस्त मानवीय मूल्यों को जर्जर कर देती है। युधिष्ठिर जैसे सत्यनिष्ठ को भी अर्द्धसत्य का और कृष्ण को कूटनीति का सहारा लेना पड़ता है। 'अंधायुग' का रचनाकाल 1954 है। उस समय भारतीय वैचारिक वातावरण में जो समस्याएँ चिंतकों को विचलित किए थीं, उनका चित्रांकन 'अंधायुग' में किया गया है, 'वैयक्तिक संवेदन से उपजा हुआ अनुभव ही सत्य है अथवा सत्य के लिए अधिक व्यापक, अधिक वस्तुन्मुखी, अधिक युक्तिसंगत मूल्य-श्रेणी भी मानदंड के रूप में अपेक्षित है। यह एक ऐसा प्रश्न था, जो प्रायः हिंदी के विचारकों को सहलाता रहा। वैयक्तिक संवेदन के सत्य को ही चरम मानकर चलने का एक परिणाम किस प्रकार अंधे युग की नारकीय यातनाएँ बढ़ाने को होता है, इसका वर्णन अंधायुग में किया गया है।'

'अंधायुग' के सांस्कृतिक मूल्यों को दर्शाता चंद्रकांत बाँदिवडेकर का यह कथन—'अंधायुग एक महान् ट्रेजडी है और उसकी अप्रतिमता यह है कि यह किसी एक व्यक्ति की ट्रेजडी नहीं है, बल्कि एक मानवीय स्थिति की ट्रेजडी है। इसलिए अधिक मूल्यवान है।'¹² युद्ध में सबसे बड़ी ट्रेजडी यह निहित है कि उसमें अंतिम उद्देश्य और मूल्य, विजय का होता है। इस विजय के लिए अधर्म, असत्य और प्रचंड झूठ का प्रयोग किया जाता है। इसलिए गांधारी कहती है—

धर्म जिधर होगा ओ मूर्ख!
उधर जय होगी
धर्म किसी ओर नहीं था लेकिन
सब ही थे अंधी प्रवृत्तियों से परिचालित
जिसको तुम कहते हो प्रभु
उसने जब चाहा-मर्यादा को
अपने ही हित में बदल दिया
वंचक है।³

युद्ध-जैसी भीषण प्रक्रिया जब एक बार शुरू होती है, तो उसका अपना एक स्वायत्त, स्वतंत्र, स्वचालित मनोवृत्तियों से परिपूर्ण विधान बन जाता है। इसका एकमात्र उद्देश्य होता है किसी भी कीमत पर विजय, धर्म, नीति, सत्य, न्याय, दायित्व, कर्तव्य इत्यादि चिरंतन मानवीय मूल्यों का विघटन करना। धर्मराज की अनीति या अधर्म का परिणाम अश्वत्थामा की पैशाचिक मनोविकृति में होता है-

वध मेरे लिए नहीं नीति है,
वह है अब एक मनोग्रंथि।⁴

वंचना का जहर पीने वाले युवकों को आज आत्मघात के विभिन्न रूप अपनाने पड़ रहे हैं। युयुत्सु के पीड़ादायक अकेलेपन और किलता के दर्द को धर्मवीर भारती ने सशक्त रूप से उभारा है। महान् रचना अपने समय के बाद भी भविष्य में अधिकाधिक संगत और अर्थवान होती जाती है। 'अंधायुग' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रचना है। धर्मवीर भारती मूल्य विषयक चिंतन के प्रश्नों से जूझे हैं। गांधारी कहती है-'निर्णय के क्षण में विवेक और मर्यादा, व्यर्थ सिद्ध होते हैं सदा, हम सबके मन में कहीं एक अंधकार है। बर्बर पशु, अंधा पशु वहीं वास करता है। स्वामी जो हमारे विवेक का नैतिकता, मर्यादा, अनासक्ति, कृष्णार्पण यह सब हैं अंधी प्रवृत्तियों की पोशाकें, जिनमें फटे कपड़ों की आँखें सिली रहती हैं।'⁵ विदुर भी कहते हैं कि 'केवल स्वयं किया हुआ मर्यादित आवरण कवच है, जो व्यक्ति को बचाता है।'⁶ मानव की संभावना पर आस्था रखनी होगी, परंतु यह आस्था अंधी नहीं है। झूठा भविष्य बतलाने वाले वृद्ध याचक द्वारा कहलवाया गया है-'जब कोई मनुष्य अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को, उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है। नियति नहीं है पूर्व निर्धारित, उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता-मिटता है।'⁷ धर्मवीर भारती के मूल्य-चिंतन का यह सकारात्मक रूप है। मानवीय मंगल की कामना से व्याकुल आस्थावान मूल्यान्येपी दृष्टि ने अंधायुग को महत्त्वपूर्ण बना दिया है।

पहले अंक का शीर्षक है-'कौरव नगरी'। अंक के प्रारंभ में 'कथा-गायन' के रूप में महाभारत के युद्ध में कौरवों और पांडवों द्वारा किए गए अमर्यादित आचरण और सांस्कृतिक विघटन का उल्लेख किया है। विदुर अंतःपुर में धृतराष्ट्र और गांधारी के पास पहुँचते हैं और कौरवों द्वारा किए गए मर्यादा-भंग की ओर धृतराष्ट्र का ध्यान आकृष्ट करते हैं और धृतराष्ट्र से कहते हैं कि-

भीष्म ने कहा था,
गुरु द्रोण ने कहा था,
इसी अंतःपुर में आकर कृष्ण ने कहा था-
'मर्यादा मत तोड़ो
कुचले हुए अजगर-सी
गुंजलिका में कौरव-वंश को लपेटकर
सूखी लकड़ी-सा तोड़ डालेगी।'⁸

दूसरा अंक है-'पशु का उदय'। संजय कृतवर्मा को अर्जुन द्वारा किए गए कौरव-दल के विनाश का सामाचार सुनाता है। वह बताता है कि स्वयं उसके वध के लिए सात्यकी ने शस्त्र उठाया था, किंतु व्यास ने उसे अवध्य बताकर मुक्त करा दिया। संजय कृतवर्मा को दुर्योधन के

आहत होने की भी सूचना देता है। कृपाचार्य के प्रवेश के उपरांत टूटे हुए धनुष को हाथ में लिए हुए अश्वत्थामा प्रवेश करता है। वह पांडवों के वध की प्रतिज्ञा करता है। वन-मार्ग से आते हुए संजय का वह गला दबोचता है—

आता है कोई शायद पांडव योद्धा है
आहा अकेला, निहत्था है।
पीछे से छिपकर इस पर करूँगा वार
इन भूखे हाथों से धनुष मरोड़ा है
गर्दन मरोड़ूंगा⁹

तीसरे अंक का शीर्षक है—‘अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य’। युद्ध-क्षेत्र से लौटती हुई कौरव-सेना का उल्लेख किया गया है, जिसमें केवल बूढ़े, बौने और घायल ही शेष रह गए थे। हारी हुई घायल सेना के साथ आए हुए युयुत्सु को देखकर नगर-निवासी भयभीत हो उठते हैं। प्रहरी बतलाता है कि—

अपनी हारी सेना के साथ-साथ
कोई विपक्षी योद्धा भी चला आया है
नगरी में अस्त्रों से सज्जित है
दैत्याकार, योद्धा वह?
जनता डरती है वह नगरी को लूटेगा।¹⁰

चौथा अंक ‘गांधारी का शाप’ है। आशुतोष महादेव अश्वत्थामा की स्तुति से प्रसन्न होकर उसे पांडव-शिविर में प्रवेश की अनुमति देते हैं। अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न, शतानीक और शिखंडी की हत्या करता है। जान बचाकर भागने वाले शेष पांडव योद्धाओं को द्वार पर स्थित कृतवर्मा और कृपाचार्य मौत के घाट उतार देते हैं। अश्वत्थामा को कृष्ण शाप देते हैं कि वह पीप-भरे घावों से युक्त शरीर लिए दुर्गम स्थानों में अनंतकाल तक भटकता रहेगा। गांधारी युद्ध-भूमि में दुर्योधन के अस्थिपंजर को देखकर कृष्ण को शाप देती है—

कुछ भी हो सारा तुम्हारा वंश
इसी तरह पागल कुत्तों की तरह
एक-दूसरे को परस्पर फाड़ खाएगा
तुम खुद उनका विनाश करके कई वर्षों बाद
किसी घने जंगल में
साधारण व्याघ्र के हाथों मारे जाओगे, प्रभु हो
पर मारे जाओगे पशुओं की तरह।¹¹

चौथे अंक में ‘राज्य की स्थापना’ का उल्लेख है। कौरव-नगरी में युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हो गया। भीम की कटूक्तियों से मर्माहत होकर धृतराष्ट्र और गांधारी वन चले जाते हैं। युयुत्सु अपमानित होकर भाले से आत्महत्या करने का प्रयास करता है, किंतु बच जाता है। कुंती, गांधारी, धृतराष्ट्र आदि भीषण दावाग्नि में भस्म हो जाते हैं।

पाँचवें अंक के बाद ‘समापन’ में ‘प्रभु की मृत्यु’ का निरूपण है। झाड़ी के पीछे से निकलकर ‘जरा’ नामक व्याघ्र कृष्ण के बाएँ पैर को मृग-मुख समझकर बाण चलाता है।

अश्वत्थामा प्रभु के शरीर से बहते हुए पीप-भरे नीले रक्त को देखकर प्रसन्न होता है। प्रभु ने अंतिम क्षणों में कहा कि—

मरण नहीं है ओ व्याघ्र!
मात्र रूपांतरण है वह
सबका दायित्व लिया मैंने अपने ऊपर
अपना दायित्व सौंप जाता हूँ मैं सबको
अब तक मानव-भविष्य को मैं जिलाता था
लेकिन इस अंधे-युग में मेरा एक अंश
निष्क्रिय रहेगा, आत्मघाती रहेगा और विगलित रहेगा
संजय, युयुत्सु, अश्वत्थामा की भाँति
क्योंकि इनका दायित्व लिया है मैंने।¹²

सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतिपादन की दृष्टि से 'अंधायुग' काव्य-नाटक का विशेष महत्त्व है। मानव-जीवन के मूल्य-बोध का आधार क्या है? धर्मवीर भारती इस विषय में कहते हैं कि 'जब हम सांस्कृतिक मूल्य की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य क्या है यह समझ लेना आवश्यक है। अपनी परिस्थितियाँ, इतिहास-क्रम और काल-प्रवाह के संदर्भ में मनुष्य की स्थिति क्या है और महत्त्व क्या है—वास्तविक समस्या इस बिंदु से उठती है।'¹³ मूल्यविषयक चिंतन की मूलभूत समस्या यह है—क्या सचमुच मनुष्य का आचरण निर्णायक क्षणों में संस्कृति के आलोक में निर्दिष्ट होता है? इस प्रश्न से धर्मवीर भारती अवश्य जूझे हैं। उनका यह कथन कि 'मनुष्य अपने में स्वतः सार्थक और मूल्यवान है, वह आंतरिक शक्तियों से संपन्न, चेतन स्तर पर अपनी नियति के निर्माण के लिए स्वतः निर्णय लेनेवाला प्राणी है। सृष्टि के केंद्र में मनुष्य है।'¹⁴ 'अंधायुग' में परंपरागत एवं सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना का जितना संघर्ष व्यंजित है, उतना किसी अन्य कृष्णकाव्य में नहीं है। 'अंधायुग' में कृष्ण के चिरस्थायित्व चरित्र की स्थापना को नवीन संदर्भों में सँजोया है। 'अंधायुग' में कृष्ण मात्र परमात्मा अथवा नेता के रूप में चित्रित नहीं किए गए हैं, वरन् अनेक प्रसंगों में अन्यायी घोषित कराकर उन्हें अनेक संबोधन दिए हैं। युयुत्सु चारों ओर से प्रताडित होने पर अर्थात् आस्था, श्रद्धा, न्याय, सत्य और मर्यादा आदि मानदंडों की जीवन में शरण लेने के उपरांत तिरस्कृत होने पर अंततः कृष्ण के विषय में कहता है कि—

पैदा हुआ मैं अंधेपन से
कुछ दिन कृष्ण की झूठी आस्था के ज्योतिवृत्त में भटका
किंतु आत्महत्या शिलाद्वार खोलकर वापस लौटा मैं
अंधी गहन गुफाओं में! आया था मैं भी देखने यह
महिमामय मरण कृष्ण का जीतकर जीत नहीं पाया अनास्था
वंचक था, कायर था, शक्तिहीन था वह
बचा नहीं पाया परीक्षित को या मुझको
चला गया अपने लोक।¹⁵

सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों का कवि ने सविस्तार वर्णन करते हुए अंततः जीवन में सत्य को खोजने का मूल मंतव्य सम्मुख रखा है। 'अंधायुग' में सांस्कृतिक चेतना को निम्नलिखित शीर्षकों

द्वारा विवेचित किया जा सकता है—

मर्यादा की महत्ता

‘अंधायुग’ जीवन में मर्यादा, सत्य, आस्था एवं विश्वास की प्रतिष्ठा तथा अमर्यादा, असत्य, अनास्था, अविश्वास, कुंठा एवं प्रतिशोध आदि की अत्यधिक यथार्थता एवं कुरूपता व्यंजित करता है। ‘अंधायुग’ नाटक में धर्मवीर भारती ने मर्यादा की व्यापकता का चित्रण किया है। ‘मर्यादा, आस्था एवं सत्य को सांस्कृतिक स्वीकार करते हुए अनास्था, कुंठा, प्रतिशोध, आत्मघात आदि प्रवृत्तियों की जीवन में अपेक्षित महत्ता नहीं मानी। परिस्थितियों के परिपार्श्व में यदि इन प्रवृत्तियों का अवलोकन किया जाए तो उस विशिष्ट परिस्थिति में प्रतिशोध, कुंठा एवं आत्मघात आदि को भी जीवनमूल्य माना जा सकता है।¹⁶ धर्मवीर भारती ने स्पष्टतः अमर्यादित जीवन की क्षीणता एवं हीनता व्यक्त की है। इतना ही नहीं, विदुर एवं गांधारी के पारस्परिक वार्तालाप में भी धर्मवीर भारती ने मर्यादा की महत्ता प्रतिपादित की है। विदुर गांधारी से कहते हैं कि मर्यादित आचरण रूपी कवच ही व्यक्ति का रक्षक होता है। वे कहते हैं कि—

माता धैर्य धारण करें
वचन यह मिथ्या था
केवल स्वयं किया हुआ
मर्यादित आचरण कवच है
जो व्यक्ति को बचाता है।¹⁷

सत्य की महत्ता

मर्यादा के साथ ही धर्मवीर भारती ने सत्य की महत्ता भी प्रतिपादित की है। ‘अंधायुग’ में इस सांस्कृतिक मूल्य की व्यापकता एवं महत्ता कवि ने युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य भाषण को आधार बनाकर की है। अश्वत्थामा अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए वनों में भटकता है और पिता की हत्या का दोषी युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य को मानता है। अश्वत्थामा कहता है कि—

भूल नहीं पाता हूँ
मेरे पिता थे अपराजेय
अर्द्धसत्य से ही युधिष्ठिर ने उनका वध कर डाला।
मानव को पशु से उन्होंने पृथक नहीं किया।¹⁸

कर्म की महत्ता

सत्य के साथ ही कर्म की महत्ता जीवन में स्वीकार्य है। केवल सत्य की ओट में निष्क्रिय व्यक्ति जीवन को सार्थकता एवं उत्कृष्टता की ओर अग्रसर नहीं कर सकता। कर्मठ व्यक्ति भाग्य की दिशा को बदल सकता है। तभी तो अंधायुग में कौरवों की जीत की जो भविष्यवाणी हुई थी, वह भी पराजय में बदल जाती है। याचक कहता है कि—

पता नहीं प्रभु है या नहीं
किंतु, उस दिन यह सिद्ध हुआ
जब भी कोई मनुष्य अनासक्त होकर
चुनौती देता इतिहास को

उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है।
नियति नहीं है पूर्व-निर्धारित
उसको हर क्षण मानव-निर्णय बनाता-मिटाता है।¹⁹

आस्था-अनास्था का चित्रण

‘अंधायुग’ में आस्था-अनास्था का स्वर समान रूप से विद्यमान है। एक क्षण में ही विद्रोहिणी गांधारी कृष्ण पर से देवत्व का मुलम्मा हटा देती है। विदुर और गांधारी के वार्तालाप से यह पता चलता है—

विदुर : प्रभु थे वे

गांधारी : कभी नहीं।²⁰

अंत में गांधारी कृष्ण-मोह में बँध जाती है। वह कहती है कि—

कोई नहीं मैं अपने सौ पुत्रों के लिए
लेकिन कृष्ण तुम पर मेरी ममता अगाध है
कर देते शाप यह मेरा तुम अस्वीकार
तो क्या मुझे दुःख होता
मैं थी निराश, मैं कटु थी,
पुत्रहीना थी।²¹

गांधारी अपने ही दिए शाप पर पश्चाताप करती है। अपने पुत्र की विजय पर भी गांधारी को अंधी आस्था है। वह कहती है कि—

होगी अवश्य होगी जय।
मेरी यह आशा यदि अंधी है तो हो
पर जीतेगा दुर्योधन जीतेगा।²²

सांस्कृतिक मूल्य मानव-अस्तित्व की व्याख्या में सहायक हैं तथा इसकी अनिवार्यता से यह सहज रूप से संबद्ध है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सांस्कृतिक मूल्यों का मानव स्थायित्व के लिए प्रयुक्त विभिन्न संस्कारों, घटना-प्रवाहों, सामाजिक दायित्वों के वैचारिक ग्राह्य के अतिरिक्त कोई महत्त्व अथवा अर्थ नहीं है। ‘मानव-जीवन में अस्तित्व का विशेष महत्त्व है। पाश्चात्य देशों में अस्तित्व का विशेष महत्त्व है। पाश्चात्य देशों में तो इसे मानव के संदर्भ में व्याख्यायित किया जाता है। दर्शन में इंद्रियसुलभ प्रत्येक उपस्थिति को अस्तित्व-पूर्ण माना जाता है। इसी आधार पर पाश्चात्य देशों में अस्तित्ववाद नाम से एक वाद प्रचलित है।²³ ‘अंधायुग’ में कवि स्पष्टतः अस्तित्व-बोध से प्रभावित प्रतीत होता है। विदुर अपने संपूर्ण अस्तित्व की आस्था श्रीकृष्ण को सौंप देना चाहते हैं। वे कहते हैं—

भय है तो
ज्ञान है अधूरा अभी
प्रभु ने कहा था यह
ज्ञान जो समर्पित नहीं है
अधूरा है मनोबुद्धि तुम अर्पित कर दो मुझे
भय से मुक्त होकर तुम प्राप्त मुझे ही होंगे

इसमें संदेह नहीं।²⁴

गांधारी का मानना है कि मानवीय अस्तित्व के गुण कुंठित हो गए हैं। निर्णय के वक्त वह अक्सर विवेकहीन हो जाता है। सभी का व्यक्तित्व दोहरा है। इसलिए अपने अस्तित्व की अलग पहचान के लिए गांधारी आँखों पर पट्टी बाँध लेती है। वह धृतराष्ट्र से कहती है कि—

लेकिन अंधी नहीं थी मैं
मैंने यह बाहर का वस्तु-जगत्
अच्छी तरह जाना था
धर्म, नीति, मर्यादा यह सब
है केवल आडंबर-मात्र
इसलिए स्वेच्छा से मैंने इन आँखों पर
पट्टी चढ़ा रखी थी।²⁵

अस्तित्व-बोध मानव-जीवन की सार्थकता के लिए आवश्यक है तो युग तथा परिवेश उनके व्यक्तित्व को ढालने में सहायक है। धर्मवीर भारती सांस्कृतिक मूल्यों के विकास में युग अथवा परिवेश का विशेष महत्त्व मानते हैं। 'अंधायुग' एक ऐसा नाटक है, जिसमें युग-विशेष को कवि चित्रित करना चाहता है। जैसे—

राजशक्तियाँ लोलुप होंगी,
जनता उनसे पीड़ित होकर
गहन गुफाओं में छिप-छिपकर दिन काटेगी।²⁶

यहाँ धर्मवीर भारती का तात्पर्य अपने अंतर की कुंठाओं से है। उन्होंने स्पष्टतः समस्त काव्य का मूल मंतव्य व्यंजित करने के साथ युगीन परिस्थितियों की ओर निम्न पंक्तियों में संकेत किया है—

युद्धोपरांत, यह अंधायुग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में
सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का
वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त
पर शेष अधिकतर हैं अंधे।²⁷

संदर्भ

1. धर्मवीर भारती : व्यक्तित्व और कृतित्व, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 28
2. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 29
3. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 370
4. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 388
5. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 369
6. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 430

7. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 372
8. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 366
9. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 382
10. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 394
11. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 432
12. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 454
13. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 186
14. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-2, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 186
15. धर्मवीर भारती, अंधायुग, पृ० 124
16. हुक्मचंद राजपाल, धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम, पृ० 57
17. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 430
18. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 380-381
19. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 372
20. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 372
21. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 432-433
22. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 373
23. हुक्मचंद राजपाल, धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम, पृ० 59
24. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 368
25. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 369
26. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 360
27. धर्मवीर भारती ग्रंथावली-3, (सं०) चंद्रकांत बाँदिवडेकर, पृ० 360

□ म० नं० 1339 अर्बन एस्टेट
जी०-126102

डॉ० शंकर शेष के नाटकों का अनुशीलन

प्रा० डॉ० योगेश पाटील

सहा० प्राध्यापक, विद्यावर्धिनी महाविद्यालय,
धुले (महाराष्ट्र)

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी के नाटककारों में डॉ० शंकर शेष का स्थान विशेष उल्लेखनीय है। सन् 1955 में 'मूर्तिकार' की रचना के साथ डॉ० शंकर शेष ने नाट्य जगत में प्रवेश किया और सन् 1971 तक उन्होंने कुल बाईस नाटक लिखे। इससे स्पष्ट है कि उनका व्यक्तित्व ही नाट्यधर्मी था। नाटक लिखना उनका शौक भी था और स्वभाव भी। उन्होंने नाट्य को रंगमंच के अलावा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर लाने के लिए अनेक प्रयास किए। हिंदी नाट्य-साहित्य में जिस प्रकार जयशंकर प्रसाद ऐतिहासिक एवं मोहन राकेश ने साहित्यिक मिथकों के साक्ष्य पर समकालीन संदर्भ प्रस्तुत किए। उसी प्रकार डॉ० शंकर शेष ने महाभारत की कथाओं के माध्यम से युगीन संदर्भों में टूटते-बनते जीवन को परखने एवं जीवंत करने का सफल प्रयास किया है। साहित्यिक गरिमा, मंचीय तकनीक तथा व्यावसायिक सफलता की माँग करनेवाली नाटक विधा की सही पहचान, प्रगल्भ प्रतिभा, जीवन की गहरी पकड़ तथा चिंतनशील प्रवृत्ति के कारण डॉ० शंकर शेष नाटककार के रूप में अपनी अलग एवं विशिष्ट पहचान बनाए हुए हैं। अपने नाटकों के सफल मंचन से वे एक ओर जहाँ आम प्रेक्षकों तक पहुँच गए, वहाँ नाटकों की साहित्यिक गरिमा के कारण समीक्षकों में भी प्रशंसा का विषय बन गए। पिछले दशकों में उन पर स्वतंत्र रूप से बहुत कुछ लिखा गया, फिर भी अध्येता के लिए और कुछ लिखने की प्रेरणा मिलना उनके नाटकों की विशिष्टता मानी जाएगी।

'मूर्तिकार' (1955) डॉ० शंकर शेष द्वारा लिखित पहला नाटक है, जो सबसे पहले कॉलेज के गैदरिंग में खेला गया और काफी सफल सिद्ध हुआ। 'मूर्तिकार' से प्रारंभ हुई इनकी यह नाट्य-सरिता निरंतर गतिशील होती रही। श्रीनगर में संपन्न नाटक-प्रतियोगिता में उनका यह नाटक खेला गया और नाटक ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। उसके बाद नाटकों का सिलसिला ही जारी हो गया। प्रेरणा वृद्धिगत होने लगी। उसके पश्चात् उनके नाटकों 'रत्नगर्भा', 'नई सभ्यता के नए नमूने', 'बेटों वाला बाप' और 'तिल का ताड़' आदि ने उनके विकासक्रम को गतिमान बनाया और जन्मस्थान बिलासपुर में हुए बीजवपन को एक सुदृढ़ आकार प्राप्त होने लगा। प्राकृतिक सुषमा से संपन्न मध्यप्रदेश का छत्तीसगढ़ जिला तथा उसमें बसे बिलासपुर गाँव में डॉ० शेष का जन्म 1 अक्टूबर 1933 में हुआ। 28 अक्टूबर 1981 को हिंदी नाट्य सृष्टि का यह सितारा 52 वर्ष की अल्पायु में हमेशा-हमेशा के लिए बुझ गया। उनकी मृत्यु से प्रयोगधर्मी

रंगमंच पर गहरा अंतराल पैदा हुआ। आज उनका पार्थिक व्यक्तित्व हमारे बीच भले ही नहीं है, किंतु उनके नाटकों में उनके व्यक्तित्व की जो सुरभि है वह कालांतर तक रहेगी और हमें उनके अस्तित्व की अनुभूति कराएगी। यहाँ उनके कुछ महत्वपूर्ण नाटकों का अनुशीलन करने का एक प्रयास किया जा रहा है।

डॉ० शंकर शेष के नाटकों का कथ्य बहुआयामी है और वे जीवन के व्यापक परिवेश को समेटते हैं। उनका नाट्य-साहित्य समकालीन व्यवस्था, राजनीति, समाज और जीवन की सजीव विसंगतियों को रूपायित करता है। उनके प्रारंभिक नाटकों की 'वस्तु' व्यक्तिनिष्ठ और समाज-सापेक्ष समस्याओं से संबंधित है। उनके अनेक नाटक ऐतिहासिक भी हैं, लेकिन ऐतिहासिक कथानक को उन्होंने समकालीन संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में ग्रहण किया है। डॉ० शेष ने अपने नाटकों के लिए कथावस्तु का चयन पुराण, कल्पना तथा यथार्थ जीवन स्थितियों के आधार पर किया है। कला एवं कलाकार की मानसिकता को लेकर लिखे गए नाटकों में 'मूर्तिकार' उनका पहला नाटक है। इस नाटक के माध्यम से डॉ० शेष ने कला की पवित्र दुनिया में खोए, कला से एकांतिक निष्ठा रखनेवाले कलाकार की व्यावहारिक त्रासदी तथा कला की उपेक्षा से युक्त पीड़ा को आदर्श स्तर पर उठाया है।

'बिन बाती के दीप' डॉ० शेष का महत्वपूर्ण नाटक है। इसमें साहित्य-सृजन के क्षेत्र में फैले अपराध और भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया है। प्रतिभा की मजबूरी का लाभ उठाकर महत्वाकांक्षी प्रतिभाहीन लोग महान लेखक की प्रसिद्धि पाकर ऐश्वर्य भोग रहे हैं। राष्ट्रीय पुरस्कार पा रहे हैं। लिखता कोई और है और उस पर अपना नाम छपवाकर प्रसिद्धि कोई और पा रहा है। नाटक के इस कथ्य को डॉ० शेष ने अत्यंत रोचक कथानक में ढाला है। शिवराज अंधी विशाखा से शादी करता है। दोनों एक-दूसरे से प्यार करते हैं। विशाखा प्रतिभासंपन्न है, वह अंधी होने के बाद भी शिवराज से उपन्यास लिखवाती है। प्रसिद्धि की लालसा में शिवराज उसे अपने नाम से प्रकाशित करवाता है। पहले उपन्यास के प्रकाशन से ही शिवराज को लेखक के रूप में इतनी प्रसिद्धि मिलती है कि वह अत्यंत सम्मानित और प्रतिष्ठित हो जाता है। शिवराज अनेक उपन्यास अपने नाम से छपवाकर साहित्यकार के रूप में ख्याति प्राप्त करता है। प्रकाशित पुस्तकों से मिलनेवाली रॉयल्टी और पुरस्कारों के रूपों से वह मालामाल हो जाता है। इसके बाद शिवराज में अपराधवृत्ति जन्म लेती है। वह विशाखा की अंधी आँखों का इलाज कराने का ढोंग करता है। वह अपनी नई प्रेमिका मंजू की सहायता से विशाखा की आँखों में गलत दवा कई वर्षों तक डलवाता रहता है। शिवराज अपनी टायपिस्ट मंजू के साथ रँगरेलियाँ मनाता है। पति का फ़रेब जानकर भी विशाखा अपने पति शिवराज को क्षमा करनेवाली आदर्श पत्नी के साथ ही निष्ठावान कलाकार के रूप में सामने आती है। वह अपने नाम का रहस्य उद्घाटित करने से पति को रोकती हुई कहती है, 'नहीं शिव, ऐसा नहीं करना....पाठकों के हृदय को आघात लगेगा.... साहित्य का क्षेत्र अभी इतना गंदा नहीं हुआ है... इससे साहित्यकारों पर लोगों का विश्वास हट जाएगा।' नाटक का शीर्षक 'बिन बाती का दीप' शिवराज का ही प्रतीक है। प्रतिभाहीन बिना बाती का शिवराज आज प्रकाशित है और शिवराज जैसे अपराधवृत्ति के अवसरवादी पुरुषों के कारण प्रतिभाशालिनी विशाखा अंधी और अपाहिज है। शिवराज सोचता है—अगर विशाखा आँखों वाली बनकर लौटेगी, 'जब वह आँखें खोलकर किताबों को देखेगी,

जब उस पर मेरा नाम पढ़ेगी तब मेरा क्या होगा? शिवराज की प्रेमिका मंजू उस पर अपना क्रोध प्रकट करते हुए कहती है, 'तुम बेशर्म हो क्षमा माँग लो, पर मैं क्या उत्तर दूँगी? तुम उसके उपन्यास चुराते हो और मैं उसका विश्वास चुराती रही, मेरे मन में इसी बात का भय किसी धुन की तरह समा गया है।' डॉ० शंकर शेष ने परंपराओं में जकड़ी मध्यवर्गीय नारी का यथार्थ 'बिन बाती के दीप' में किया है। विशाखा एक मध्यवर्गीय नारी है। पति के हित के लिए, पति के समाधान और आनंद के लिए वह अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है। 'नाटककार ने इस नाटक में नारी को समर्पित, मूर्तिमत्, सशरीर प्रतिमा में आँका है, जो यथार्थ से दूर आदर्शवादी मूल्यांकन है।'¹² शिवराज को लगता है विशाखा की आँखें वापस आई हैं, परंतु सँभलती, टटोलती विशाखा जब टेबल से टकराकर गिर जाती है, तब विशाखा को अंधी देखकर शिव चीख उठता है। यह चीख पुरुष की स्त्री-विषयक मांसलता का प्रतीक बनकर वाचक को करुण बनाती है। यह चीख नारी की आकांक्षाएँ, उसकी मूक जलन और घुटन का दर्शन कराती है, जो डॉ० शंकर शेष के अनेक स्त्री-पात्रों द्वारा व्यक्त हुई है।

'बंधन अपने-अपने' नाटक बुद्धिजीवी मध्यम वर्गीय प्रोफेसर की शोकांतिका लेकर हमारे सामने प्रस्तुत होता है। डॉ० जयंत एक महान लिपिशास्त्री, विद्वान और विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। विश्व प्रसिद्धि के चरमबिंदु को स्पर्श करना उनकी महत्वाकांक्षा का चरम लक्ष्य है, जिसे लगभग उन्होंने हासिल कर लिया है। पुस्तकों की दुनिया ही उनका सब-कुछ है। साधना और तपस्या का अखंड दीपक बनकर उन्होंने अपना जीवन अनुसंधान तथा अध्ययन के प्रति समर्पित कर दिया है। भारत सरकार द्वारा प्राचीनतम लिपि के अनुसंधान पर उन्हें 'पद्मभूषण' सम्मान प्राप्त हुआ है। डॉ० जयंत अपनी उन्नति का चरमबिंदु तो छू लेते हैं, पर उनकी जिदगी में आया सूनापन धीरे-धीरे उन्हें डस लेता है। यहीं से उनके जीवन की त्रासदी आरंभ होती है। उनके घर उनकी ही शोधछात्रा बनकर अध्ययन करनेवाली चेतना के सामने पत्र के माध्यम से वे अपने मन की कमल-पंखुडियों को खोलकर रख देते हैं। यही नाटक का विस्फोटक बिंदु है। दुर्भाग्यवश चेतना उसके छोटे भाई की प्रेमिका है। इस प्रकार यह नाटक विश्वविद्यालय के एक अति विद्वान व प्रतिष्ठित व्यक्ति की महत्त्वपूर्ण जीवन-यात्रा के करुण अंत का उद्घाटन करता है। 'डॉ० जयंत का चरित्र प्रतीक रूप में आजीवन महत्वाकांक्षाओं में जुटे व्यक्तियों की घुटन, पीड़ा और एकाकीपन को मूर्त करता है।'¹³ डॉ० जयंत की कायरता, बुज्जदिली असल में सारे प्रतिष्ठित विद्वानों की त्रासदी है।

'एक और द्रोणाचार्य' डॉ० शंकर शेष का बहुचर्चित प्रयोगशील नाटक है। नाटक का कथ्य महाभारतकालीन द्रोणाचार्य के समकालीन के संदर्भ को प्रोफेसर अरविंद और लीला के रूप में प्रस्तुत करता है। जीवन के संघर्ष और अभाव ने द्रोणाचार्य को राजसत्ता से जुड़ने को विवश किया। इसमें उनकी पत्नी का बड़ा साथ था। इसमें नाटककार का मुख्य उद्देश्य आज के शिक्षा की दुर्व्यवस्था का उद्घाटन करना है। यह नाटक एक अध्यापक-जीवन को लेकर लिखा गया है। प्रस्तुत नाटक में महाभारत के चरित्र-द्रोणाचार्य, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीष्म, अश्वत्थामा और एकलव्य हैं। वहीं दूसरी ओर आधुनिक प्राध्यापक अरविंद, पत्नी ललिता, शिष्य राजकुमार और चंदु, कॉलेज के व्यवस्थापक और प्रिंसिपल आदि पात्र हैं। डॉ० शेष के नाटकों में कथ्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू है स्त्री-पुरुष-संबंध। उनके नाटकों में ललिता, विशाखा

जैसी समर्पित पत्नियाँ हैं, जो अपना सब-कुछ त्यागने को तैयार हैं। 'रत्नगर्भा' नाटक में बताया गया है कि पति-पत्नी-संबंध की नींव बाह्य सौंदर्य नहीं, बल्कि परस्पर विश्वास एवं प्रगाढ़ निष्ठा है। 'तिल का ताड़', 'घरौंदा', 'बिन बाती के दीप' नाटकों में प्रेम-संबंधों का चित्रण है, लेकिन यहाँ प्रेम नितांत समर्पण की आदर्श भूमि को त्यागकर क्षणिक आवेगजन्य कठिनाई, महानगरीय समस्याजनित, फ़रेब, घृणित महत्त्वाकांक्षा तथा अहंकार आदि मानवीय कमजोरियों में फँसा हुआ है। 'अरे मायावी सरोवर' नाटक में नाटककार पति-पत्नी-संबंधों को जादुई प्रभाव में उभारते हैं। इसके साथ ही नारी की कोमलता, त्याग-भावना एवं मातृत्व से लेखक अभिभूत लगते हैं। 'रक्तबीज' की ललिता, 'मूर्तिकाल' की नीलू, 'अरे मायावी सरोवर' की रानी, 'कोमल गांधार' की गांधारी और कुंती ये नारियाँ अपने मातृत्व पर सबकुछ न्योछावर करने के लिए तत्पर हैं। नाटककार अनेक स्थानों पर पुरुष की तुलना में नारी को श्रेष्ठ ठहराने की कोशिश करते नज़र आते हैं। नारी पर होने वाले अन्याय, अत्याचार एवं बलात्कार के संदर्भ उनके कई नाटकों में उभरते हैं। वहाँ लेखक सर्वत्र नारी के प्रति सहानुभूतिशील दिखाई देते हैं।

डॉ० शेष के नाटकों की अन्य विशिष्टता कथासूत्रगत रोचकता है। उनके नाटक समकालीन जिंदगी के दृश्यखंडों में उभरने वाले 'कोलाज' शैली के नाटक नहीं हैं, बल्कि अतीत, वर्तमान एवं शाश्वत जीवन-संदर्भों को समेटते हुए, रोचकता, जिज्ञासा, कुतुहल लेकर चलने वाले कथासूत्रों के नाटक हैं। नाटक का स्रोत चाहे कुछ भी हो, उसे रोचक कथासूत्र में बाँधने की विलक्षण प्रतिभा डॉ० शेष के पास है। केवल दो पात्रों के वार्तालाप में उभरने वाला 'आधीरात के बाद' नाटक हो, सरोवर में नहाने से कायाकल्प की चमत्कारपूर्ण घटना पर आधारित 'अरे मायावी सरोवर' नाटक हो, अदालती बहस में उभरनेवाला 'फंदी' हो, नितांत भिन्न घटनाओं को पौराणिक सूत्र के प्रतीक में बाँधनेवाला 'रक्तबीज' हो या पुराण और यथार्थ को एक साथ आमने-सामने रखनेवाला 'एक और द्रोणाचार्य' हो; उनके सभी नाटकों में आदि से अंत तक कोई कथासूत्र चलता है, जिसमें प्रेक्षकों को बाँधे रखने की जबर्दस्त शक्ति है। 'प्रगल्भ, उत्कट एवं व्यापक चिंतनशीलता, जो सर्जना की नींव है, डॉ० शेष के नाटकों की विशेषता है। इस चिंतन को नाटक जैसे बहिर्मुखी, दृश्य एवं समाजपरक विधा एवं माध्यम में ढालने में डॉ० शेष अधिकांशतः सफल रहे हैं। इसलिए उनके नाटक जीवन को जानने-परखने तथा देखने-भोगने जीने की दृष्टि और प्रेरणा देने के साथ ही गंभीर और गहन विचार भी देते हैं।¹⁴

'घरौंदा' डॉ० शंकर शेष की एक अनूठी नाट्य-सृष्टि है। इसमें उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति से उदित जीवन के यथार्थ बोध से बनते मूल्यों को साफ-साफ पहचाना जा सकता है। प्रस्तुत नाटक में छाया और सुदीप का घरौंदा है, परंतु वस्तुतः यह हमारे समाज के हर मध्यम वर्गीय आदमी के घरौंदे का प्रतीक है। उसे बनाने के लिए वह सारे कष्ट उठाता है। यातनाओं से गुज़रता है, सुदीप और छाया के समान भूखा रहकर, सिर पर कर्ज का बोझ चढ़ाकर, पाई-पाई बचाकर अपने घरौंदे को बनाने की स्वप्नपूर्ति में वह लगा रहता है। अपने घर को लेकर उसकी मासूम सी हरकत महत्त्वाकांक्षा से भरी है। छाया सोचती है, 'अपना एक छोटा-सा घर होगा। केवल अपना एक छोटा-सा घोंसला। अपनी सत्ता की एक छत, एक कमरा हुआ तो क्या हुआ। उसे इस तरह से सजाऊँगी कि तुम भी क्या कहोगे। कमरे में एक तरफ़ होगी बैठक।

हमारा सोफा। पास ही होगा एक छोटा-सा शो-केस। उसमें होंगी तरह-तरह की गुड़ियाँ। शो-केस पर होगा पीतल का एक बड़ा फ्लॉवर पॉट। उसमें होंगे निशिंगंधा के फूल। दीवारों का रंग हल्का नीला कराना। आकाश की तरह। परदे भी उससे मिलते-जुलते...।⁵ प्रस्तुत नाटक महानगरीय समस्या के स्वर को मुखर करता है। महानगरीय जीवन की व्यस्तता, जटिलता, यांत्रिकता का मार्मिक तथा सजीव चित्रण करके नाटककार ने मध्यमवर्ग की समस्याओं को स्वर दिया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि डॉ॰ शंकर शेष के नाटक स्वातंत्र्योत्तर काल में लिखे गए हैं। वे अपने समय की समाज-व्यवस्था और बदलती जीवन-दृष्टि के समर्थ वाहक बने हैं। उनके नाटक का हर पात्र एवं हर प्रसंग मानव-जीवन से संबंध रखता है। उनके नाटक के पात्रों और मनुष्य के वास्तविक जीवन में कोई अंतर नहीं है। उनके युगबोध की अभिव्यक्ति और यथार्थ की पकड़ पाठक के मन को गहराइयों में डुबोती है। अपने समकालीन जीवन को पूरी तरह से व्यक्त करने में उनके नाटक सक्षम हैं। डॉ॰ शंकर शेष के नाटक नाट्य-विधा के रूप में काफी हद तक सफल कहे जा सकते हैं।

संदर्भ

1. 'बिन बाती के दीप', डॉ॰ शंकर शेष, पृ॰ 101
2. 'राजपथ से जनपथ नटशिल्पी', शंकर शेष, डॉ॰ सुरेश एवं वीणा गौतम, पृ॰ 63
3. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक, मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में, डॉ॰ रीता कुमार, पृ॰ 107
4. 'हिंदी नाटक विमर्श', डॉ॰ जया परांजपे, पृ॰ 78
5. 'घरौंदा', शंकर शेष रचनावली, डॉ॰ विजय, खंड-2, पृ॰ 328

□ प्लॉट नं. 12, नयना सोसायटी,
नकाणे रोड, देवपूर, धुले 424002

भारतभूषण अग्रवाल के काव्य में यथार्थ-बोध

डॉ० शुक्ला रानी

भारतभूषण अग्रवाल हिंदी साहित्य की प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि थे। वे तार सप्तक के ऐसे अनुपम नक्षत्र थे, जिनसे हिंदी साहित्याकाश सदैव दैदीप्यमान रहेगा। भारतभूषणजी प्रारंभ से ही महत्वाकांक्षी थे और उनकी यही महत्वाकांक्षी मन उन्हें निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर करती रही। यही कारण है कि प्रारंभ से ही साहित्यिक प्रवृत्ति के कारण समसामयिक परिवेश से प्रेरणा प्राप्त करते हुए साहित्य-सृजन की यात्रा में निरंतर गतिशील रहते हुए भारतभूषण जी अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देते रहे।

यद्यपि भारतभूषण ने साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी लेखनी चलाई, किंतु छात्र-काल से ही कविता-लेखन के प्रति उनका विशेष रुझान रहा। भारतभूषण के शब्दों में 'तुक के चमत्कार ने मुझे कविता की ओर आकर्षित किया, शुरू में गुणा-भाग की तरह कविता लिखी गिन-गिनकर।'¹ काव्य के क्षेत्र में अत्यधिक प्रसिद्ध प्राप्त भारतभूषण अग्रवाल के काव्य में यथार्थ का सार्थक व सटीक संयोजन हुआ है। उनके काव्य पर चर्चा करने से पूर्व हम यथार्थ व यथार्थ बोध को स्पष्ट करना चाहेंगे।

'यथार्थ' शब्द का रूपांतर 'रीयल' ग्रीक भाषा के रस शब्द से हुआ है। रीयल शब्द का अर्थ हुआ यथार्थ और बोध का अर्थज्ञान करना। इस तरह यथार्थ-बोध का अर्थ है यथार्थ का ज्ञान या वास्तविकता का ज्ञान।

डॉ० रामअवध द्विवेदी यथार्थ को परिभाषित करते हुए कहते हैं—'जीवन की सच्ची अनुभूति ही यथार्थ है।'² इसी क्रम में हिंदी साहित्य के भारतीय विद्वान श्री प्रेमचंद ने यथार्थ के विषय में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं—'यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विशेषताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्रण होता है और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव-चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है। हमको चारों ओर बुराई-ही-बुराई नजर आने लगती है।'³

हिंदी साहित्य में बहुत पहले से ही यथार्थ का प्रयोग होता आ रहा है, किंतु प्रयोगवादी काव्य में इसका प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है। भारतभूषण अग्रवाल के काव्य में यथार्थ का प्रयोग अनेक प्रकार से हुआ। अब हम स्पष्ट करेंगे कि भारतभूषण जी ने अपने काव्य में किस प्रकार यथार्थबोध कराया है।

इस दृष्टिकोण से देखें तो भारतभूषण अग्रवाल का काव्य कोरी कल्पनाओं पर आधारित

न होकर यथार्थवेदनापरक काव्य है। उन्होंने अपने काव्य में अधिकतर वेदना का यथार्थबोध कराया है। उनकी रचनावली की संपादिका एवं उनकी पत्नी श्रीमती बिंदु अग्रवाल ने उनके विषय में लिखा है—‘भारत जी की मानसिकता अविच्छिन्न रूप से मध्यवर्ग से जुड़ी रही। वे तत्कालीन देश, समाज और और उसमें जीने वाले व्यक्ति की यातना झेल रहे थे, जिसकी अभिव्यक्ति उनके संपूर्ण साहित्य में हुई है। आत्मालोचन और आत्मव्यंग्य उनके साहित्य की प्रमुख विशेषताओं में से हैं।’⁴

श्रीमती बिंदु अग्रवाल के इस कथन से और भी स्पष्ट हो जाता है कि भारतभूषण अग्रवाल के काव्य में यथार्थबोध का अभिप्रेत वेदना ही है। रचनावली खंड एक में रचित एक पत्र नामक कविता से उद्धृत उनका वेदनापूर्ण उदाहरण द्रष्टव्य है—

अब और क्या तुमको लिखूँ
है अन्य क्या ही जो लिखूँ
दुख है कि मेरा दुःख समझ सकते न तुम
मैं क्यों हुआ कवि विश्व में
यह गहन जीवन-सुख समझ सकते न तुम?५

भारतभूषण जी के मन पर प्रारंभ में मार्क्सवाद या साम्यवाद का प्रभाव था, किंतु बाद में इससे विरत हो गए। इसीलिए उनके काव्य में यथार्थ के अभिप्रेत ‘वेदना’ में भी दो प्रकार की कविताएँ हैं, एक तो साम्यवाद से प्रभावित और दूसरी साम्यवाद से मुक्त कविताएँ। यहाँ पर हमारा अभिप्रेत इन दोनों ही प्रकार की कविताओं को प्रस्तुत कर वेदना का स्पष्टीकरण देना है।

साम्यवाद से प्रभावित वेदनापूर्ण कविताओं के मूल में देश में व्याप्त पूँजीवाद के विरोध में और समाज की समता के पक्ष में क्रांतिकारी विचारधारापूर्ण कविताएँ रची गईं। भारतभूषण जी द्वारा रचित ‘मरण से मुस्कुरा रहे हैं’ कविता में पूँजीवाद से पिसते-कराहते हुए जन-जन को क्रांति का संदेश देने हेतु उनकी लेखनी की पैनी निगाह का प्रतिफल देखिए—

लग रही है इंदु को किस
साज में यह देर इतनी
भीख माँगें कब तलक ये
भूख से निस्तेज तारे।⁶

भारतभूषण जी साम्यवाद से प्रभावित थे, अतः वह चाहते थे कि देश में समता का जीवन हो, परिश्रम का प्रतिफल सबको समान रूप से मिले। कोई पेट भूखा न रहे। अतः वे काँग्रेस के क्रियाकलापों से संतुष्ट नहीं थे। इसलिए उन्होंने अपनी कविता ‘पड़ा हुआ गड्ढे में देश’ के माध्यम से अपनी वेदना को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है—

पड़ा हुआ गड्ढे में देश
सोच रही है पर काँग्रेस
भूखों को मर जाने दो
चोरबाजार चलाने दो

रुपया खूब कमाने दो
 नहीं हमें जब कुछ अधिकार
 भला बनें क्यों जिम्मेदार
 किंतु करें तब तक
 जोर-जोर से जय-जयकार।⁷

देश की दुर्दशा देखकर भारतभूषण जी की वेदना उनके दुखी हृदय को व्यथित कर देती थी, तभी उनके वेदनापूर्ण उद्गार उनकी लेखनी के माध्यम से फूट पड़ते थे। भारतभूषण जी ने सन् 1936 के आस-पास कुछ पैरोडियाँ लिखी थीं, जो 'काण्ड के फूल' दूसरे संस्करण में संकलित हैं। ये पैरोडियाँ हास्यपरक होते हुए भी भारतभूषण जी की आंतरिक वेदना को व्यक्त करनेवाली हैं। यथा—सुभद्राकुमारी चौहान की पैरोडी हास्यात्मक व्यंग्य के रूप में भारत के भूखे लोगों का चित्र प्रस्तुत करती है—

भार्गव हॉस्टल वालों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
 खाना खूब खिलाती थी वह मथुरा की मिसरानी थी,
 जाओ रानी याद करेंगे ये भूखे-हॉस्टल।

जल जावे कॉलेज, यूनिवर्सिटी लग जाए फाँसी
 जहाँ रहा आनंद रहो तुम, मथुरा हो या काशी।⁸

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि भारतभूषण जी के काव्य में साम्यवादी प्रभाव से प्रभावित यथार्थ के बोध में वेदना का स्तर मूलरूप से मुखरित हुआ है।

साम्यवाद के प्रभाव से मुक्त वेदना का स्वर भारतजी के काव्य में यथार्थ का मुख्य अभिप्रेत वेदना ही है। वेदना का स्वर पाषाणहृदय को भी पिघला देता है। इसी वेदना का स्वर भारत जी की कविता 'संयोग' में मुखरित हुआ है—

फूटे कण-कण में योग-वियोग हमारा
 क्षण-क्षण में हो नूतन संयोग हमारा
 हम मिलें दूर भी रहकर सदा परस्पर
 बन जाए कहीं यह विरह रोग न हमारा।⁹

वियोग की वेदना अत्यंत असहाय होती है, किंतु प्रेम में वियोग की वेदना का भी अपना एक आनंद होता है। वह एक मीठी-सी कसक होती है, जो प्रेमी-प्रेमिका के प्रेम को बाँधे रखती है। प्रेम की शक्ति संसार की सबसे शक्तिशाली शक्ति है। प्रेम ही जगत् का सार है, इसके बिना तो जगत् भी सारहीन है। प्रेम को पाकर भी जब धोखा मिलता है, तो दुःखी हृदय की जो उस समय स्थिति होती है, वह अकथनीय होती है। इसी का हृदयविदारक चित्र भारतभूषण जी की कविता 'तुम कौन' प्रस्तुत करती है—

आज रीता प्यार मेरा

जल चुका संसार मेरा
उड़ चला है आज पंछी छोड़कर अपना बसेरा
रिक्त उर में सरसती अनुरागिनी तुम कौन हो।¹⁰

इस विरह-वेदना में मानव को सब-कुछ सूना-सा, वीरान-सा लगता है। उसे समस्त दृश्यमान जगत् सारहीन प्रतीत होता है। अतः वह ऐसे जीवन से मुक्ति चाहने लगता है।

इस जीवन का अधिकांशतः यथार्थ भी यही है कि जो आया है, उसे जाना ये संसार नश्वर है। भारतभूषण जी ने इस सारहीन संसार को श्मशान की संज्ञा दी है, क्योंकि श्मशान में नित्यप्रति शव जाते हैं और दफनाएँ जाते हैं या अग्नि को समर्पित कर दिए जाते हैं। इसी यथार्थ को उन्होंने अपनी कविता 'यह जगती जीवन का श्मशान' में व्यक्त किया है।

यह जगती जीवन का श्मशान
प्राणों की जगती दिव्य-जोत
जिससे यह अंतर ओत-प्रोत
इसका उतना ही क्षुद्र अंत, आरंभ हुआ जितना महान
विभु ने जिसका संचार किया
परियों ने जिसको प्यार किया
मिट्टी में मिलकर अब उसका बाकी न बचेगा कुछ निशान।¹¹

यह एक यथार्थपूर्ण वेदना है कि संसार के मिथ्या आनंद को देखकर मानव फूला नहीं समाता, किंतु जब मृत्यु पर विचार करता है और अपने खुले नेत्रों के सामने प्राणियों को मृत्यु प्राप्त करते हुए देखता है, तो वह वेदना से प्रकंपित हो उठता है।

यह तो यथार्थ सत्य है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारतभूषण जी के काव्य में यथार्थबोध का अभिप्रेत वेदना है। उनके काव्य में यथार्थबोध के गहरे धरातल को अनुभूत किया जा सकता है। भारतभूषण जी का मध्यवर्गीय समाज की वेदना का स्तर यथार्थ-बोध की भूमि पर ही खड़ा हुआ है। भारतभूषण जी की विचार-दृष्टि यथार्थबोध के रंगों से रंगी हुई है। भारतभूषण जी यथार्थ को ग्रहण करते हैं और वही यथार्थ-बोध काव्य के माध्यम से हम तक पहुँच जाता है। भारतभूषण जी का कथ्य यथार्थ से जुड़कर ही सार्थक रूप में प्रत्यक्ष होता है।

भारतभूषण अग्रवाल ने अपने भावपक्ष में जहाँ यथार्थ को चुना है, वहीं उनका शिल्पपक्ष अर्थात् भाषा, प्रतीक-विधान आदि भी यथार्थ से युक्त है। भारतजी के काव्य में यथार्थ-बोध का अभिप्रेत यथार्थपरक सत्य को अपनी मौलिकता के साथ विशुद्ध विचारखंडों में प्रस्तुत करता है। वही उद्देश्य या संदेश कवि का कथ्य कहा जाएगा।

संदर्भ

1. तार सप्तक अज्ञेय, पृ० 8
2. साहित्य सिद्धांत, डॉ० रामअवध द्विवेदी, पृ० 116
3. कुछ विचार, प्रेमचंद, पृ० 49
4. भारतभूषण अग्रवाल रचनावली, खंड एक, भूमिका संपादिका, श्रीमती बिंदु अग्रवाल, पृ० 9
5. भारतभूषण अग्रवाल रचनावली, खंड एक, एक पत्र, सं० श्रीमती बिंदु अग्रवाल, पृ० 6

6. भारतभूषण अग्रवाल रचनावली, खंड एक, 'मरण से मुस्कुरा रहे हैं', पृ० 6
7. भारतभूषण अग्रवाल रचनावली, खंड एक, 'पड़ा हुआ गड्ढे में देश', पृ० 224-225
8. भारतभूषण अग्रवाल रचनावली, खंड एक, हास्य व्यंग्यपरक कविताएँ : सुभद्राकुमारी चौहान, सं० बिंदु अग्रवाल पृ० 488
9. भारतभूषण अग्रवाल रचनावली, खंड एक, संयोग, पृ० 23
10. भारतभूषण अग्रवाल रचनावली, खंड एक, 'तुम कौन हो', 1938, पृ० 78
11. भारतभूषण अग्रवाल रचनावली, खंड एक, यह जगती जीवन का श्मशान, पृ० 136

□ मौहल्ला राजीवनगर
नई बस्ती
हल्दौर (बिजनौर) उ०प्र०

जयनाथ 'नलिन' की निबंध-कला

सत्यपाल

एक सच्चा साहित्यकार अपने रचना-कर्म के द्वारा संसार पर परोपकार करता है या फिर यूँ कह लीजिए कि उसके साहित्यिक कर्म के पीछे निहित उद्देश्य जन-कल्याणकारी भावना है। अपने भावों और विचारों को प्रकट करने के लिए निबंध एक महत्वपूर्ण विधा है। इस विधा में अनेक विद्वानों ने अपनी लेखनी चलाई है। निबंध-लेखन-परंपरा में श्री भारतेंदु हरिश्चंद्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० प्रतापनारायण मिश्र, श्री बालमुकुंद गुप्त, आ० महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेंद्र, डॉ० जयनाथ 'नलिन' का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। डॉ० जयनाथ 'नलिन' भी हिंदी-निबंध-लेखन क्षेत्र के हस्ताक्षर हैं। इन्होंने निबंध-लेखन को अनेक नई मान्यताएँ व नई स्थापनाएँ देकर इस विधा को समृद्ध किया है।

निबंध का अर्थ व परिभाषा—

'संस्कृत की मूल धातु 'बंध' में 'नि' उपसर्ग (नि+बंध) लगाकर निबंध शब्द का निर्माण हुआ।' निबंध शब्द का शाब्दिक अर्थ है—गठा हुआ, कसा हुआ, बंधन मुक्ता।' 'साधारणतः लेख, रचना, संदर्भ, प्रबंध और निबंध ये शब्द पर्यायवाची हैं, परंतु व्युत्पत्ति और प्रयोग के विचार से इनमें समानता और विषमता का अस्तित्व पाया जाता है।' डॉ० जयनाथ 'नलिन' ने निबंध-संबंधी अपनी परिभाषा इस प्रकार दी है, 'निबंध गद्य-काव्य की वह मर्यादित विधा है, जिसमें लेखक के स्वाधीन चिंतन और निश्छल अनुभूतियों की सरल-सजीव अभिव्यक्ति है।' यह भी कहा जा सकता है कि निबंध में अनुभूतियों तथा विचारों का कलात्मक चित्रण वैयक्तिकता से जुड़ा होता है।

कला का अर्थ एवं परिभाषा—

कला शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से ही भारतीय भाषाओं में होता आया है। शिल्प शब्द को कला का पर्याय माना गया है, 'जो कि अँग्रेजी के 'आर्ट' शब्द के भावार्थ के समीप है। आर्ट शब्द प्राचीन लैटिन भाषा के आर्स 'ते' शब्द से बना है, जिसका ग्रीक रूपांतर है (Teyvn)। इसे ही संभवतः प्लेटो ने तकने (Techne) लिखा है। इस शब्द का प्राचीन अर्थ साधारण शिल्प (क्राफ्ट) अथवा नैपुण्य विशेष है। इस शब्द में मात्र शिल्प बोध था, किंतु आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रयुक्त शब्द 'कला' में काव्यकला प्रभृति ललित कलाओं को भी समाविष्ट करने की अर्थ गरिमा है।' डॉ० जयनाथ 'नलिन' के अनुसार, 'जीवन के उस माधुर्य को कला कहना चाहिए, जो हमें भौतिक और मानसिक उल्लास, आनंद की उपलब्धि कराएँ।' कला मानव

द्वारा निर्मित सुंदर उपादान है। कला वह, जो आत्मा को परमात्मा की ओर ले जाती है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना कला की विशेषता है।

जयनाथ 'नलिन' की निबंध-कला :

साहित्यकार द्वारा अपनी अनुभूति को सुंदर बनाकर अपनी रचना के लिए प्रयोग में लाना ही कला है। यह कलात्मक रूप देने का काम सुंदर शिल्प द्वारा ही संभव है। कला की दृष्टि से 'नलिन' जी के निबंध बड़े सारगर्भित एवं विविधतापूर्ण हैं। ये शैली व शिल्प-कला के अंतर्गत ही समाविष्ट होते हैं। इस दृष्टि को आधार मानकर 'नलिन' जी के निबंधों के अनेक वर्ग बनाए जा सकते हैं।

1. **विचारात्मक निबंध :** इस प्रकार के निबंधों में मस्तिष्कीय व्यायाम पर बल दिया जाता है अर्थात् विचारों की प्रधानता पर। इन निबंधों में भाव पक्ष गौण होता है और बुद्धि पक्ष प्रमुख। ऐसे निबंधों में निबंधकार का चिंतन-मनन एवं सजग मस्तिष्क झलकता है। 'नलिन' जी के निबंध 'काल' में विचार तत्त्व की प्रधानता है। इस संसार में कोई गरीब हो या अमीर राजा हो या रंक समय के चक्र से बच नहीं पाया है। समय काल के रूप में बड़े-बड़ों को भी ग्रस लेता है। उसके समक्ष मनुष्य निःसहाय है। इस निबंध में समय का शक्तिशाली रूप विचारणीय है। यथा- 'समय की छलनी सब कर्मों को छान देती है। जो कर्म हीरों से चमकीले और काल की छलनी से बहुत बड़े दीख रहे हैं, समय आने पर वे पिस-पिस कर धूल के कण बन जाते हैं और बरसात की बाढ़ में ऐसे घुल जाते हैं कि बारीक-से-बारीक जाल भी उन्हें खोज नहीं ला पाते।'

यह सत्य है कि मनुष्य समाज से विमुख होकर जीवन-यापन नहीं कर सकता। उसे अपना दैनिक जीवन जीने के लिए किसी व्यापार या रोजगार की आवश्यकता होती है। भिखारी व्यक्ति साधनहीन होता है। वह आपको दान के बदले दुआएँ देता है, क्योंकि उसके पास आपको देने के लिए कुछ नहीं होता। दुआएँ आपके प्रति कृतज्ञता का भाव है, कोई वस्तु नहीं। 'नलिन' जी के निबंध- 'पेशा, पैसा और पुण्य' में इस व्यापार पर विचार द्रष्टव्य है-

'पेशा या व्यवसाय वह कर्म है, जिसके माध्यम से व्यक्ति पैसा कमाता है। पैसे से वह अपनी और समाज की आवश्यकताएँ पूरी करता है। भिक्षा पेशा नहीं, भिखारी पैसे के बदले में कोई पदार्थ नहीं देता-कोरी दुआएँ, पदार्थ नहीं। मनुष्य अपने कार्य की सिद्धि हेतु खुशामद का सहारा लेता है। उसकी यह स्थिति अवसरवादिता व स्वार्थपरकता की होती है। वह अपने कार्य-सिद्धि के लिए जिस व्यक्ति की खुशामद करता है, उसके अवगुणों को दरकिनार कर उसको झूठी प्रशस्ति से लुभाता है। वह खुशामद करते समय गुणीजनों के प्रति भी अपशब्द प्रयोग करता है जो निंदा की श्रेणी में आती है।' 'नलिन' जी के निबंध 'खुशामद' में मनुष्य के स्वाभाविक मनोविकारों पर दृष्टिपात हुआ है। यथा-

'खुशामद के ठीक मनोवृत्ति है निंदा। खुशामद में आलंबन के अवगुण भी गुण का चोला पहनकर आते हैं और आलंबन के उन अवगुणों की भर्त्सना, जो उसमें है ही नहीं, निंदा है।'

2. **भावात्मक निबंध :** भाव प्रधान निबंधों में निबंधकार के हृदय की उदात्त अनुभूतियों, तीव्र भावनाओं और भावुकता का सुंदर योग रहता है। इसमें भाव-पक्ष पर बल और विचार-पक्ष को थोड़ा विराम दिया जाता है। इसमें रागात्मक तत्त्व की प्रधानता रहती है।

‘नलिन’ जी के निबंधों में हृदय के कोमल भावों को प्रमुखता मिली है। प्रेम की सारगर्भित व संतुलित परिभाषा इनके निबंध ‘निज को प्यार करो’ में अंकित है—

‘किसी के प्रति हमारी रागात्मक वृत्तियाँ या भावनाएँ क्यों खिंचती हैं? सीधा-सा जवाब है, हम उसे प्यार जो करते हैं। प्यार है क्या: यही मिलन-विछोह में दुःख-सुख की अनुभूति।’

मनुष्य की सच्ची सामाजिकता के दर्शन उसके शीलयुक्त स्वभाव में होते हैं। उसका विराट उदार हृदय मानवता के लिए सुंदर उदाहरण बनता है। वह अपने जीवन में ‘वसुदैव कुटुंबकम्’ के सिद्धांत की पालना करता है। उसकी समदृष्टि में न कोई छोटा-बड़ा होता है और न कोई ऊँच-नीच। वह मानवता-विरोधी तत्त्वों से परहेज करता है और वह समाज को नई चेतना व नई दिशा प्रदान करता है। ‘नलिन’ जी के निबंध ‘शील-शक्ति-सौंदर्य’ में शील भाव का सुंदर प्रयोग वर्णित है—

‘एक व्यक्ति दो घंटे रोज किसी मंदिर में बैठ पूजा करता है, यह कर्मशील में नहीं गिना जाएगा। एक व्यक्ति किसी जंगल में आरक्षित पड़ी मस्जिद में घुसते हुए जूते उतार लेता है, यही उसका शील है।’

3. वैयक्तिक निबंध : वैयक्तिक निबंध अंग्रेजी भाषा के ‘पर्सनल ऐसे’ का हिंदी अनुवाद है। वैयक्तिक अथवा आत्मपरक निबंधों में रचनाकार अपने जीवन की अनेक घटनाओं, चित्रों को इस प्रकार समाविष्ट करता है, उसका व्यक्तित्व प्रधान आत्मतत्त्व सामान्य का होकर भी अलग बना रहता है, ऐसे निबंधों में रचनाकार की स्वानुभूति और कल्पना वांछनीय है।

4. हास्य व्यंग्यात्मक निबंध : ‘जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस प्रकार के निबंधों में व्यंग्य और चुटीलेपन की प्रमुखता रहती है। शब्द बाहर से सुंदर और सरल मालूम पड़ते हैं। उसका अभिधात्मक अर्थ भले ही कुछ न हो, पर व्यंग्यात्मक अर्थ बड़ा गहरा और नुकीला होता है।’

स्वतंत्रता से पहले भारतीय समाज वर्णों में बँटा हुआ था, जिसका आधार था श्रम-विभाजन। इस व्यवस्था की प्रमुख विडंबना मेहनती व कर्मठ जाति को निकृष्ट समझना था, किंतु वास्तव में वे ही जातियाँ समाज को शुद्ध रखती थीं। निबंध ‘वर्गहीन समाज’ में उच्च वर्ग की मानसिकता, कुटिलता व अकर्मण्यता पर करारा व्यंग्य हुआ है।

‘और मज़ा यह है कि निकम्मा और हराम की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाने वाला उच्च वर्ग उच्च, पवित्र और पूज्य, खून-पसीने की कमाई से पेट भरने वाला वर्ग, नीच तिरस्कृत और दास।’

कोई भी धर्म मनुष्य को मनुष्य से वैरभाव रखना नहीं सिखाता। धर्म तो मनुष्यों को आपस में जोड़ता है और जीवन में अच्छे आचरण का संदेश देता है, किंतु स्वार्थ में अंधा मनुष्य अपने संकुचित उद्देश्य की पूर्ति हेतु मनुष्य को मनुष्य से धर्म के नाम पर लड़वाता और दंगे-फ़साद करवाता है। मगर राजनीतिक व्यक्ति कुटिल होते हुए भी एक-दूसरे धर्मों के उत्सवों में शामिल होते हैं व आपस में गले मिलते हैं। ‘नलिन’ जी के निबंध ‘साझी कमाई’ में धर्मांध व्यक्तियों पर करारा कटाक्ष हुआ है।

‘धर्म तो अच्छाई का नाम है, धार्मिक कर्मकांड या रीतिरिवाज और बात है। धर्म की बाँग देने वालों से तो राजनीतिक धूर्त ही अच्छे, जो परस्पर वैरी होते हुए भी परस्पर बधाई और

शुभकामनाएँ भेजते हैं।’

ललित निबंध—‘वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक या वैयक्तिक निबंध को जब गद्य-काव्यात्मक कोमलकांत शैली में लिखा जाए तो उसे ललित निबंध कह दिया जाता है।’ ललित निबंधों में प्रायः कमनीय, सौंदर्य तथा लालित्य तत्त्व की प्रधानता रहती है। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि साहित्यकार आम व्यक्ति की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता है। उसकी किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति वर्णन व विवेचन शक्ति असाधारण होती है। सौंदर्य उसे बरबस ही आकर्षित करता है। सौंदर्य आस्वादन से मनुष्य असीम सुख की अनुभूति करता है। उसका रोम-रोम रोमांचित हो उठता है। निबंध ‘सौंदर्य बोध’ में ‘नलिन’ जी की सौंदर्य भावना वर्णित है। यथा—

‘सौंदर्य दर्शन से मन स्वतः ही आनंद से रोमांचित हो जाता है। भोग या स्वाद अनुभूति का विषय है। जब अपनी रुचि, कामना या परख के अनुसार मनुष्य को सौंदर्य की उपलब्धि होती है, तब हृदय अनिवर्चनीय सुखानुभूति करता है।’

जयनाथ ‘नलिन’ की निबंधकला की शैलीगत विशेषताएँ :

साहित्य की सभी विधाओं में भावाभिव्यक्ति का माध्यम शैली है। निबंधकार की वास्तविक पहचान उसकी शैली से ही होती है। शैली का संबंध सीधे-सीधे निबंधकार की मानसिकता या व्यक्तित्व से होता है।

‘बफन के अनुसार, ‘Style is the man himself’ अर्थात् शैली ही व्यक्तित्व है।’ जयनाथ ‘नलिन’ जी की शैली में अनेक विविधताएँ हैं, जो इस प्रकार हैं।

1. **प्रसाद-शैली**—इस शैली की भाषा अभिधात्मक, सुबोध, मधुर और स्पष्ट होती है। उपमा और रूपक अलंकारों का प्रयोग प्रायः मिलता है। इसका प्रयोग अधिकतर, वर्णन प्रधान, विचार प्रधान व हास्यपरक निबंधों में मिलता है। जयनाथ ‘नलिन’ जी के निबंधों में इस शैली का प्रयोग बहुत हुआ है। जैसे-निबंध-‘सौंदर्य-बोध’, ‘कलाकार का अहं’, ‘कला-विवेचन’ आदि में मिलता है। निबंध ‘कलाकार का अहं’ में प्रसाद शैली का उदाहरण द्रष्टव्य है—

‘प्रत्येक वाणी में निज अस्तित्व की भावना और चेतना एक चिरंतन सत्य है। मैं का बोध चेतन या प्राणवान होने की पहचान है।’

2. **समास-शैली**—इस शैली में कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक विचार और भाव ढूँस-ढूँसकर भरे जाते हैं। इसे सूत्र शैली भी कहा जाता है। डॉ० नलिन के निबंध ‘आस्था-अनास्था’ में इस शैली का उदाहरण इस प्रकार है—

‘श्रद्धा और प्रेम का योग है भक्ति, विश्वास और श्रद्धा का योग है आस्था।’

3. **विवेचन-शैली**—इसमें तार्किकता, खंडन-मंडन, वाद-विवाद का सहारा लेकर रचनाकार अपनी बात पाठकों के सामने रखता है। नलिन जी के निबंधों में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता होती है। डॉ० नलिन के निबंधों में विवेचन पद्धति का बहुत प्रयोग मिलता है। जैसे निबंध पेशा, पैसा और पुण्य, संज्ञा से विशेषण की ओर, मिट्टी के पास, कला-विवेचन, रस-विवेचन, कविता ही क्यों? आदि में। विवेचन शैली का उदाहरण निबंध ‘संज्ञा से विशेषण की ओर’ में अंकित है—

‘सगुण अवतारवादी भक्तों की बात छोड़िए, कबीर, नानक, मुहम्मद, ईसा, दयानंद आदि सभी ने भगवान को अनगिनत गुणों-विशेषणों का भंडार कहा है। तब भी क्या वह गुणहीन

रह गया?’

इन शैलियों के अतिरिक्त डॉ० जयनाथ ‘नलिन’ के निबंधों में व्यास शैली, व्यंग्य शैली, आवेग शैली, समालोचना शैली व उद्धरण शैली के भी दर्शन होते हैं।

जयनाथ ‘नलिन’ की निबंध-कला का भाषागत सौंदर्य :

यदि भाषा-प्रयोग की दृष्टि से नलिन जी के निबंधों को देखा जाए तो इनका शब्दकोश बहुत समृद्ध है। इन्होंने अपनी भाषा को अभिव्यक्त करने के लिए अनेक भाषाओं से शब्द-चयन किए हैं। जैसे हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, संस्कृत व फ़ारसी। वैसे तो मुख्य रूप से ये शुद्ध साहित्यिक हिंदी व खड़ीबोली का प्रयोग करते हैं। कहीं-कहीं अलंकारों, मुहावरों व कहावतों का प्रयोग भी मिलता है। इनकी भाषिक विविधताओं को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **तत्सम शब्द**—श्वास, अतुल, क्षिप्रता, नक्षत्र, ग्रह, कौशल, पग, निज, अहं, तृप्ति, प्रकृति, दर्शन, संचारी भाव, रस, राग, करुणा, वाणी, अनुष्ठान, नवीन।
2. **तद्भव शब्द**—सुंदरता, देखना, निरंतरता, विकास, ऊँट, दाँत, आग, घर, कंजूस, अँधेरा, शेर, पवित्र, मिठाई, आँखें, पापा, प्यार।
3. **विदेशज शब्द**—नाजायज़, रिश्वत, तनखा, हरामख़ोर, खुशामद, मज़हब, योशर्फ़शफुली, दहसम, स्टैथस्कोप, मेकप, Ultimate reality।
4. **संस्कृत शब्द**—अहं शब्दास्मि, द्वितघ्योनास्ति, तमसो मा ज्योतिर्गमय इत्यादि। इनकी भाषा में स्वनिर्मित शब्दावली का भी प्रयोग मिलता है। जैसे-साहित्य-सुनार, कलम-कुदाले, तिमिर-दुर्ग, पैसा-पति आदि। अध्लंकारिक शब्दावली का प्रयोग इस प्रकार है।

1. मोम-सी मुलायम, नवनीत-सी द्रवित।

2. हीरों-सी झिलमिल, रेशमतार-सी सुकुमार।

कहावतों का प्रयोग। जैसे-मूल से ब्याज प्यारा।

समासिक शब्द तो प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। जैसे-सुख-समृद्ध-सम्राट, रूप-यौवन-सौंदर्य, सौंदर्य-विवेक-बुद्धि, भोग-कामना-रूप-लिप्सा, सुधा-शीतल, पाप-शाप-ताप इत्यादि। अतएव नलिन जी को भाषिक दृष्टि से संपन्न साहित्यकार कहा जा सकता है।

जयनाथ ‘नलिन’ जी हिंदी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। निबंध के क्षेत्र में योगदान तो इन्हें आचार्य रामचंद्र शुक्ल की परंपरा में ला खड़ा करता है। इनके निबंध हृदय व बुद्धि का संतुलित समन्वय है। इन्होंने विचारात्मक निबंधों को अधिक प्राथमिकता दी है। इसके साथ-साथ भावात्मक, हास्य-व्यंग्यात्मक व ललित निबंधों को भी पर्याप्त मात्रा में स्थान दिया है। इनकी अभिव्यक्ति शैली असाधारण है। इनका भाषागत व शिल्पगत सौंदर्य अनूठा है। इनके निबंधों का अनुसंधान करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि निबंध विधा के क्षेत्र में नलिन जी का योगदान असाधारण व अविस्मरणीय है।

□ द्वारा श्री श्यामलाल त्यागी

बी-28, टैगौर भवन

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा-136119

मो० 09050026652

व्यंग्यकार शरद जोशी की जीवनदृष्टि

निशाबा डी० परमार

शरद जोशी की जीवनदृष्टि को समझने में उनके व्यक्तित्व और व्यक्तिगत जीवन की उपस्थिति को देखना अनिवार्य है। जोशी जी अपने साहित्य में खुद को और अपने परिवेश को भी एक विषय के रूप में रखते हैं। इसके पीछे उनकी जीवनदृष्टि और जीवन से अर्जित ज्ञान है।

शरद जोशी के साहित्य में परिक्रमा, किसी बहाने, जीप पर सवार इल्लियाँ, रहा किनारे बँट, तिलस्म, दूसरी सतह, पिछले दिनों, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, यथासंभव, हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे, जादू की सरकार, नावक के तीर, झरना, नीम शाश्वत थीम, यत्र-तत्र-सर्वत्र, प्रतिदिन आदि रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। इसके उपरांत जोशीजी ने फ़िल्मी लेखन तथा दूरदर्शन के लिए धारावाहिक भी लिखे हैं। फ़िल्मी लेखन के अंतर्गत क्षितिज, छोटी-सी-बात, चोरनी, साँच को आँच नहीं, गोधूली, उत्सव, 'दिल है कि मानता नहीं, जैसी फिल्मों की पटकथा और संवाद जोशीजी ने लिखे थे। दूरदर्शन धारावाहिक विक्रम और बेताल, देवीजी, वाह जनाब, ये जो है ज़िदगी, सिंहासन बत्तीसी, दाने अनार के, ये दुनिया ग़ज़ब की आदि हैं।

जोशीजी ने अपने लेखन-कार्य का प्रारंभ बाल्यावस्था में ही कर दिया था, परंतु साहित्यिक दुनिया में उनका वास्तविक प्रवेश 1953 में नई दुनिया एवं परिक्रमा नामक स्तंभ से हुआ। साथ ही ज्ञानोदय, माधुरी, रानी, रविवार आदि विभिन्न पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं व्यंग्य लेख प्रकाशित होने लगे। 1955 में उन्होंने आकाशवाणी इंदौर में पांडुलिपि-लेखक के रूप में कार्य प्रारंभ किया। 1956-67 तक मध्यप्रदेश भोपाल में सूचना एवं प्रकाशन विभाग में सरकारी नौकरी की। उन्हीं दिनों 1967 के दशक में 'धर्मयुग' जैसे प्रतिष्ठित साप्ताहिक में 'बैठे-ठाले' स्तंभ लिखते रहे। 1980 में वे हिंदी एक्सप्रेस के संपादक बने, लेकिन इस साप्ताहिक का प्रकाशन चार मास बाद ही बंद हो गया। अप्रैल 1985 से वे नवभारत टाइम्स में प्रतिदिन व्यंग्य स्तंभ लगातार अपनी मृत्यु के दिन तक लिखते रहे।

जोशीजी का जन्म 1 मई 1931 उज्जैन मध्यप्रदेश में हुआ था। वे ब्राह्मण परिवार के संस्कार और मध्यवर्ग की आडंबरहीन सरल जीवनशैली में पले-बढ़े थे। अनुशासन और पारिवारिक वातावरण में सच्चाई, ईमानदारी, संयम, कर्तव्यनिष्ठा और अथाह परिश्रम की भावना शरद जी आत्मसात् करते गए।

जोशीजी के पिताजी के बार-बार स्थानांतरण ने एक ओर उन्हें तरह-तरह के अनुभवों से आत्मसाक्षात्कार करवाया, संसार और उसके मनुष्यों को पहचानने वाली नज़र दी, वहीं दूसरी

ओर पढ़ाई में निरंतरता और एकसूत्रता से दूर भी रखा।

जोशीजी को भिन्न-भिन्न रीतियों से जितना दबाया गया, उनका लेखन उतना ही अधिक उभरकर धारदार और पैना बना। वे कहीं भी झुके नहीं। वस्तुतः टूट जाने को कीमत पर भी वे झुकना पसंद नहीं करते थे। न उन्हें पैसों की चाह थी, न आत्मप्रचार की और प्रतिष्ठा की सुश्री सूर्यबाला के अनुसार, 'पद्मश्री' सम्मान का मिलना जोशीजी के लिए बिल्कुल सामान्य-सी घटना थी।' इस प्रकार महानता के दंभ से कोसों दूर रहनेवाले शरद जोशी का लेखन इसलिए प्राणवान सिद्ध हुआ कि उन्होंने पुरस्कार, मान-सम्मान, विदेश-यात्राओं आदि को महत्ता की कसौटी नहीं माना।

वस्तुतः श्री शरद जोशी जीवनभर सामान्य मनुष्य की तरह जिंदगी जीते रहे। वे स्वयं अपने लेखन और जीवन संदर्भ में कहते हैं कि—'मैं अब महज लेखक हूँ। शेष जीवन भी रहूँगा। मैं कर्तव्यवश जीवन जीने के लिए एक आदमी की तरह, जो अपने समाज और देश के सुख-दुख में बतौर नागरिक हिस्सेदारी करता है, रोटी कमाता है, बीमारी सहता है, हँसता है, बातें करता है यह जानते हुए भी कि ऐसा ही करते हुए उसे जल्दी या देर से कभी मर जाना है। वह रोज़ अखबार पढ़े बिना नहीं रहता और अपने गुण-दोष के साथ जीता है।'

जोशीजी आजीवन सामान्य आदमी बने रहे। वे खुद को, स्थितियों को, अन्य घटनाओं को उनके पूरेपन में ग्रहण करते थे। इसलिए वे प्रतिदिन लिखते रहे और वह उनके जीवन के अनुभव की अभिव्यक्ति है, अनुभव निश्चित रूप से व्यक्ति के अपने जीवन से ही उभरते हैं। फिर उस अनुभव में रचनाकार अपने दृष्टिकोण, अपनी विचारधारा, अपनी प्रतिबद्धता को शामिल करके जो रचनात्मक अभिव्यक्ति करता है, इसमें समाज के साथ रचनाकार के सामाजिक संदर्भों के साथ उसकी वैयक्तिक स्थिति भी एक सहज प्रक्रिया है। भले ही व्यक्ति आत्मकथा न लिख रहा हो, परंतु व्यक्ति के रूप में उसका अपना जीवन लिपिबद्ध हो जाता है।

हिंदी-व्यंग्य-साहित्य के क्षेत्र में श्री शरद जोशी का नाम आदर से लिया जाता है। अपनी साठ वर्ष की आयु तक जो कुछ लिखा उससे हिंदी-व्यंग्य साहित्य तो समृद्ध हुआ ही साथ ही उस समय की राजकीय शैक्षणिक, सांस्कृतिक, साहित्य विषमताओं का साक्षात्कार भी कराया तथा आम आदमी की समस्याओं का वास्तविक दर्शन भी कराया।

अतः रचनाकार जोशीजी के निर्माण में उनके व्यक्तित्व की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। इनकी रचनाओं में बहुत कुछ जोशीजी का अपना है। हिंदी-जगत् से शरद जोशी को जितनी उपेक्षा मिली, उससे कहीं ज़्यादा परिवारजनों और दोस्तों से प्रेम आदर प्राप्त हुआ। शरद जोशी का जीवन सदा संघर्ष से भरा रहा, किंतु किसी भी परिस्थिति में वे परिस्थितियों के सामने झुके नहीं। उन्हें झुकाने के लिए उनके विरोधियों ने तरह-तरह के निकृष्ट तरीके अपनाए। छापनेवालों पर अनेक प्रकार से दबाव डाला गया, आर्थिक दृष्टि से विपन्न होकर जोशीजी टूट जाएँ ऐसे अनेक प्रयत्न किए गए। उनके लेखन पर पाबंदी लगाई गई, परंतु जोशीजी झुके नहीं बल्कि उन्होंने नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन को आजीविका का साधन बनाने का कठोर निर्णय लिया। कुल मिलाकर कोशिश यही की गई कि शरद जोशी आर्थिक तथा मानसिक रूप से संपूर्णतः टूट जाएँ, किंतु परिणाम विपरीत निकला शरद जोशी को जितना दबाया गया, उनका लेखन और अधिक उजागर हुआ, अधिक धारदार और पैना बना। वे कहीं भी झुके नहीं, वस्तुतः

टूट जाने की कीमत पर भी वे झुकना पसंद नहीं करते थे।

‘शरदजी के व्यक्तित्व का समूचा पिरामिड अपने सहज, स्वाभिमानी, पाखंड और भ्रष्ट व्यवस्था के विरोध और विकृतियों से असहमति की ज़मीन पर खड़ा रहा। टकराने का उनमें अदम्य साहस था। विरोध की कीमत वे जीवन-भर चुकाते रहे। शरद जी का व्यक्तित्व अपनी शर्तों पर अपना जीवन जीनेवाले का व्यक्तित्व था। कहीं समझौता नहीं, दूर तक समझौता नहीं। टूट जाएँगे, पर झुकेंगे नहीं। मध्यवर्गीय ब्राह्मण होकर भी ठेठ राजपूती ठसका।’

शरद जोशी अपनी बात स्पष्ट और मुँह पर कहनेवालों में से एक थे। वे जिसे सही मानते थे, वही कहते थे। उनकी कथनी और करनी में साम्य था। इसलिए उनके अफ़सर भी नाराज़ होते थे, परंतु शरदजी नाराज़गी की परवाह किए बिना अपनी बात कहकर ही रहते। वे मानते थे कि आत्मविश्वास और स्वाभिमान लेखक की रीढ़ है।

‘यथासंभव’ की भूमिका में भी यही बात स्पष्ट हुई है—‘सन 41 में से साहित्य के पेट में अपनी टाँग फँसाए हूँ। फटा तब से ही फटा है और मेरी टाँग वही है।’ इस प्रकार शरद जोशी ने जबसे लिखना प्रारंभ किया आम जनता से संबंधित विसंगतियों ने उन्हें लिखने के लिए मजबूर किया। विसंगत परिस्थितियों से जूझते हुए आम आदमी की व्यथा और विवशता को वाणी देते रहे।

अपनी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए शरद जी डॉ॰ शशि मिश्र से एक मुलाक़ात में बताते हैं, ‘अपने अलगपन के कारण यह विधा का आभास देता है। किसी भी विधा को अपनी सुनिश्चित और निर्धारित सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। आज का व्यंग्य प्रायः पूर्वनिर्धारित विधा के विपरीत एक रचना है। कहानी का बाहरी आवरण लिए कोई व्यंग्य एकांगी होता है। इसी तरह आत्मकथ्य, वार्तालाप, पत्र-शैली, डायरी-शैली, इंटरव्यू, लोककथा सभी-कुछ व्यंग्य में एक साथ मिल जाता है।

व्यंग्य को विधा मान लेने में हमें बहुत सुविधा होती है, क्योंकि हम उसके जनक बन जाते हैं, पर यह तो ग़लत हुआ। क्रेडिट के लिए केवल श्रेय लेने के लिए हम कहीं बात को ग़लत नहीं कह रहे। इसलिए इसका जजमेंट व्यंग्यकारों से नहीं कराना चाहिए। इसका एक विशुद्ध वैज्ञानिक जजमेंट होना चाहिए कि सचमुच में विधा है या नहीं।¹³

आधुनिक व्यंग्य से संबंधित सबसे विवादास्पद यदि कोई बात है तो वह है उसके साहित्यिक स्वरूप को लेकर कुछ उसे विधा मानते हैं, कुछ उसे ‘स्पिरिट’, कुछ शैली मानते हैं। शरदजी ने उपर्युक्त विचार 1987 में प्रकट किए थे।

शरदजी ने अपने जीवन में सदैव हार न मानने वाले और सदैव डटे रहने वाले इंसान थे। उन्हें लिखने के लिए कोई विशेष वातावरण नहीं चाहिए था। इतना ही नहीं उन्हें लेखन के लिए कोई विशेष सुविधा, विशेष मूड की भी आवश्यकता नहीं पड़ी। बहुत ही कम आवश्यकताओं पर एक सुंदर रचना देने का उनका वादा है। वे बताते हैं, ‘लिखने के लिए मुझे कुछ नहीं चाहिए। थोड़ी सी धूप, ठंडी हवा, बढ़िया काग़ज़ और एक ऐसी कलम, जो बीच में न रुके। एकाद चाया। मैं आपको सुंदर रचना देने का वादा करता हूँ।¹⁴

शरद जी को उनके विशाल साहित्य के लिए कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है, जिसमें काका हाथरसी पुरस्कार, चकल्लस पुरस्कार, श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति,

इंदौर द्वारा 'सारस्वत मार्तंड' की उपाधि 'अट्टहास का एवं परिवार पुरस्कार, मृत्यु के बाद 1990 में राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री की उपाधि।

जोशीजी ने ग्रंथ पढ़ने की परंपरा को कवि सम्मेलनों में प्रारंभ किया। जैसे कविता पढ़ते हैं वैसे ही ग्रंथ को पढ़ते थे। उनका व्यंग्य पठन इतना प्रभावी बनता था कि उसके सामने कविता की कोई औकात ही न हो। कविता के मंच पर कई गलेबाज और मधुर कंठवाले कविगण बैठे होते थे वहाँ शरदजी ठाठ से अपना सिंहासन जमाकर व्यंग्य पढ़ते थे।

श्री शरद जोशी का रचना संसार विशाल है। उनकी व्यंग्य-रचनाओं की गिनती हजारों में ही होगी। पूरे चालीस साल लगातार लिखत रहे हैं। उनका रचना संसार तरह-तरह के उतारों, चढ़ावों, आक्रोश, संवेदनाओं से भरा-पूरा आज के मानवीय जीवन के प्रमाणिक अनुभवों का जीवंत दस्तावेज है।

जोशीजी के व्यंग्य-साहित्य में स्वार्थी, अमानवीय प्रवृत्ति वाले अफसर, कालेधन को बढ़ाने में निरंतर पूँजीपतियों, नकाबी समाजसेवी, शोषण करनेवाले, सिनेमाघर के मालिक, प्रशासन की अव्यवस्था, आलोचकों की गुटबंदी, शिक्षा-क्षेत्र में व्याप्त बेईमानी, भ्रष्टाचार, चुनाव में धाँधली, महँगाई, अनीति, अत्याचार, लूटपाट, जैसी अनेक विसंगतियाँ जोशीजी के व्यंग्य साहित्य के विषय हैं। परसाई की तरह जोशीजी के व्यंग्य-साहित्य का वस्तुविधान इतना व्यापक है कि यदि कहा जाए, 'प्रेमचंद जी के युग का दर्शन करना हो तो प्रेमचंद जी के साहित्य को पढ़ लीजिए, वैसे ही स्वतंत्र्योत्तर, आर्थिक परिवेश का दर्शन करना हो तो शरद जोशी के व्यंग्य साहित्य पढ़ लीजिए।'⁵

जोशीजी ने आजाद भारत को विकास के पथ पर अग्रसर करने में सहयोग दिया है। उन्होंने देश में पनपी विसंगतियों का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया। आषादी के साठ साल के बाद भी आज हमें उनके व्यंग्य ताज़ा लगते हैं।

'शरद एक यात्रा' में संकलित उनके एक लेख शरद जोशी एक विश्लेषण, आकलन और निष्कर्ष में लिखते हैं 'वह शरद जोशी घटित और प्रचलित के प्रति हमें अति सचेत करता है, मैग्नीफाय करके हमें वही दिखाता है जिसे देखते हुए भी हम उसे भूले हुए हैं, हमसे उत्तेजना और आक्रोश पेश करता है, उसी के प्रति जिसने हमें रोगी सा तटस्थ और तमाशबीन-सा नपुंसक बना दिया है, दिखाता है वही काला चेहरा, नंगापन, बेशर्मी जो हमसे मुतअलिक है या हमारे पड़ोसी से मुतअलिक है, वह हाईलाइट करता है।'

उपर्युक्त अनेक विसंगतियों के कथ्य से शरद जोशी का व्यंग्य-साहित्य भरा-पूरा है। इतना ही नहीं अपनी वैज्ञानिक दृष्टि-संपन्नता से शरद जोशी ने हिंदी-व्यंग्य को एक नई दिशा और नवीन अर्थवत्ता प्रदान की है। जोशीजी के व्यंग्य-काव्य की विविधता उनके व्यंग्य-साहित्य का वैशिष्ट्य है, इससे कहीं अधिक आकर्षण और महत्त्व उनका व्यंग्य शिल्प है। जिन उपकरणों के सहारे कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध जैसी किसी भी विधा में व्यंग्य का आह्वान किया जाता है, उन्हीं उपकरणों की पहचान ने व्यंग्य-शैली को एक अलग अस्तित्व प्रदान किया है। इधर हिंदी गद्य से जिस व्यंग्य-विधा का व्यापक विस्तार हुआ है, उसमें अभिव्यक्ति के सभी स्तरों पर शिल्प की अनूठी विधा नहीं, व्यंग्य की आत्मा छनकर सामने आई है।

जोशीजी ने व्यंग्य के विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु अपनी व्यंग्य भाषा में चारों ओर

से विशिष्ट शब्द समूह का चयन कर उन्हें व्यंग्यानुकूल बनाया है, तो कहीं नए व्यंग्य शब्द, अरबी-फ़ारसी शब्द, अभिजात्य शब्द, ग्राम्य शब्द नवनिर्मित शब्द आदि का प्रयोग किया है। मुहावरे कहावतें और लोकोक्तियाँ भी व्यंग्य भाषा का महत्वपूर्ण उपकरण हैं। एक लोकोक्ति है चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात, इस लोकोक्ति की संरचना को तोड़कर वाक्यात्म रूप में इसका प्रयोग किया है—‘चुनाव तो चार दिन की चाँदनी होता है, जिसमें जनता चाहे इतना ले मगर बाद में तो वही अंधकार होता है।’⁶

जोशीजी ने अपनी भाषा को एक अनुपम रूप देते हुए सूत्रात्मक भी बनाया है।

शरद जोशी का व्यक्तित्व निहायत ही सरल सादगीपूर्ण, परंतु स्वाभिमानी, विनोद प्रिय, दोस्तों से मिलने-मिलाने के अभिलाषी उनके सुख-दुःख के साथी, अपनी ही शर्तों पर जीने वाले थे। आजीवन संघर्ष करते रहे, किंतु किसी के सामने झुके नहीं, कोई भी हो जो सच लगा, मुँह पर कहनेवाले राजकीय, सामाजिक, प्रशासनिक, साहित्यिक, धार्मिक, आर्थिक या अन्य कोई विषय से संबंधित विषमताएँ उसपर अपनी कलम के माध्यम से टूट पड़नेवाले शरद जोशी अपनी बेबाक बातों की वजह से सरकारी अर्धसरकारी या प्राइवेट नौकरी पर टिक न पाए और पत्रकार बने, अखबारी, सामयिक कोलमों द्वारा अपनी आजीविका का प्रबंध कर व्यंग्य-लेखन द्वारा व्यंग्य-साहित्य में अपना सिक्का जमाते रहे और ऐसा सिक्का जमाया कि व्यंग्य के बेताज बादशाह बने। व्यंग्य का नाम लेते ही परसाई जी की याद आती है और उसी के साथ शरद जोशी को भी याद करना ही पड़ता है। व्यंग्य-कथ्य के वैविध्य क्षेत्र में तो ऐसा कोई कोना, ऐसा कोई विषय, ऐसी कोई विषमता शेष नहीं रही, जिस पर जोशीजी ने न लिखा हो।

संक्षेप में हम इतना ही कहना चाहेंगे कि व्यंग्य के क्षेत्र में शरद जोशी का योगदान बहुत बड़ा है और परसाई की तरह वे भी व्यंग्य के पर्याय ही हैं।

संदर्भ

1. दैनिक नई दुनिया, इंदौर
2. शरद जोशी, एक यात्रा, डॉ॰ शशि मिश्र, पृ० 176-177
3. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी-व्यंग्य-निबंध, डॉ॰ शशि मिश्र, पृ० 11
4. शरदजोशी : एक यात्रा, डॉ॰ शशि मिश्र, पृ० 18
5. यथा संभव, शरद जोशी, कुछ शब्द
6. जीप पर सवार इल्लियाँ, शरद जोशी, पृ० 175

□ ब्लॉक नं० 346/2

डी-टाइप, सेक्टर-13

गांधीनगर (गुजरात) 302015

मो० 09427943351

शरद जोशी : जीवन एवं संघर्ष

पंकजकुमार डी० पटेल

हिंदी व्यंग्य को उपेक्षा के बिंदु से ऊपर उठाकर उसे हिंदी साहित्य में एक सम्मान-जनक लेखन का दर्जा दिलाने, उसे क्षुद्र से क्षत्रिय, ब्राह्मण बनाने में जिन व्यंग्यकारों ने अपना योगदान दिया है, उनमें शरद जोशी का नाम प्रथम पंक्ति के लेखकों में लिया जाता है। उन्होंने एक स्वाभिमानी लेखक का जीवन जीआ और कभी किसी से ग़लत समझौता नहीं किया, न कभी किसी के सामने झुके, न कभी किसी मिथ्या प्रलोभन के शिकार हुए। हिंदी व्यंग्य-साहित्य के क्षेत्र में श्री शरद जोशी का नाम आदर से लिया जाता है। दिनांक 21, मई 1931 को उज्जैन (म०प्र०) में जन्में श्री शरद जोशी श्रीनिवासी जोशी तथा श्रीमती शांति जोशी के छः संतानों (4 बहनें 2 भाई) में से दूसरी संतान थे।

शरद जोशी ब्राह्मण परिवार के संस्कार और मध्यवर्ग की आडंबरहीन सरल जीवन-शैली में पले-बढ़े थे। मिट्टी का मालवीपन शरद जी की साँसों में समा गया था, जो मृत्युपर्यंत रहा। अनुशासन और पारिवारिक अपनत्व भरे वातावरण में सच्चाई, ईमानदारी, संयम, कर्तव्यनिष्ठा और अथाह परिश्रम की भावना शरद जी आत्मसात् करते गए। उनकी नैतिक दृष्टि का विकास बाल्यावस्था से ही हुआ।

छः भाई-बहनों के साथ जो मिला, मिल-बाँट खाया, जो मिला पहना, कभी किसी चीज के लिए हठाग्रह नहीं, ना-नुकर नहीं। वे बचपन से ही घर के सभी कार्यों में पूरी दिलचस्पी से हिस्सेदारी करते थे। शैशव के दिनों में सब भाई-बहनों के साथ बाग-बगीचों में (महू-रोडवेज का दफ़्तर उससे सटा हुआ बड़ा सुंदर रेवा बाग) खूब खेले-घूमे।

उनके पिताजी का बार-बार तबादला, बार-बार स्थानांतरण की वजह से कितने शहर, कितने चेहरे, अलग-अलग भाषा-जाति, धर्म और व्यवहार से बाल्यावस्था से ही परिचय हुआ। निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यही भिन्न-भिन्न परिवेश, भाषा अंतोगत्वा उनके साहित्य में विषय-वैविध्य के रूप में समाविष्ट हुआ। इतना ही नहीं भ्रष्टाचार, अक्षमता, पक्षपात जैसी अनेक विद्रूपताओं से पहला साक्षात्कार भी यहीं इसी माहौल में होता है। शारदा सारश्वत 'शरद जोशी अतीत प्रसंग' में अपनी स्मृतियों को यो सहेजती हैं 'उज्जैन में रोडवेज का दफ़्तर और विशाल प्रांगण, उसी में हमारा क्वाटर था। भ्रष्ट और निकम्मा अधिकारी राउंड पर निकलता तो कोई मुँह फेरता, कोई फुसफुसा उठाता, स्साला आ रहा है। अपने कमरे में टेबल पर झुके बाबूजी की कलम अनवरत चलती रहती। वे ठीक पाँच बजे पैंट का बेल्ट कसते बाहर आ जाते। दबे होठ, चेहरे पर थकान और चुप्पी, तनाव और निराशा, पूरे घर में चुप्पी छा जाती। सब अपने

काम में लग जाते। शरद ने भ्रष्टाचार, अक्षमता, पक्षपात और सत्ता-दुरुपयोग का पहला दृश्य यहीं देखा था।¹¹

शरद जी के पिताजी के बार-बार स्थानांतरण ने एक ओर उन्हें भाँति-भाँति के अनुभवों से आत्म साक्षात्कार कराया, संसार और उसके मनुष्यों को पहचानने वाली नज़र दी, वहाँ दूसरी ओर पढ़ाई में निरंतरता और एक सूत्रता से दूर भी रखा। अतः उनकी शिक्षा-दीक्षा यहाँ-वहाँ पता नहीं कहाँ-कहाँ हुई, कभी उज्जैन, कभी नीमच, कभी देवास, महाँ में। अंत में होल्कर कॉलेज, इंदौर से बी.ए. किया।

जोशी का रहन-सहन हमेशा सादा रहा। खाना-पीना एकदम सादा था। कभी कोई व्यसन नहीं रहा। सिगरेट, तंबाकू या शराब को उन्होंने कभी छुआ नहीं, फिर भी उन्हें 1980 में मधुमेह की बीमारी हुई, जो 1991 में जान लेवा बनी। वे रोज सुबह छः बजे उठ जाते थे। आठ-नौ बजे तक सारे अखबार पढ़ डालते, नौ-दस बजे लिखने बैठते और दो बजे तक लिखते रहते। इस बीच अमूनन वे एक रचना पूरी कर डालते थे। लेखन किए बिना वे खाना नहीं खाते। वे सरल व्यक्ति थे, विनोद प्रिय भी, चुटकियाँ लेते, उन्मुक्त हँसते-हँसाते, स्वभाव से बेहद हँसमुख और खुश मिज़ाज थे। वे ऐसी छोटी-छोटी बातों में भी हास्य निकाल लेते थे। जब भी कोई समस्या आती थोड़ी देर बैठकर सोचते, फिर नया रास्ता ढूँढ़ निकालते और फिर हँसने लगते। उन्हें गुस्सा भी बहुत आता, हाँलाकि बहुत जल्दी गायब भी हो जाता था।

शरद जी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते श्री धर्मवीर भारती 'नई दुनिया का वह नया व्यंग्यकार, शीर्षक लेख में लिखते हैं, 'चेहरा देखिए तो बहुत भोला-सा, लेकिन आँखें कभी-कभी चमकें तो उनमें शरारत की झलक कौंध जाती थी, बातें भी सीधी, भोली, भाली, बोलने के अंदाज में इंदौरी लहजा। लेकिन सीधी-सादी नित्यप्रति की बातें करते-करते उसमें एक किसी वाक्य में या तो अपने ऊपर या परिस्थितियों पर एक बारीक व्यंग्य वाण, जो चुभता कम, गुदगुदाता ज़्यादा और बरबस सुननेवाला हँस पड़ता, कपड़े सादे, मोटे फ्रेम का चश्मा और चाल में एक तेजी, जैसे कहीं पहुँचने की जल्दी हो। इस सीधे-सादे लगभग मासूम से व्यक्ति में इतना विस्फोटक तत्त्व भरा हुआ होगा इसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी। रहन-सहन और मन की यह सादगी शरदजोशी ने तब भी बनाए रखी, जब वे अपने व्यंग्यों के माध्यम से ख्याति के शिखर पर पहुँच गए।¹² इससे उनकी सादगी और निरभिमानी स्वभाव के दर्शन होते हैं।

इसी लेख में उनकी सादगी के साथ उनके संघर्षशील, स्वाभिमानी स्वभाव पर प्रकाश डालते श्री भारती लिखते हैं—'वे सरकारी नौकरी छोड़कर स्वतंत्र रहने के लिए बम्बई आ गए थे। बांद्रा स्टेशन (पश्चिम) के पास मानसरोवर नामक लॉज में एक कमरा लेकर रहते थे। चाय, नाश्ता, खाना सब बाज़ार से। एक कमरा था वही उनका शयन कक्ष था, वहीं उनकी लायब्रेरी थी, वही उनके दोस्तों का उपद्रव कक्ष था, वही उनका लेखन स्थल। उन्हीं दिनों उनके संघर्षशील व्यक्तित्व को मैंने बहुत निकट से जाना। उनके कष्टों को सहने की क्षमता, उनकी स्वाभिमानी चेतना, उनकी मिलनसारिता और जिससे भी इस संघर्ष के दौरान मिले उसके प्रति उनकी कृतज्ञता, निष्ठा, अर्वाचित व्यक्तियों और स्थितियों के प्रति उनका क्रोध भी देखा है और अपने सीधे-सादे स्वभाव के कारण कभी-कभी ग़लत लोगों के बहकावे में आते भी देखा है।¹³

शरदजोशी ने कभी किसी की गुलामी बर्दास्त नहीं की। गलत वे सह नहीं सकते थे और अपनी मान्यताओं, विचारों को दबा नहीं सकते थे। अतः उनका स्वभाव ही नहीं था कि वे कहीं भी, किसी जगह भी नौकरी करें। गुजराती मूल का उनका ब्राह्मण परिवार पुराणपंथी कहा जा सकता है और उनके पिता पक्की सरकारी नौकरी पसंद करनेवाले आदमी थे। वे खुद भी सरकारी नौकरी में थे। इसके बावजूद शरद जोशी में सरकारी तो क्या किसी तरह की भी नौकरी करने का माद्दा नहीं था। 'नई दुनिया' से आकाशवाणी और वहाँ से मध्यप्रदेश के सूचना विभाग में उन्होंने नौकरी की और बड़ी मुश्किल से की। फिर एक दिन सँभाल तेरी घोड़ी और बंदे ने नौकरी छोड़ी कहकर अलग हो गए। 80-81 के वर्ष में साप्ताहिक 'हिंदी एक्सप्रेस' निकालकर संपादकी की, परंतु वह भी बंद हो गया।

नौकरी करने के लिए, बँधकर रहने के लिए, स्वभाव में जिस ठहराव और स्थिरता की ज़रूरत होती है, छोटे-छोटे समझौते करने और उनपर टिके रहने का जो पकड़ाव होता है, वह शरद जोशी में नहीं था। आकाशवृत्ति के आदमी थे और ज़्यादा-से-ज़्यादा किसी पेड़ की डाल पर घोंसला बना सकते थे। और इरफाना-एक मुसलमान कन्या से प्रेम विवाह करके घोंसला बसाया भी। तीन बेटियों के बाप भी हुए और बंबई जैसे शहर में एक फ्लैट भी ले लिया, लेकिन यह सब करते हुए निपट निस्संग और कलंक बने रहे।

श्री शरद जोशी के व्यक्तित्व का प्रभाव उनके साहित्य पर निश्चित रूप से देखा जा सकता है—तभी तो डॉ॰ भगीरथ बडोले 'निर्मल' लिखते हैं—'श्री शरद जोशी का आद्यांत लेखन सामाजिक चेतना से ओतप्रोत उनके मालवी व्यक्तित्व तथा संघर्षशील जीवन में प्राप्त कटु अनुभवों का प्रतिफलन है। वे सचमुच ही सीधे, सादे, भोले-भाले, आडंबरहीन, सहज-सौम्य मनुष्य थे, जिन्होंने आम आदमी के प्रतिनिधि रूप में युग को विसंगत बनाने वाली प्रवृत्तियों पर आम आदमी की ही भाषा में अत्यंत सहजता से अपनी बेबाक प्रतिक्रिया व्यक्त की। तात्पर्य यह कि शरदजोशी का रचनाधर्मी-व्यंग्य लेखन आम आदमी की ही त्रस्त ज़िदगी के अनुभवों की प्रतिक्रिया है।.....बल्कि अपने रचनात्मक दमखम के जरिए इस कमजोर तथा असहाय से दिखने वाले पुरुष ने अपने पौरुष के जीवंत प्रमाण प्रस्तुत किए।'⁴

शरद जोशी का जीवन सदा संघर्ष से भरा रहा। परंतु किसी भी परिस्थिति में उन्होंने परिस्थितियों के सामने घुटने नहीं टेके। उन्हें झुकाने के लिए उनके विरोधियों ने भाँति-भाँति के निकृष्ट-से-निकृष्ट तरीके अपनाए। छापनेवालों पर अनेक प्रकार से दबाव डाला गया, आर्थिक दृष्टि से विपन्न होकर शरद टूट जाए जैसे अनेक प्रयत्न किए गए। शरद जोशी को परेशान करने के लिए नए-नए तरीके आविष्कृत होने लगे। उनके लेखन पर पाबंदी लगाई गई। परंतु शरद जी झुके नहीं, बल्कि उन्होंने नौकरी छोड़कर स्वतंत्र-लेखन को आजीविका का साधन बनाने का कठोर निर्णय लिया, परंतु वहाँ भी उनके दुर्भाग्य ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। शरद जोशी से संबद्ध पत्र-पत्रिकाएँ सरकारी कोश का शिकार बनीं। कुल मिलाकर कोशिश यही की गई कि शरद जोशी आर्थिक तथा मानसिक रूप से संपूर्णतः टूट जाएँ, किंतु परिणाम विपरीत निकला। शरद जोशी को जितना दबाया गया, उनका लेखन और अधिक उजागर हुआ, अधिक धारदार और पैना बना। वे कहीं भी झुके नहीं, वस्तुतः टूट जाने की कीमत पर भी वे झुकना पसंद नहीं करते थे।

शरदजी के व्यक्तित्व के इस पहलू पर प्रकाश डालते हुए श्री सरोज कुमार लिखते हैं—‘शरद के व्यक्तित्व का समूचा पिरामिड अपने सहज स्वाभिमान, पाखंड और भ्रष्ट व्यवस्था के विरोध और विकृतियों से असहमति की जमीन पर खड़ा रहा। टकराने का उनमें अदम्य साहस था और विरोध की कीमत वे जीवनभर चुकाते रहे। शरद जी का व्यक्तित्व अपनी शर्तों पर अपना जीवन जीने वाले का व्यक्तित्व था। कहीं समझौता नहीं, दूर तक समझौता नहीं। टूट जाएँगे, पर झुकेंगे नहीं। मध्यवर्गीय ब्राह्मण होकर भी ठेठ राजपूती ठसक।’⁵

शरद जोशी अपनी बात स्पष्ट और मुँह पर कहने वालों में से एक थे। वे जिसे सही मानते थे वही कहते थे और वही करते थे। उनकी कथनी और करनी में साम्य था। इसलिए उनके अफ़सर भी नाराज़ होते थे। परंतु शरद जी नाराज़गी की परवाह किए बिना अपनी बात कहकर ही रहते।

वे अपना लेखकीय कार्य अत्यंत ईमानदारी और निष्ठा से करते थे। इसका प्रमाण यह है कि एक बार उन्हें पशुपालन पर एक व्यंग्य लिखना था जिसके लिए उन्होंने पशुपालन से संबंधित उपलब्ध अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया, तब कई दिनों के बाद एक छोटा-सा व्यंग्य लिखा। वैसे ही जब उन्होंने नाटक लिखने का निर्णय लिया। (‘अंधो का हाथी’ और ‘एक था गधा अलादाद’), तो लिखने के पूर्व लगभग एक वर्ष तक सभी भाषा के उपलब्ध नाटक साहित्य का अध्ययन किया। उसके बाद ही ऊपर उल्लिखित दो नाटकों की रचना की।

एक प्रसंग है, जब वे लेखकीय जगत में प्रवेश कर रहे थे। अभी-अभी कापलें फूटी थी, पर आत्मविश्वास गज़ब का था। ‘नई दुनिया’ के लिए वह अपना एक नियमित कॉलम लिखना चाहते थे। प्रधान संपादक थे श्री राहुल बारपुते। राहुल जी ने सीधा ही प्रश्न किया— हम आपको क्यों छापें? इनकी जगह विज्ञापन क्यों नहीं छापते? राहुलजी प्रतिभा के कायल थे बोले ठीक है, नमूने के बतौर कॉलम के चार लेख दीजिए। शरद जी ने फटाफट चार लेख एक ही दिन में लिए दिए। कॉलम शुरू हुआ। शीर्षक ‘परिक्रमा’ सप्ताह में तीन दिन ‘परिक्रमा’।

वस्तुतः श्री शरद जोशी जीवनभर सामान्य मनुष्य की तरह ज़िंदगी जीने में लगे रहे, किंतु ठेकेदारों ने उन्हें इस तरह भी जीने नहीं दिया। संभवतः वे भयभीत थे कि कहीं इस अदने-से आदमी के सामने वे सब अत्यधिक अदने न सिद्ध हो जाएँ। साहित्य की तथाकथित दुनिया की भी शरद जोशी ने अच्छी जाँच-परख कर ली थी। वहाँ भी इन्हीं चतुर ठेकेदारों का साम्राज्य था। ऐसी दुनिया से तालमेल जुटाना शरद जोशी के लिए असह्य था। इसीलिए वे बार-बार नकारते रहे कि वे इस दुनिया के नागरिक नहीं हैं, किंतु लेखन उनकी सामान्य अनिवार्य जरूरत का अपरिहार्य अंग था, अतः लिखना उनकी विवशता थी।

शरद जी की प्रतिबद्धता उनके लेखन और लेखन का विषय आम आदमी से है। उन्होंने कभी अपनी टोली नहीं बनाई, न कभी अपने शिष्य बनाए। वे कभी खेमेबद्ध प्रगतिशील नहीं रहे। न ही प्रतिबद्धता का कोई तमगा ही उन्होंने लिया था, परंतु फिर भी उनका पूरा व्यक्तित्व प्रगतिशीलता का प्रतिरूप था। वे किसी ओढ़ी हुई प्रतिबद्धता में विश्वास नहीं रखते थे। उनकी प्रतिबद्धता, अपने लेखन और जीवन-शैली रही। इसके लिए उन्होंने किसी झंडे या बिल्ले की जरूरत महसूस नहीं की।

26 दिसंबर 1991 को भोपाल के भारत-भवन में हुए ‘शरद-प्रसंग’ में सरोजकुमार ने

इस तथ्य की मंचीय घोषणा की—‘शरद जोशी जैसे ही लोग होते हैं, जिनकी अपनी टोली नहीं होती। अपने जीवन में अपने बारे में कुछ नहीं करवा पाते कि जो उनका झंडा फहराए। उनके पास ऐसे समीक्षक नहीं होते जो उनको प्रसन्न करने के लिए अखबारों, पत्रिकाओं में लिखें। उनके जीवन में उनके प्रसंग आयोजित नहीं होते।’⁶

शरद जोशी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते व्यंग्यत्रयी के व्यंग्यकार श्री रवींद्रनाथ त्यागी लिखते हैं—‘शरदभाई बड़े साधारण लगनेवाले असाधारण व्यक्ति थे। वे जितने नम्र थे, भीतर से उतने ही स्वाभिमानी थे। बाहर से लापरवाह दीखनेवाला नियमित दिनचर्या का यथासंभव पालन करता था, पढ़ता था, नए लेखकों को प्रोत्साहन देता था और कभी भी किसी की निंदा या अनुचित आलोचना नहीं करता था। वह एक सच्चा, स्नेही, निःस्वार्थ और वक्त पर काम आनेवाला दोस्त था। ऐसे लोग रोज-रोज नहीं पैदा होते। वह साहित्य के प्रति पूरी तरह समर्पित था।’⁷

शरद जोशी हिसाबी-किताबी दुनिया में रहते हुए भी हिसाब से उनका दूर-दूर का कोई नाता नहीं था। इसीलिए अनेक ने उनके भोलेपन का लाभ लिया। प्रकाशकों इत्यादि अनेक ने उनका आर्थिक शोषण किया। उनके हितैषी, व्यवहार कुशल मित्रों ने उनके आर्थिक शोषण की प्रतीति करवाई। व्यवहार कुशलता से दूर-दूर तक का उनका नाता नहीं था। हाथ में आई हुई रकम को बचाकर रखने की शिक्षा शायद ही उन्हें कभी मिली हो। हज़ारों हज़ार रुपए सुबह उनकी जेब में आ जाते तो शाम तक न जाने वे रुपए कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाते।

शरद जी अपने परिवार के प्रति समर्पित और बड़े टची थे। वे अपने सतत लेखन-कार्य और प्रोग्राम के बीच भी अपने परिवार के लिए समय निकाल लेते थे। अपनी पत्नी और पुत्रियों की रुचि और पसंद का हमेशा ख्याल रखते थे। बाहर किसी दूसरे शहर में जाने पर भी वहाँ से अपनी बेटियों के लिए कुछ-न-कुछ खरीद कर ले आते।

श्रीमती इरफाना शरद जोशी उनके इसी स्वभाव का निरूपण इन शब्दों में करती हैं—‘ऐसा भी नहीं था कि वे सिर्फ अपने लेखन को लेकर ही व्यस्त रहते हों या हर वक्त उस पर अपना ध्यान केंद्रित रखते हों। वे पारिवारिक आदमी भी थे। परिवार के लोगों का भी पूरा ख्याल रखते थे। मुझे याद है जब हम भोपाल में थे तब मुझे नाटकों का बहुत शौक था (अभिनय करने का) जोशी जी को भी नाटक देखने का शौक था। जब मैं अभिनय करती, वे बच्चों को लेकर एकदम पीछे बैठते। उन्होंने जितना मुझे सहयोग दिया उतना किसी पति ने अपनी पत्नी को नहीं दिया होगा।’⁸

शरद जोशी को जीवन में काफी संघर्ष भी उठाना पड़ा, जीवन में काफी अभाव भी रहे। वे अपने छोटे से निजी फ्लैट में जीवन के अंतिम दो माह ही रह पाए। बिना टेलीफोन तकलीफें थी पर शिकायत नहीं, शिकायत सुविधाओं को लेकर कभी रही ही नहीं। हाँ व्यंग्यकार को लेकर खूब शिकायतें रही। वे फूहड़ता, पाखंड, दो मुहाँपन और मक्कारी सह नहीं पाते थे। परंतु शालीन इतने कि सीधे किसी पर कोई व्यंग्य नहीं कसते थे।

संक्षेप में, शरद जोशी सीधे-सादे, सरल, विनोदप्रिय, आम आदमी की छाप लिए, पर स्पष्ट वक्ता, किसी के सामने या विपरीत परिस्थिति के सामने न झुकनेवाले, कभी खेमे से न बँधनेवाले, पत्नी पुत्रियों के प्यारे, यार दोस्तों के लिए सदा प्यार भरे, लेखकीय अस्मिता के

प्रहरी, लेखन के प्रति समर्पित व्यंग्यकार थे।

‘वस्तुतः उपेक्षित के प्रति यह सहानुभूति थी, जिसमें जीवन-व्याप्त अनुभवों की अनुगूँज समाई हुई थी। सचमुच ही जीवन की शुरुआत से प्रारंभ शरद जोशी की संकटपूर्ण संघर्ष स्थितियाँ जीवनपर्यंत जीवंत ही बनी रहीं। किसी गहरे अँधेरे ने उम्र के पड़ाव पर, साधना के हर मोड़ पर, उपलब्धियों की हर राह पर उन्हें समूचा लील जाने की निरंतर समर्थ कोशिश की, किंतु उपेक्षित लड़खड़ाती जिंदगी को फाका-मस्ती से जीता हुआ यह समर्थ कृति-व्यक्तित्व हर अँधेरे से सतत जूझता रहा और सिर्फ जूझता ही रहा। उन अँधेरों ने कहीं भी शरद जोशी को दम नहीं लेने दिया, किंतु शरद जोशी उन कोशिशों से बेदम नहीं हो सके, बल्कि अपने रचनात्मक दमखम के जरिए इस कमजोर तथा असहाय से दिखने वाले पुरुष ने जीवंत प्रमाण प्रस्तुत किया।’⁹

संदर्भ

1. व्यंग्य सप्तक, (41) जून, 1987, शरद जोशी, पृ० 115
2. शरद जोशी एक यात्रा, सं० डॉ० शशि मिश्र, पृ० 56
3. वही, पृ० 583
4. वही, पृ० 87, 88
5. वही, पृ० 176, 177
6. वही, पृ० 08
7. वही, पृ० 112
8. वही, पृ० 50
9. वही, पृ० 87, 88

□ ‘वृंदावन’ मुकाम बालीसणा
तालुका जिला-साबरकांठा
383205 गुजरात
मो० 09879079353

व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल

निशाबा डी० परमार

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी विधा को स्थापित करने में उसे विकसित कर उसमें अधिकाधिक निखार लानेवाले व्यंग्यकारों—हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी, नरेंद्र कोहली, के०पी० सक्सेना, लतीफ घोंघी, आदि की जमात में 'राग दरबारी' जैसी सशक्त रचना द्वारा अपना विशिष्ट स्थान बना लेनेवाले श्रीलाल शुक्ल प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

श्रीलाल शुक्ल का जन्म 31 दिसंबर 1925 को लखनऊ के मोहनलाल कस्बे के निकटवर्ती ग्राम अतरौली में एक सुसंस्कृत एवं संपन्न किसान परिवार में हुआ था। बचपन दो भाइयों और दो बहनों के साथ खेलते बीता। उनके पिता का नाम पं० ब्रजकिशोर शुक्ल था। 1930-35 की भयंकर आर्थिक गिरावट का प्रभाव उनके परिवार पर भी हुआ। साहित्य संगीत और कला से प्रेम उन्हें विरासत में मिला। उनके पितामह को संस्कृत और उर्दू-फ़ारसी का बहुत अच्छा ज्ञान था। वे कुछ साल अध्यापक भी रहे थे और 55-56 की उम्र में उन्होंने सितार बजाना भी सीखा था।

उनके पिता को निर्धनता, सदाचरण और साहित्य, संगीत का संस्कार विरासत में मिला और वही विरासत बालक श्रीलाल को भी मिली उनके पिता को हिंदी, संस्कृत की बहुत-सी कविताएँ याद थीं। जिसका प्रभाव बालक श्रीलाल पर भी पड़ा और उन्होंने बचपन में ही संस्कृत बोलने का अभ्यास कर लिया था। उनकी माताजी पढ़ी-लिखी और स्वभाव से उदार थीं और नया सीखने के लिए किसी भी उम्र में तत्पर रहती थीं। 57 सालकी उम्र में माताजी ने रायफल चलाना सीखा था। क्रिकेट, बैडमिंटन मेच बड़ी दिलचस्पी से देखती।

श्री शुक्ल को बचपन से साहित्य में रुची थी। बारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने घनाक्षरी सवैये लिखने प्रारंभ किए थे। वह कवि सम्मेलनों में भी जाने लगे थे। उन्होंने 1947 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी०ए० किया। 1949 में उत्तर प्रदेश शासन के अनेक उच्च पदों पर कार्य करने के उपरांत वे विशेष सचिव, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग से जुलाई 1983 से सेवा मुक्त हुए, और फिर स्वतंत्र लेखन में व्यस्त रहे।

ऐसे तो साहित्य की सेवा नियमित रूप से उन्होंने 1956 से ही शुरू कर दी थी। आरंभ से ही उनकी रुचि हास्य-व्यंग्य और कथा-साहित्य-रचना में रही। इनकी विविध रचनाएँ हास्य-व्यंग्य, निबंध, सामान्य आलेख, कहानियों तथा उपन्यास से संबंधित रही। इनकी रचनाएँ धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, कल्पना, नई कहानियाँ, तुगशृंग, माध्यम, सारिका आदि प्रसिद्ध पत्रिकाओं में नियमित रूप से प्रकाशित होती रही हैं।

उनकी पहली व्यंग्य रचना 'स्वर्णग्राम ओर वर्धा' शीर्षक से 1954 के आसपास निकष

पत्रिका में छपी थी। बाद में यह रचना उनके व्यंग्य-संग्रह अंगद का पाँव में संगृहीत हुई।

रचना संसार

श्रीलाल शुक्ल ने अपना प्रथम उपन्यास 'सूनी घाटी का सूरज' (1957) तथा अपना पहला व्यंग्य-संग्रह 'अंगद का पाँव' (1958) द्वारा हिंदी साहित्य में अपनी धाक जमानी शुरू की। इन दो रचनाओं द्वारा उन्होंने हिंदी साहित्य जगत को अपनी शैली से परिचित कराया, परंतु 1968 में प्रकाशित उनके उपन्यास 'राग दरबारी' ने अपनी विशिष्टता के कारण व्यंग्य-साहित्य में उन्हें प्रमुख स्थान दिलाया।

श्रीलाल शुक्ल की अब तक प्रकाशित रचनाएँ इस प्रकार हैं—

1. सूनी घाटी का सूरज, उपन्यास 1957
2. अंगद का पाँव, व्यंग्य-संकलन, 1958
3. अज्ञातवास, उपन्यास 1961
4. रागदरबारी, व्यंग्य-उपन्यास 1968
5. यहाँ से वहाँ, व्यंग्य-संकलन, 1969
6. आदमी का ज़हर, उपन्यास 1973
7. सीमाएँ टूटती हैं, उपन्यास 1973
8. मकान, उपन्यास, 1976
9. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, 1978
10. यह मेरा घर नहीं, कहानी तथा निबंध-संकलन, 1979
11. पहला पड़ाव, उपन्यास 1987
12. उमराजनगर में कुछ दिन, व्यंग्य-संकलन 1988
13. कुछ जमीन पर कुछ हवा में, व्यंग्य तथा निबंध-संकलन, 1990
14. विश्राम पुर का संत, व्यंग्य उपन्यास, 1996-97

'राग दरबारी' का कई भाषाओं के अनुवाद और टी.वी. सीरियल का निर्माण भी हुआ है। 'राग दरबारी' पर 1969 का साहित्य अकादमी पुरस्कार, 'मकान' पर 1978 में म.प्र. साहित्य परिषद का देव पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 1981 में साहित्यभूषण सम्मान और 1994 में अति विशिष्ट लोहिया सम्मान, मैथिलीशरण पुरस्कार 1998 आदि सहित अनेक साहित्यिक पुरस्कार श्रीलाल शुक्ल को उनकी साहित्य-सेवा के लिए देकर सम्मानित किया गया है।

श्रीलाल शुक्ल और व्यंग्य

श्रीलाल शुक्ल ने 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य-रचनाएँ', में परिचय के द्वारा और 'वह घर मेरा नहीं' में अपने बारे में शीर्षक द्वारा व्यंग्य-संबंधी अपनी धारणा बताई है। वैसे इन्होंने व्यंग्य को लेकर कोई स्पष्ट भूमिका नहीं बाँधी है, न ही कोई व्याख्या दी है। वे व्यंग्य को भी अपने अन्य लेखन-उपन्यास इत्यादि की तरह लेखकीय कार्य सृजनात्मक साहित्य ही माना है, 'रागदरबारी' पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिलने पर भी उन्होंने कहा था, 'मुझे जो कुछ कहना था वह मैंने अपनी रचनाओं में कह दिया है, उसके अलावा मुझे कुछ नहीं कहना है।'

'मकान' उपन्यास की रचना करते समय उन्होंने व्यंग्य को आधुनिक जीवन और

आधुनिक लेखन के एक अभिन्न अस्त्र और अनिवार्य शर्त के रूप में स्वीकार किया।²

वे व्यंग्य को भी एक लेखन के रूप में ही स्वीकार करते हैं और इसीलिए 'गर्दिश के दिन' में उन्होंने लिखा है, 'लेखन मेरे लिए अपनी गहनतम संभावनाओं से अन्वेषण का माध्यम है, वह मेरे लिए मुक्ति की एक प्रक्रिया है। बँधे होने की जो छटपटाहट मेरे लेखन की प्रेरक शक्ति है, वही मेरी रोजमर्रा की आदतों और सामाजिक प्रवृत्तियों का भी निरूपण करता है।'³

वे समाज के प्रति अपने कमिटमेंट से बँधे हैं, जिससे अचेतन में अनेक प्रखर व्यंग्य लिखने की प्रेरणा उत्पन्न होती है। इसी कारण श्रीलाल शुक्ल उसकी बराबर याद दिलाते हैं जो टूट चुका है, वह टूटकर नष्ट होने योग्य नहीं था और इसीलिए वे अपने व्यंग्य-लेखन के बारे में कहते हैं—

'क्षमा तब माँगनी पड़ेगी जब ये रचनाएँ पाठकों का केवल मनोरंजन करें या उनका या उनके साथ कुछ भी न कर सकें'⁴

श्रीलाल शुक्ल अपने आपको लेखक मानते हैं—'उन्हें यह पसंद नहीं कि कोई उन्हें व्यंग्य-लेखक या व्यंग्यकार कहें—वे व्यंग्य को विधा नहीं अभिव्यक्ति की एक शैली मानते हैं।

अग्रवालजी से साक्षात्कार में वे व्यंग्य-लेखन के संदर्भ में अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, 'पहली बात तो यह है कि मैं मूलतः एक लेखक हूँ। और व्यंग्य के रूप में मैं व्यंग्य नहीं लिखता। उपन्यास, कहानी, जीवनी, हास्य-कथाएँ और साहित्यिक आलोचनाएँ लगातार लिखता रहा हूँ। व्यंग्य स्कैच भी लिखें हैं। अब भी लिखता हूँ। विषयवस्तु और अभिव्यक्ति की माँग को देखते हुए जहाँ मुझे लगता है कि व्यंग्यात्मक शैली का उपयोग अधिक उपयुक्त और स्वभाविक होगा वहाँ मैं व्यंग्य की भाषा का प्रयोग करता हूँ। लेकिन मैं व्यंग्य के लिए ही व्यंग्य नहीं लिखता व्यंग्य का प्रयोग मेरे लिए रचना की अभिव्यक्ति-संबंधी आवश्यकता से जुड़ा हुआ है।'

रचना-प्रक्रिया-संबंधी अपनी बातें शुक्लजी इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं—'विषयवस्तु का चुनाव किया नहीं जाता। रचनाशील मस्तिष्क द्वारा अपने आप हो जाता है। लेखकीय संवेदना को जो भी स्थिति झकझोरती और प्रेरित करती है, वही लेखन का विषय बन सकती है। जहाँ तक मेरी रचना-प्रक्रिया का प्रश्न है, लेखन के समय मेरे लिए एकांत अनिवार्य है। पारिवारिक या जीविका-संबंधी कार्य से अगर ज़रा भी तनाव या उलझन हुई तो उस समय मैं लिख नहीं सकता। मैंने नियमित रूप से या दिन-रात किसी नियत समय पर कभी नहीं लिखा। मेरा लेखन कार्य अत्यंत अनियमित है। कभी-कभी कई हफ्तों तक दिन-रात अनियमित घंटों तक लगातार काम किया है। कभी-कभी महीनों निष्क्रिय रहा हूँ। लिखना आरंभ करते समय मेरे मन में रचना का एक केंद्र बिंदु भर होता है, जिसका विस्तार लिखते समय ही हो पाता है।'

शुक्लजी ने अपनी प्रत्येक रचना को कई बार लिखा है। 'राग दरबारी' भी उन्होंने पाँच बार लिखा। वे स्वीकार करते हैं कि करीब तीसरी बार लिखने पर अंतिम स्वरूप प्राप्त हो जाता है।

श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य साहित्य : वैविध्य एवं विशेषताएँ

समाज में व्याप्त विसंगतियों की पहचान और उनकी प्रस्तुति की कला में श्रीलाल शुक्ल बड़े ही दक्ष हैं। बिना आक्रोश, बिना दाँत पीसे वे यथार्थ परिवेश द्वारा विद्रूपताओं को उकेरते हैं। श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य-साहित्य अभिव्यक्ति एवं विषय-वैविध्य दोनों ही दृष्टि से कलात्मक

है। उनका व्यंग्य महज बुरी बातों को बतलाता ही नहीं, अपितु बुरी बात के परिपार्श्व में दिखाई देती अच्छी बात की ओर भी ध्यान खींचता है।

श्रीरघुवीर सहाय ने श्रीलाल शुक्लजी के व्यंग्य के बारे में इसी प्रकार की बात कही है—‘वे अपने समकालीन परसाई से काफी भिन्न हैं, जो कि टूटने योग्य है उसे तोड़ ही डालने के कायल हैं और शरद जोशी या रवींद्रनाथ त्यागी से तो बहुत ही भिन्न हैं जिन्होंने चुनी हुई चीजों पर हँसने-हँसाने की दक्षता अर्जित की है। श्रीलाल, प्रेमचंद और अज्ञेय के अधिक नज़दीक पड़ते हैं तो टूटे मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयत्नशील है और बंकिम के तो वह बहुत ही निकट है क्योंकि वह भी बराबर उसकी याद दिलाते हैं जो टूट चुका है, पर टूटकर नष्ट होने योग्य नहीं था।’⁸

श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य-साहित्य का फ़लक बहुत अधिक विस्तृत है। अब तक प्रकाशित उनके व्यंग्य-संकलनों और व्यंग्य-उपन्यासों को देखते हुए यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि शुक्लजी की पैनी नज़र ने अपने आसपास की असंगतियों को गहराई से देखा है और उसपर कलम भी चलाई है। इसमें राजनीति, नेता, प्रशासन, संस्कृति, साहित्य, शिक्षा, नौकरी, दूरदर्शन, समाचार पत्र, अमीरी-गरीबी, युवा वर्ग, हर कहीं, असंगतियों का फैलाव है। उन्होंने इन असंगतियों को दूर करने की इच्छा से उसे व्यंग्य के कठघरे में खड़ा किया है। राजनीति पर किया इनका यह व्यंग्य कितना सटीक है। शुक्लजी राजनीति और रेलगाड़ी की तुलना करते हुए कहते हैं कि दोनों ही गंदगी से भरी हैं—

‘रेलगाड़ी बेहंतहा गंदी है। मूँगफली के छिलके, थूक, कोयला, कालिख, बीड़ी की अधजली कड़ियाँ, लुढ़का हुआ पानी और बच्चों का पेशाब चारों ओर यही सब छितरा है, अख़बारों और फैले हुए गुटबंदों के ताबड़तोड़ बयानों की तरह।’⁹

इस चित्र में पूरी राजनीति उद्घटित हो गई है। श्रीलाल शुक्ल ने बड़े ही संयम और धैर्य से भ्रष्ट राजनीति, सामाजिक व्यवस्था, दफ़्तरशाही, पूँजीवादी व्यवस्था इत्यादि पर करारा व्यंग्य किया है, ताकि विवेकशील लोगों की चेतना जागे।

श्रीलाल शुक्ल ने मध्यवर्गीय समाज-जीवन की कृत्रिमता, झूठे आदर्श, अनैतिकता तथा छीछरेपन के साथ-साथ साहित्य तथा संस्कृति पर भी गहरे व्यंग्य किए हैं।

नौकरी करनेवालों पर किया व्यंग्य देखिए।

पार्क में बाबुओं की सभा हो रही थी, जो माँगने की हैसियत थी, वही माँग रहे थे—यानी महँगाई भत्ते में चंद रूपए। न उन्हें इससे कुछ ज़्यादा चाहिए था, न कुछ कम। चुंगी के टूटती छतोंवाले स्कूल, अस्पताल के बरामदे में बोरों की तरह पड़े मरीज, कर्ज का सूद चुकाने में ही ख़त्म होनेवाली तनख़्वाह, एक ऐसी व्यवस्था की चौबीसों घंटे सेवा जिसके बारे में वे कुछ नहीं समझते। इस सबके खिलाफ उन्हें कुछ नहीं कहना था। वे सिर्फ ‘डी॰ए॰’ चाहते थे, वही माँग रहे थे।¹⁰

यहाँ शुक्लजी केवल वही दृश्य प्रस्तुत कर रहे हैं जो हर छोटे-बड़े शहर में दिखाई देता है। शिक्षित होकर नौकरी पाने के बाद नौकरी पेशा व्यक्ति महज अपने बारे में सोचता है समाज के गरीब, निम्न कुचले वर्ग की परेशानियाँ नहीं देखते।

इस दृश्य को दिखाकर शुक्लजी इस वर्ग की चेतना-जगाना चाहते हैं। शायद उनकी

सोई आत्मा जागे।

श्रीलाल शुक्ल के प्रसिद्ध व्यंग्य-उपन्यास में भी भरपूर व्यंग्य देखने को मिलता है। राजनीतिक दल, चुनाव, जनतंत्र, नेता, पुलिस, झूठे मुकदमे, भ्रष्टाचार, आतंक पुलिस की अकर्मण्यता, शिक्षा, वन-महोत्सव जैसे अनेक विषयों पर करारे व्यंग्य किए हैं। 'राग दरबारी' के व्यंग्य के अधिक सजीव और प्रभावक बनाने के लिए लेखक ने भाषा से बहुत बड़ा काम लिया है। आवश्यकतानुसार मुहावरों-कहावतों के प्रयोग के साथ अंग्रेजी-उर्दू शब्दों का प्रयोग भी किया है।

श्रीलालशुक्ल के व्यंग्य-साहित्य के संदर्भ में डॉ० बालेंदुशेखर तिवारी लिखते हैं-
'श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य रचनाओं में मनोरंजन की सस्ती भावना के स्थान पर तिरस्कारमूलक व्यंग्य-बोध अधिक जाग्रत दीखता है।'¹¹

इस प्रकार बड़ी ही ईमानदारी के साथ श्रीलाल शुक्ल ने अपने साहित्य के द्वारा अपने आसपास के परिवेश में व्याप्त साहित्य, कला, धर्म, संस्कृति, राजनीति, शिक्षा, इत्यादि की विसंगतियों को पाठक के सामने रखा है। वे एक शल्य चिकित्सक की तरह इन विसंगतियों को दूर कर स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहते हैं।

संदर्भ

1. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, श्रीलाल शुक्ल, पृ० 6-7
2. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, श्रीलाल शुक्ल, पृ० 9-10
3. सापेक्ष 41 (गर्दिश के दिन), श्रीलाल शुक्ल, पृ० 176-177
4. प्रकर, अप्रैल 1981, पृ० 176-177
5. सापेक्ष-41, साक्षात्कार महावीर अग्रवाल, पृ० 199
6. सापेक्ष 41, साक्षात्कार महावीर अग्रवाल, पृ० 05
7. सापेक्ष 41, साक्षात्कार महावीर अग्रवाल, पृ० 05
8. यहाँ से वहाँ, श्रीलाल शुक्ल, पृ० 4
9. कुछ जमीन पर कुछ हवा में, श्रीलाल शुक्ल, पृ० 164
10. कुछ जमीन पर कुछ हवा में, श्रीलाल शुक्ल, पृ० 164
11. हिंदी का स्वातंत्र्योत्तर, डॉ० बालेंदुशेखर तिवारी, पृ० 17

□ ब्लॉक नं० 346/2

डी-टाइप, सेक्टर-13

गांधीनगर (गुजरात) 302015

मो० 09427943351

हिंदी पत्रकारिता में 'मतवाला' पत्र की भूमिका

कुमारी संध्या

शोध-छात्रा

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उ०प्र०)

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों एवं आर्थिक शोषण के विरुद्ध 1857 ई० में प्रथम भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की शुरुआत हुई। यह विद्रोह पूरे भारत में व्यापक स्तर पर था। लोगों में राष्ट्रीय चेतना और स्वाधीनता की प्राप्ति की लालसा जगी, जिसके लिए भारतीय जनमानस को ब्रिटिश शासन से कठोर संघर्ष करना पड़ा। भारतीयों ने अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए अनेक संस्थाएँ बनाईं। प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् भारत में अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुईं जिससे भारतीय इतिहास की धारा प्रभावित हुई। बंग-भंग योजना के विरुद्ध देश में अनेक क्रांतिकारी आंदोलनों का उदय हुआ जो शक्ति प्रदर्शन कर गुलामी की जंजीरों को तोड़कर स्वाधीनता चाहते थे।

विभिन्न धाराओं तथा अनेक उतार-चढ़ावों के साथ लगभग पाँच दशकों तक चले भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के बाद सन् 1947 में भारत आजाद हुआ और भारत स्वतंत्र राष्ट्र घोषित हुआ। यह बात निश्चित रूप से सत्य है कि इस स्वाधीन भारत की तस्वीर उन सपनों से अलग है, जिसकी परिकल्पना स्वाधीनता आंदोलन के क्रांतिकारियों, नेताओं, चिन्तकों, मनीषियों और साहित्यकारों ने देखा था। भारतीय राष्ट्रीय चेतना के विकास में पत्र-पत्रिकाएँ, समाचार-पत्रों एवं साहित्य का भी विशेष योगदान रहा है। प्रो० विपिनचंद का कहना है कि 'प्रेस ही वह माध्यम था, जिसके जरिए राष्ट्रवादी विचारधारा वाले भारतीयों ने देशभक्ति के संदेश और आधुनिक आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों को प्रसारित किया और अखिल भारतीय चेतना का उदय हुआ।' भारत में पत्रकारिता की आवश्यकता का अनुभव सदियों पूर्व किसी न किसी रूप में देखा गया। अशोक के शासनकाल में विभिन्न प्रदेशों से सूचना एकत्र करने के लिए अनेक व्यक्तियों की नियुक्ति की गई थी, जो अपने-अपने प्रदेश से समाचारों को एकत्र करके राजा तक पहुँचाते थे। मुग़ल शासनकाल में भी वाक्यानबीस नियुक्त किए जाते थे, जो महत्वपूर्ण सूचनाओं को एकत्रित करके सम्राट तक प्रेषित करते थे। भारत में अँग्रेजों के आने से पूर्व ही सन् 1550 ई० में प्रथम छापाखाना गोवा में स्थापित हुआ था, जिससे ईसाई धर्म से सम्बन्धित पुस्तकें मलयालम भाषा में प्रकाशित होती थीं। सन् 1662 में मुंबई में भीम जी पारेख ने छापाखाने की स्थापना की। भारत में अँग्रेजों द्वारा पहला छापाखाना 1674 ई० में स्थापित हुआ।

सन् 1772 ई० में मद्रास एवं 1779 में कलकत्ता में सरकारी छापेखाना की स्थापना हुई।

भारत में प्रथम समाचार पत्र प्रकाशित करने का प्रयास सन् 1780 ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारी विलियम बोल्ट ने किया। 'बंगाल गजट' के प्रकाशन से भारतीय पत्रकारिता की नींव रखी गई। 'बंगाल गजट' पहला समाचार-पत्र था, जिसमें अँग्रेजी सरकार की आलोचना होती थी। इसी कारण अँग्रेजी सरकार ने रुष्ट होकर सन् 1782 ई० में इसे जब्त कर लिया था। सन् 1780 ई० के बाद पत्रकारिता के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन देखा गया। अँग्रेजी भाषा के साथ-साथ अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में भी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं। सन् 1785 ई० के बाद अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं, जिनमें 'बंगाल जनरल,' मिरात-उल-अखबार, जाम-ए-जहानुमा, शमल-उल-अखबार, मुंबई समाचार पत्र, मराठा, केसरी, हिंदू, हिंदुस्तानी, आजाद और 'ट्रिब्यून' इत्यादि प्रकाशित हुए। इन समाचार पत्रों ने राष्ट्रीय स्वाधीनता-आंदोलन को विकसित करने का कार्य किया। इसी प्रकार बंगला, असमियाँ, मराठी, तमिल, हिंदी, एवं उर्दू आदि भाषाओं ने उपन्यास, निबंध, कविताएँ लिखकर देशभक्ति की भावना जाग्रत की गई।

भारत में हिंदी-पत्रकारिता का श्रीगणेश हिंदी प्रदेश से दूर कलकत्ता नगरी में 30 मई, 1826 ई० में प्रकाशित 'उदंत मार्तंड' पत्र से होता है, जिसके संपादक युगलकिशोर शुक्ल थे। जिन्होंने हिंदी पत्रकारिता के बीज बोए। यही से हिंदी-पत्रकारिता का प्रारम्भ हुआ। यह हिंदी पत्रकारिता की शैशवावस्था थी। इस अवधि में निकाले गए महत्त्वपूर्ण पत्र बंगदूत (1829), बनारस अखबार, प्रजामित्र, समाचार सुधावर्षण, कविवचन सुधा, तत्त्वबोधिनी पत्रिका, हिन्दू प्रकाश, प्रयाग दूत इत्यादि प्रमुख पत्र हैं। इन सभी पत्रों का संबंध भारत में सुधारवादी आंदोलनों से था। संपूर्ण हिंदी-पत्रकारिता के विकास को विभाजित कर छः भागों में बाँट सकते हैं-सन् 1826 से 1867 ई० तक प्रारंभिक युग, सन् 1867-से 1900 ई० तक भारतेंदुयुग, सन् 1900-1920 द्विवेदीयुग, 1920-1936 ई० तक छायावादी युग, 1936-1960 तक छायावादोत्तर युग तथा सन् 1960 से अब तक समकालीन हिंदी-पत्रकारिता युग के नाम से अभिहित किया गया है।

'मतवाला' पत्र का प्रथम प्रकाशन 23 अगस्त, सन् 1923 ई० में प्रकाशित हुआ। मतवाला पत्र के संपादक मुंशी नवजादिक लाल, शिवपूजन सहाय, एवं सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' थे। निराला उपनाम 'मतवाला' पत्र द्वारा ही दिया गया है। निराला 'मतवाला' में अनेक छद्म नाम से लिखते थे। उनके छद्मनामों में साहित्य सार्दूल, साहित्य-शार्दूल, घोघा बसंत, पुराने महारथी, जनाब अली आदि थे। 'मतवाला' के मुख्य पृष्ठ पर निराला द्वारा रचित दोहा पत्र के प्रत्येक अंक में प्रकाशित होता था-

अमिय-गरल शशि-शीकर, रविकर, राग-विराग भरा प्याला।

पीते है जो साधक उनका प्यारा है यह मतवाला।

निराला संपूर्ण पत्रकार नहीं थे। एक कवि के रूप में भटकते हुए पत्रकारिता के दरवाजे पर पहुँच गए थे। चूँकि समय के दबावों के तहत पूरे देश में साहित्य और पत्रकारिता को एक राष्ट्रीय ईकाई के रूप में देखा जा रहा था, लेकिन दोनों के मोर्चे अलग-अलग थे, पत्रकारिता का मोर्चा नवजागृरण के आंदोलन को पुष्ट करना था तथा विश्वमानवता के दायित्व का निर्माण साहित्य का था। 'मतवाला' के संपादकीय के प्रथम अंक में निराला लिखते हैं कि 'जो मेरी तरह स्वतंत्र 'मत' का होगा, वही समझने वाला होगा। राष्ट्र, जाति, समुदाय, भाषा, धर्म,

समाज, का शासन प्रणाली, साहित्य और व्यापार आदि में समस्त विषयों का निरीक्षण और संरक्षण मेरी योजना का अभिसंधान है।'² 'मतवाला' पत्रकारिता का नया विद्यालय था, जिसके हेड मास्टर निराला थे। अब तक हिंदी-जगत पत्रकारिता के इसप्रकार के स्कूल से अपरिचित था। 'मतवाला' द्वारा अपने समय की यथार्थ जाँच रिपोर्ट इस साप्ताहिक पत्र द्वारा प्रस्तुत की जाती थी। निराला ने तमाम संघर्षों एवं प्रतिकूलताओं से जूझते हुए, 'मतवाला' की उपलब्धियों को स्वीकार किया। 'मतवाला' निराला के आक्रामक तेवर की प्रयोगशाला थी।

'मतवाला' 'चाबुक' और 'कसौटी' स्तंभों का दायित्व निराला संभालते थे। चाबुक स्तंभ में समकालीन पत्रिकाओं में भाषागत दोषों पर चाबुक चलता था। 'कसौटी' स्तंभ में निराला 'पुस्तक समीक्षा' लिखते थे। 'चलती चक्की' स्तंभ में सामायिक समाचारों के आधार पर व्यंग्य लेखन किया जाता था। 'भानुमती का पिटारा' में निंदकों और प्रशंसकों की सम्मतियों संभाल कर रखी जाती थी। 'घी का लड्डू टेढ़ा भला' में वक्र शैली में समकालीन पत्र-पत्रिकाओं की आलोचनात्मक खोज खबर ली जाती थी। 'मतवाला' की पत्रकारिता ने निराला को प्रसिद्धि तो दी लेकिन समानांतर रूप से एक सख्त विरोधी माहौल भी बना लिया। हिंदी-पत्रकारिता के इतिहास में सामूहिक पत्रकारिता को असली जामा पहनाने में 'मतवाला' का बेजोड़ योगदान था। कविताओं को छोड़कर मतवाला के सभी स्तंभ छद्मनामों से प्रकाशित होते थे।

'मतवाला' में संपादकीय टिप्पणियों द्वारा निराला ने साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध बगावत की ठान ली। पुरुषों के समान महिलाओं की भूमिका की भी सराहना की। 1930 ई० में असहयोग आंदोलन में भाग लेने पर अंग्रेजों द्वारा क्रूरतापूर्वक लोगों के ऊपर बरसाई गई लाठियाँ, जिससे निराला का पत्रकार धर्म और 'मतवाला' पत्र की विचारधारा भी आहत हुआ था। अखबारों एवं पत्र-पत्रिकाओं का मुँह बंद कर दिया गया था। उस समय निराला का दुःख स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है—'जब अखबार सच कहते हैं, तो उनका गला घोट दिया जाता है। आँख के सामने जो घटना होती है। उसे कहा नहीं जा सकता।'³ 'मतवाला' की राष्ट्र नीति बहुत ही उग्र थी। विदेशी सरकार की कुटिलताओं पर वह प्रायः तीखा प्रहार करता था। 'मतवाला' की अवधारणा बिल्कुल अलग एवं सही थी कि अंग्रेजों से देख को मुक्ति इस लिए नहीं मिल रही है क्योंकि हमारा जातीय संगठन बहुत दुर्बल है। अंग्रेजी से कही अधिक घातक वे व्यवसायी हैं जो गांधी के राष्ट्रीय आह्वान की अपेक्षा करके देश का शोषण करने में व्यस्त हैं।

मतवाला के वर्ष 2, अंक-6 के संपादकीय टिप्पणी 'गोरों' की काली जोंके' में निराला ने लिखा है—'महात्मा गांधी जी समझाते हार गए, लालाजी लेक्चर देते-देते थक गए, मालवीय जी का उपदेश निष्फल हो गया, नेहरूजी ने नाकों में दम हो गया, दास युक्ति तर्क खाक में मिल गया। दरिद्रों का करुण क्रंदन अरण्यरोदन हो गया, हजारों नवयुवक कातर प्रार्थना करके, सत्याग्रह करके, पिकेटिंग करके हताश हो, गए परंतु गोरों को काली जोंके अपने भाईयों का रक्त चूसने से बाज नहीं आयी। जब सारा देश विदेशी बहिष्कार, स्वदेशी की पुकार कर रहा था। देश की भलाई के लिए देशी व्यवसाय की उन्नति चाहते थे, किन्तु अर्थ लोलुप विदेशी वस्तु-व्यवसायी, अभागे देशद्रोही अपने स्वार्थ से तिलभर नहीं डिगें। न जाने विदेशियों से इनका कौनसा गहरा रिश्ता कायम हो गया।'⁴

'मतवाला पत्र' के मतवालेपन में बावलापन था उतावला पन नहीं है। इस में निरुत्साह

नहीं है, निष्कर्मण्यता नहीं, कर्मप्रियता है, क्षुद्रता नहीं, उदारता है, घिघेरापन नहीं, गंभीरता है।⁵

‘मतवाला पत्र’ के वर्ष 1 अंक 11 की संपादकीय टिप्पणी में सरकारी दमन नीतियों को लक्ष्य करके लिखा है—‘जो राजा प्रजा को प्रसन्न नहीं कर सकता उसकी उपमा नीतिकारों ने ‘अजागलस्तन’ से दी है। किन्तु नीति की बातें तो उसके लिए है, जिसके किसी अंग में कुछ शर्म हो। जिसको शर्म नहीं है, उसके लिए केसा धर्म केसा कर्म।’⁶

भाषा को लेकर उसमें सरस्वती पत्रिका पर भी आक्रमण किया था जिससे क्षुब्ध होकर द्विवेदी जी ने ‘मतवाला’ के एक अंक की भाषा-त्रुटियों को संशोधित करके ‘मतवाला’ पत्र के कार्यालय भेज दिया था। जबकि द्विवेदी जी उस समय ‘सरस्वती’ के सम्पादक पद पर नहीं थे। किन्तु ‘सरस्वती’ पत्रिका के प्रति उनके मन में अपार ममता थी। ‘मतवाला’ के पहले वर्ष अंक 3 की संपादकीय टिप्पणी का शीर्षक ‘नीम-गुड-बहिला’ में बड़े साफ़ शब्दों में कहा है कि ‘मुसलमान भाई रहते तो हिंदुस्तान में हैं मगर सपना देखते हैं अरब का। ऊँट भागता है तो पश्चिम की ओर जाता है। ‘अकबर’ ने ठीक ही कहा है कि—

‘पेट मसरूफ है कलर्की में।

दिल है ईरान और टर्की में।’⁷

यही कारण है कि ‘मतवाला’ में निराला ने हिंदूधर्म की वकालत की है। हिंदूधर्म को शनैश्चरी दृष्टि से देखते हैं। ‘मतवाला’ के लिए शनैश्चरी दृष्टि असह्य थी, क्योंकि वह राष्ट्रीयता का हिमायती था और शक्ति का उपासक। अंग्रेजों की कुटिल नीतियों के कारण हिन्दू मुस्लिम के दंगे आम बात हो गए। दोनों समुदायों के बीच खाई बढ़ती जा रही थी, दोनों जातियाँ एक दूसरे से क्षुब्ध थी। अंग्रेज एक-दूसरे के विरुद्ध भड़काते ही नहीं, बल्कि सहायता भी करते जिससे उन दंगों में धन-जन की अपार हानि होती थी। इस क्षोभ की यथार्थ अभिव्यक्ति मतवाला की सम्पादकीय टिप्पणी में व्यक्त है।

हिंदी-जगत में ‘मतवाला’ का अच्छा स्वागत हुआ। साहित्यिक पत्रिका ‘श्री शारदा’ की सम्मति—‘कागज अच्छा छपाई अच्छी है और जो कुछ इसमें छपता है वह भी हिंदी-संसार में अनूठी वस्तु है। अतएव प्याले सस्ते जान पड़ते हैं। पत्र क्या है हँसी की पिटारी है, किंतु इसकी हँसी ऐसी हँसी भी हँसी नहीं है कि मुँह पर आकर पिंड़ छोड़ दे। मन पर भी कुछ हाथ साफ करती है वहाँ भी उथल-पुथल मचाती है। कभी-कभी तो रूठ प्रेमी की तीक्ष्ण दृष्टि बनाकर हृदय बेध देती है और कभी ऐसी फबतियाँ कसती हैं कि बस समझदार शिकार की मौत भी हो जाती है। मतवाला पीता तो स्वयं था, लेकिन नशा बाँट देता है न जाने कितने आदमियों को।’⁸ 01 मई 1924 से ‘मतवाला’ के एक अंक का मूल्य एक आना और वार्षिक शुल्क दस रुपए तथा विदेश में दस शिलिंग कर दिया गया। मतवाला में कविता, कहानी, जीवन चरित समाचार पत्र प्रकाशित किए जाते। इसकी संपादकीय टिप्पणी का भी अलग अंदाज होता था—

‘होगी न कद्र जान की कुरबां किए बगैर!

देर नहीं लगती है गोली चल जाती है, ताजा घाव पुराने नहीं हो पाते, नया जख्म तैयार हो जाते हैं, आठ-आठ आँसू रोकर दम नहीं ले पाते, खून के आँसू टपकाने की नौबत आ जाती है। हृदय पर हाथ रखकर पूछनेवाला कोई नहीं है।, सहानुभूति के चार शब्द सुननेवाला कोई नहीं है। शमशान यात्रियों की तरह सभी मौन हैं। एक-दूसरे का मुँह ताकते हैं।, और सहन कर जाते।

भारत! जानते हो ये सब क्यों हो रहा है? क्या कहा? समय का फेर? पराधीनता? 'समय का फेर और पराधीनता' ये दोनों शब्द तो आज हजार वर्षों से तुम्हारे कोने-कोने आह के साथ गुँज रहे हैं। आज हजारों वर्षों से एक ही सूत्र अब तक साधने को पड़ा हुआ है। धर्म में 'समय का फेर और पराधीनता' 'समाज में समय का फेर और पराधीनता' राज्य में समय का फेर और पराधीनता' कहीं तक गिनाएँ, ऐसा कौनसा विषय जिसके लिए तुम्हारी समय की फेर और पराधीनता, 'की रट न हो।'⁹

प्रथम युग में, ब्राह्मणों की तूती बोलती थी, तब मंत्र-उच्चारण सुन लेने पर लोगों के कानों में सीसा गलाकर डाल दिया जाता था। अगर कभी शब्दों पर जीभ डुल गयी उसी वक्त काट ली जाती थी। द्वितीय युग में, क्षत्रियों की शमशीर थी। जिस पर सहायक था ब्राह्मण का मस्तिष्क। तब भी 'समय का फेर और पराधीनता' की दवा नहीं हो सकी। कौरव-पांडव कटे, यदुवंशी कटे, बौद्ध कटे और आपस की मारकाट में कट गए युग और कितने युगांतर। इस मारकाट को देखते हुए मुस्लमान आए, न जाने कितनी चोटियाँ कट गईं, कट गए चुटिया समेत। इनके हाथ थक गए। तब आए अँग्रेज़। इनके आने पर कटना बंद लेकिन बेधना शुरू हो गया।

फिरंगी हुकुमत से शासनाधिकार प्राप्त करने की अर्जियों और मिन्नतों को 'मतवाला' भीख माँगना करार देते हुए ऐसी कोशिशों पर तीखे प्रहार करता 'सर्राफ की नजर ने तुमको परख लिया है।'¹⁰ भीख माँगते प्रायः आंधी शताब्दी बीत गयी परंतु 'सनहक' खाली ही पड़ी रही। सूँघने एक टुकड़ा रोटी या चुटकी-भर चावल, तो क्या एक कण उच्छिष्ट भी उठाकर नहीं फेंका।

मतवाला की भाषा-शैली पर आक्षेप किए जाने लगे थे उस पर अश्लील लेखन का आरोप लगा। 'भारतमित्र' में हुई इस प्रतिक्रिया के जवाब में 29 मार्च 1924 के अंक में मतवाला ने स्पष्टीकरण किया—'मतवाला' हिंदी-संसार को अपनी विनोदमयी रीति से प्रसन्न करने के लिए क्षेत्र में आया है किसी से बैर, विरोध या झगड़ा करने के नहीं। हाँ, हमारे कहने का ढंग निराला है। इसलिए हम सीधी बात को विनोद के साथ कहें तो यह हमारा नहीं, हमारे नाम का अपराध है।'¹¹

इस प्रकार 'मतवाला' के प्रकाशन के साथ ही हिंदी पत्रकारिता में एक नया प्रयोग हुआ। एक बड़े अभाव की कमी पूरी हुई। 'मतवाला' एक जागृति-पत्र होने के कारण उसे युग की नाड़ी की सही पहचान थी। युगीन परिस्थितियों, हिंदी पत्रकारिता एवं स्वाधीन चेतना के प्रति सदैव जागरूक रहा। यह अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

संदर्भ

1. कामेश्वर प्रसाद, भारत का इतिहास (1757 से 1950) भारतीय भवन, नई दिल्ली, पृ० 267
2. रमेशकुमार त्रिपाठी, समकालीन हिंदी-पत्रकारिता में नारी-संदर्भ, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली पृ० 21
3. भवदेव पांडेय, स्वाधीनता की अवधारणा एवं निराला (सं० राजेशकुमार), अभिप्राय प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000, पृ० 165
4. कृष्णबिहारी मिश्र, हिंदी-पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004 पृ० 355

5. वही, पृ० 365
6. वही, पृ० 354
7. वही, पृ० 366
8. वही, पृ० 366
9. विजयदत्त श्रीधर, भारतीय पत्रकारिता कोश-खंड दो, प्रकाशन नई दिल्ली, पृ० 706
10. विशाल भारत, मई 1936, पृ० 628
11. विजयदत्त श्रीधर, भारतीय पत्रकारिता कोश-खंड दो, प्रकाशन नई दिल्ली, 2008 पृ० 707

□ सुपुत्री श्री हरिप्रसाद
मनं० 1175, आवास विकास कालोनी
कनारा घाट
गोरखपुर 273008 (उ०प्र०)
मो० 09455671156

विश्वस्तर पर हिंदीभाषा

डॉ० करनैल सिंह

शोधार्थी हिंदी विभाग

कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

स्वतंत्रता के पश्चात् से संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है, क्योंकि यह सदियों से देश की संपर्क व राष्ट्रभाषा ही रही है। मुस्लिम शासकों ने इसे प्रचारित कर इसका क्षेत्र बंगाल एवं आसाम तक पहुँचा दिया था। खिलजी वंश के शासनकाल में हिंदी निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर थी और यह नगरों एवं क़स्बों की संपर्क भाषा बनती जा रही थी। अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण में देवगिरी पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर हिंदी का प्रचार-प्रसार तक दक्षिण भारत तक फैला दिया। मध्यकाल में भक्ति-आंदोलन ने हिंदी को भारत के कोने-कोने तक फैला दिया था। आज भी यह देश की संपर्क व सशक्त राष्ट्रभाषा है। आप देश के किसी भी क्षेत्र से संबंधित हों अर्थात् ईटानगर, आईज़ोल से लेकर कच्छ और कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी-पर्यंत आप कहीं भी संवाद कर सकते हैं। तमिलनाडु जैसे राज्यों में हिंदी-विरोध की लहर के बावजूद हिंदी समझने और बोल पाने में कोई कठिनाई नहीं है। 2011 की जनगणना के अनुसार हिंदी बोलनेवालों की संख्या 55 करोड़ से ऊपर है, आगामी जनसंख्या में इसमें और भी वृद्धि होने की अपार संभावना है। देश में हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्र सर्वाधिक पढ़े जाते हैं, जबकि अँग्रेज़ी वाले समाचार-पत्र शहरों, नगरों, महानगरों, दिल्ली, मुंबई, कोलकाता व मद्रास आदि तक ही सीमित हैं। रीडरशिप सर्वे 2010 की रिपोर्ट के अनुसार हिंदी समाचार-पत्र 'दैनिक जागरण' सभी प्रांतों में उत्सुकता के साथ पढ़ा जाता है। इस समाचार-पत्र के पाठक लगभग करोड़ हैं। अँग्रेज़ी के पाठकों की संख्या इनसे काफी कम है।

हिंदी से संबंधित पुस्तकों की माँग भी लगातार बढ़ रही है। '30 जनवरी 2010 से 7 फरवरी 2010 तक प्रगति मैदान दिल्ली में संपन्न 19वाँ विश्व पुस्तक मेला इसका प्रत्यक्ष साक्षी है।'

इस रिपोर्ट के अनुसार श्री नरेंद्र कोहली का महाभारत पर आधारित उपन्यास 'महासमर' जो नौ खंडों में है और उसका मूल्य भी काफी है, बावजूद इसके बहुत बिका। हिंदी के पाठक इस मेले में बहुत संख्या में आए। हिंदी पुस्तकों की बढ़ती माँग और बाज़ार की वास्तविकता को देखते हुए मेले में पेंग्विन पब्लिशर्स प्रकाशन को हिंदी-पुस्तकों का अलग से स्टाल लगाना पड़ा। नेशनल बुक ट्रस्ट की रिपोर्ट के अनुसार हिंदी प्रकाशनों एवं प्रकाशकों का

इस विश्व पुस्तक मेले में काफ़ी विस्तार दिखाई दिया। वाणिज्य/व्यवसाय, विज्ञापन आदि में हिंदी आगे आ रही है। रेडियो, दूरदर्शन, टी०वी० आदि चैनलों में हिंदी लोकप्रिय है।

परंतु उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, मेडिकल शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा आदि क्षेत्रों में अब भी अँग्रेज़ी हावी है, उसका वर्चस्व बढ़ रहा है। कंप्यूटर, इंटरनेट आदि में अँग्रेज़ी का ही बोलबाला है। न्यायालयों में सारा कार्य अँग्रेज़ी भाषा में हो रहा है, खासकर उच्च न्यायालयों में निर्णय सुनवाई अँग्रेज़ी में ही होती है। सर्वोच्च न्यायालय में हिंदी का कहीं नाम भी नहीं अपितु वहाँ का सारा काम और निर्णय आदि अँग्रेज़ी में ही होता है। साधारण जनता के लिए न्याय भी निज भाषा में मिल पाना असंभव है। आखिर राष्ट्रभाषा के साथ यह पक्षपात कब तक चलेगा? आज सभी स्कूलों में प्राथमिक स्तर से ही अँग्रेज़ी पढ़ने एवं पढ़ाने की कवायद जोरों पर है लेकिन एक निर्धन व्यक्ति, जिसकी आय उम्मीद से भी कम है, वह इन स्कूलों में अपने बच्चों को पढ़ाने में असमर्थ है।

आज भारत में यह स्थिति है कि सभी राजकाज के कार्य हिंदी के बजाय अँग्रेज़ी में हो रहे हैं। सभी सरकारी या ग़ैरसरकारी कार्यालयों में भी अँग्रेज़ी का प्रभुत्व है। केंद्र तथा राज्य सरकारों के मध्य आदान-प्रदान और संपर्क की भाषा अँग्रेज़ी ही है। वास्तव में राजभाषा हिंदी का प्रयोग राजकाज में, प्रशासन में, कार्यालयों में कम ही होता है। विश्व के विभिन्न देश अपना राजकाज व सरकारी काम अपनी भाषा में ही करते हैं। जापान जैसा तकनीकी विकसित देश अपने विकास का श्रेय अपनी भाषा को देते हैं। इधर हमारे देश और हमारे आदरणीय मंत्री जो हिंदी में शपथ लेने में संकोच करते हैं और घबराते हैं। मई 2009 के लोकसभा चुनावों में केंद्र सरकार के शपथ-ग्रहण के समारोह में अधिकांश मंत्रियों ने अँग्रेज़ी में ही शपथ ग्रहण की है। अभी हाल में 13 अगस्त 2010 को लोकसभा में हिंदी के नाम पर जो हंगामा हुआ, वह काफ़ी शर्मनाक था।

इससे तो विदेशों में हिंदी की स्थिति अच्छी है। हिंदी का वैश्विक विस्तार हो रहा है। पहले तो जुलाई 2009 में न्यूयार्क में विश्व हिंदी सम्मेलन हुआ और वह भी संयुक्त राष्ट्रसंघ के मुख्यालय में, जिसका उद्घाटन संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव ने किया। अब वहाँ प्रवासी भारतीयों में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए 2009 में न्यूयार्क में युवा हिंदी संस्थान की स्थापना हुई है। इसी संस्थान के तत्वावधान में अमेरिका के अटलांटा जार्जिया राज्य में जून 19 से 28 जून 2010 के बीच दस दिन का शिविर लगाया गया, जिसमें 100 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस कार्यक्रम को जहाँ एक ओर अमेरिकी सरकार की आर्थिक सहायता प्राप्त है, वहीं दूसरी ओर अमेरिका के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों एवं शोध-संस्थानों का सहयोग प्राप्त है। अमेरिकी सरकार ने हिंदी को एक महत्वपूर्ण भाषा के रूप में स्वीकार किया है। परिणामतः सभी सरकारी स्कूलों में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी को पढ़ाने के द्वार खोल दिए हैं। वहाँ की सरकार के अनुसार भविष्य में भारत के साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय और राजनीतिक संबंधों के संदर्भ में हिंदी का महत्त्व बहुत अधिक है। अमेरिकी सरकार में द्विभाषी लोगों की माँग बढ़ रही है। एक अन्य समाचार रिपोर्ट के अनुसार हंगरी में भी हिंदी का प्रचार-प्रसार तेज़ी से बढ़ रहा है। हंगरी में हिंदी सीखने वाले मूलतः हंगरी भाषी हैं। वे किसी भी वर्ग-क्षेत्र से संबंधित हो सकते हैं। चिकित्सक, इंजीनियर, महिलाएँ, छात्र और बुजुर्ग भी हिंदी सीखने आते हैं। हंगरी स्थित इंडो-यूरोपियन

लिंग्विस्टिक संस्थान में हिंदी पढ़ाने वाली मारिया नेज्यैशीका का कहना है कि भारत सरकार और बड़ी संख्या में छात्रवृत्ति दे, ताकि अधिकाधिक हंगरीवासी छात्र भारत आ सकें। मुख्यतः पीएच०डी० करने के लिए अभी छात्रवृत्ति अपेक्षानुसार कम है। भारतीय साहित्य हंगेरियन में उपलब्ध है और हंगरी का साहित्य भी बड़े पैमाने पर हिंदी अनुवाद में सरलता से उपलब्ध हो जाता है। स्वयं मारिया पिछले 25 वर्षों से हिंदी और भारत से जुड़ी हुई हैं।

हिंदी का वैश्विक विस्तार करने के लिए वर्धा स्थित महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय भी सक्रिय है। हिंदी को विश्वभाषा बनाने के लिए यह विश्वविद्यालय विदेशों के विश्वविद्यालयों और संस्थानों में हिंदी और हिंदी माध्यम से विभिन्न अनुशासनों के अध्ययन और अनुशीलन के लिए समन्वयक की भूमिका निभाने से सचेष्ट है। इस विश्वविद्यालय में विश्वभर में फैले हिंदी पाठकों और अध्येताओं के लिए भारतेंदुयुग से विश्वविद्यालय की यह बैवसाइट इंटरनेट पर हिंदी साहित्य की वैश्विक उपलब्धता का प्रतिनिधित्व करती है। हिंदी को विश्वभाषा से संयुक्त राष्ट्रसंघ की एक भाषा बनाने के लिए महत् प्रयास करने की ज़रूरत है।

1998 से पहले मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषाओं के जो आँकड़े उपलब्ध हुए, उनमें से हिंदी को तीसरा स्थान प्राप्त हुआ। केंद्रीय हिंदी संस्थान के पूर्व निर्देशक प्रो० महावीरसरन जैन ने यूनेस्को की टेक्नीकल कमेटी फार द वर्ल्ड लैंग्वेजिज को आँकड़ों एवं तथ्यों के आधार पर सिद्ध किया कि विश्व में चीनी भाषा के बाद हिंदी दूसरे स्थान है।

अमेरिका में सन् 1913 और 1915 के मध्य गदर पार्टी की स्थापना के समय ही लाला हरदयाल, करतारसिंह सराय और सोहनसिंह भक्खना ने भी हिंदी की स्थापना की। युवा देशभक्त अमरसिंह सराय ने लिखा था कि 'मैं हिंदी, ठेठ हिंदी, खून हिंदी, जात हिंदी हूँ, यही मज़हब यही फिरका, यही है जानदों मेरा।'²

पिछले दशकों में हिंदी-शिक्षण के प्रति जागरूकता, विश्व के धरातल पर ऊँचा उठता भारत का नाम तथा अमेरिका में बढ़ रही भारतीयों की संख्या के कारण बढ़ रही है। अमेरिका में सन् 1980 से अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, बाल्टीमोर नगर में कुँवरचंद्रप्रकाश की प्रेरणा से 1992 में विश्व हिंदी समिति न्यूयार्क में, 2002 में हिंदी न्यास की स्थापना हुई। अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति द्वारा विश्व त्रैमासिक, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति द्वारा सौरभ, हिंदी न्यास द्वारा हिंदी जगत, क्षितिज, विश्व विवेक, कनाडा से हिंदी हिंदी चेतना आदि पत्रिकाएँ प्रचुर मात्रा में निकल रही हैं। अमेरिका में हिंदी कविता, उपन्यास, कहानी आदि का जो प्रकाशन होता है, उनमें अपनी मिट्टी से दूर होने की पीड़ाएँ अपने धर्म-संस्कारों के प्रति जागरूकता, भारत-अमेरिका जीवन मूल्यों के बीच सामंजस्य आदि विषय पाए जाते हैं।

जापान में हिंदी पूरे वर्चस्व से फैलती जा रही है। इसके प्रचार एवं प्रसार में वहीं के नागरिक तन्मयता से अपना पूरा योगदान दे रहे हैं। प्रो० तनाकाजी ने स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा का पाठ्यक्रम इस विवेक व व्यस्कता से तैयार किया है कि वह जापानी विद्यार्थियों के अंतस् में हिंदीभाषा एवं साहित्य में प्रेम जगाने के लिए उसके मानस में भारतीय संस्कृति, संवेदना व मिथक चेतना का उजाला भर सके। जापान में विदेशी भाषाओं के साथ उन देशों के शिष्टाचार, खान-पान, वेश-भूषा, गीत-बोली एवं वाणी से अंतरंगता स्थापित करने के लिए

विद्यार्थी 'संस्कृति दिवस' मनाते हैं। वहाँ अनेक जापानी लोककथाओं पर भारतीय लोककथाओं की छाप है। वहाँ के मंदिरों का प्रवेशद्वार भारतीय मंदिरों के तोरण द्वार से बहुत साम्य रखता है। हिंदीभाषा के साहित्यकार का पूरे जापान में स्वागत होता है और इस साहित्य के अंतर्गत दलित साहित्य को पढ़ाने की पहल भी बढ़ी है।

इंग्लैंड के केंब्रिज, ऑक्सफ़ोर्ड, लंदन व यार्क विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई होती है। इसके साथ ही भाषा और साहित्य पर भी विशेष बल दिया जाता है। लंदन विश्वविद्यालय के प्राच्य एवं अफ्रीकी अध्ययन स्कूल में हिंदी की पढ़ाई विधिवत् चलती रहती है। अप्रवासियों को हिंदी पढ़ाने के लिए बहुत प्रोत्साहित करना पड़ता है। केरोबियन देशों से आए हुए भारतीय मूल के स्वयं ही हिंदी-कक्षाओं में आना चाहते हैं। साहित्यिक संस्थाओं में भारतीय भाषा संगम, गीतांजलि, यूके० हिंदी समिति आदि सक्रिय हैं। कनाडा में लगभग बीस वर्षों से हिंदू इस्टीट्यूट ऑफ लर्निंग टोरंटो में काफ़ी सक्रिय है। इस संस्था के अध्यक्ष श्री जगदीशचंद्र शारदा व प्रधानाचार्य रत्नाकर निराले हैं। इस संस्था का मुख्य कार्य हिंदी का प्रसार-प्रचार करना है और साथ ही संस्कृत, गीता और रामायण का भी। गुयाना, ट्रिनिडाड, मारीशस, फिजी आदि देशों में निर्वासित भारतीय लोग अपनी खोई हुई मूल संस्कृति व भाषा को पुनः प्रस्थापित करने में जुटे हुए हैं। मॉरीशस में हिंदी-उन्नयन का कार्य, पठन-पाठन, प्रवचन-प्रसारण, सृजनात्मक लेखन के स्तर पर होता है। वहाँ की सरकार द्वारा हिंदी-शिक्षण प्राथमिक स्तर पर करवाया जाता है। 254 प्राथमिक विद्यालयों में 585 अध्यापक व 48842 छात्र हिंदी सीख रहे हैं। इसके अतिरिक्त 64 माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी की दीपशिखा प्रज्वलित है। गैरसरकारी 62 विद्यालयों में 5200 छात्र अध्ययनरत हैं।¹³

इटली में वेनिस, टूरिन तथा रोम में भी हिंदी पढ़ाई जाती है। ओरिएंटल विश्वविद्यालय नेपोली (नेपुल्स), टूरिन, वेनिस, रोम विश्वविद्यालयों में भी हिंदी का शिक्षण-कार्य होता है। इन विश्वविद्यालयों में हिंदीभाषा के आधारभूत व्याकरणों के नियमों से परिचित करा दिया जाता है। सभी हिंदी साहित्यकार वहाँ रुचि से पढ़े और पढ़ाए जाते हैं। मुंशी प्रेमचंद का 'गोदान', फणीश्वरनाथ नाथ 'रेणु' का 'मैला आँचल', हिमांशु जोशी का 'कगार की आग' इटालियन अनुवाद के रूप में सरलता से उपलब्ध है। छायावादी चतुष्टय महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की कविताएँ भी पढ़ाई जाती हैं।

नीदरलैंड्स में हिंदी प्रचार संस्था लायडन विश्वविद्यालय, हिंदू ब्रॉडकार्स्टिंग कारपोरेशन, ओहम डच हिंदी समिति लायडन आदि अनेक संस्थाएँ मिलजुलकर हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए कार्यरत हैं। प्रवासी भारतीय हिंदी पुस्तकों की माँग करते हैं। वहाँ के मंदिरों, स्कूलों, भजन-कीर्तनों, संस्कार-गीतों में हिंदी का ही उपयोग करते हैं। उनका यह मानना है कि यदि हमने अपने वाली पीढ़ी को हिंदी सीखने के लिए प्यार से प्रेरित नहीं किया तो हिंदी और सरनामी भाषाएँ समाप्त हो जाएँगी।

कोरिया में विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए केंद्रीय परीक्षाएँ होती हैं। इनमें जो लोग अंकों में सबसे निचले स्तरों पर होते हैं, उन्हें ही मज़बूरी में हिंदी जैसी विदेशी भाषा में प्रवेश लेना होता है। हाकुंक, बुशान विश्वविद्यालयों में हिंदी के विभाग हैं।

नेपाल में हिंदी का विकास देशी भाषा के रूप में हुआ है। संत कुक्करीपा नेपाल में हिंदी के आदिकवि माने जाते हैं। रत्ननाथ की पुस्तक 'रत्नबोध' नेपाल में हिंदी की प्राचीनतम धरोहर है। त्रिभुवन विश्वविद्यालय काठमांडू में हिंदी-शिक्षण का कार्य होता है। डॉ० संजीता वर्मा नेपाल में समाचार वाचिका के रूप में लोकप्रिय है नेपाल में हिंदी यहाँ के मूल निवासियों की भाषा है। खाड़ी देशों में पहल से आठवीं तक हिंदी पहली अनिवार्य भाषा के रूप में है। ओमान, संयुक्त अरब अमीरात में हिंदी संपर्क भाषा है।

इस प्रकार विश्व में हिंदी की लोकप्रियता निरंतर बढ़ रही है। लेखक श्री राजेंद्र अरुण की अभिलाषा है कि हिंदी विश्व की भाषा बने—

जन-जन के मन की अभिलाषा,
हिंदी बने विश्व की भाषा।
हिंदी की शुभ गौरव-गाथा
विविध विधाओं के लेखन से
उन्नत है हम सबका माथा।
हिंदी राष्ट्र संघ में गूँजे, यही हमारी जीवन-आशा।⁴

इस प्रकार भारतीय जनमानस की अतिप्रिय हिंदीभाषा आज विश्व के कोने-कोने में लोकप्रिय हो रही है।

संदर्भ

1. राष्ट्रीय सहारा, दिल्ली, 07.02.210, पृ० 11
2. अजित गुप्ता, 'मधुमति' अक्टूबर 2007, पृ० 107
3. वही, पृ० 109
4. वही

□ श्रीराम स्वीट्स
अंबाला रोड, कैथल (हरियाणा)
मो० 094662-85623
ई-मेल karnails226@gmail.com

हरियाणवी लोककाव्य के अंतर्गत फुटकर रागनी व भजनों में सामाजिक सरोकार

डॉ० बलजीत सिंह

सहायक प्रवक्ता, हिंदी विभाग
आर०के०एस०डी० कॉलेज, कैथल

‘लोककाव्य’ लोक और काव्य दो शब्दों से मिलकर बना है। लोक बड़ा व्यापक शब्द है, जो अँग्रेजी की फोक का पर्याय है। सम्राट अशोक के शिला-लेखों में ‘लोक’ शब्द का प्रयोग समस्त प्रजाजनों के लिए हुआ है।¹ इसी प्रकार सुप्रसिद्ध वैयाकरणों पाणिनी तथा पतंजलि ने भी क्रमशः ‘अष्टाध्यायी’ और ‘महाभाष्य’ में लोकसत्ता को शास्त्रेतर वेदेतर सामान्य जन के अर्थ में स्वीकार किया है।² डॉ० सत्येंद्र का मत है कि लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।³ ‘लोकसाहित्य’ लोकचित की ऐसी ललित मौखिक अभिव्यक्ति है जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा लोक का अपना होता है अत्यन्त सहज और स्वाभाविक। यही कारण है कि इसमें लोकमानस का प्रतिबिंब झलकता है।⁴

हरियाणवी लोककाव्य की परंपरा गौरवशाली रही है। लोककाव्य का स्रोत प्रमुखतया: लोकगीत, भजन और लोकनाट्य रहे हैं। लोकगीत मानव-हृदय के सहज उद्गार हैं। लोकगीतों की भूमि मानव की सुख-दुखात्मक अनुभूति है। यह एक ऐसी कला है, जो अपनी गूँज से जीवन को गतिमान रखती है और जीवन को सत्यम शिवम सुंदरम् से ओत-प्रोत करती है। हरियाणवी लोककाव्य में भजनों की परंपरा भी बड़ी महत्त्वपूर्ण रही है। भजन मंडलियों का कलात्मक रूप सांग (लोकनाट्य) हरियाणवी लोककाव्य में प्रकट हुआ है। इसके बाद लोककाव्य अनेक निर्भरों के रूप में प्रवाहित हुआ। जिसकी धारा निरंतर तीव्रगति से बह रही है। जिसमें हरियाणवी रागनी मुख्य है।

हरियाणा में रागनी का विकास सांगों के माध्यम से हुआ है। सांगों-किस्सों की सफलता का पूरा दारोमदार संगीत पर टिकने से लोकसंगीत के विविध रूप निखरकर आए। हरियाणा में रागनी लोकनाट्य की रीढ़ बन गई। हरियाणा की रागनी का विकास भी कथा-आख्यान से हुआ और धीरे-धीरे यह स्वतन्त्र तौर पर विकसित हुई। जीवन के छोटे-छोटे प्रसंगों को केंद्रित करके स्वतंत्र रागनी प्रकाश में आने लगी। रागनी से कथा का जुआ हटते ही

इसकी चाल बदल गई और प्रौराणिकता के खोल से बाहर आकर धड़कते वास्तविक जीवन से जुड़ी।

लोककवियों ने रागनी को समाज के विभिन्न रूपों-रीति-रिवाज, पारस्परिक संबंध, रिश्ते-नाते, राग-द्वेष, प्रेम-ममता, वैर-विरोध, जन्म-मरण, खान-पान, रहन-सहन, तीज-त्यौहार, वेशभूषा और आचार-व्यवहार आदि का सजीव चित्रण किया है, जिसमें आदर्श और यथार्थ के दोनों रूपों की झलक मिलती है। समाज में प्रचलित आस्थाओं लोकविश्वासों, अंधविश्वासों, सामाजिक विसंगतियों, विकृतियों, सद्गुणों-दुर्गुणों आदि का भी चित्रण मिलता है। यथा-

भ्रूण-हत्या एक सामाजिक कलंक है और विज्ञान का दुरुपयोग है। इसलिए समाज में लिंगानुपात का असंतुलन निरंतर बढ़ता जा रहा है, जो भावी समाज के लिए एक भारी संकट बनेगा। हरियाणवी लोककवियों ने इस सामाजिक विकृति से सावधान होने के लिए कहा है। भ्रूण-हत्या के संदर्भ में लोककवि बलवीर शर्मा की रागनी कुछ इस प्रकार है-

तेरी बेटी अर्ज करै माता तु गर्भ मैं कत्ल कराइए ना
सै चाव घणा दुनियाँ देखन का चढ़ती बेल कटाइए ना
मात-पिता और भाई-बंध का प्यार देखणा चाहुं सु
उस मालिक का रचया होया संसार देखणा चाहुं सु
घर-बार देखणा चाहुं सु तु गले मैं फाँसी लाइए ना।

इसी प्रकार मादक द्रव्यों का सेवन समाज के लिए बड़ा घातक है। नसीले पदार्थों में आजकल मदिरापान का प्रचार जंगल की आग की तरह बढ़ता जा रहा है, जिसके कारण अनेक घर बर्बाद हो गए हैं और अशांति तथा अव्यवस्था बढ़ती जा रही है। हरियाणा के लोककवियों ने नशाखोर युवाओं को चेतावनी देते हुए इस सामाजिक बुराई पर करारी चोट की है। हरियाणा के प्रसिद्ध लोककवि भारतभूषण सांघीवाल ने ठीक ही कहा है-

हे भगवान बुरी दुनिया मैं, कार शराबी की,
बैरण नै भी ना करिए तू, नार शराबी की।
दुख सुख का ना पति प्यार तै कदे नहीं बतलावै,
लंगवाड्या की गैल रहै अर रोज शराब उड़ावै।
सिर पै कर्जा चढ़या उधारा नहीं किते तै थ्यावै।
भूखे रोवै बालक दिल मैं कदे दया ना ल्यावै।
गर्त सूखग्या रोज रहै, तकरार शराबी की।'

इसी बुराई पर एक और लोककवि पं० देवीदत्त शर्मा के विचार देखिए-

हे रै रहै चूर नशे मै मर्द बणे फिरै भाई रै
किस-किस नै समझावाँ लोगो सारे को प्रचार होग्या
बिना पिवणिए थोड़े रहगे, पिबणियाँ संसार होग्या
सुसरा और जमाई पिवै देखो किसा यु व्यवहार होग्या
ढीला तहमद बेशर्मा का गालां मै मचावै फैल
फलाणे के गोली मारो झूठी मचावै दहल
जैलदार का बच्चा बनरैया कर्जा आले हांडै गैल।

होड़ मार ले सो-सो की ना मिलै गाम मै पाई।

जनसंख्या की अतिशय वृद्धि हमारे समाज के सामने सुरसा के मुख की तरह मुँह बाए खड़ी है। जिस कारण समाज में सभी प्रकार के विकास कार्यों पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। देश उन्नति की बजाय अवनति की ओर बढ़ रहा है। इस विराट समस्या पर श्री मंगल वैध ने एक रागनी के द्वारा एक परिवार का चिंतन व्यक्त किया है—

पूत सुपातर एक बतेरा चाहिए बीस कुजाम नहीं,
दुनियाँ भर की ल्यावै बुराई फिरै आवारा काम नहीं।
बाप और बेटा, सास बहु के ओकर कायदे भंग होंगे
सास भी जाँमै, बहु भी जाँमै पशुओं के-से ढंग होंगे,
एक साल मै कई-कई जापे, अट्टारां-बीस मलंग होंगे,
तड़के उठ के आपा पिटै दलिए उप्पर जंग होंगे
जामण आले तंग होंगे केह उठाता इनको राम नहीं।

इसीप्रकार श्री वेदपाल राणा ने एक रागणी में जनसंख्या वृद्धि से होने वाली हानि के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं—

मैं आप्रेशन करवाना चाहूँ, तू मत करिए इंकार पिया
दो बच्चों के मात-पिता की कति बैठज्या तार पिया,
मेरी बाहण पतासो देवी नै भी घणिए मुशिकल काटी,
किला डेढ़ आठ भाई हो री रे-रे माटी
तीना नै तो टूक मिल्यां पाचां नै ठाली लाठी
चुल्हे उप्पर जूत बाजता तड़के लोही पाटी,
मन्नै बड़ी मुशिकल तै तबियत डाटी,
झट करणें लगी विचार पिया।

आज हमारे समाज में दहेज-प्रथा एक भयावह समस्या के रूप में विद्यमान है। इस समस्या पर लोक कवि ज्ञानीराम ने एक रागनी के माध्यम से दहेज-प्रथा की विद्रूप स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है—

आजकाल छौरे बेचन का जगहाँ-जगहाँ पड़ग्या ढाल्ला,
छौरी का ब्याह करणा होग्या, मानस के जी का घाल्ला,
गाम-गाम मै फैल गई या टिक्के की बीमारी
51000 बीना बात बणै ना मोहर हाथ मै हो न्यारी
ब्याहया बाप कदे साटें मै बुआ-बाहण बिकी सारी
जब छौरे का नंबर आया झट बन बैठया व्यापारी
एक रूपया था मिलणी का चाल पड़ी सौ की माला।

जीवन में सुख-दुःख का आना-जाना लगा ही रहता है। जीवन में यह गतिशीलता माधुर्य भरी छाया व कड़ी तपती गर्मी की भाँति है। इतना अवश्य है कि जब व्यक्ति साधन-संपन्न होता है, तो उसके समीप सगे-संबंधी, परिजन और मित्र आदि स्वार्थवश घिरे रहते

हैं और आर्थिक विपन्नता आते ही थे अवसरवादी परिचित लुप्त हो जाते हैं। इसी संदर्भ को लोककवि हरिकेश पटवारी एक रागनी में इस तरह निरूपित करते हैं—

बिगड़ी मैं कोए बाप बणै ना बणि के सो साले देखे,
बिगड़या पाच्छै ठोकर खाते लाख करोड़ो आले देखे,
चढ़ी होई मैं खून करणिए डाकू बरी छूटते देखे,
बिना खोट वै सड़ै जेल मै जिनके कर्म फूटते देखे,
चढ़ी होई मै दुष्ट पुरुष भी असरत ऐश लूटते देखे,
बिगड़ी होई मैं सुख संपति के सारे प्रबंध टूटते देखे,
चढ़ी होई मै चोर-लूटेरे डाकू भी रखवाले देखे।

आज हमारे समाज में बेरोजगारी भुखमरी, भ्रष्टाचारी, रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद और महँगाई का बोलबाला है। वर्तमान युग की विद्रूप स्थितियों का आंकलन लोककवि जगदीश ने रागनी के माध्यम से वर्णित किया है। उन्होंने भारतीय समाज का यथातथ्य रूप बड़ी सच्चाई से निरूपित किया है—

दया करै भगवान बसेगा सुख तै देश हमारा
राजा-प्रजा बसै सुख तै मानस भ्रष्टाचारी मरज्यां,
बकरी-भेड़-गऊ खावणिए पापी मासाहारी मरज्यां
65 लाख फिरै मुस्टंडे मंगते और भिखारी मरज्यां
ब्लैक रिश्वत लेणे वाले अफसर भी सरकारी मरज्यां
पूँजीपति मंहगाई कर रे धर रे माल व्यापारी मरज्यां
सारी चीज मिलावटी बेचै दुकानदार पंसारि मरज्यां
मरियों ओ इंसान पाप का जो जोड़ रैया धन सारा।

हरियाणा के जनमानस की एक विशेषता है कि उसका लेन-देन में स्पष्टवादिता होती है। वह बुरे व्यक्ति से डरता है। लोककवि फौजी मेहरसिंह बुरे व्यक्ति के बारे में एक रागनी में तीखा कटाक्ष करते हैं—

लेके देदे करके खा ले, उस तै कोण जबर हो सै
नुगरा मानस आँख बदल ज्यां समझणिए की मरहो सै
नुगरा चालै धरती हालै हर इंसान डरै उस तै
ध्रुव भगत और सप्तऋषि यो दीन ईमान डरै उस तै
महाभारत और भगवद्गीता, वेद कुरान डरै उस तै
और के ज्यादा जिक्र करूँ खुद भगवान डरै उस तै
खानदानी घर के बालक नै जात जाण का डर हो सै।

आधुनिक समाज में मानवता का भाव तिरोहित होता जा रहा है। इसी व्यवस्था पर हास्य और व्यंग्य से भरपूर फौजी मेहरसिंह द्वारा रचित एक रागनी—

लेणा एक ना देणे दो दिलदार बणे हाण्डै सै
मन मै घुण्डी रह पाप की यार बणे हाण्डै सै
नयी-नयी चारी लागै प्यारी ऐब पाच्छले ढक ले

मतलब खातर यार बणै थोड़े दिन मैं छक ले
फर्ज ना जाणै यारी का बुरे कर्म मैं पक ले
के तै खाज्या धन यार का नहीं बुआ बाहण नै तक ले
करै बहाना यारी का इसे जार घणे हाण्डै सै।

आज के युग में ज्यों-ज्यों औद्योगिक और वैज्ञानिक स्तर पर विकास हुआ, त्यों-त्यों आध्यात्मिक स्तर पर समाज ह्रासोन्मुख होता गया। परिचामी सभ्यता के रंग में इस तरह रंगते गए कि हम अपनी संस्कृति से विमुख होते चले गए। सामाजिक जीवन में धर्म, शक्ति आदि भावों का लोप होता गया। स्वभावतः लोगों में धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य का विवेक नहीं रह गया। इसका परिणाम यह हुआ कि सभी लोग दुःखी हो गए और तरह-तरह की व्याधियों ने घेर लिया। आचार-विचार सर्वथा उपेक्षित हो गए। आचारविहीनता का साम्राज्य हो गया। लोगों में कर्तव्य भावना नष्ट होती गई। हमारे सामाजिक रिश्ते तार-तार होने लगे। सामाजिकता पर व्यक्तिवादी विचारधारा हावी होने लगी। समाज के मूल्यों का चित्रण पं० मांगेराम जी की इस रागनी में देखिए—

कैसे चाल पिछाणी जागी इस रंगदार जमाने की।
गंगा जी पै चोरी करते जमना जी पै गावै गीत
वेद-शास्त्र सुणते कोन्या दुनिया की बदलगी रीत
रिश्तेदारी यारी छुट्टी, पैसे के माँह रही प्रीत
कलयुग तो यू न्यूइ बीतेगा सहम बेचारी दुनिया रोती
अडबंद के साड़े बाँधे ये तहमद बाँधे दोहरी धोती
ऋषि महात्मा राख्यां करते गैलां म्हं संध्या की पोथी
जो आज बिकती दो-दो आने की.....।

इस प्रकार पं० मांगेराम जी ने भौतिकतावाद के कारण समाज में आए बदलाव को चित्रित किया है। इसी समस्या से छुटकारा कैसे पाया जा सकता है, बता रहे हैं लोककवि रामफल गौड़—

साच बोलणा कण्ठ की शोभा, भक्ति शोभा मन की
शास्त्र श्रवण काम की शोभा, गुण शोभा सै तन की
बूढ़ा मानस कुल की शोभा, केहरी शोभा बण की
बिना स्वार्थ मदद करै तै, शोभा यही सज्जन की
शीलक्षमा संत की शोभा, मरे तजै माया धन की
ज्ञानी पुरुष गाम की शोभा, शोभा पुष्प चमन की
मीठा बोल्लै मन नै मोहले, शोभा यही वचन की।

अतः हरियाणवी लोककाव्य के अंतर्गत भजन, लोकगीत व रागनी की परंपरा दीर्घकालीन रही है और आज भी निर्मल गंगा की तरह प्रवाहमान है। इसकी धारा कभी सूखी नहीं है। हरियाणवी लोककवियों में किशनलाल भाट, अहमद बख्श थानेसरी, दीपचंद हरदेवा, भाजभगत, पं० लखमीचंद, पं० मांगेराम, फौजी मेहरसिंह, रामकिशन ब्यास, चंद्रबादी नेकीराम, गरीबदास, नीतानंद, पं० साधुराम, बस्तीराम और आधुनिक लोककवियों में हरिकेश पटवारी,

भारतभूषण सांघीवाल, जगदीशचंद वत्स, तारादत्त विलक्षण, श्यामसखा श्याम, मंगल वैद्य, देवीदत्त, ज्ञानीराम, बलवीर शर्मा, मुंशीराम जाड़लीवाला आदि अनेक लोककवियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

इनके द्वारा रचित भजन व रागनियों में, धर्म, दर्शन, भक्ति, नारी सशक्तिकरण, पारिवारिक विघटन, मादक द्रव्यों का निषेध, वृद्धों, किसानों, मजदूरों की कठिनाइयाँ, पाश्चात्य संस्कृति का कुप्रभाव, भ्रूणहत्या, बेरोजगारी, महँगाई, दहेज-प्रथा अंधविश्वास, आत्मनिर्भरता, शिक्षा की महत्ता, मानवीय उदारता सांप्रदायिक सौहार्द आदि का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।

समाज और संस्कृति को विकृत करने वाली कुप्रथाओं एवं प्रपंचात्मक आडंबरों की धज्जियाँ लोकसाहित्य की अन्य विधाओं की तरह भजनों और इन मुक्तक रागनियों में भी डटकर उड़ाई जाती है। लोकसंस्कृति को रूग्ण बनानेवाले कुरीति रूपी कीटों का सफ़ाया इन फुटकर (मुक्तक) रागनी व भजनों के द्वारा समाजसुधार का कार्य हास्य-व्यंग्य रूपी मीठी औषधि एवं सुखद इंजेक्शनों से किया जाता रहा है और किया जाता रहेगा।

संदर्भ

1. अशोक की धर्मलिपियाँ, प्रधान शिलाभिलेख पहला खंड, पृ० 62
2. डॉ० कृष्णमोहन सक्सेना, भारतेन्दुयुगीन नाट्यसाहित्य में लोकतत्त्व, पृ० 9
3. डॉ० सत्येंद्र, लोकसाहित्य विज्ञान, पृ० 3
4. डॉ० रामपत यादव, लेख लोकसाहित्य का स्वरूप, हरियाणा का लोकसाहित्य, संपादक-डॉ० लालचंद गुप्त मंगल, पृ० 20
5. भारतभूषण सांघीवाल, हरियाणवी काव्य ग्रंथावली, सं० डॉ० रामपत यादव, पृ० 415-416
6. स्व० पं० हरिकेश पटवारी, आजादी की झलक, पृ० 36
7. रामफल चहल, रघुवीर सिंह मथाना, फौजी मेहरसिंह, पृ० 48
8. वही, पृ० 48
9. रघुबीरसिंह मथाना, पं० माँगेराम ग्रंथावली, पृ० 68
10. रामफल गौड़, भजनमाला, सं० सुरेश जांगिड़, पृ० 26

□ गाँव व डाकखाना सेरघा (कैथल) हरि०
मो० 09315413408

हरियाणवी लोककथाओं में हास्य-व्यंग्य

डॉ० बलजीत सिंह

सहायक प्रवक्ता (हिंदी विभाग)

आर०के०एस०डी० कॉलेज, कैथल (हरियाणा)

किसी भी देश-प्रदेश की संस्कृति वहाँ के लोकसाहित्य में प्रतिबिंबित होती है और लोकसाहित्य लोककथाओं, लोकगीतों, लोकनाट्यों, लोकगाथाओं और प्रकीर्ण साहित्य का असीम भंडार होता है। लोकसाहित्य की विभिन्न विधाओं में किसी-न-किसी कथ्य का रहना अनिवार्य है। यह बात अक्षरशः सही है कि यदि हमें किसी देश-प्रदेश की संस्कृति का पर्यवेक्षण करना हो, तो सबसे पहले वहाँ के लोकसाहित्य की मंजूषा खोलनी पड़ेगी, क्योंकि किसी भी स्थान के लोकजीवन का सांगोपांग चित्रण वहाँ के लोकसाहित्य में प्रतिबिंबित होता है। लोकसाहित्य में यह संजीवनी है, जिसका स्पर्श पाकर मूर्च्छित प्रतिमा पुनः जीवंत हो उठती है। कहा जाता है कि लोकसाहित्य कच्चे दूध की भाँति पवित्र एवं पौष्टिक है।

लोकसाहित्य किसी देश की सभ्यता एवं संस्कृति का सजग प्रहरी होता है। यह जीवन की भाव-संपदा का उन्नायक व संरक्षक होता है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के मतानुसार लोकसाहित्य उस निर्मल दर्पण के समान है, जिसमें जनता-जनार्दन का अखिल तथा विराट् स्वरूप पूर्णरूपेण दिखाई पड़ता है। लोकसंस्कृति का जैसा दिव्य तथा अकृत्रिम प्रतिबिंब इस साहित्य में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र नहीं।

लोककथा उत्स- इसमें कोई संदेह नहीं कि लोककथाओं का मूल अत्यंत प्राचीन है। आदिमानव ने जबसे बोलना सीखा होगा, तभी से उसमें भय, विस्मय आह्लाद, शौर्य, अवसाद साहसादि मूल भावों की व्यंजना करने की उत्कंठा हुई होगी। उसी दिन लोककथा का जन्म हो गया था। लोककथा मानव हृदय की इसी कथन-कामना की उपज जान पड़ती है। अतः लोककथा का मूल मानव-हृदय में अनादिकाल से अंतर्निहित है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लोकमानस पर अपना प्रभाव सबसे पहले लोककथा ने ही छोड़ा है। इस तरह कहा जाता है, कि लोककथा ही लोकसाहित्य का प्राचीनतम अंग है।

लोकसाहित्य में लोककथाओं का प्रमुख स्थान है। ये अपनी प्रचुरता तथा लोकप्रियता के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। सदियों से ये लोककथाएँ ग्रामीण लोगों के मनोरंजन का प्रमुख साधन रहा है। रात्रि के समय माताएँ अपने छोटे-छोटे बच्चों को कहानियाँ सुनाकर उन्हें आनंद प्रदान करती हैं। बच्चे इन कहानियों को सुनते-सुनते सो जाते हैं। चौपालों में रात के समय दिन

के थके-माँदे किसानों के हुक्के की गुड़-गुड़ की आवाज़ के बीच लोककथाओं का स्वर सुनाई देता है।

लोकभाषा के माध्यम से सामान्य लोकजीवन में प्रचलित विश्वास आस्था और परंपरा पर आधारित लोककथाएँ और कहानियाँ, समाज में कहने और सुनने का शौक़ आदिम युग से ही रहा है। डॉ० सत्येंद्र के अनुसार 'लोक में प्रचलित और परंपरा से चली आनेवाली मूलतः मौखिक रूप से प्रचलित कहानियाँ लोककहानियाँ कहलाती हैं।' लोककथाओं में लोकमानस की सहज अभिव्यक्ति होती है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोककथाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—1. उपदेशकथा, 2. व्रतकथा, 3. प्रेमकथा, 4. मनोरंजन कथा, 5. सामाजिक कथा, 6. पौराणिक कथा आदि।² डॉ० सत्या गुप्ता के मतानुसार—'लोककथाओं में लोकमानस की सब प्रकार की भावनाएँ तथा जीवनदर्शन समाहित हैं। भूत जानने की जिज्ञासा घटनाओं का राज, कोमल पुरुष भावनाएँ, सामाजिक ऐतिहासिक परंपराएँ, जीवनदर्शन के सूत्र सभी कुछ 'लोककथा में' मिल जाते हैं।'³

उपर्युक्त विवेचन से हम यह कह सकते हैं कि लोककथा लोकसाहित्य की वह विधा है जिसमें लोक-समुदाय की समस्त सद्-असद् भावनाएँ, संवेग, रीति-रिवाज, धारणाएँ, विश्वास आदि एक कथा के माध्यम से निरूपित होते हैं। इसमें एक समुचित कहानी होती है, जिसका सूत्र कुछ भी हो सकता है। इसमें विषयवस्तु की मनोरंजकता, विनोद, ज्ञान और अनुभव की शिक्षा, प्रेमविरता, नैतिक शिक्षा की प्रधानता इन लोककथाओं में होती है। इनका कोई रचयिता नहीं होता। वे मौखिक परंपरा में जीवित रहती हैं।

लोककथाओं में हास्य-व्यंग्य

हरियाणा एक ऐसा प्रदेश है, जहाँ के जन-जीवन में हास्य और व्यंग्य का विशेष महत्त्व है। शारीरिक एवं मानसिक दोनों दृष्टियों से हास्य उत्तम स्वास्थ्य का सूचक ही नहीं, बल्कि उसका संवर्धक भी है। आज इस भौतिकतावादी युग में जहाँ लोगों को हँसने के लिए हास्य-क्लबों का सहारा लेना पड़ता है, वहीं पर हरियाणा प्रदेश एक ऐसा प्रदेश है, जहाँ क्रम-क्रम पर ऐसे हास्य-क्लब मंडलियों के रूप में देखे जाते हैं। हरियाणवी जन-मानस विनोदी स्वभाव के लिए इतना मशहूर है कि हँसी-हँसी में हसनगढ़ गाँव बसा दिया था।

इसलिए हरियाणवी लोककथाओं में हास्य-व्यंग्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये विषम से विषम परिस्थितियों में भी हँसी-मजाक करने से नहीं चूकते। दिन-भर की कड़ी महेनत के बाद जब वे सायंकाल गाँव की चौपाल या किसी बैठक में हुक्के के चारों ओर बैठें हों, तो दूर तक उनके कहकहों की गूँज सुनाई पड़ती है। एक-दूसरे पर फबती कसना, नक़ल उतारना, हँसी-मजाक की घटनाओं का जिक्र करना या हँसी-ठट्टों से यहाँ कोई चिढ़ता नहीं है। इन हँसी-मजाकों का उद्देश्य विशुद्ध विनोद और हास्य है, जिसमें नफ़रत और विद्वेष की गंध तक नहीं होती। हरियाणवी लोगों के विनोदी स्वभाव का परिचय हमें हास्य-कथाओं में मिलता है।

धार्मिक लोककथाओं में हास्य-व्यंग्य

हिंदूधर्म में व्रत-उपवास, बार-त्योहार, तीर्थ-स्थानों आदि की बड़ी महत्ता रही है। जैसे 'करवा-चौथ', 'अहोई', भैयादूज शनिवार, सोमवार, मंगलवार, नागपंचमी, संकट चौथ आदि व्रतों की लोककथाएँ गावों में कही जाती हैं।

धार्मिक लोककथाओं की पृष्ठभूमि धार्मिक होने के नाते गंभीर होती है, लेकिन फिर भी हरियाणवी जनमानस के विनोदी स्वभाव ने हँसने का मौक़ा यहाँ भी निकाल ही लिया है। देवता ही सही, आख़िर किसी को तो व्यंग्य का शिकार बनना ही है।

‘मंगल’ की कहानी में जब बजरंगबली ने सोटा दिखाते हुए राजा से कहा, ‘देख सोटा’ तो राजा ने जवाब दिया—‘बेसक मार, मैं मर्द, तू मर्द, चूरमा दर्यंगा जब, दर्शन देगा तब।’ यह सुनकर हनुमान हँसे और दर्शन दिए। इतना सुनने के बाद सुननेवालों के चेहरे पर हँसी अपने आप ही आ जाती है। वे हँसे बिना नहीं रह सकते।

इसी प्रकार एक अन्य कहानी ‘एक बुढ़िया और भोलेनाथ’ में एक चतुर बुढ़िया अंधी होने पर धन-धान्य, आँखें और पौत्र (वंशवृद्धि) हेतु सिर्फ़ एक ही वर में सब माँग लेती है—‘सोने की कटोरी हो, पोता दूध पिवै, अर मैं देखूँ।’ ये सुनकर भोलेनाथ भी चकरा गए।

इसी प्रकार ‘जाट का ब्याह’ नामक लोककथा में एक जाट और बणियाँ दोस्त हैं, जिनका ब्याह नहीं होता। दोनों ने कहा कि किसी देवता की पूजा करेंगे और तभी हमारा ब्याह होगा, तब बणिए ने कहा कि मैं तो देवी माँ की पूजा करूँगा और जाट ने कहा कि मैं तो हनुमानजी की पूजा करूँगा और हनुमान जी के मंदिर में जाकर कहा—‘बाबा बजरंगबली मेरा ब्याह करवादे। मैं तेरे मंदिर में एक भैंस चढ़ाऊँगा और बणियाँ देवी के मंदिर में जाकर एक बकरी चढ़ाने की हाँ भर आता है और दोनों की शादी हो जाती है। बणियाँ बकरी चढ़ा आता है, लेकिन जाट प्रलोभन में आकर हनुमान की प्रतिमा से झोटा बाँध देता है। झोटा हनुमान की प्रतिमा को उखाड़कर गली में जा रहा था, तब देवी ने कहा—‘रे हनुमान आज न्यूँ झोटा के पैरां मैं क्यूँकर गिसरदा जावै सै।’ हनुमान जी बोले—‘तनै करवाएँ सै बामण-बणियाँ के ब्याह, किसे जाट का करवा के देख, जे न्यूवे गिसरदी ना फिरै।’

इतना सुनकर लोककथा सुनने वालों के पेट में बल पड़ जाते हैं और वे हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं। इस लोककथा में पत्थर-पूजा पर करारा व्यंग्य है।

लौकिक कथाओं में हास्य-व्यंग्य

लौकिक या सामाजिक परिप्रेक्ष्य की लोककहानी में असली रस भरा होता है। जीवन के लौकिक पक्ष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की विचित्र तथा रहस्यपूर्ण घटनाएँ सुनकर हमें एक ओर जहाँ लोकव्यवहार नीति, जैविक कामना का ज्ञान होता है, वहाँ बहुधा मन भी बहल जाता है।

‘आधा जीवन बेकार’ नामक लोककथा में पढ़ने के साथ-साथ कढ़ना (जीवन का व्यावहारिक ज्ञान) ज़रूरी माना गया है। केवल किताबों या पुस्तकीय ज्ञान से जीवनरूपी सागर को पार नहीं किया जा सकता। इस कहानी में एक पंडित काशी जी से पढ़कर आया, उसे अपनी शिक्षा पर बड़ा अभिमान था। एक नौका में बैठते हुए उसने मल्लाह के यह कहने पर कि वह बिल्कुल अनपढ़ है तो पंडित घृणा से मुँह बनाते हुए कहता है—‘तुम्हारा तो आधा जीवन बेकार है।’ मल्लाह को यह अहंकार-भरी बात बड़ी चुभी। जब नौका मझधार में पहुँची तो मल्लाह ने चप्पू चलाना छोड़ दिया और पंडित से मुस्कराकर बोला—‘पंडितजी, तैरना जाणों सो?’ पंडित ने कहा—‘नहीं मैं नहीं जानता।’ इस पर मल्लाह व्यंग्यभरी मुस्कान से बोला—‘अच्छा मेरा तो आधा जीवन बेकार था, अर ईब तेरा तो सारा जीवन बेकार हो गया।’

जातिवाचक लोककथाओं में हास्य-व्यंग्य

हरियाणा में विविध जाति के लोग सामाजिक सद्भाव, सौहार्द और प्रेम से रहते हैं। हर जाति की अपनी पहचान है, जो उसके रंग, रूप, आचरण, खान-पान, संस्कृति, बोलचाल पहनावे आदि में परिलक्षित होती है। हास्य और व्यंग्य की भूमि हरियाणा में विभिन्न जातियाँ अपनी वाकपटुता, विलक्षण प्रतिभा और हाज़िरजवाबी के लिए प्रसिद्ध हैं। हरियाणा में जातिगत लोककथाओं में 'जाट और तेली', 'मै भी चमार का सूँ', 'चढ़ावा' 'उस दिन वाली बात', 'घर की पीरड़', 'बेरा नी कोथ होंदी' 'बाहमण और बणिया' आदि प्रमुख हैं। जाति-बिरादरी की कहानियों में प्रत्येक बिरादरीवालों ने दूसरी बिरादरीवालों पर क्रिस्से सृजित कर रखे हैं। इनमें हल्के-फुलके ढंग से जाति-विशेष के भोजन, रीति-रिवाज तथा स्वभाव पर प्रेमपूर्ण छींटों-कशी भी की गई है।¹

हरियाणा के सीधे-सादे लोग पुलिस को देखकर भयभीत हो जाते हैं। ऐसा ही एक विनोदपूर्ण क्रिस्सा एक चमार का है। जब एक पुलिसवाला उसको बुलाने आया तो डर के मारे उसने अपनी पत्नी के कपड़े पहन लिए और दरवाज़े पर आकर बोल्या—'हाँ जी चमार तो घरों कोनी।' सिपाही को घूँघट में मूच्छें दिखाई देगी। वह बोल्या—'रै तेरै मूच्छ क्यूँकर जामगी।' चमार बोल्या—'डरदा के जामगी।'

इस लोककथा में दिखाया है कि चमारों की जाति में लोग कितने सीधे-सादे और भोले-भाले होते थे, इसी कारण हँसी के पात्र होते थे। लेकिन आज यह बात नहीं है। पढ़-लिखकर सभी क्षेत्रों में सभी जातियों के लोग बराबर हैं।

इसी प्रकार से हरियाणवी लोककथाओं में जाटों के सरल जीवन, निष्कपट हृदय तथा व्यवहार-कौशल की अनेक कथाएँ हैं।

'जाट और तेली' नामक कथा में जब तेली ने कहा—'जाट रै जाट तेरे सिर पै खाटा।' जाट ने झट से उतर दिया—'अच्छा, बिच्छा के सो जाऊँगा।' फिर जाट की बारी थी। जाट ने कहा—'तेली रै तेली मेरे सिर पै कोल्हू।' तेली ने कहा—'तुक नहीं मिली।' जाट ने तुरंत कहा—'ना मिलण दे बोझ तै मरेगा।' इसी वजह से कहा गया है—'अनपढ़ जाट पढ़े बरोबर और पढ़या जाट खुदा बरोबर। जाटों की इसी हाज़िरजवाबी और प्रत्युत्पन्नमति से बीरबल भी प्रभावित थे।

एक कहानी में एक मुसलमान ने हुड़दंग मचा रखा था। वह सबको बस एक ही बात कहता था—'खुदा की खुदाई खुदा ही जान।' सभी लोग दंग रह जाते। एक जाट बोल्या—'मैं जाणता हूँ।' यह सुनकर बादशाह बीरबल सभी दरबारी और मुसलमान साथ हो लिए। जाट ने जमना नदी पर ले जाकर कहा—'या तेरे बाप नै खुदाई सै।' मुसलमान बोल्या—'ना।' जाट बोल्या—'फेर जो बिना खोदे ही खुद जावै वाए खुदा की खुदाई सै।' श्लेष ध्वनि के द्वारा जाट-विद्या बाज़ी मारगी।

इसी प्रकार हरियाणवी लोककथाओं-बणियों की चतुराई, बेईमानी तथा युक्ति शक्ति उपार्जन बुद्धि की कहानियाँ मिलती हैं। एक लोककथा में सेठ अपनी बुद्धि और चतुराई से सारा काम भी करवा जाता है और पैसे भी बचा लेता है।

'घर की पीरड़' लोककथा में सेठ के घर रात को चोर लगते थे। सेठ बड़ा चालाक था एक दिन एक जहरीला साँप लाकर मटके में रख दिया और जब रात को चोर घर में घुस

आए तो सेठ ने अनजान बनकर सेठानी से कहा—‘सेठानी, वो सोने का हार कित सै।’ सेठानी बोली—वो तो ‘किवाड़ धौरे मटके मै धरया सै।’

चोर बड़े खुश हुए। एक चोर चुपके से जाकर मटके को टटोलने लगा। साँप ने उसे डस लिया। वह वहीं मर गया। फिर दूसरा, तीसरा और चौथा सभी का यही हाल हुआ। अब सेठ जी उन चारों लाशों को देखकर घबराए। तरकीब सूझी। गाँव के बाहर एक हट्टा-कट्टा बाबा रहता था। वह जाकर बोला—‘बाबा, मेरी घर कीर पिरंड़ काढ़े दे, 100 रुपए दूँगा।’

बाबा पूरा मुस्टंडा था। सेठ नै घर में तै एक लाश लाया के दे दी। बाबा उस लाश नै ठा के गाँव तै बाहर फेंक आया। बाबा वापिस आया तो सेठ नै कह्या—‘बाबा या पिरंड़ तो तेरे तै भी पहलां आ ली।’ बाबा—‘ईब के नै ओर दूर गेर के आऊगाँ इस नै।’ और बाबा उसे दूर खेतों में फेंक आया। देखा तीसरी और चौथी लाश तैयार मिली—चौथी लाश को लेकर बाबा बोला—‘ले ईब के तो इस न कुएँ में गेर का आऊंगा। जा के कुएँ में दे मारी। सुबह के चार बज चुके थे। वहाँ एक पंडित जी स्नान कर रहे थे। उन्होंने जब कुएँ में किसी चीज के गिरने की आवाज़ सुनी तो डर के मारे भाग लिया।

उधर बाबा ने जब उन्हें भागते देखा और सोचा पिरंड़ ही कुएँ से निकलकर भाग गी। फिर क्या था, बाबा यह कहते हुए उसके पीछे दौड़ा ‘जान नहीं द्यूँगा तन्नै भी जमा नाक में दम कर दिया, रै जमा सारी रात होंगे, खोवे तौड़ दिए।’

पंडित जी के तो होश उड़गे। मौत आंखों के स्यामी दिखै और तेज भाज लिए और सेठ का दरवाज़ा खुला था, वहीं घुस गया और जान बचाने की भीख माँगी। ‘सेठ बोल्या 100 रुपए ल्यूंगा।’ नहीं तो बाहर लिंकड़। पंडित जी नै सोची जान सै तो जहान सै बोल्या—‘दे द्यूँगा।’

इतनी देर में बाबा भी पहुँच लिया। हाँफते हुए बोल्या—‘सेठ जी, पिरंड़ फेर आली पर छोड़ूँगा नहीं उस नै।’ सेठ नै बड़ी विनम्रता से कहा—‘बाबा बड़ी तकलीफ़ करी थामनै।’ पर मनै देख लिया या पिरंड़ नहीं सै यु तो म्हारे घर का देवता सै। इस नै तो म्हारे घर में रहण दे।

इतना कहके उसने बिचारे बाबा को यू हीं टरका दिया, उससे चारों लाशों भी बाहर फिकवा दी और ना एक भी पैसा दिया। उल्टा पंडित जी से 100 रुपए की कमाई भी कर ली।

प्रौढ़ कथाओं में हास्य-व्यंग्य

हरियाणा के लोकसाहित्य में कुछ लोककथाएँ हैं, जिनके संवाद बड़े ही चुटीले और व्यंग्यपूर्ण हैं। एक लोककथा में एक औरत की बुद्धिमत्ता दिखाई देती है। वह अपनी बुद्धि से अपने पति की ग़लत संगत छुड़वा देती है।

एक परिवार में पति-पत्नी और बच्चे रहते थे। उस परिवार के मुखिया का दोस्त एक पास के गाँव का था। वो दूसरे-तीसरे दिन आ जाता था और फिर वो दोनों दोस्त शराब पीते थे। उसकी पत्नी बड़ी दुखी होती थी। उसने कई बार अपने पति को समझाया कि वो ये दोस्ती छोड़ दे। हर रोज़ शराब पीना बुरी बात है, परंतु वह नहीं माना। अंत में उस औरत ने बुद्धि का प्रयोग करके एक युक्ति बनाई। एक दिन उस दोस्त के आने पर वह बोली— ‘देवर जी, मेरी बात ध्यान तै सुण। आज तो तेरे भाई के बेरा नी के होरया सै एक तो रस्सी ले रैया सै ओर एक मुसल और जो भी उसनै मिलज्या सै पहलां तो उस नै रस्सी गेल बाँध ले सै और फेर मुसल मार-मार के जमा नाश ठा दे स नू कर जल्दी सी चल्त्या जा कदे फेर मेरा खोट काढ़ै। वो तो

डर के मारे भाग लिया और उसने कहा—‘भाभी तू न्यूं करिए बताइए ना के मैं आया था।’ वा बोली—‘ठीक सै वो भाग लिया। और थोड़ी देर बात जब उसका पति आया तो वो कहने लगी’ आज तो तेरा दोस्त आया था और वो एक मुसल और रस्सी मागै ठा और मन्नै तो उस तै जवाब दे दिया।’ तभी उसने पत्नी को धमकाया और स्वयं मुसल और रस्सी लेकर उसको देने चल पड़ा और जब उसको जाता हुआ दिखाई दिया तो जोर से आवाज़ लगाई ‘रै रुक ज्यां लै यू मुसल और रस्सी लेज्या।’ लेकिन उसने उसके हाथ में रस्सी और मुसल देखी और उसे अपनी ओर आता देखा तो बहुत घबरा गया और अपनी जान बचाने के लिए जोर से भागा। लेकिन वह कुछ और ही समझ रहा था और अपनी मौत को आता देख और भी तेज़ भाग लिया और दुबारा कभी नहीं आया। फिर उसकी शराब भी छूटगी और वह अपने परिवार के साथ ठीक ढंग से रहने लगा।

साहित्य समाज का दर्पण है। इस तथ्य के आधार पर लोककथाएँ ही सबसे बड़ी निर्मल दर्पण हैं, जिनमें जनचेतना बिल्कुल सही और अकृत्रिम रूप में प्रतिफलित होती है, यथा समाज, परिवार, धर्म, रीति-रिवाज, संस्कार, राजनीति, धार्मिक और नैतिक आदर्श, आध्यात्मिक और दार्शनिक चिंतन सभी-कुछ मिलता है। यहाँ तक कि इन लोककथाओं में अपना विशिष्ट साहित्यिक और सहज सौंदर्य भी है। ‘यह सौंदर्य एक स्वस्थ कृषकबाला के अल्हड़ अकृत्रिम नैसर्गिक मुग्ध और मनमोहन सौंदर्य की तरह है। वह किसी आधुनिक के पाउडर-मंडित लिपिस्टिक-पुते मुख-मंडल की कुरूपता और नीरसता का द्योतक नहीं है।’

हरियाणा में प्रचलित लोककथाएँ हास्य-व्यंग्य-प्रधान हैं। इन कथाओं को कथावाचक जब कहता है तो श्रोताओं में हँसी के फब्बारे छूटने लगते हैं, अतः मनोरंजन, शिक्षा, धार्मिक आस्था ही लोककथाओं के उद्देश्य होते हैं। इनकी कथावस्तु प्रायः इन्हीं के चारों ओर बिछी होती है। अंत में मैं तो एक ही बात कहूँगा कि ये लोककथाएँ ऐसी अनखुदी-खदानें और खाने हैं, जिनमें साहित्य और सहज अभिव्यक्ति के सौंदर्य की अपूर्व और अमूल्य रतन-राशि छिपी पड़ी है। इन लोककथाओं का माधुर्य ऐसा ही है, जिसका पूरा आनंद शब्दों द्वारा अगम्य है। उसे तो केवल गूँगे के गुड़ की तरह अनुभव ही किया जा सकता है।

संदर्भ

1. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका, पृ० 230-31
2. डॉ० सत्येंद्र, हिंदी साहित्य कोश, भाग-1 पृ० 748
3. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका, पृ० 129
4. डॉ० सत्या गुप्ता, खड़ीबोली का लोकसाहित्य, पृ० 174
5. डॉ० भीमसिंह मलिक, हरियाणा लोकसाहित्य सांस्कृतिक संदर्भ, पृ० 110
6. वही, पृ० 11
7. वही, पृ० 109

□ गाँव व डाकखाना सेरघा (कैथल) हरि०

मो० 09315413408

आचार्य पदुमनदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संदीपकुमार मिश्र

पदुमनदास का जीवनवृत्त—पदुमनदास का जन्म संवत् 1700 के आस-पास हुआ होगा। इनकी कृतियों में जन्मतिथि का उल्लेख तो नहीं है, किंतु उनके रचनाकार के बारे में संकेत किया गया है और उसी से उनकी आयु का भी अनुमान किया जा सकता है। यहाँ उनकी कृतियों 'भक्तिकल्पतरु', 'काव्यमंजरी', और 'हितोपदेश' के रचनाकाल को देखा जा सकता है।

भक्तिकल्पतरु—

सम्मत सत्रह सय जब भैएड। वोनतालीस ऊपर चलि गयऊ।

असित पंचमी मास असारा। गुरदिन कथा कीन्ह अनुसार।¹

काव्यमंजरी—इसके रचनाकाल में काशीनरेश पुस्तकालय, रामनगर और मन्लूलाल पुस्तकालय, गया (बिहार) की प्रतियों में दो वर्ष का अंतर है। रामनगर वाली प्रति का रचनाकाल इस प्रकार है—

एक ऊन चालीस सत सत्रह संवत् जान।

दरसी रितु पति पंचमी, कवि मंजरी प्रमान।²

गया वाली प्रति का रचनाकाल है—

एकगल चालीस सत् सत्रह संवत् जान।

दरसी ऋतुपति पंचमी, कवि मंजरी प्रमान।³

इस प्रकार दोनों प्रतियों का रचनाकाल बसंत पंचमी संवत् 1739 और 1741 है। चूँकि भक्तिकल्पतरु का रचनाकाल भी संवत् 1739 ही है, इसलिए काव्यमंजरी का रचनाकाल मन्लूलाल पुस्तकालय वाली प्रति के आधार पर संवत् 1741 विक्रमी मानना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

हितोपदेश—हितोपदेश का रचनाकाल इस प्रकार है—

सत्रह सै छसठ जबै, पूष पंचमी सेत।

पदुमन लिखित पूरन कियौ रुद्रसिंह के होत।⁴

इस प्रकार हितोपदेश का रचनाकाल पौष शुक्ल पंचमी संवत् 1766 है। ध्यातव्य है कि सभी कृतियाँ शुक्लपक्ष की पंचमी को ही पूर्ण हुई हैं। यह उनका पूर्णिमा के प्रति आकर्षण है। इससे कवि सिद्ध करना चाहता था कि मेरी रचनाएँ पूर्ण चंद्रमा की चंद्रिका के समान प्रकाशमान हों।

इस प्रकार से उपर्युक्त तीनों कृतियों के रचनाकाल से स्पष्ट है कि आचार्य पदुमनदास संवत् 1721 से 1966 तक ग्रंथ-रचना करते रहे। अनुमान है कि पच्चीस साल की आयु के बाद ही इन्होंने रचना का कार्य प्रारंभ किया होगा और अंतिम रचना के बाद संभव है दस वर्ष तक

और जीवित रहे होंगे। इस प्रकार इनका जन्म संवत् 1714 और इनकी मृत्यु संवत् 1776 के आस-पास अनुमान किया जा सकता है। पदुमनदास के जन्मस्थान के विषय में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, किंतु इनके द्वारा रचित कृतियों से यह ज्ञात होता है कि ये कायस्थ जाति के थे। इनके पिता का नाम दामोदर था। दामोदर के चार पुत्र थे। सबसे बड़े का नाम हरिशंकर था। उसके बाद क्रमशः पदुमन, लालमनि और कृष्णमनि थे—

तिन्ह श्री पदुमनदास पितु दामोदर गुणधाम।
अग्रज सोदर शुद्धमति हरिशंकर तेहि नाम।
अनुज लालमणि कृष्णमणि करणीकुशल समर्थ।
भक्तिवंत रघुनाथ को जैसे लछिमन भर्था।
कायस्थ करण कृपाद्विजन्ह दरसे ग्रंथ अनेका।⁵

पदुमनदास की रचनाएँ

अन्य प्रमुख रीतिकालीन कवियों की तरह पदुमनदास ने तो क्रमशः संस्कृत 'हितोपदेश' और 'श्रीमद्भागवत' के संक्षिप्त अनुवाद किए हैं। किंतु 'काव्यमंजरी' लक्षण-ग्रंथ है, जिसमें रीतिकालीन वातावरण का पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है। इनके आश्रयदाता दलेलसिंह थे। पदुमनदास की कृतियों का परिचय इस प्रकार है—

कल्पतरु—खोज रिपोर्टों के अनुसार यह रचना श्रीयुत रघुनाथप्रसाद श्रीवास्तव, ग्राम सोनबरसा, पोस्ट बैरिया, जिला-बलिया के पास उपलब्ध थी, किंतु इसके विषय में पता करने पर वहाँ से कोई संतोषजनक उत्तर नहीं प्राप्त हुआ और न ही ग्रंथ प्राप्त हो पाया। इसलिए खोज रिपोर्ट के आधार पर ही ग्रंथ के विषय में विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

संख्या 131 भक्तिकल्पतरु, रचयिता-पदुमनदास (स्थान बादमनगर), कागज-देशी। पत्र 142। आकार 11.6 इंच 6.3 इंच। पंक्ति (प्रतिपृष्ठ) 11। परिणाम-अनुष्टुप 2831 पूर्ण। रूप-प्राचीन। पद्य लिपि-नागरी। रचनाकाल 1739 वि०। प्राप्तिस्थान-श्रीयुत रघुनाथप्रसाद श्रीवास्तव, ग्राम सोनबरसा, डॉ० बैरिया, जिला बलिया।

'भक्तिकल्पतरु' भागवत का संक्षिप्त अनुवाद है। इसमें 15 पलों (पल्लव) हैं। यह संवत् 1739 में रचा गया। इसके लिपिकाल का कोई उल्लेख नहीं मिलता। हस्तलेख की लिपि अत्यंत भद्दी और दोषपूर्ण है, जिसके फलस्वरूप आश्रयदाता का निवास-स्थान वादपनगर के स्थान पर बादमनगर पढ़ने में आता है। आश्रयदाता की वंशावली के क्रम में भी अशुद्धि हो सकती है।

काव्य-मंजरी—इसकी तीन हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं— काशीनरेश पुस्तकालय रामनगर में, मन्लाल पुस्तकालय गया, (बिहार) में और मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार) में। पहली और दूसरी प्रतियाँ पूर्ण हैं। किंतु तीसरी अपूर्ण है, फिर भी तीसरी प्रति में चूँकि ग्रंथ का अंतिम अंश है, इसलिए उससे भी कई महत्वपूर्ण तथ्यों का ज्ञान होता है। इनके अतिरिक्त लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना, कल्याण बंबई की एक प्रकाशित प्रति भी है। काशीनरेश रामनगर की प्रति अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध है।

'काव्यमंजरी' एक विविध काव्यांग निरूपण लक्षण-ग्रंथ है, जिसका उपजीव्य ग्रंथ तो 'अलंकारशेखर' है, किंतु रस-प्रकरण, भानुदत्त प्रणीत 'रसतरंगिणी' से प्रभावित है। इसके अतिरिक्त 'नाट्यशास्त्र', 'काव्यादर्श', 'काव्यप्रकाश', 'दशरूपक' और साहित्यदर्पण' का भी

प्रभाव यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है। 'अलंकारशेखर' में आठ रत्न हैं, जो प्रसंगानुसार विविध मरीचियों में विभाजित हैं और इसी प्रकार 'काव्यमंजरी' भी प्रसंगानुसार 14 कलिकाओं में विभाजित है। रत्न के साथ मरीचि और मंजरी के साथ कलिका का औचित्य उचित ही है।

'अलंकारशेखर' नाम से ऐसा भाषित होता है कि यह मात्र अलंकार-ग्रंथ है, किंतु इसमें कविशिक्षा के साथ-साथ विविध काव्यांगों, दोष, गुण, अलंकार एवं रस आदि का भी विवेचन है।⁸ इसीलिए 'अलंकारशेखर' का अनुकरण करते हुए श्री पदुमनदास ने अपने ग्रंथ का नाम 'अलंकारशेखर' न रखकर 'काव्यमंजरी' रखा, जिससे उसकी विविध काव्यांग-निरूपक सामग्री का बोध हो सके।

हितोपदेश—खोज रिपोर्ट के अनुसार यह ग्रंथ मन्लाल पुस्तकालय, गया, बिहार के यहाँ उपलब्ध है और वहाँ इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति विद्यमान है, जिसका विवरण इस प्रकार है—339-हितोपदेश-रचयिता-पदुमनदास, कागज-साधारण पत्र 131, आकार 9 इंच 6 इंच। पंक्ति (प्रतिपृष्ठ) 186 परिमाण (अनुष्टुप) 2500 पूर्ण, रूप-नवीन, पद्य लिपि-नागरी, रचनाकाल संवत् 1766 (1709 ई०) लिपि काल संवत् 1874 (1817 ई०) प्राप्ति-स्थान श्रीमन्लाल पुस्तकालय, मुरारपुर, गया।

आदि— श्रीगणेशाय नमः

दोहा—

गुरु गिरीस गिरिजा गिरा, ग्रह नायक गन ईस।
पदुमन विष्णु प्रणाम करि, जान्यौ इन्है अशीष।
होउ सकल प्रारंभ मम कोउ करै जनि हास।
स्रोता भनिता को सदा मुद मंगल परगास।
बिप्र विष्णु शर्मा भनित को हित उपदेश विचित्र।
सुनत चाव प्रस्ताव मय भूपति नित्य पवित्र।
सुरभाषा पदुहीन तें कहो चहै प्रस्ताव।
सिंघ दलेल महीपतिहि हेतु कियो हित चाव।
अंत-गीध करायो भेंट तिन नृप संभाषन कीन्ह।
अंकक दै पूछयो कुसल जथा बड़े को चीन्ह।
भोर भयो तहि बेर नृप चक्रवाक पंहि राय।
मान पान पंजा दयो मंत्री के मत पाय।
चक्रवाक को करि विदा विनय गीध तब कीन्ह।
सुभ कीजै अब देस को सुजस विधातै दीन्ह।
बंब दे आयो कूँच को ततिखन चले बहेरि।
राम-राम नृप हंस सौ कहि भेजो तेहि बेरि।

इति श्री पदुमनदास विरचित महाराज दलेलसिंह कारिते हितोपदेश संधि नाम चतुर्थी कथा समाप्तः।

विषय—पृ० 1 से 5 तक मंगलाचरण ग्रंथ निर्माता-काल—

सिंह दलेल महीपातहि हेतु कियो पहचान।

कायथ पदुमनदास को प्रेम-सहित सनुमान।
रचन कही सब दोहरा वचन सुधामय जान।

नृपवंश वर्णन-

खेरापूर्व निवास ते खैर वाद भइ ख्याति।
बैनु वंश विख्यात जग जानै क्षत्री जाति।
बाघदेव भूपाल भूमि भुअ बल जिन्ह लिन्हो।
कीर्तिसिंह वसु तनय सिंह विक्रय जिन्ह कीन्हो।
रामसिंह तपनिष्ठ कुंड उच्छिष्ट गए दिन।
माधव सिंह महीप भयो तसु नंद महाभुज।
तासु नंदन जगत जहाज नृप हैमत सिंध तसु धर्मधुर।
श्रीरामसिंह सुअ तासु पुनि नीति निपुन जसु वचन कुर।
कुँअर करे रो वर्ष दिन कृष्णसिंह मतिमान।
प्रेमसिंह दलेल को जिन्ह के सरि सर आन।
सरस पितामहते पिता रामसिंह रनधीरा।
करनसिंह दलेल की बरनी जगति न काहु।
धरनी तल में धन्यतम गुनगन सिंधु अगाधु।
तिन्ह श्री पदुमनदास को दीन्हो बहुविधि दानु।
साधन और सिहात है निरखि जासु सनमानु।

कविवंश परिचय

दामोदर कायथ बरन जिन्ह के धर्म प्रकास।
चारि पुत्र तिन्ह ते भए जेठे संकरदास।
मध्यम पदुमन गुन गरुअ तथा लालमनि जान।
अनुज कृष्णमनि गुननि ते अग्रजइ अभिमान।

ग्रंथ-निर्माण-काल

सत्रह सै अड़तिस सजन, सम्वत् विक्रम राय।
सि पाँचै मधु बुध दिवस, रच्यौ गनेश मनाय।

2. पृ5 से 261 तक मित्र-लाभ, काक, कूर्म, मृग तथा मूसे की कथा हितभेद, विग्रह तथा संधि आदि। संस्कृत कहानियों का पंचतंत्रादि द्वारा भाषानुवाद। 262-ग्रंथ पूर्ण होने के सूचना तथा अन्य ज्ञातव्य विषय।

इतिश्री पदुमनदास बरनि परिपूरन कीन्हो।
जिऔ जुगुल जलजंग अनु संभु सीस ससि छाज।
सत्रह सै छासठ जबै पूष पंचमी सेत।
पदुमनि लिखि पूरन कियौ रुद्रसिंह के हेत।

ग्रंथ लेखनकाल

संबतु श्रुति सागर सहित बसु बसुधा सुभ जानि।
शुक्ल दसमि मधुमास के ससि बासर अनुमानि।

तेहि दिन लिखि पूरन कियो उकील देव चंद हेत।

चारि कथा उपदेश हित पढ़हु समुझि चित चेत।⁹

इसी खोज-विवरण में यह भी लिखा गया है कि पदुमनदास कायस्थ ने हितोपदेश का अनुवाद उसी नाम से हिंदी में खैरबार सरदार दलेलसिंह की संरक्षकता में किया है। यह नवोपलब्ध ग्रंथ है और इसकी रचना बुधवार 20 मार्च सन् 1680 ई० को प्रारंभ हुई। अनुवाद पद्य में है और अच्छा है।

पदुमनदास के आश्रयदाता

आचार्य पदुमनदास के आश्रयदाता राजा दलेलसिंह थे। दलेलसिंह बादम (बादप) नगर के राजा थे—

बादम नगर महीप मनि, सिंह दलेल प्रवीन।

परम भागवत संत हित, संत हरि रसलीन।¹⁰

‘हितोपदेश’ में भी अधिकांश स्थलों पर दलेलसिंह का उल्लेख है। उदाहरण के लिए इसका अंतिम पद्य देखा जा सकता है—

भूपतिसिंह दलेल के रुद्रसिंह युवराज।

जिओ जुगुल जलभंग, अनु संभु सीस सहिस छाज।

इसी प्रकार आचार्य पदुमनदास विरचित ‘भक्तिकल्पतरु’ में भी राजा दलेलसिंह का उल्लेख मिलता है—

भूपति सिंह दलेल तहँ, भूमि पुरंदर भोग।

भंजन करि रंजन राजन को तस पटतर जोग।

इस प्रकार ‘काव्यमंजरी’, ‘हितोपदेश’ और ‘भक्तिकल्पतरु’ तीनों कृतियों से यही सिद्ध होता है कि आचार्य पदुमनदास दलेलसिंह के आश्रित थे।

बाघदेव से लेकर दलेलसिंह तक तो ‘हितोपदेश’ और ‘भक्तिकल्पतरु’ में वंशानुक्रम एक ही प्रकार का है, किंतु ‘हितोपदेश’ में दलेलसिंह के पुत्र रुद्रसिंह का भी उल्लेख है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि खोज विवरण में कीर्तिसिंह और हिम्मतसिंह के बीच रामसिंह, माधवसिंह और जगतसिंह का नाम छोड़ दिया गया है। साथ ही साथ दलेलसिंह के अग्रज कृष्णसिंह और उनके पुत्र रुद्रसिंह का भी उल्लेख नहीं किया गया है।

दलेलसिंह के निवास-स्थान का नाम ‘रामरसार्णव’ में रामगढ़ और ‘शिवसागर’ में शिवगढ़ दिया गया है। इसके अतिरिक्त ग्रंथों द्वारा इनके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं होता, परंतु दुमराँव निवासी डॉ० अक्षयवट मिश्र के एक पत्र द्वारा इनके संबंध में कुछ ज्ञातव्य बातें प्रकट हुई हैं। मिश्र जी ने रचयिता (दलेलसिंह) के उक्त तीन ग्रंथ तथा चतुरदास कृत भागवत एकादश स्कंध, इन चारों की अपनी मृत्यु से पहले सभा को दिया था। हस्तलिखित ग्रंथों में प्रत्येक ग्रंथ का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। प्रस्तुत रचयिता के विषय में उन्होंने जो कुछ भी लिखा, वह इस प्रकार है—

करणपुरा के राजा हेमंतसिंह उनके पुत्र रामसिंह, उनके पुत्र दलेलसिंह थे। जिसकी यह रचना है। करनपुरा छोड़कर ये लोग रामगढ़ में रहने लगे। ‘रामरसार्णव’ में इसे रामगढ़ और शिवसागर में शिवगढ़ लिखा गया है। ये लोग या तो दोनों के मालिक थे अथवा एक ही क़िले

के दो नाम थे। अब भी करनपुरा (मगह) में है। रामगढ़ में क्षत्रिय लोग निवास करते हैं। राजा दलेलसिंह कवि और अच्छे ग्रंथकार थे।

पदुमनदास का व्यक्तित्व एवं कवित्व—पदुमनदास का केवल एक ग्रंथ ‘काव्यमंजरी’ उपलब्ध है। इस ग्रंथ के साक्ष्य के अनुसार बादमनगर के शासक तथा रामसिंह के पुत्र दलेल सिंह के यहाँ इसका निर्माण संवत् 1741 में हुआ—

एकगल चालीस शत् सत्रह सम्बत् जान।
दरसी ऋतुपति पंचमी कवि मंजरी प्रमान।
बादमनगर महीपमणि सिंह दलेल प्रवीन।
परम भागवंत संत हित संत हरि रसलीन।
तिन्ह के पिता पुनीत नृप रामसिंह बलभीम।
टरी न तिन्ह की वचन इमि जिमि अजात रिपुसीम।¹⁵

ग्रंथकार (आचार्य पदुमनदास) ने अनेक स्थलों पर राजा दलेलसिंह की स्तुति की है। ग्रंथ के प्रत्येक अध्याय के समाप्तिसूचक वाक्य से विदित होता है कि नृप दलेलसिंह ने इस ग्रंथ को प्रकाशित करवाया था। इस ग्रंथ में 14 कलिकाएँ (अध्याय) हैं। इसमें सिद्धांत-निरूपण दोहों में हैं¹⁶ तथा उदाहरण प्रायः कवित्तों में हैं। स्वयं कवि के कथनानुसार इस ग्रंथ में पदों की संख्या 716 है—

पदुमन भजित सोहावने, काव्यमंजरी माहिं।
कवित्त दोहरनि सात सौ, सौरह अधिक सोहाहिं।

ग्रंथ के प्रथम अध्याय में अधिकांश कविशिक्षा-संबंधी सामग्री संगृहीत है। सर्वप्रथम कवि का लक्षण प्रस्तुत किया गया है—

ज्ञान व्याकरण कोष में छंद ग्रंथ को जान।
अलंकार रसरिति में निपुन सुकवि तेहि मान।¹⁷

पुनः काव्य के प्रसिद्ध तीन हेतुओं की चर्चा है। फिर उत्तम, मध्यम और अधम इन तीन प्रकार के कवियों का उल्लेख है और अंत में तीन प्रकार के कविसंप्रदायों का निरूपण है—

कवि जन तीन प्रकार के उत्तम, मध्यम, हीन।
हरिरस नर यशगालिबश क्रम ते जानु प्रवीन।¹⁸
संप्रदाय तिन्ह कविन की तीनि भाँति बुध जान।
असत निबंधन त्याग शत तृतीय नियम परिणाम।¹⁹

असत् निबंध से आचार्य का तात्पर्य है कि मिथ्या को सत्य रूप में वर्णित करना—

मिथ्या है तेहि साँचु कै कविकुल करहिं बखान।
असत निबंधन ताहि कहि संप्रदाय कवि जान।²⁰

जानबूझकर सत्य का वर्णन न करने को पदुमनदास ‘सत्यत्याग’ अथवा ‘असत्य निबंध’ कहते हैं—

साँचो है तिहि कहहिं नहिं सत अनिबंध बखान।
पदुमन कछु संक्षेपते ताको कहत प्रमान।²¹

‘नियम परिणाम’ अथवा ‘कवि नियम-निबंध’ के अंतर्गत शेष सभी कविसमय आ जाते हैं। जैसे मलयपर्वत पर चंदन की प्राप्ति, वर्षा में मयूर का उल्लास, विभिन्न पदार्थों,

देवताओं अथवा भावों के छिन्न-भिन्न वर्णन आदि।

ग्रंथ के दूसरे अध्याय का नाम प्रत्यंग वर्णन है। इसमें नायिका का नख-शिख का वर्णन उदाहरण के साथ निरूपित है। तीसरे अध्याय में पुरुष चरण, वृक्ष, भुजा, स्कंध वाणी, पीठ और नेत्र का सोदाहरण निरूपण है। चौथे अध्याय का नाम 'वर्णकरत्न सामान्यालंकार' वर्णन है। संभवतः सामान्यालंकार नाम इन्होंने केशव से लिया है। इस अध्याय में राजा, रानी, नगर, देश ग्राम, घोटक, गज, प्रयाण, आखेट, संग्राम, सूर्योदय, चंद्रोदय, नदी, सरोवर, सिंधु गिरि तरु तथा ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर ऋतुओं का सोदाहरण वर्णन है। पाँचवें अध्याय का नाम वर्णकरत्न है। इसमें अंधकार, वयसंधि, अभिसार, ब्याह, स्वयंवर, संभोग, जलकेलि, विहार और उद्यान का वर्णन किया गया है।²² छठे अध्याय में संख्या वाले पदार्थों की सूची प्रस्तुत की गई है। सातवें अध्याय में सीधे कुटिल, त्रिकोण मंडल, कुरूप, सुंदर, कोमल, कटु, मधुर, शीतल, तप्त, मंदगति, चंचल, निश्चल, सदागति, साँच, झूठ, दुःखद और सुखद पदार्थों की सूची उदाहरण-सहित प्रस्तुत की गई है।

काव्यशास्त्रीय प्रकरण का आरंभ आठवें अध्याय से होता है। सर्वप्रथम वैदर्भी, गौड़ी और मागधी रीतियों की सामान्य चर्चा है। इसके पश्चात् 'उक्ति प्रसंग' के अंतर्गत लोकोक्ति, छेकोक्ति, अर्थकोक्ति और उन्मत्तोक्ति के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। पुनः आठ पदगत, बारह वाक्यगत और आठ अर्थगत दोषों की मम्मटानुसार चर्चा है, यहाँ तक कि जुगुप्सा, व्यंजक, अश्लील का प्रस्तुत उदाहरण दे दिया है। इस प्रसंग में उन्होंने कतिपय उपमा दोषों का भी उल्लेख किया है। दोष-त्याग के संबंध में इसकी धारणा दंडी के अनुरूप है—

ते दूषण लघु जानि जनि, देहु कबित्त निबासु।
ऐसे सुंदर देह में कुष्ठ छीटते नाशु।²³

नवें अध्याय में काव्यगुणों का निरूपण है। गुण तीन प्रकार के होते हैं—शब्दगत, अर्थगत और वैशेषिक। संक्षिप्त, उदात्त, प्रसाद, उक्ति और समाधि ये पाँच शब्दगुण हैं। संस्कृत के आचार्यों में इनकी चर्चा केशव मिश्र ने की है। वैशेषिक गुणों की स्थिति उन काव्य-प्रसंगों में मानी जाती है, जहाँ कोई काव्यदोष, दोषरूप में स्वीकृत नहीं किया जाता—

जे जे दोष प्रथम कहै, तिन्ह में एकक ठाम।
दोष न मानहि विदुष तहि, वैशेषिक गुण नाम।²⁴

इस अर्थ में वैशेषिक शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भोजराज ने किया।

दसवें और ग्यारहवें अध्याय में क्रमशः शब्दालंकार तथा अर्थालंकार का निरूपण है। इन प्रकरणों में विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का निरूपण है। इस प्रकरण में उल्लेखनीय विशेषता यह है कि विवर्क नामक संचारी भाव के चार रूपों की चर्चा की गई है, संशय, विचार, अनध्यवसाय और विप्रतिपत्ति।

ग्रंथ के अंतिम दो अध्यायों में रस-प्रकरण का निरूपण है। तेरहवें अध्याय में शृंगार-रस के आलंबन विभाव के अंतर्गत नायक-नायिका भेद प्रसंग की संक्षिप्त चर्चा है। नायिका-भेद में मध्या नायिका के इन नवीन उपभेदों का भी उल्लेख हुआ है—सावहित्था, सादरा और सुरतोदासा चौदहवें अध्याय में विप्रलंब शृंगार तथा आठ रसों का निरूपण है। अंत में नृप दलेलसिंह के गुणकथन तथा ग्रंथ को विष्णु के चरणों में अर्पण करने के उपरांत उसकी समाप्ति हो जाती है।

इस ग्रंथ की प्रमुख विशेषता है—कविशिक्षा का सविस्तार निरूपण। हिंदी आचार्यों में सर्वप्रथम यह प्रयास आचार्य केशव ने किया था। इस दिशा में दूसरा प्रयास आचार्य पदुमनदास ने किया। केशव के सम्मुख इस संबंध में केशवमिश्र, अमरचंद्र आदि संस्कृताचार्यों का आदर्श था। इधर पदुमनदास ने संभवतः केशव की 'कविप्रिया' से सहायता ली है। पर इनका यह प्रकरण 'कविप्रिया' की अपेक्षा कहीं अधिक स्वच्छ, व्यवस्थित एवं सशक्त है। निदर्शन के लिए संग्राम वर्णन का प्रसंग दृष्टिगोचर है—

युद्ध वर्म बल बरणिये, बंबा तोप अघात।
धूरि धूम शोणित नंदी, सर मंडप निघात।²⁵
भंग पताका चमर रथ, करि कर धनुया किष्टि।
सूरि नारि सूरंह बरै, सुर सुमनस की विष्टि।²⁶
भूमि भयानक भूतमय, योगिनि गण को गान।
काक कंक जंबुक शिवा, लोथनि में लपटान।²⁷
उठि-उठि गिरहि कबंध रण, तुमुल रोर चहुँ बोर।
वरणहु पदुमन जिमि लरे, मागध नंदकिशोर।²⁸
छाए वाण, मंडप, कलशगज शीशन्ह को,
बाँधे दंत कंचन दिया से बरत है।
चारों बोर चंगुलनि गीध लगे उड़त अति,
मानो तरु तोरण को बंधन करत है।
तुपक अवाजै तोप बाजत कबंध नाचै,
योगिनी हू गीत गाए आनंद भरत है।
यदुपति जरासिंधु समर में ब्याह विधि,
अछरी अनेक सुर बरन्ही बरत हैं।²⁹

पर इस ग्रंथ का काव्यशास्त्रीय भाग सामान्य कोटि का है। रीति-प्रकरण अत्यंत संक्षिप्त हैं। गुण प्रकरण में उन गुणों का उल्लेख है, जो परंपरा-संमत नहीं है और न माधुर्य आदि तीन गुणों के समान इसके साथ संबंध हैं। इसके उक्ति-प्रसंग में से लोकोक्ति और उन्मोत्तोक्ति कोई काव्यांग अथवा उसका उपभेद नहीं, अतः इसका उल्लेख काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में नहीं होना चाहिए। इस ग्रंथ के प्रकरण साधारण कोटि के हैं।

'काव्यमंजरी' का अधिकांश भाग लक्षणपरक है, इसके उदाहरण-संबंधी छंद अधिक नहीं हैं। ऐसी दशा में उनके काव्य के संबंध में किसी प्रकार का अंतिम निर्णय तो नहीं दिया जा सकता, केवल इतना कर सकते हैं कि इस ग्रंथ के चुने छंदों के आधार पर ही उनके काव्य का मूल्यांकन किया जा सकता है। इस दृष्टि से सूत्र के रूप में कहा जा सकता है कि ये केशव की परंपरा के कवि हैं। यह ठीक है कि इनकी रचनाओं में केशव की सी व्यापकता और भाषा में उनका जैसा अनगढ़पन नहीं, पर अलंकार-सामग्री और अभिव्यंजना-शैली लगभग वैसी ही है। प्रायः किसी वस्तु के रूप को स्पष्ट करने के लिए वही परंपरागत उपमानों अथवा कविसमयों का चयन-मात्र कर दिया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि यह व्यक्ति कहीं पर भी अपने

भाव-चित्रों में कल्पना को उचित महत्त्व नहीं दे पाया है और यदि उसने कहीं देने का प्रयत्न भी किया है तो वह अपने आपमें केशव जैसा ही स्थूल हो गया है। षट्ऋतु, गज, बाजि आदि का वर्णन यद्यपि संक्षिप्त है, तथापि कवित्व की दृष्टि से अवश्य ही इसे उत्कृष्ट कहा जा सकता है। शृंगारिक रचनाओं में कवि अपने समकालीन के समान भावात्मकता नहीं ला पाया है।³⁰

संदर्भ

1. विश्वनाथप्रसाद मिश्र, खोज रिपोर्ट (1941-43), प्रथमखंड, नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० 466
2. आचार्य पदुमनदास, काव्यमंजरी 1/6
3. वही, 1/6
4. डॉ० हीरालाल, खोज रिपोर्ट (1926-1928), पृ० 490
5. पदुमनदास, काव्यमंजरी 1/11-13
6. खोज रिपोर्ट (1941-43), 464-66
7. खोज रिपोर्ट (1941-43), पृ० 93
8. केशव मिश्र, अलंकार शंखर, प्रस्तावना, पृ० 1-2
9. खोज विवरण (1926-1928), पृ० 489-490
10. वही, पृ० 61
11. खोज रिपोर्ट (1926-1929), पृ० 489, 90
12. खोज विवरण (सन् 1941-42), प्रथम भाग, पृ० 92-93
13. खोज विवरण (सन् 1926-28), प्रथम भाग, पृ० 489-490
14. खोज विवरण (सन् 1941-42), प्रथम खंड, पृ० 464
15. पदुमनदास, काव्यमंजरी, 1/6-8
16. डॉ० नगेंद्र, हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास (भाग-6) पृ० 324
17. पदुमनदास, काव्यमंजरी, 1/16
18. वही, 1/20
19. वही, 1/23
20. वही 1/24
21. वही, 1/27
22. डॉ० नगेंद्र, हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास, (भाग-6) पृ० 325
23. पदुमनदास, काव्यमंजरी 8/2
24. वही 9/2
25. वही, 4/29
26. वही, 4/30
27. वही, 4/32
28. वही, 4/33
29. वही, 4/33
30. डॉ० नगेंद्र, हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास (षष्ठ भाग), 328

□ ग्राम पो० कमासिन
जनपद बाँदा (उ०प्र०) 210125

आचार्य कुलपति मिश्र के ग्रंथों का शास्त्रीय विश्लेषण

गुंजन त्रिपाठी

हिंदी रीति-परंपरा का विकास आचार्य कृपाराम से प्रारंभ होता है। आचार्य कुलपति मिश्र उस समय के कवि हैं, जिस समय मुगल बादशाहों का बोल-बाला था, तथा भक्तिकाल का अवसान हो रहा था। मुगलों के समय दरबारी मनोवृत्ति एवं चाटुकारिता बढ़ गई थी। इन कविताओं में विलास की मादकता अधिक दिखाई देती है।

रीति साहित्य की अनेक रचनाएँ सम्वत् 1598 वि० से प्रारंभ होती हैं, किंतु 1700 से 1900 वि० तक रीतिकाल की साहित्यिक रचनाओं का प्राधान्य रहा। इस काल की अधिकतर रचनाओं में पांडित्य-प्रदर्शन अधिक दिखाई देता है।

इस काल के ऐसे साहित्य के संबंध में नामकरण को लेकर विद्वानों में काफी विवाद रहा है। कुछ विद्वान इस काल को अलंकृत काल तथा कुछ विद्वानों ने इसे शृंगार काल स्वीकार किया है, किंतु आलोचना के क्षेत्र में हिंदी-साहित्याकाश के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का मानदंड इतिहास के क्षेत्र में मेरुदंड के समान प्रतिष्ठित है, जिन्होंने इस काल को रीतिकाल की संज्ञा से अनुप्रमाणित किया है। वास्तव में आचार्य शुक्ल का मत ही मान्य है।² रीतिकालीन काव्य के स्वरूप को तीन भागों में बाँटा गया है, जो इस प्रकार है—रीतिबद्ध काव्य, रीतिबद्ध काव्य तथा रीतिमुक्त काव्य।

रीतियुगीन काव्य को काव्यशास्त्रीय परिदृश्य के परिप्रेक्ष्य में देखने से यह स्पष्ट होता है कि इस काल में अलंकार-निरूपण, रस एवं नायिका-भेद-निरूपण, सर्वांग-निरूपण एवं पिंगल-निरूपण-ग्रंथों की रचनाएँ हुई हैं। इन शास्त्र कवियों में ऐसे कवि भी हैं, जिन्होंने अप्पयदीक्षित और जयदेव को आधार मानकर अलंकार निरूपण किया है। इस श्रेणी के कवियों में केशवदास, जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण, सुरति मिश्र, भूपति, रघुनाथ, दूलह, रतन, बेनी, मान, पद्माकर, ग्वाल आदि हैं। नायिका-भेद निरूपण करनेवालों में मुख्यतः आचार्य कृपाराम, सूरदास, रहीम, नंददास चिंतामणि, यशोनंदन आदि प्रमुख कवि हैं। सर्वांग निरूपक कवियों में केशव, चिंतामणि, कुलपति, देव, सुरति मिश्र, श्रीपति, सोमनाथ हैं तथा पिंगल निरूपक ग्रंथों की रचना करनेवालों में केशव, चिंतामणि, मतिराम, देव, भुजग, सोमनाथ, रामसहाय, भिखारीदास, अयोध्या प्रसाद बाजपेयी आदि प्रमुख कवि हैं।³

हिंदी रीति साहित्य के कवि के आचार्यत्व के संबंध में बात आती है, तो प्रायः रीतिकाल के उन सभी विद्वानों के ग्रंथों का, जो हिंदी में अलंकार या नायिका भेद पर लिखे गए हैं, वे किसी न किसी रूप से पूर्ववर्ती संस्कृत-ग्रंथों से अवश्य प्रभावित दिखाई देते हैं। हिंदी

रीति-परंपरा के विकास में रीतिपूर्व हिंदी काव्यशास्त्र, रीतियुगीन हिंदी काव्याचार्य तथा परवर्ती हिंदी काव्याचार्य का विशेष रूप से योगदान रहा है।

आचार्य कुलपति मिश्र का जन्म 1620 ई० के लगभग हुआ माना जाता है।⁴ इस अनुमानिक जन्मतिथि की पुष्टि मिश्र बंधुओं के निर्णय से भी हो जाती है। इसके जन्म स्थान के बारे में कहा जाता है कि यह आगरा निवासी माथुर चौबे थे। इनकी शिक्षा दीक्षा शाहजहाँ के शासनकाल में हुई। इनके गुरु पंडितराज जगन्नाथ थे। कुलपति का निधन काल 1700 ई० लगभग माना जाता है। कुलपति के आश्रयदाता मुगलशासन के सर्वाधिक सन्निकट थे। कुलपति को शृंगारी रचनाओं तथा शास्त्रीय सिद्धांत-निरूपण में सर्वाधिक योग इन्हीं परिस्थितियों से मिला। आश्रित कवियों में मूर्धन्य और सर्वाधिक विद्वान होने के कारण कुलपति मिश्र ने अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना 'रस रहस्य' में लिखा है कि कवि आत्म-निर्माता को अधिक महत्त्व देता है, इसका कारण वह गुण सम्पन्नता मानता है। गुण सम्पन्न होने पर ही व्यक्ति श्रेय और सम्मान का लाभ प्राप्त करता है, किसी अन्य के भरोसे रहकर उसे स्थाई सम्मान नहीं मिलता।⁵

आचार्य कुलपति मिश्र ने 'रस-रहस्य' युक्ति तरंगिणी, संग्राम-सार सेवा की वारि, हरिध्यानम् ध्यानलीला, दुर्गाभक्ति-चंद्रिका सुरूप-कुरूप-संवाद षड्ऋतु-संवाद, विष-पीयूष-संवाद ध्यान लीला सेवा की वारी ग्रंथों की रचना की है। इनमें रस-रहस्य इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है, रस-रहस्य के आधारभूत ग्रंथ साहित्यदर्पण और रसिकप्रिया हैं। रस रहस्य की भाषा चलती ब्रज भाषा है और व्याकरण की दृष्टि से स्वच्छ है। कुलपति का 'संग्राम-सार पौराणिक घटनाओं पर आधारित है, यह एक निबंध-काव्य है। यह 'महाभारत' पर आधारित रचना है, इसमें षड्ऋतु ऋतुओं के बारे में रोचक प्रसंग उपस्थित है, 'सुरूप कुरूप संवाद' में कृष्ण-संबंधी मंगलाचरण का उल्लेख किया है, विषय पीयूष-संवाद में कुलपति मिश्र जी ने विष-अमृत का विवाद प्रस्तुत किया है। 'संग्राम-सार' कुलपति मिश्र ने महाराजा रामसिंह के आदेश पर महाभारत के द्रोणपर्व अथवा संग्रामसार का अनुवाद किया।⁶ युक्ति तरंगिणी 'सतसई परंपरा' में लिखित कवि की उत्कृष्ट रचना है, इस रचना में शृंगारिका की प्रधानता, नायिकाभेद, नखशिख वर्णन शृंगार व नीति की लोक-परंपरा तथा मुक्त शैली की प्रमुखता 'युक्ति तरंगिणी' में देखने को मिलती है। इसमें राधा के गुणों का वर्णन, ऋतु-वन-विहार, संयोग और वियोग रस, नायक-नायिका भेद आदि विविध विषयों के तरंगिणी में समाविष्ट होने का उल्लेख है।

दुर्गाभक्ति चंद्रिका यह एक धार्मिक ग्रंथ है, 'दुर्गाभक्ति चंद्रिका' मार्कंडेय पुराण के दुर्गासप्तशती आख्यान का भाषानुवाद है।⁷ 'सेवा की वारि' प्रशस्तिमूलक वृत्तात्मक रचना है, जिस में शिवाजी और जयपुर नरेश जयसिंह तथा रामसिंह के कीर्तिकलाप का चित्रण है तथा भाषा की दृष्टि से जयपुरी अथवा ढंडारी और पंजाबी का मिश्रित रूप देखने को मिलता है। ध्यानलीला भेदवादियों का माधुर्यमूलक किशोर-युगल का छवि-वर्णन है, जो शैली और सौंदर्य-कथन की चमत्कारपूर्ण पद्धति पर आधृत होकर भी वैष्णव की पवित्र मादकता से आप्लावित है।

आचार्य कुलपति मिश्र पूर्व नायिका-भेद-परंपरा में भरत, व्यास, रुद्रट, धनंजय-भोज, भोजराज, शारदातनय, शिगंभूपाल, विश्वनाथ, भानुदत्त, सागरनंदी आदि संस्कृत विद्वानों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वैष्णव भक्ति साहित्य में नायिका-भेद परंपरा के प्रमुख ग्रंथ

रूपगोस्वामीकृत उज्ज्वलनीलमणि तथा कर्ण पूरगोस्वामीकृत अलंकार कौस्तुभ का योगदान रहा है। कुलपति मिश्र पूर्व कामशास्त्र में भी नायिका भेदों का वर्णन हुआ है। वात्स्यायन कामसूत्र तथा कामशास्त्र के ग्रंथ में भी नायिका भेद किए गए हैं। कुलपति मिश्र पूर्व हिंदी में मात्र विद्यापति में ही नायिकाओं के कुछ भेद दिखाई देते हैं।

नायिका-भेद-परंपरा के अवलोकन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि नायिका-भेद का मूल उद्गम भारत के नाट्यशास्त्र से हुआ है। हिंदी में यही परंपरा रीतिकाल में आकर आचार्य कृपाराम की हिततरंगिणी से प्रारंभ होती है। रीतिकाल के उच्चवर्गीय विलास-प्रिय समाज के साहित्य प्रेमियों के लिए नायिका-भेद मनोरंजन का एक कलात्मक साधन बन गया था। समाज की इस स्थिति में नारी वासना तृप्ति का प्रमुख साधन बन गई थी, जिसको कुलपति ने युक्ति तरंगिणी की रचना कर नायिका-भेद-परंपरा को पुर्नर्जीवित करके एक मनोवैज्ञानिक एवं साहित्यिक समाधान उपस्थित किया है। इस प्रकार हिंदी में शास्त्रीय नायिका-भेद-निरूपण का श्रेय आचार्य कुलपति मिश्र को है।⁸

आचार्य कुलपति मिश्र ऐसे कवि हैं, जिन्होंने शृंगार-निरूपण के अन्तर्गत मात्र नायिका-भेद को ही प्रस्तुत किया है। आचार्य कुलपति मिश्र ने सखी-दूती-प्रकरण का उल्लेख युक्ति तरंगिणी में किया है। आचार्य कुलपति मिश्र ने नायिका-भेद निरूपण में अपनी मौलिक उद्भावनाएँ प्रस्तुत की हैं।

आचार्य कुलपति मिश्र प्रेषितभर्तृका नायिका की चेष्टाओं के अंतर्गत दसों कामदशाओं जड़ता, स्मरण, व्याधि, प्रलाप, उन्माद, अभिलाषा, गुणकथन, उद्देग, चिंता तथा मरण का वर्णन किया है। आचार्य कुलपति मिश्र का इन कामदशाओं का वर्णन करना ही अभिप्रेत था। इनका यह क्रम स्वतः विकसित होने वाली दशाओं से मेल नहीं खाता है।⁹

आचार्य कुलपति मिश्र ने नायिका-भेद की क्रमबद्धता इस प्रकार दर्शायी है— 'स्वाधीनपतिका', 'वासकसज्जा', 'उत्का', 'अभिसारिका', 'विप्रलब्धा', 'खंडिता', 'कलहांतरिता', 'प्रवत्स्यपतिका', 'प्रेषितभर्तृका' और 'स्वागतपतिका'। कुलपति पूर्व शृंगाररस की परंपरा में संयोग शृंगार भी कहा जाता है।¹⁰

नायक-नायिका के पारस्परिक आलिंगन, अवलोकन, संभाषण एवं सामीप्यमिलन का अनुभव करने की स्थिति, संयोग शृंगार के संयोग और विप्रलंभ के स्वरूप प्रभाव और पारस्परिक संबंधों पर आचार्यों ने भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किए हैं। कुछ आचार्य शृंगार से मानते हैं तो कुछ विप्रलंभ में। रतिभाव मर्मज्ञ शृंगार तरु को द्विदल मानते हैं। उसका एक दल संभोग है तथा दूसरा विप्रलंभ, दोनों ही मिलकर शृंगार को पूर्ण करते हैं। भरत ने शृंगार को अनेक दृष्टियों से प्रस्तुत किया है। उन्होंने इसके दो भेद किए हैं—संभोग तथा विप्रलंभ। ये दोनों अवस्थाएँ शृंगार के अधिष्ठान कहलाते हैं। रुद्रट की दृष्टि में तुल्य मानस प्रमुदित दंपति संगत होकर जिस परस्पर अवलोकन वचनादि का अनुभव करते हैं, वह संभोग शृंगार कहलाता है।

नमिसाधु के अनुसार परस्पर अवलोकन विश्रंभालाप, उद्यान-विहार, पुष्पचयन, बालक्रीड़ा मधुपान, तांबूल, सुरतादि सभी को संभोग शृंगार कहते हैं।

शृंगार का भेद प्रस्तुत करते समय अधिकतर आचार्यों ने संयोग की अपेक्षा संभोग शब्द का प्रयोग अधिक किया है। संभोग शब्द प्रणय, प्ररिपालन उसकी रचना सरल कुटिल अवस्थाएँ

उसके भोग एवं अनुभूति को अपने में समाहित किए रहने के कारण अधिक प्रसंगानुकूल है। भानुदत्त ने दर्शन, स्पर्शन, संलाप, आदि से परस्पर अनुभूयमान सुख को संयोग कहा है। भानुदत्त ने रसतरंगिणी में संयोग तथा रसमंजरी में संभोग शब्द का प्रयोग किया है। पंडितराज जगन्नाथ संभोग काल में प्रेमानुभूति को महत्त्व देते हैं। जब स्त्री-पुरुषों के संयोग काल में रति उन्मुक्त होती है तो संयोग शृंगार होता है।

विप्रलंभ शृंगार की एक ऐसी अवस्था होती है जो अभीष्ट नायक-नायिका की अप्राप्य की स्थिति में उदित होती है। इस अवस्था में संभोग की अपेक्षा कहीं अधिक गंभीरता और स्थिरता पाई जाती है। इस परंपरा में इंद्रिय-चेष्टाओं के स्थान पर आत्मचेष्टाओं का प्राधान्य दिखाई देता है। नायक-नायिका के आयोग और यौनकाल में अभीष्ट आलिंगनादि की अप्राप्ति के कारण प्रकर्ष को प्राप्त हुआ रति भाव विप्रलंभ होता है। कुलपति मिश्र ने पूर्व शृंगारस की परंपरा में विप्रलंभ शृंगार के भेदों, उपभेदों पर विचार किया है, जिसमें पूर्वरग, मान, प्रवास, विरह-विप्रलंभ तथा करुण-विप्रलंभ मुख्य हैं।¹¹ शृंगार रस को सर्वोत्कृष्ट के रूप में स्वीकार किया गया है। शृंगार का मूल भाव रति है। शृंगारभाव की व्यापकता, शृंगारभाव की उत्कट आस्वादता, शृंगार में अन्य रसों को समाहित करने की योग्यता, सभी भावों को आत्मसात करने का सामर्थ्य तथा विभावादि की विशेषता शृंगार के रसराजत्व की पृष्ठभूमि है।

संपूर्ण साहित्य में रस की मुख्य भूमिका रही है, जो भरत से भी प्राचीन है। रस वह आनंदात्मक चित्तवृत्ति या अनुभव है, जो विभाव, अनुभाव और संचारीभाव से युक्त किसी स्थाई भाव के व्यंजित होने से उत्पन्न होती है। हिंदी साहित्य में रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य और निवेद इन स्थाई भावों के अनुसार नौ रस माने गए हैं, जो इस प्रकार हैं—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत। शृंगार का स्थायीभाव रति है तथा रति के द्वारा ही सृष्टि की रचना हुई है। इस महालोकजीवन में रति देवी रूप में कुल-वृद्धि की अधिष्ठात्री देवी रूप में मर्यादायुक्त है। आचार्य कुलपति मिश्र ने संयोग शृंगार का चित्रण विशद् रूप में किया है। इसके अंतर्गत युक्ति तरंगिणी में आलंबन का रूप-वर्णन, उसकी विविध चेष्टाएँ, आलंबन एवं आश्रय का मिलन, उसकी कामक्रीड़ाएँ तथा प्राकृतिक उद्दीपन के विविध रूपों का वर्णन हुआ है।¹² कुलपति ने इन सभी पक्षों का सजीव एवं यथातथ्य वर्णन किया है। आचार्य कुलपति मिश्र ने वयःसंधि तथा नवयौवना को प्राप्त नायिकाओं को अपना विषय बनाया है। नायिका के अंग में तारुण्य लहलहा रहा है। यौवन की देहली पर पग रखती हुई नायिका के शारीरिक अवयवों तथा मानसिक स्थितियों में जो परिवर्तन होता है, उस स्थिति को आचार्य कुलपति मिश्र ने अत्यधिक जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है।

कुलपति मिश्र शास्त्रीय पद्धति पर शृंगार का वर्णन करने वाले प्रथम रीति आचार्य कवि हैं। इन्होंने संयोग शृंगार की अनेक मनोरम झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। समग्र भारतीय वाङ्मय में ऋतुवर्णन की परंपरा आदिकाल से प्राप्त है। कुलपति मिश्र अपने काव्य में प्रकृति को आलंबन और उद्दीपन रूप में चित्रित करते हैं।

साहित्य में रसशास्त्रियों ने प्रेम में विरह की महत्ता का प्रतिपादन किया है। वियोग प्रेम की वह अमर कादंबिनी है, जो उसे व्यापक, विशद् और अमर बना देती है। संयोग-सुख में आकंठ डूबा हुआ प्रेमी प्रेम की महिमा को पूर्णतः समझ नहीं पाता, वियोग उसके प्रेम को

परिपक्वता प्रदान करता है। इसीलिए शास्त्रकारों ने संयोग की अपेक्षा वियोग को महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया है। जिस प्रकार कषायितवस्त्र में रंग परिपक्वता प्रदान करता है। उसी प्रकार विप्रलंभ संयोग के सुख को पुष्ट करता है। प्रेम के निखार और विस्तार के लिए वियोग आवश्यक है। गुण, श्रवण, चित्र, दर्शन आदि से प्रेमी-प्रेमिका के मन में एक दूसरे के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। यदि नायक-नायिका का आपस में मिलन नहीं होता तो दोनों एक-दूसरे से मिलने के लिए लालायित रहते हैं, इन स्थितियों से विरह का प्रारंभ होता है।¹³

आचार्य कुलपति मिश्र के काव्य में विप्रलंभ के चारों रूपों—मान, प्रवास, विरह विप्रलंभ तथा करुण विप्रलंभ के दर्शन होते हैं।¹⁴ उन्होंने नायिका के विरह की दसों अवस्थाओं—जड़ता, स्मृति, व्याध, प्रलाप, उन्माद, अभिलाषा, गुणकथन, उद्वेग, चिंता तथा मरण आदि का उल्लेख किया है। आचार्य कुलपति मिश्र ने विरह की उपर्युक्त दशाओं का वर्णन ही नहीं किया है, बल्कि विरह की मार्मिक अनुभूतियों को सहजरूप में वाणी भी प्रदान की है।

आचार्य कुलपति मिश्र के कृतित्व के भावपक्ष एवं कल्पनापक्ष में उसके काव्यरूप, छंद एवं शिल्पविधान पर विचार किया गया है। जिस काव्यरूप में बिना पूर्वापर संबंध स्थापित किए ही पूर्णता, चमत्कृति एवं रसचर्वणता की क्षमता हो मुक्तक कहलाता है। मुक्तक-काव्य का हरएक छंद स्वतः पूर्ण एवं रसचर्वणता की क्षमता रखते हुए आपस में शृंखलाबद्ध होता है तथा उनमें एक अंतर्धारा बनी रहती है। अतएव मुक्त-काव्य से उस काव्य रूप का बोध होता है, जिसमें कवि कथात्मक प्रबंध या विषयगत विस्तृत निबंध की योजना न कर किसी मनोरम वस्तु, भाव, व्यापार-क्रिया आदि का एक छोटा-सा स्तवक कल्पित करके उनको संक्षिप्त और सशक्त भाष में निबद्ध कर देता है। विषयबद्ध मुक्तक काव्य के निम्न चार भेद किए गए हैं, शृंगारिक मुक्तक धार्मिक मुक्तक, वीररसात्मक, मुक्तक, नीतिपरम मुक्तक। संस्कृत के आचार्यों ने मुक्तक के अनेक भेद किए हैं, किंतु हिंदी में ये मुक्तक स्वीकार नहीं किए गए हैं।¹⁵

किसी उपमेय के समादृश्य के लिए उसके रूप, आकार, रंग, गुण क्रिया प्रभाव आदि से मिलती-जुलती वस्तु को कवि जब उपमान रूप में प्रस्तुत करता है तो उसकी यह सर्जना उपमान-विधान, अप्रस्तुत-विधान अथवा अप्रस्तुत-योजना कहलाती है। अप्रस्तुत-विधान बाहर से लाई जानेवाली सभी वस्तुओं को ग्रहण करता है, चाहे अप्रस्तुत किसी भी प्रकार का क्यों न हो। अप्रस्तुत विशेष्य हो, विशेषण हो, क्रिया हो, मुहावरा हो सभी उसके भीतर समाहित हो जाते हैं, अप्रस्तुत-विधान सादृश्यमूलक अलंकारों में साम्य सृजन के लिए किया जाता है। इन सादृश्यमूलक अलंकारों में मुख्यतः उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति, अपशक्ति, अनन्वय, उपमेयोपमा, स्मरण, भ्रांतिमान, संदेह, उल्लेख परिणाम आदि की गणना की जाती है। साम्य पर आधारित अप्रस्तुत विधान का वर्णन रूप-साम्य, आकार-साम्य, प्रभाव-साम्य तथा धर्मगुण-साध्य के अंतर्गत किया है। आचार्य कुलपति मिश्र अधिकांश हैं।¹⁶

आचार्य कुलपति मिश्र ने युक्ति तरंगिणी में अलंकारों का प्रयोग भाव, रूप-गुण, धर्म आदि के उत्कर्ष हेतु सहायक उपकरण के रूप में किया है। उन्होंने अलंकार को काव्य का स्थिर नहीं, अस्थिर धर्म माना है। इनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग नित्य नहीं अनित्य, स्थिर नहीं अस्थिर रूप में किया गया है। आचार्य कुलपति ने सादृश्य-मूलक, मध्यमान-औपम्यमूलक, न्यायमूलक, चमत्कारमूलक, अतिशयमूलक अलंकारों का प्रयोग किया है।

आचार्य कुलपति मिश्र ने अपनी रचनाओं को बोधगम्य बनाने के लिए शब्द-शक्तियों के माध्यम से शब्द के अर्थ-तत्त्वों का सुनियोजित रूप प्रदान किया है। उन्होंने अपनी भाषा में अभिधा लक्षणा तथा व्यंजना तीनों शब्द-शक्तियों का संदर्भानुसार प्रयोग किया है। आचार्य कुलपति मिश्र 'अभिधा' का विधान बहुत रोचक नहीं होता है। इसलिए कविगण लक्षणा और व्यंजना का सहारा लेते हैं। आचार्य कुलपति मिश्र का लक्षणा और व्यंजना-व्यापार भी सुंदर बन पड़ा है। कुलपति ने इन काव्य-शक्तियों का आश्रय लेकर अपने लक्षण-काव्य को संप्रेषण-युक्त एवं प्रभावी बना दिया है।¹⁷

अप्रस्तुत विधान, अलंकारविधान और शब्द-शक्तियों आदि का प्रयोग आचार्य कुलपति मिश्र ने अपनी अभिव्यक्ति को ग्रहणीय एवं संप्रेषणीय बनाने के लिए किया है। रहस्य में आचार्य कुलपति मिश्र ने अपनी पूर्ववर्ती भाषाओं संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश के शब्द, देशी भाषाओं में राजस्थानी और पंजाबी के शब्द, हिंदी-बोलियों में अवधी और बुंदेली के शब्द तथा विदेशी भाषाओं में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग किया है। संस्कृत के तत्सम शब्द चूँकि ब्रजभाषा के अनुकूल नहीं पड़ते। इसलिए कृपाराम ने इन्हें तद्भव रूपों में परिवर्तित करके प्रयुक्त किया है। आचार्य कुलपति ने इन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग ब्रजभाषा के अनुकूल बनाकर अपनी भाषा में प्रयुक्त किया है, जिससे इनकी भाषा में सरलता एवं चारुता आ गई।¹⁸

नाम पर्याय के विविध रूप में कृष्ण के अनेक पर्यायवाची शब्दों का उपयोग हुआ है। हिंदी भक्ति एवं रीति-साहित्य में नायिका को अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। आचार्य कुलपति ने नायिका के अनेक पर्यायवाची शब्दों को स्थान-स्थान पर प्रयुक्त किया है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ जीवित भाषा के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इनके प्रयोग से जहाँ भावों की अभिव्यक्ति में तीव्रता आ जाती है, वहीं भाषा भी सजीव बन जाती है।

इनके ग्रंथों में प्रयुक्त मुहावरे और लोकोक्तियाँ लोकजीवन की मान्यताओं के आधार पर किसी भाव की गहराई को प्रभावात्मक तरीके से पाठक या श्रोता तक संप्रेषित करने में सहायक एवं समर्थ सिद्ध हुए हैं। आचार्य कुलपति मिश्र ने अपने शब्द-भंडार में पूर्ववर्ती भाषाओं के शब्द, देशी भाषाओं के शब्द, विदेशी शब्द तथा अन्य बोलियों के शब्दों को प्रयुक्त किया है।¹⁹

किसी भाषा का महत्त्व उसके व्याकरणिक अध्ययन से बढ़ जाता है। आचार्य कुलपति मिश्र के व्यावहारिक प्रयोगों के आधार पर ही उनके काव्य का व्याकरणिक एवं शास्त्रीय विवेचन किया गया है।

आचार्य कुलपति मिश्र की भाषा शब्द-प्रयोग की दृष्टि से अत्यधिक सुनियोजित है। शब्दों के सुनियोजित प्रयोग के कारण ही उनकी भाषा पर्याप्त प्रभावशाली बन गई है तथा उसमें भावों की संप्रेषणीयता और अधिक सघन हो उठी है। कुलपति मिश्र की भाषा में कहीं भी ऐसे उदाहरण नहीं प्राप्त होते हैं, जहाँ भाव गोण हो और कला चमत्कार प्रधान है। इनकी भाषा कम शब्दों के माध्यम से ही अधिकाधिक भावों को अभिव्यंजित करने में सफल रही है।²⁰

आचार्य कुलपति ने जिस समय ब्रजभाषा में काव्य रचना की वह ब्रजभाषा के विकास की प्रारंभिक अवस्था थी। विकास की इस प्रारंभिक अवस्था में ही आचार्य कुलपति ने उसे अपनाकर उसके रूप को निखारा, परिमार्जित किया। कुलपति मिश्र ने ब्रजभाषा को काव्य की श्रेष्ठ भाषा बनाने में ऐतिहासिक योग दिया। कुलपति मिश्र पूर्व ब्रजभाषा का स्पष्ट प्रभाव

गोरखनाथ में दिखाई पड़ता है तथा विद्यापति की पदावली में ब्रजभाषा के कुछ प्रयोग दिखाई देते हैं। कुलपति की भाषा ब्रजभाषा की प्रारंभिक अवस्था में ही उसके सरस, सुंदर, भावपूर्ण, परिमार्जित और परिनिष्ठत रूप विधान का मापदंड प्रस्तुत करती है।

आचार्य कुलपति ने अपनी पूर्ववर्ती काव्य परंपरा से अपने ग्रंथों के प्रतिपाद्य को ग्रहण किया था। ये हिंदी रीति परंपरा के आदि आचार्य हैं। कुलपति के परवर्ती रीति कवियों पर उनकी रचना का प्रभाव उनके आदि आचार्य के महत्त्व को स्पष्ट रूप से रेखांकित करती है। पूर्ववर्ती शृंगारी कवि और आचार्य कुलपति का मूल्यांकन करने से स्पष्ट होता है कि पूर्ववर्ती शृंगारी कवियों ने अपने ग्रंथों में शृंगार का सूक्ष्मातिसूक्ष्म, गंभीर और व्यापक चित्रण किया है। इन शृंगारी कवियों से कतिपय भिन्न रूप आचार्य कुलपति ने अपनाया है। हिंदी रीति-परंपरा के अधिकतर कवि अमरुकशतक, गाथासप्तशती और 'आर्यासप्तशती' से अवश्य प्रभावित हुए हैं।²¹ आचार्य कुलपति और इन संस्कृत आचार्यों के ग्रंथों के तुलनात्मक अध्ययन में कहीं-कहीं भावसाम्य में समानता दिखाई दे जाती है। आचार्य कुलपति मिश्र भाषा काव्य साहित्य के रीतिकाल के परवर्ती कवियों से आचार्य कुलपति मिश्र की तुलना करने से यह प्रतीत होता है कि भाषा-काव्य-साहित्य के अनेक रीति कवि आचार्य कुलपति मिश्र से किसी न किसी रूप से अवश्य प्रभावित हुए हैं। काव्य प्रकाश के आधार पर कुलपति ने काव्य के तीन भेद उत्तम मध्यम और अवर कहे हैं। आचार्य कुलपति मिश्र पर मम्मट का प्रभाव रहा है।

संदर्भ

1. डॉ० विष्णुदत्त शर्मा, आचार्य कुलपति मिश्र : व्यक्तित्व व कृतित्व, भूमिका पृ० 3
2. डॉ० कृष्णचंद्र शर्मा, रीतियुगीन काव्य, पृ० 11
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्राक्कथन
4. डॉ० नगेंद्र हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास, पृ० 139
5. मिश्रबंधु विनोद, मिश्रबंधु, पृ० 471
6. पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० 37
7. डॉ० विष्णुदत्त शर्मा, आचार्य कुलपति मिश्र : व्यक्तित्व व कृतित्व, भूमिका पृ० 4
8. डॉ० भागीरथ मिश्र, हिंदी रीति साहित्य, पृ० 93
9. डॉ० कृष्णचंद्र शर्मा, रीतियुगीन काव्य, पृ० 11
10. डॉ० विष्णुदत्त शर्मा, आचार्य कुलपति मिश्र : व्यक्तित्व व कृतित्व, पृ० 138
11. वही, पृ० 239
12. श्री भद्रभागवत, पृ०
13. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदी साहित्य का अतीत शृंगारकाल, पृ० 500
14. डॉ० भागीरथ मिश्र, हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास पृ० 126
15. डॉ० विष्णुदत्त शर्मा, आचार्य कुलपति मिश्र : व्यक्तित्व व कृतित्व, पृ० 146
16. डॉ० भागीरथ मिश्र, हिंदी रीति साहित्य, पृ० 19
17. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 247
18. डॉ० नगेंद्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० 187
19. डॉ० विष्णुदत्त शर्मा, आचार्य कुलपति मिश्र : व्यक्तित्व व कृतित्व, पृ० 134

20. डॉ० विष्णुदत्त शर्मा, आचार्य कुलपति मिश्र : व्यक्तित्व व कृतित्व, पृ० 131
21. वही, पृ० 132
22. डॉ० नगेंद्र, हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास, पृ० 518

□ द्वारा डॉ० सभापति मिश्र
61/1सी तिलक नगर
अल्लापुर, इलाहाबाद (उ०प्र०)

शिरोमणि कवि सूरदास की भक्ति-भावना

श्रीमती हेमलता

हिंदी प्रख्याता

के०एल०पी० कॉलेज, रेवाड़ी

भारत में भक्ति-परंपरा प्राचीन है। ज्ञान और योग-मार्ग के साथ ही भक्ति-मार्ग की प्रतिष्ठा स्वतंत्र रूप में हो चुकी थी। महाभारत, भागवत, नारद-भक्तिसूत्र, शांडिल्यसूत्र आदि में भक्ति की व्याख्या प्राप्त है। भक्त के लक्षण प्रायः सर्वत्र समान हैं। भक्त शिरोमणि सूरदास का साहित्य भक्ति की पावन धारा से सिक्त व सुवासित है। प्रभुभक्ति में तल्लीनता ही उनके जीवन का सारतत्त्व है। डॉ० विजयेंद्र स्नातक के अनुसार 'जनमानस को विमुग्ध करने वाला उनका काव्य भक्ति का नवनीत है जो भवत्रस्त-विपन्न जन को स्निग्ध शांत करता हुआ मोहन की सौंदर्यमयी लीलाओं में लीन करने की अद्भुत शक्ति रखता है।' सूरदास की भक्ति की प्रमुखता प्रेमप्रधान है। वे सगुण, साकार, ईश्वर के उपासक हैं। उनके अनुसार निर्गुण निराकार ब्रह्म को समझना व पाना सरल नहीं। जो ईश्वर रूपाकार, गुणों व युक्तियों से परे है, उस तक सामान्य जन का मन कैसे पहुँच सकता है। इसलिए उन्होंने इस रसरूप, पूर्णपुरुषोत्तम परब्रह्म श्रीकृष्ण को अपना आराध्य माना।

भारतीय धर्म-साधना में भक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भक्ति स्रोतस्विनी अनंत काल से भारतीय लोकमानस को आप्लावित करती रही है। वैदिककाल से लेकर आधुनिक काल तक भक्ति की यह पावन धारा असंख्य भक्तों, साधकों तथा कवियों के कंठ से निःसृत होकर भारतीय वाङ्मय में विभिन्न रूपों में प्रवाहित हुई है। यद्यपि, भक्ति-संबंधी रचनाएँ प्राचीन साहित्य में भी प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं फिर भी हिंदी के मध्यकालीन भक्त कवियों की कृतियों में यह भक्ति-भावना जितनी प्रगल्भता, तल्लीनता एवं मनोरमता के साथ व्यक्त हुई है उतनी कदाचित् ही कहीं अन्यत्र हुई हो।

पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में भारत में भक्ति-आंदोलन के प्रचार के फलस्वरूप हिंदी-साहित्य में अभूतपूर्व भक्तिकाव्य का प्रादुर्भाव हुआ। भक्ति की जो धारा दक्षिण भारत में पहले ही उमड़ पड़ी थी, वह अब अनेक वैष्णव आचार्यों का प्रश्रय पाकर उत्तरी भारत में भी एक शक्तिशाली आंदोलन के रूप में प्रसार पाने लगी। रामानुजाचार्य ने दक्षिण में ही भक्ति का प्रचार किया था पर उन्होंने भक्ति के जिस स्वरूप की प्रतिष्ठा की थी, उसने उत्तरी भारत के भक्ति-आंदोलन को पूर्णतया प्रभावित किया। उत्तरी भारत में भक्ति-आंदोलन को शक्तिशाली एवं लोकप्रिय बनाने में अनेक वैष्णव आचार्यों का योगदान रहा है। चौदहवीं शताब्दी में स्वामी

रामानंद ने राम-भक्ति के रूप में और सोहलवीं शताब्दी में बल्लभाचार्य ने कृष्णभक्ति के रूप में वैष्णव भक्ति का प्रचार किया। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के सगुण रूप को अपनी भक्ति का आलंबन बनानेवाले स्वामी रामानंद की शिष्यपरंपरा में भक्तप्रवर तुलसीदास का स्थान सर्वोपरि है। दूसरी ओर वृंदावनबिहारी भगवान कृष्ण को अपनाने वाले वल्लभाचार्य के अनुयायी भक्त कवियों में महात्मा सूरदास का मूर्धन्य स्थान है।

सूरदास एक उच्चकोटि के भक्त और प्रतिभाशाली, कवि दोनों रूपों में हमारे समान आते हैं, किंतु वे भक्त पहले हैं और कवि बाद में। उन्होंने अपनी भक्ति-भावना को व्यक्त करने के लिए ही साधन रूप में कविता को अपनाया है। भक्ति उनका साध्य है और कविता साधन।

बाल्यावस्था में ही गृहत्याग तथा अपने बंधुओं के निधन की घटना ने सूरदास को सांसारिक जीवन का मोह त्यागकर हरिभजन को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया। संन्यास लेकर वे आगरा और मथुरा के बीच यमुना-नदी के गौघाट पर निवास करते हुए हरिभक्ति में लीन रहने लगे। भगवद्भक्ति की ओर उन्मुख उनका भक्त हृदय भक्तिपरक गीतों में प्रस्फुटित होने लगा और कुछ ही दिनों में वे एक उच्चकोटि के भक्त एवं गायक के रूप में प्रसिद्ध हो गए।¹

भक्ति के नौ प्रकार होने के कारण उसका नाम ही नवधा-भक्ति पड़ा। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन नवधा भक्ति के भेद हैं। वास्तव में नवधा-भक्ति भगवत्-प्रेम-प्राप्ति का साधन-मात्र है। भाव तो केवल दास्य और सख्य है, शेष सभी तो क्रियाएँ हैं। महाप्रभु बल्लभाचार्य की प्रेरणा से कृष्ण के बालरूप की भी उपासना आरंभ हुई और उनके अनुयायियों में वात्सल्यभाव की सेवा-प्रतिष्ठित हो उठी। कृष्णभक्ति-शाखा के गौड़िय, हरिदासी तथा राधाबल्लभीय संप्रदायों में मधुरभाव से कृष्णसेवा की पद्धति चल निकली। इस प्रकार भक्ति के चार प्रमुख भाव हुए-दास्य, सख्य, वात्सल्य, और मधुर।

रूप गोस्वामी ने उक्त चारों भावों के अतिरिक्त शांता-भक्ति को भी स्वीकार किया है। तत्त्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद के कारण मन संसार से सर्वथा परित्यक्त होकर ईश्वर में रत हो जाता है। सूर की भक्ति में उक्त पाँचों प्रकार के भावों का समावेश है, इसलिए अनेक विद्वानों ने सूरदासजी में पाँचों प्रकार की भक्ति की स्थिति मानी है। उनके विनय के पदों में दास्य और शांताभक्ति, बालवर्णन में वात्सल्य और संयोग तथा वियोग-वर्णन में मधुर-भाव स्पष्ट है। किंतु मेरे विचार से सखा-भाव ही सर्वत्र प्रधान है। जो पद बल्लभाचार्य के संपर्क में आने से पूर्व लिखे गये थे, उनमें अवश्य ही दास्य एवं शांताभक्ति मिलती है, किंतु जो विनय या लीला के पद उनकी विचारधारा के परिवर्तित होने पर लिखे गए हैं, उनमें सख्य-भक्ति ही प्रधान है। भक्त कृष्ण का सखा है। अतः दासप्रिया, वत्सला या विरागी की अपेक्षा अधिक निर्बंध और मुखर है।²

दास्यभाव की स्थिति में भक्त भगवान की परिस्थितियों, सुविधाओं और मर्यादाओं का ध्यान रखता है। उसका अपना स्वार्थ पीछे हो जाता है। रामावतार दास्यभक्ति का आलंबन है, राम के समक्ष सूर भी दास्यभक्ति लेकर उपस्थित हैं, प्रातः होने से पूर्व ही वे द्वार पर पहुँच जाते हैं, सारे दिन खड़े अवसर की प्रतीक्षा करते हैं, किंतु दर्शन का अवसर नसीब नहीं होता, अंत में रुक्का भेजकर चले जाते हैं।³

इसके ठीक विपरीत सख्य-भक्ति में भक्त अपना स्वार्थ आगे रखता है अपने प्रभु से स्पष्ट कहता है कि या तो मेरा कार्य कीजिए नहीं तो साफ़ जवाब दीजिए। सूरदास जी ठीक इसी

प्रकार कृष्ण से कहते हैं—

मो सौं बात सकुच तजि कहिए।

कत ब्रीड़त कोउ और बतावौ, ताहि के ह्वै रहिए।

तीन्यौपन मैं और निबाहें इहै स्वांग को काछै।

सूरदास कौ यहै बड़ो दुख, परत सबनि के पाछै।⁴

सूर ने कृष्ण को अन्यत्र आराध्यदेव माना है, तो उनके चमत्कार को ही नमस्कार किया है। तभी तो वे कहते हैं—

अविगत-गति जानि न परै

हे भगवान्, क्या है तेरी माया?

कहीं धूप और कहीं छाया।

उन्हें अपने विष्णु के अवतार इष्टदेव का अभिमान है। इस विषय में वे अधिक सहिष्णु बनकर किसी अन्य की स्तुति करना नहीं चाहते।

नंद के द्वारा शालिग्राम जी की पूजा होते देख उन्हें श्रीकृष्ण के मुख में ही पहुँचा दिया। सूर कृष्ण के अनन्य भक्त हैं, उन्होंने अपने ग्रंथ का आरंभ ही 'बंदौ चरण-कमल हरि- राई' से किया है।

सख्य-भाव की भक्ति के अंतर्गत सूर ने वात्सल्य और दांपत्य का वर्णन भी बड़ी कुशलता से किया है। वास्तव में बालकों के प्रति आज तक लोगों में अवहेलना की दृष्टि ही रह। सूर ही सर्वप्रथम कवि हैं, जिन्होंने साहित्य-क्षेत्र में बाल्यजीवन का स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक और मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया। बालकों को ईश्वर का स्वरूप माना जाता है, उनकी उपस्थिति से यह पृथ्वी भी स्वर्ग बन जाती है। सूर ने बालकृष्ण के लौकिक स्वरूप का ऐसा ही अलौकिक वर्णन किया है। उनकी बाललीला पर बालक ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े भी मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। उनका भोलापन देखिए—

मैया कबहिं बदैगी चोटी?

कितनी बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहुँ है छोटी।

चाँद के लिए मचले हुए हठीले श्याम का स्वरूप—'मैया, मै तो चंद खिलौने लैहों।'

सूर ने बालकों की मनोवृत्तियों के चित्रण में अति सूक्ष्म निरीक्षण से काम लिया, किंतु वे कभी यह नहीं भूले कि बालकृष्ण उनके इष्टदेव हैं।⁵

माधुर्यभाव की मधुराभक्ति रागात्मिका भक्ति का श्रेष्ठ रूप है। इस मधुराभक्ति का स्थायीभाव माधुर्य, कांतारति या मधुर रति है। लोकपक्ष में जो काव्य शृंगार है, वही भक्तिरसशास्त्र में मधुररस या उज्ज्वल रस है। काव्यरस और भक्तिरस में यह अंतर है कि काव्यरस जीवनोन्मुख होता है और भक्तिरस आत्मोन्मुख। मधुररस में शृंगाररस के उपादानों एवं अवस्थाओं का समावेश हो जाता है। शृंगाररस का औचित्य और अनौचित्य विचार मधुररस के लिए उपयोगी नहीं है, क्योंकि माधुर्यभाव के आलंबन सच्चिदानंद भगवान् श्रीकृष्ण हैं। मधुररस में प्रेम के दो रूप हैं—स्वकीया प्रेम और परकीया प्रेम। ब्रज की गोपियों को मधुराभक्ति का आधार माना जाता है और उनमें कुछ स्वकीया है, और कुछ परकीया।

माधुर्य भाव का सर्वोत्कृष्ट रूप राधा-कृष्ण की प्रेमलीला में व्यक्त हुआ है। राधा-कृष्ण का प्रेम बचपन से ही क्रमशः विकसित हुआ है। दोनों एक-दूसरे के सौंदर्य पर आकृष्ट हैं। सूरदास के अनुसार राधा और कृष्ण दो शरीर, एक प्राण हैं। उनमें कोई भेद नहीं है। वे प्रकृति और पुरुष हैं, उनका ब्रज में यह भेद लौकिक है, वास्तविक नहीं। राधा और कृष्ण परम चैतन्य के ही दो रूप हैं। रासलीला में राधा नायिका हैं। वे रास के मध्य में विराजमान हैं। कृष्ण जगनायक हैं और राधा जगदीशप्रिया, जगत्जननी और जगतरानी हैं। रासलीला में राधा स्वकीया हैं। वे दोनों मूर्तिमान राग-रागिनी हैं। रासलीला में राधा जीव हैं और सभी गोपियों देह। राधा गोपियों की आत्मा हैं। रासलीला के पश्चात ग्रीष्म-लीला, युगल समागम, मानलीला, दंपती विहार, खंडिता-प्रकरण, झूलन और बसंतोत्सव के सहारे राधा-कृष्ण की प्रेमलीला चलती है।⁶ सूरदास अपने काव्य-महत्त्व के कारण हिंदीकवियों के मुकुटमणि माने जाते हैं, तब भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने कवि के दृष्टिकोण से अपने काव्य की रचना नहीं की है। अपने इष्टदेव की भक्ति-भावना में आनंदविभोर होकर उन्होंने जो कुछ गाया है, वह भक्तिकाव्य की श्रेष्ठतम कृति है, इसलिए वह भक्तिरस से ओतप्रोत है। किंतु साथ-ही-साथ उसमें काव्य-कला के भी समस्त गुण विद्यमान हैं। इन गुणों को लाने के लिए उनको अपनी ओर से कुछ चेष्टा नहीं करनी पड़ी है। उनके स्वाभाविक भक्तिकाव्य के धारावाही महानद में काव्य-कला के अनेक गुण छोटे-बड़े नदी नालों की तरह स्वयं आकर मिल गए हैं। अवश्य ही इनके कारण उनके काव्य का महत्त्व और भी अधिक हो गया है।⁷

भक्त महाकवि सूरदास के काव्य के संबंध में जो कुछ कहा जाये थोड़ा है। कवि तानसेन ने उनकी प्रसिद्धि में कहा है—

किंधौ सूर को सर लग्यों किंधौ सूर की पीर,
किंधौ सूर कौ पद लग्यों तनमन धुनत शरीर।

इनके जीवनवृत्त से ही विदित होता है कि ये बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व भी काव्य-रचना करते थे। उस समय की रचना में दीनता का भाव विशेष रहता था। जब बल्लभाचार्य ने इनके पद सुने तो कहा—‘सूर हो के घिघियात काहे को?’ तब उन्होंने लीला-भेद बताया—

श्री बल्लभ प्रभु तत्त्व सुनायौ लीला-भेद बतायौ,
ता दिन ते हरिलीला गाई, एक लक्ष पद गायौ।

यह लीला-भेद ही सूर के काव्य का प्रधान स्वर है। लीला-वर्णन करना कवि ने आरंभ किया और भगवान कृष्ण की समस्त लीलाओं को उसने मधुरतम जनवाणी में उतार दिया। इस लीला-वर्णन से कवि ने निराकार को साकार कर दिया। कवि ने कहा है—

अविगति गति कछु कहत न आवै
निरालंब मन चक्रत धावै
ताते सूर सगुण पद पावै।

सूरदास के काव्य के निरीक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे कवि, गायक और भक्त एक साथ हैं। कवि सूरदास ने कल्पनालोक से अनेक रत्नाभरण-भावोद्दीपन के लिए प्रस्तुत कर दिए हैं, जिससे काव्य में सौंदर्य की अनूठी जगमगाहट आ गई है।⁸

सूर के अनुसार शरीर को कठोर कष्ट देकर शिव की साधना करने वालों का कभी कल्याण नहीं हो सकता है। उन्हें नरक ही मिलता है। इस जन्म और मरण से मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय हरि की प्रेमाभक्ति ही है। अपने समय में प्रचलित अन्य मतों की उन्होंने अपने भ्रमरगीत में कटु आलोचना की है। भगवान पर अटूट विश्वास रखते हुए सूरदास गऊघाट पर रहते समय इसी उलझन में पड़े थे। अहं और मम (मैं और मेरा) के प्रलोभनों से कैसे बचा जाए। अपने मन की चंचल प्रवृत्तियों को कैसे रोका जाए, इस पर वे हमेशा विचार करते रहते थे। वह यह जानते थे कि अगर कोई भगवान में अटूट विश्वास रखे तो माया के मोहजाल से निश्चित रूप से मुक्त होता है। भगवान ही उसे उससे दूर कर सकते हैं, क्योंकि भगवान स्वयं ही माया के जनक हैं। सूरदास, बल्लभाचार्य से मिलने से पहले कृष्ण की महिमा के बारे में नहीं जानते थे। लेकिन ऐसा भी नहीं था कि उन्होंने भगवान के बारे में नहीं सुना था। परंतु बल्लभाचार्य से मिलने और उनसे दीक्षा लेने के बाद उन्होंने श्रीकृष्ण की लीला और उनकी महिमा के बारे में अच्छी तरह जाना। इसके बाद सूरदास उनकी भक्ति में पूरी तरह लीन हो गए।⁹

सूर की भक्ति के विविध पक्षों के विवेचन के उपरांत कहा जा सकता है कि सूर ने सगुण-साकार ईश्वर की भक्ति को सच्चे हृदय से अपनाया। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पूर्व उन्होंने दास्य व शांतभाव की भक्ति का अनुसरण किया और बाद में प्रेमाभक्ति के अनुरूप वात्सल्य, सख्य, माधुर्यभाव की भक्ति का पालन किया। इस भक्ति-पद्धति में प्रभु-प्रेम की प्राप्ति पर अत्यधिक बल दिया गया है। उनके प्रेम में तल्लीन रहना ही इस भक्ति का प्राणतत्त्व है। इस भक्ति में निवृत्ति नहीं, प्रवृत्ति की प्रमुखता है। प्रभु की लीलाओं में निमग्न रहना ही इस भक्ति का सारतत्त्व है। भगवान के लीलाधाम और उनके चरणारविंद का सान्निध्य प्राप्त करने की लालसा सूर के अनेक पदों में व्यक्त हुई है।

संदर्भ

1. सूर की काव्य-साधना, डॉ० गोविंदराम शर्मा, पृ० 126, 127
2. सूर की काव्य-कला, मनमोहन गौतम, पृ० 43-46
3. सूरसागर (सभा), नवम स्कंद, पद 172
4. सूरसागर (सभा), विनय पद 136
5. सूर की भक्तिभावना, श्री कुशलकरण, पृ० 97, 98
6. भक्ति-आंदोलन और सूरदास काव्य, मैनेजर पांडेय पृ० 237-240
7. सूर-निर्णय, द्वारकादास परीख, प्रभुदयाल मीतल, पृ० 292
8. भक्तिकवि सूरदास, डॉ० सत्येंद्र
9. स्वर्णिम जीवन सूरदास, श्याम दुआ, पृ० 31, 32

□ अमीलाल निवास

मं० 768, हुडा सेक्टर-3

गरही बोलनी रोड, रिवाड़ी (हरियाणा)

मो० 09813203199

केशव के काव्य के भाषावैज्ञानिक स्वरूप का समग्र मूल्यांकन प्रतिभा पांडेय

रीतिकालीन कवियों में केशव का महत्त्वपूर्ण स्थान है। केशव के काव्य के भाषावैज्ञानिक स्वरूप को जानने के लिए उनके काव्य में प्रयुक्त भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसके विकास तथा उसके ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या की गई है। काव्य-क्षेत्र में आने पर केशव के समक्ष अवधी और ब्रज दो काव्यभाषाएँ थीं, किंतु केशव ने अपनी काव्य-रचना के लिए ब्रजभाषा का चयन किया। इसका प्रमुख कारण यह था कि केशव बुंदेलखंड के निवासी थे और बुंदेलखंडी भाषा ब्रजभाषा से बहुत-कुछ साम्य रखती है। दरअसल ब्रज, बुंदेलखंडी और खड़ीबोली शौरसेनी भाषा की शाखाएँ हैं। इनकी कृतियों में बुंदेलखंडी मुहावरों और पदों की अधिकता भी देखने को मिलती है। रीतिकाल में ब्रजभाषा अपनी समृद्धि के उच्चतम शिखर पर विराजमान थी, जो केशव जैसे कवि के हाथों मंज सँवरकर भावाभिव्यंजना के अधिक अनुकूल बन गई। 'मिश्रबंधु' ने केशवदास की भाषा के विषय में लिखा है—'केशवदास को भाषा का 'मिल्टन' कहना चाहिए।'¹

अपनी अभिव्यक्ति-क्षमता को बढ़ाने के लिए केशव ने अपने काव्य में विशाल शब्द-समूह का प्रयोग किया है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा अरबी, फ़ारसी जैसी विदेशी भाषाओं के शब्दों के अतिरिक्त केशव की भाषा में बुंदेलखंडी और अवधी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। केशव की कृतियों में, 'स्यो', 'गौरमदाइन' और 'कोद' आदि अनेक बुंदेलखंडी शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि केशव ने अपने ग्रंथों की रचना बुंदेलखंड में ही की थी। शास्त्रीय शब्दों के प्रयोग का भी केशव के काव्य में अपना विशिष्ट स्थान है। डॉ० नगेंद्र के अनुसार—'संस्कृत भाषा से निकट संबंध होने के कारण तथा संस्कृत के रीतिग्रंथों से सीधे प्रभावित होने से भी रीतिकाव्यों में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है, किंतु केशव को छोड़कर अन्य कवियों में इसकी बहुलता नहीं दिखाई पड़ती।'² केशव की कृतियों में विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है।

केशव की 'रामचंद्रिका' की भाषा पर संस्कृत का सर्वाधिक प्रभाव देखने को मिलता है, जिसका प्रमुख कारण केशव का पांडित्य-प्रदर्शन है। 'रामचंद्रचंद्रिका' के कुछ छंदों की भाषा संस्कृत ही है। इसमें बहुत से छंद ऐसे हैं, जिनके दो अर्थ निकलते हैं। इसका कारण संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोगाधिक्य है। इसके अतिरिक्त 'विज्ञानगीता' में भी संस्कृत शब्दों का बाहुल्य दिखाई पड़ता है। केशव के 'वीरसिंह देव-चरित' नामक ग्रंथ में अन्य ग्रंथों की अपेक्षा

अवधी के शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। केशव का समय अकबर और जहाँगीर के राजत्वकाल का था, इसलिए अरबी-फ़ारसी और विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग केशव के काव्य में होना स्वाभाविक था। इस संदर्भ में यह बात ध्यान देनेयोग्य है कि केशव ने विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग करते समय हिंदीभाषा की प्रकृति की रक्षा का ध्यान रखा। विदेशी भाषा के शब्दों का सबसे कम प्रयोग केशव के 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' नामक ग्रंथों में किया गया है। जबकि 'जहाँगीर जसचंद्रिका में अरबी-फ़ारसी शब्दों की अधिकता है। केशव की 'रतनबावनी' में प्राकृत और अपभ्रंश के शब्दों तथा 'रसिकप्रिया' में ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है। अन्य भाषाओं और बोलियों के शब्दों को ग्रहण करने की शक्ति के कारण केशव की ब्रजभाषा का समृद्ध रूप 'रसिकप्रिया' में द्रष्टव्य है। ब्रजभाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से होने के कारण उसमें प्राकृत और अपभ्रंश के शब्दों का प्रयोग होना स्वाभाविक है। ये शब्द ब्रजभाषा में घुल-मिलकर उसकी शब्दावली के अनिवार्य अंग बन गए हैं। अतः कहा जा सकता है कि केशव ने शब्द-समूह के अंतर्गत ब्रजभाषा की अपार शब्द-संपत्ति का प्रयोग किया है।

केशव ने ध्वनियों पर स्वतंत्र रूप से विचार नहीं किया है, किंतु ध्वनियों की उच्चारण-संबंधी कुछ विशेषताओं का निर्देश किया है। स्वरों के दीर्घीकरण और लघ्वीकरण के साथ ही स्वरों की अनुरूपता के संदर्भ में नियम दिए गए हैं। केशव ने काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा का चयन किया था, इसलिए ब्रजभाषा की समस्त ध्वनियों का प्रयोग उनकी काव्य-रचनाओं में देखने को मिलता है। अर्थ-परिवर्तन के अंतर्गत केशव की ध्वनियों का अध्ययन करने पर अरबी-फ़ारसी आदि विदेशी ध्वनियों में होनेवाले अनेक परिवर्तन उनकी रचनाओं में दिखाई पड़ते हैं। ध्वनि-विज्ञान के अंतर्गत केशव के काव्य में ध्वनि-परिवर्तन में स्वरागम और व्यंजन-लोप के उदाहरणों की अधिकता है।

केशव को संस्कृत का ज्ञान अपनी वंश-परंपरा से प्राप्त था। यद्यपि उनके समय तक ब्रजभाषा विकास की ओर अग्रसर हो रही थी, किंतु केशव ने संस्कृत और प्राकृत भाषा के व्याकरणिक नियमों का प्रयोग कर उसे एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया। उनके काव्य में संस्कृत विभक्तियों से युक्त पदविन्यास दिखाई देते हैं। केशव ने संस्कृत व्याकरण के नियमों के आधार पर नवीन शब्द रूपों का भी निर्माण किया है। लाला भगवानदीन के अनुसार—'भाषा में क्रियाओं के बहुत पुराने प्राकृत रूपों को भी अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक स्थान दिया है।'³

केशवदास रीतिकाल के उन कवियों में से हैं, जिन्होंने अपने काव्य में चमत्कार की सृष्टि करने के लिए अभिधा की अपेक्षा लक्षणा और व्यंजना शब्दशक्तियों को अधिक महत्त्व दिया है। अर्थ-विज्ञान के अंतर्गत केशव के अर्थतत्त्व पर विचार किया गया है। शब्दार्थ-निरूपण पर विचार करते हुए उनके काव्य का विश्लेषण करने पर इस बात की पुष्टि होती है कि केशव ने अपने काव्य में तथ्यपरक विवेचन के समय अभिधा शक्ति को और कथनों में बाँकपन की सृष्टि करने के लिए लक्षणा शब्दशक्ति को महत्त्व प्रदान किया है। लक्षणा शब्दशक्ति के प्रयोग की दृष्टि से 'रसिकप्रिया' का सबसे अधिक महत्त्व है, उसके प्रत्येक छंद में लक्षणा शब्दशक्ति का प्रयोग हुआ है। व्यंजना पर भी केशव का पूर्ण अधिकार था। केशव ने विभिन्न स्थलों पर व्यंजनात्मक उक्तियों का प्रयोग अपनी कृतियों में किया है।

भावों को तीव्रतर ढंग से व्यक्त करने के लिए तथा अर्थप्रतीति कराने के लिए केशव ने अपनी कृतियों में लोकोक्तियों एवं मुहावरों का भी प्रयोग किया है। उनके काव्य में प्रयुक्त मुहावरों ने उनकी अभिव्यक्ति को और अधिक सशक्त बना दिया है। डॉ० नगेंद्र के अनुसार—‘अलंकारों को चामत्कारिक और कथन को वक्र बनाने के लिए रीतिकाव्यों में मुहावरों का सहारा लिया गया है।⁴ केशव के काव्य में प्रयुक्त मुहावरों में अधिकांश बुंदेलखंडी, अवधी और ब्रज की बोलियों से तथा अनेक मुहावरें अरबी-फ़ारसी भाषाओं से रूपांतरित होकर आए हैं। जैसे ‘बिना खसम’⁵, ‘सिर नवाना’⁶ ‘सिर पर आ पड़ना’⁷ आदि मुहावरे अरबी और फ़ारसी भाषाओं से केशव द्वारा लिए गए हैं। मुहावरों के साथ-साथ केशव ने अपनी कृतियों में व्यावहारिक ज्ञान को व्यक्त करनेवाली उपयुक्त लोकोक्तियों का प्रयोग विशेष प्रयोजन के लिए किया है। लोकव्यवहार तथा काव्यभाषा में लोकोक्तियों या कहावतों का प्रयोग मुहावरों की अपेक्षा कम ही होता है, क्योंकि जहाँ मुहावरे काल, पुरुष, लिंग और वचन के अनुरूप स्वयं को ढाल लेते हैं, वहीं वाक्य में प्रयुक्त होने पर लोकोक्तियाँ अपरिवर्तित रहती हैं। अतः केशव ने विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए ही लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। केशव द्वारा प्रयुक्त लोकोक्ति और मुहावरे उनकी व्यवहार-कुशलता, प्रयोग-नैपुण्य और सूक्ष्म निरीक्षण के परिचायक हैं।

अलंकार-निरूपण के अंतर्गत भी केशव के काव्य में अर्थतत्त्व पर विचार किया गया है। केशवदास रीतिकाल के अलंकारवादी कवि थे, अतः शब्दार्थ प्रतीति के लिए उनकी कृतियों में अलंकार का विधान सायास और अनायास दोनों प्रकार से किया गया है। अर्थतत्त्व का अध्ययन करने की दृष्टि से केशव के काव्य में वर्णित शब्दालंकारों का महत्त्व अर्थालंकारों की अपेक्षा अधिक है।

भाषाविज्ञान में वाक्यविज्ञान का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। वाक्य-विचार के अंतर्गत केशव के काव्य में वाक्य की रचना, वाक्य के आवश्यक तत्त्व, पदक्रम, पदान्विति और वाक्य के प्रकार पर विचार किया गया है। केशव की वाक्य-संरचना में सरल और जटिल दोनों प्रकार के वाक्यों का प्रयोग किया गया है। जटिल वाक्यों में कई वाक्य आपस में गुँथे रहते हैं, किंतु इससे अर्थ-प्रतीति में कहीं भी बाधा उत्पन्न नहीं होती है। केशव के काव्य में कुछ वाक्य ऐसे हैं, जो एक शब्द में ही समाप्त हो जाते हैं, जबकि कुछ वाक्यों के लिए एक पूरे छंद का प्रयोग किया गया है। उनके काव्य में प्रयुक्त क्रियाहीन वाक्य अर्थबोध में कहीं बाधक नहीं बनते। संवाद-शैली में लिखे गए केशव के वाक्य प्रायः छोटे हैं, जबकि एकछंदीय वाक्य एक पूरे छंद के हैं।

केशव की वाक्य-संरचना कहीं सरल है और कहीं जटिल, किंतु वाक्य-विन्यास पूर्ण है, जिससे अभिव्यक्ति में कोई बाधा नहीं उत्पन्न होती है। ब्रजभाषा में क्रिया के पुरुष, लिंग और वचन कर्ता के अनुसार प्रयुक्त होते हैं। केशव की काव्यभाषा ब्रज होने के कारण वाक्यों में प्रायः सर्वत्र कर्ता और क्रिया पदों में अन्विति पाई जाती है। पदक्रम से तात्पर्य वाक्य में पदों के क्रम-निर्धारण से है। भाषाओं में अपनी प्रकृति के अनुसार सामान्यतया एक निश्चित क्रम होता है। यदि उसमें व्यतिक्रम हो जाए तो वाक्य की सार्थकता समाप्त हो जाती है। केशव के अधिकांश वाक्यों में कर्ता, कर्म और क्रिया का क्रम प्रयुक्त हुआ है, किंतु कुछ वाक्यों में इनके क्रम में परिवर्तन होने से उसमें अक्रमत्व दोष उत्पन्न हो गया है। दरअसल, ऐसा पद-विशेष पर

बल देने के लिए अथवा छंद की आवश्यकतानुसार ही किया गया है।

केशव के काव्य में विभिन्न प्रकार की शब्दावलियों का प्रयोग हुआ है। शब्दावली के नियोजन में केशव की कुशलता उनकी कृतियों में दिखाई पड़ती है। केशव अपने ज्ञान और पांडित्य के लिए प्रसिद्ध थे। साथ ही उनके काव्य में प्रयुक्त शब्दावलियों के वर्गीकरण और विश्लेषण से ज्ञात होता है कि उनके काव्य में जिस अंश तक जीवन अंकित है, उसकी सूक्ष्म और गहन जानकारी भी उन्हें प्राप्त थी।

केशव की प्रत्येक रचना में मंगलाचरण के अंतर्गत देवताओं की स्तुति से संबंधित छंदों में वंदनापरक शब्दावली का प्रयोग हुआ है। 'रसिकप्रिया' में केशव ने सभी रसों का निरूपण कर दिया है। अतः इस रचना में सभी रसों के अनुकूल शब्दावली का प्रयोग किया गया है। शृंगार, करुण और शांतरसों में माधुर्यगुण-संपन्न शब्दावली, वीर, रौद्र और वीभत्सरस में ओजगुण-संपन्न शब्दावली, तथा हास्य, भयानक और अद्भुतरसों में प्रसादगुण-संपन्न शब्दावली का प्रयोग केशवदास द्वारा किया गया है। भाषा पर पूर्ण अधिकार होने के कारण केशव को संवाद-लेखन में विशेष सफलता मिली है। संवादपरक शब्दावली की दृष्टि से 'रामचंद्रिका' अधिक महत्वपूर्ण है। 'विज्ञानगीता', 'जहाँगीर जसचंद्रिका' में छोटे संवादों में सीता-रावण-संवाद और सीता-हनुमान संवाद की शब्दावली तथा बड़े संवादों में रावण-वाणासुर और राम-परशुराम संवाद की शब्दावली का केशव द्वारा सुंदर प्रयोग किया गया है। शास्त्रीय शब्दावली के अंतर्गत केशव की 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' और 'छंदमाला' प्रमुख हैं। काव्यशास्त्रीय व्याख्या तथा विवेचन में केशव ने स्पष्ट, सरल और विश्लेषणात्मक शब्दावली का प्रयोग किया है। प्रेम-संबंधी विशिष्ट मनःस्थितियों और भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए केशव ने रसिकप्रिया, कविप्रिया और रामचंद्रिका में अनेक स्थलों पर भावनापरक शब्दावली का प्रयोग किया है।

केशवदास द्वारा प्राचीन कवियों की प्रभावशाली और मर्मस्पर्शी उक्तियों को अपनी कृतियों में समाहित किया गया है, जिसके लिए उन्होंने अनुवादपरक शब्दावली का प्रयोग किया है। केशव को अनुदित और अनुवाद दोनों ही भाषाओं का ज्ञान था, क्योंकि यह अनुवादक की आवश्यकता है। इसका प्रमुख कारण यह भी था कि केशव को संस्कृत भाषा का ज्ञान उनकी वंश-परंपरा से प्राप्त था और ब्रजभाषा को उन्होंने अपनी काव्यभाषा बनाया था। अतः इन दोनों भाषाओं पर उनका अधिकार था।

निष्कर्षतः भाषावैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से केशव का काव्य उत्कृष्ट कोटि का है। उनके काव्य में भाषा की परख, शब्द-शोधन की अभिरुचि, शब्द-ग्रहण की उदारता, उत्कृष्ट वाक्य-विन्यास और शब्दार्थ विवेचन के साथ ही पदलालित्य भी विद्यमान है। शब्दों को नवीन अर्थ प्रदान करना केशव की विशिष्टता है। यही कारण है कि केशव के परवर्ती आचार्यों ने उनके काव्य-कृतियों को उपजीव्य मानकर काव्य-रचना की, जो केशव की महानता का सूचक है।

संदर्भ

1. मिश्रबंधु, हिंदी नवरत्न, पृ० 343
2. डॉ० नगेंद्र, हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास (भाग 6) पृ० 268

3. लाला भगवानदीन, केशव कौमुदी, पृ० 6
4. डॉ० नगेंद्र, हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग 6 पृ० 235
5. केशवदास, वीरचरित्र, प्रकाश 8 छंद 52
6. केशवदास, रामचंद्रिका, प्रकाश, 30 छंद 1
7. केशवदास, रामचंद्रिका, प्रकाश, 15 छंद 5

□ 84/2 तिलकनगर, पूरादलेल
अल्लापुर, इलाहाबाद 211006 (उ०प्र०)

केशव के काव्य में शब्दार्थ-निरूपण

प्रतिभा पांडेय

भाषाविज्ञान की वह शाखा, जिसमें शब्दों या मुहावरों के अर्थों का अध्ययन किया जाता है, 'शब्दार्थ विज्ञान' या 'अर्थविज्ञान' कहलाती है। 'शब्द यदि शरीर है तो अर्थ उस शरीर में निवास करनेवाली आत्मा है। विचार, भाव, चिंतन, मन, संकल्प, विकल्प आदि अर्थ के पर्यायवाची हैं।' भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी अर्थतत्त्व को प्रमुख स्थान दिया गया है। प्रसिद्ध भाषातत्त्व-विचारक श्री भर्तृहरि ने शब्द अर्थ को एक ही आत्मा के दो धर्म या भेद स्वीकार किया है—

‘एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थविपृथकस्थितौ’²

केशव की भाषा के अर्थतत्त्व पर शब्दशक्ति, ध्वनि, अलंकार, मुहावरे और लोकोक्तियों के आधार पर विचार किया गया है। शब्दार्थ-निरूपण की दृष्टि से शब्दशक्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः सर्वप्रथम उस पर विचार कर लेना चाहिए।

शब्दशक्ति :

वाक्य में प्रयुक्त सार्थक शब्द के अर्थ-बोधक व्यापार के मूल कारण को शब्दशक्ति कहते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने तीन प्रकार के शब्द-वाचक, लक्षक, व्यंजक और तीन प्रकार के अर्थ-वाच्य, लक्ष्य, व्यंग्य तथा तीन प्रकार की शब्दशक्तियों अभिधा, लक्षणा और व्यंजना को मान्यता दी है। इस संबंध में 'विश्वनाथ' ने साहित्यदर्पण में लिखा है—

‘वाच्योऽर्थोऽभिधया बोध्यो लक्ष्यो लक्षणया मतः

व्यंग्यो व्यंजनया ताः स्थुस्तिस्त्र शब्दस्य शक्तयः।³

अर्थात् वाच्य अर्थ वह है, जो अभिधा शक्ति द्वारा प्रतिपादित किया जाता है। लक्ष्य अर्थ वह अर्थ है, जो लक्षणा-शक्ति द्वारा बोधित हुआ करता है और व्यंग्य अर्थ उसे कहते हैं, जो व्यंजना-शक्ति द्वारा अवगत किया जाया करता है। इस प्रकार शब्द की जो शक्तियाँ हैं, वे भी तीन प्रकार की हुआ करती हैं।

अभिधार्थ

चमत्कारवादी कवि होने के कारण केशव ने लक्षणा और व्यंजना को अभिधा से अधिक महत्त्व प्रदान किया है, किंतु कुछ स्थलों पर उन्होंने अभिधा-शक्ति का प्रयोग भी किया है। केशव के काव्य में इसके प्रयोग से अवगत होने के लिए सर्वप्रथम अभिधा के विषय में जानना आवश्यक है। अभिधा-शक्ति वह शक्ति है, जिससे प्रसिद्ध अर्थ का बोध हुआ करता है। इसलिए इसे शब्द की प्रथम शक्ति कहा जाता है। केशवदास ने अनेक प्रसंगों में अभिधा-प्रधान

भाषा का प्रयोग किया है—

‘विज्ञानगीता’ में दार्शनिक विषयों के विवेचन के समय केशव ने अभिधा का ही प्रयोग किया है।

अबिकारी जगदीस है भ्रम ही ते सबिकार।

‘केसव’ कारी रजुन में सूझत सर्पबिकार।⁴

केशव ने अपने ग्रंथों में कविवंश और नृपवंश का वर्णन करने के लिए अभिधा-प्रधान भाषा का प्रयोग किया है। ‘रामचंद्रिका’ से इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

सनाद्य जाति गुनाद्य है जगसिद्ध सुद्ध सुभाउ।

कृस्नदत्त प्रसिद्ध हैं जहँ मिश्र पंडितराउ।

गनेस सो सुत पाइयो बुध कासिनाश अगाध।

असेष शास्त्र विचारियो जिन जानियो मत साधु।⁵

उपज्यो तिनके मंदमति सुत कवि केशवदास।

रामचंद्र की चंद्रिका भाषा करी प्रकास।⁶

सोरह सै अट्ठावना कातिक सुदि बुधवार।

रामचंद्र की चंद्रिका तब लीनो अवतार।⁷

‘जहाँगीर जसचंद्रिका’ वीरचरित्र जैसे ऐतिहासिक काव्यों में भी अभिधा-प्रधान भाषा के दर्शन होते हैं—

दान लोभ तुम परम सुजान। जानत हौ सबके परवान।

अकबर साहि गए परलोक। जहाँगीर प्रभु प्रगटे लोक।⁸

केशवदास ने रस, रसांग, नायक-नायिका-भेद वर्णन, छंद और अलंकारों का निरूपण करने के लिए अभिधा-प्रधान शब्दावली का प्रयोग किया है। नायिका-भेद-वर्णन का एक उदाहरण इस प्रकार है—

मध्या आरूढजोबना, प्रगल्भबचना जानि।

प्रादुर्भूत मनोभवा, सुरति-विचित्रा आनि।⁹

प्रबंधकाव्यों के अंतर्गत जहाँ केशव ने कथा को इतिवृत्तों से आगे बढ़ाया है, वहाँ उन्होंने शब्द की अभिधाशक्ति का सहारा लिया है और वाच्यार्थ से ही वर्णन को सरस बना दिया है—

नृप पै वचन वसिष्ठ को, कैसे मेट्यो जाइ।

सौंप्यो विस्वामित्र कर, रामचंद्र अकुलाइ।¹⁰

राम चलत नृप के जुग लोचन वारि भरित भए वारिद लोचन।

पाइन परि रिषि के सजि मौनहि। ‘केसव’ उठि गए भीतर भौनहि।¹¹

लक्ष्यार्थ

मुख्यार्थ (अभिधार्थ) में बाधा उपस्थित होने पर मुख्यार्थ से ही संबंधित जो अन्य अर्थ रूढ़ि अथवा प्रयोजन के आधार पर ग्रहण किया जाता है, उसे लक्ष्यार्थ कहते हैं। लक्ष्यार्थ का बोध कराने वाली शब्दशक्ति लक्षणा शब्दशक्ति कहलाती है। विश्वनाथ ने ‘साहित्यदर्पण’ में

लक्षणा को इस प्रकार परिभाषित किया है—

मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो यथाडन्योऽर्थः प्रतीयते।

रूढे प्रयोजनाद्वासौ लक्षणा शक्तिरर्पिता।¹²

वस्तुतः औपचारिक प्रयोग, आलंकारिक प्रयोग, कहावतों तथा मुहावरों में शब्दों का प्रयोग आदि जितने भी अर्थ-परिवर्तन के कारण हैं, वे सब 'लक्षणाशक्ति' की ही देन हैं। केशवदास की उक्ति-वैचित्र्य और कथन के वाँकपन के प्रति विशेष रुचि थी, अतः उनके काव्य में लक्षणा के विभिन्न प्रयोग मिलते हैं। 'लक्ष्यार्थ' की दृष्टि से केशव की 'रसिकप्रिया' का सबसे अधिक महत्त्व है। एक ही छंद में शब्द के अनेक लाक्षणिक प्रयोग उपलब्ध होते हैं। उदाहरण प्रस्तुत है—

सिखै हारी सखी, डरपाइ हारी कादंबिनी
दामिनी दिखाइ हारी दिसी अधरात की।
झुकि-झुकि हारी राति, मारि-मारि हार्यो मार
हारी झकझोरत त्रिविध गति बात की।

दई निरदई दई याहि काहे ऐसी मति
जारति जु रैन-दिन दाह ऐसे गात की।
कैसे हूँ न मानै हौं मनाइ हारी केसोराइ।
बोलि हारी कोकिला बुलाई हारौ चातकी।¹³

उपर्युक्त कवित्त में 'हारना' शब्द के लाक्षणिक प्रयोगों के आधार पर केशव का लक्षणाशक्ति पर अधिकार परिलक्षित होता है।

व्यंग्य-विनोद की भाषा में कवि का शब्दशक्ति पर अधिकार परिलक्षित होता है। श्लेष के आधार पर केशव ने एक ही शब्द में अभिधा और लक्षणा दोनों शक्तियों का चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। उदाहरण इस प्रकार है—

बालि बली न बच्यो पर खोरिहि क्यो बचिहौ तुम आपनी खोरिहि।
जा लागि छीर समुद्र मथ्यो कहि कैसे न बाँधि है बारिधि थोरिहि।
श्रीरघुनाथ गनौ असमथ्य न देखि बिना रथ-हाथिन घोरिहि।
तोरयो सरासन संकर को जेहि सोऽब कहा तुव लंक न तोरिहि।¹⁴

अभिधार्थ यह है कि जिस राम ने (पर्वत से भी अधिक वज्रनी और वज्र से भी अधिक कठोर) शंकर का धनुष तोड़ दिया वह राम तुम्हारी लंका (लंक) क्यों नहीं तोड़ देगा? लक्ष्यार्थ है जिस राम ने (तुमसे अधिक शक्तिशाली तुम्हारे गुरु) शंकर का धनुष तोड़ दिया वह तुम्हारी कमर (लंक) क्यों नहीं तोड़ देगा।

केशव ने सबसे अधिक लक्षक पदों का व्यवहार मुहावरायुक्त पदावली में किया है। 'रसिकप्रिया' से इसके दो उदाहरण इस प्रकार हैं—

बैठी सखीनि की सोभै सभा सब ही के सु नैननि माँझ बसै।
बूझत बात बरयाइ कहै मन-ही-मन 'केसवराइ' हँसै।
खेलति है इत खेल उतै पिय चित्त खिलावति यों बिलसै।

कोऊ जानै नहीं दृग दौरि कबै, कित हवैं हरि-आनन छवै निकसै।¹⁵
उपर्युक्त उदाहरण में नेत्रों में बसना वाक्यांश में लक्षणा का चमत्कार है।

तो बिन कहै को गाथ धीरता न ताके साथ।

मोहि को मिलावै हाथ लाज के बिकानी है।¹⁶

उपर्युक्त उदाहरण 'लाज के हाथ बिकना' में लक्षणा का चमत्कार है।

लक्षणा शब्दशक्ति के लक्ष्यार्थ के आधार पर दो भेद हैं—रूढ़ा लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा। रूढ़ा लक्षणा—जहाँ मुख्यार्थ में बाधा होने पर रूढ़ि के आधार पर लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है, वहाँ रूढ़ा लक्षणा होती है। इस पर आधारित केशव के कुछ प्रयोग निम्नलिखित हैं—

बेनु सुनाइ बुलाई लई बन भौन बुलाई के भौति भली को
फूलि गयो मन फूल्यो विलोकत 'केसव' कानन रास भली को
अधरा-रस प्याइ कियो परिरंभन चुंबन के मुख काम कली को
हेलहिं श्री ब्रजनागर आजु हरयो मन श्री वृषभानु लली को।¹⁷
आतुर हवै उठि दौरी अली, जन आतुर ज्यो गहियै सु गही त्यों
हो मेरी रानी कहा भयो तो कहूँ बूझति 'केसव' बूझियै री ज्यों।
डीठि लगी किधौं प्रेत लग्यो कि लग्यो उर प्रीतम जाहि डरी यों।
आनन सीकर सी कहियै धक सोवत से अकुलाइ उठी क्यो।¹⁸

उपर्युक्त उदाहरणों में मन फूलना, डीठि लगना और प्रेत लगना का रूढ़ि के आधार पर अर्थ क्रमशः अतिशय प्रसन्न होना, टोना लगता और पागल होना है।

प्रयोजनवती लक्षणा

मुख्यार्थ में बाधा होने पर किसी विशेष प्रयोजन के लिए जब लक्ष्यार्थ का बोध किया जाता है, वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है। केशव की 'रामचंद्रिका' से प्रयोजनवती लक्षणा का उदाहरण इस प्रकार है—

भूतलहूँ दिबि भीर विराजै। दीह दुहूँ दिसि दुंदुभि बाजै।
भाट भले विरदावलि गावैं। मोद मनौ प्रतिबिंब बढ़ावैं।¹⁹
भूतल की रज देव नसाकैं। फूलन की वरषा बरसावैं।
हीन-निमेष सबै अवलोकैं। होड़ परी बहुधा दुहूँ लोकै।²⁰

दोनों लोकों (पृथ्वी और देवलोक) में होड़ नहीं हो सकती, अतः अभिधार्थ के अवरुद्ध हो जाने से 'दुहूँ लोक का अर्थ—'दोनों लोक के निवासी हैं।'

मुख्यार्थ एवं लक्षार्थ के संबंध के आधार पर लक्षणा के दो भेद हैं—गौणी लक्षणा और शुद्धा लक्षणा।

गौणी लक्षणा

जहाँ गुण सादृश्य के आधार पर लक्ष्यार्थ का बोध होता है, वहाँ गौणी लक्षणा होती है, केशवदास की 'कविप्रिया' से उदाहरण इस प्रकार है—

सोभा सरवर माहि फूल्यो ई रहत सखि,
राजैं राजहंसिनी समीप सुददानियै।

‘केसोदास’ आसपास सौरभ के लोभ घने।
घनानि के देव भौर भ्रमत बखानियै।
होति जोति दिन दूनी निसि में सहसगुनी।
सूरज सुहृद चारू चंद्र मन मानियै।
रति को सदन छूड़ सके न मदन ऐसो
कमलबदन जग जानकी को जानिए।²¹

उपर्युक्त कवित्त में सोभा का सरवर, सखियों का राजहंसिनी, देवियों का भ्रमरी और मुख का कमल होने में समान गुण होने के कारण इनके लाक्षणिक अर्थ को लिया गया है। मुख की कोमलता कमल जैसी प्रदर्शित करने के लिए उसकी समता कमल से की गई है, अतः सादृश्यगुण से संबंधित होने के कारण यहाँ गौणी लक्षणा है।

शुद्धा लक्षणा

जहाँ सादृश्यगुण को छोड़कर अन्य किसी आधार जैसे समीपता, साहचर्य, आधार-आधेय संबंध के आधार पर लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है, वहाँ शुद्धा लक्षणा होती है। शुद्धा लक्षणा के आधारभूत संबंध हैं—समीप्यसंबंध, आधारआधेयसंबंध, कारण-कार्यसंबंध, साहचर्य संबंध तात्कर्म्य संबंध, अंगांगिभान संबंध।

पहिलैं सुख दै सब ही को सखी, उत ही हठि के जु हरी मति मीठी
दूजे लै जीवनमूरि अकूर गयो अंग-अंग लगाइ अँगीठी
अब धौं किहि कारन ‘केसव’ ये उठि धाए हैं ऊधव झूठी बसीठी।
माथुर लोगनि के सँग को वह बैठक तोहिं अजौं न उबीठी।²²

उपर्युक्त सवैये में उद्धव के आगमन पर गोपियों के आपसी वार्तालाप का वर्णन किया गया है, दूसरी पंक्ति में गोपियाँ कहती हैं, ‘अकूर’ जीवनमूरि अर्थात् कृष्ण को लेकर चले गए और गोपिकाओं के अंग-अंग में अँगीठी लगा गए। यहाँ वाच्यार्थ के बाधित होने पर लक्षणा से इसका अर्थ होगा ‘विरह-जनित दुख का देना’।

अतः तात्कर्म्य संबंध से अर्थ-प्राप्ति होने के कारण शुद्धा लक्षणा है।

मुख्यार्थ की उपस्थिति और अनुपस्थिति के आधार पर लक्षणा के पुनः दो भेद हैं—लक्षण लक्षणा और उपादान लक्षणा।

लक्षण-लक्षणा

इसमें मुख्यार्थ पूरी तरह समाप्त हो जाता है, तभी लक्ष्यार्थ का बोध होता है। केशव के काव्य में इसके प्रयोग से संबंधित उदाहरण प्रस्तुत है—

कहि हाइहाइ उठि देह सँभारयो। लिय अंग संग सब मंत्रिय चार्यौ
तजि अंधु बंधु दसकंधु उड़ान्यो। उर रामचंद्र जगतीपति आन्यो।²³

मोहन-साथ कहा निसि द्यौस रहे सतरंजहि के मिस बैठी।
‘केसव’ क्योंहूँ सुनै महितारी तौ राखहि री! घर ही महपैठी।
हौं सिखऊँ सुखदै सिख तोहि तैं भौंह चढ़ाइ कै डीठि अनेठी।

कौ न लड़ैती सरूप न काहि तुहीं कछू जाति अकासहि ऐंठी।²⁴
 उपर्युक्त उदाहरणों में 'अंधु बंधु दसकंधु' और 'आकाश में ऐंठना' में लक्षण लक्षणा है, क्योंकि यहाँ मंतव्य वाच्यार्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ से प्रकट होता है।

उपादान लक्षणा

जहाँ मुख्यार्थ बना रहता है तथा लक्ष्यार्थ का बोध मुख्यार्थ के साथ ही होता है, वहाँ उपादान लक्षणा होती है। केशव के काव्य से उपादान लक्षणा का उदाहरण प्रस्तुत है—

बालक मृनालनि ज्यों तोरि डारै सब काल
 कठिन कराल वै अकाल दीह दुख को।
 विपति हरति हठि पंकज के पात सम
 पंक ज्यों पाताल पेलि पठवै कलुष को।
 दूरि कै कलंक-अंक भव सीस-ससि सम,
 राखत है 'केसोदास' दास के वपुष को।
 साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तोरै।
 दसमुख मुख जाँवे गजमुख-मुख को।²⁵

उपर्युक्त 'कवित्त' में गजमुख का वाच्यार्थ हाथी के समान मुख वाला है, किंतु यहाँ उपादान लक्षणा होने के कारण लक्ष्यार्थ 'गणेश' होगा।

एक अन्य उदाहरण में उपादान लक्षणा का प्रयोग द्रष्टव्य है—

देखत ही चित्र सूनी चित्रसाला बाला आजु,
 रूप की सी माला राधा रूपकु सुहाए री।
 नूपुर के सुरनि के अनुरूप तानें लेति,
 पग तल ताल देति अति मन भाए री।
 ऐसे में दिखाई दीनी औचकाँ कुँवर कान्ह,
 जैसे भए गात तैसे जात न बताए री।
 'केसोदास' कहै परै अलज सलज से न
 जलज-से लोचन जलद हवै आए री।²⁶

उपर्युक्त कवित्त में 'जलज-से लोचन' और 'जलद-से हवै आए' का वाच्यार्थ कमल-से खिले हुए और बादल-से जलपूर्ण है, किंतु इसका लक्ष्यार्थ प्रसन्नता और दुःख है।

उपमेय और उपमान की उपस्थिति और अनुपस्थिति के आधार पर लक्षणा के दो भेद हैं—सारोपा लक्षणा और साध्यवसाना लक्षणा।

सारोपा लक्षणा

जहाँ उपमेय और उपमान में अभेद आरोप करते हुए लक्षार्थ की प्रतीति हो, वहाँ सारोपा लक्षणा होती है। केशव के काव्य से इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

चढ़ो गगनतरु धाइ, दिनकर बानर अरुन मुख।
 कीन्हों झुकि झहराइ, सकल तारकाकुसुम बिन।²⁷

कान्ह भलें जु भलें समुझाइहौं मोह-समुद्र को ज्यों उमहयो हो।

‘केसव’ आपनो मानिक सो मन हाथ पराएँ दै कौने लह्यो हो।
 नैननि ही मिलिबो करियै अब बैननि को मिलिबो तो रह्यो हो।
 जाइ कह्योँ तुम जैसे सखीनि सो एहो गुपाल मैं ऐसो कह्यो हो²⁸

उपर्युक्त उदाहरणों में मोह-समुद्र और तारका-कुसुम में उपमेय के साथ उपमान भी स्पष्ट रूप से कथित है और उपमेय पर उपमान का आरोप भी प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। अतः यहाँ सारोपा लक्षणा है।

साध्यवसाना लक्षणा

इसमें केवल उपमान का कथन होता है, लक्ष्यार्थ की प्रतीति हेतु उपमेय पूरी तरह छिप जाता है। केशव द्वारा इसका प्रयोग प्रस्तुत उदाहरण में द्रष्टव्य है—

सोने की एक लता तुलसी बन क्यों बरनौ सुनि बुद्धि सकै छवै।
 ‘केसवदास’ मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से द्वै।
 फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप, निरूपत चित्त चलै च्वै।
 तापर एक सुवा सुभ तापर खेलत बालक खंजन के स्वै²⁹

उपर्युक्त सवैये में उपमेय का लोप है। केवल नायिका के अंगों के उपमान वर्णित हैं। सोने की लता, श्रीफल, सरोज, सुवा और खंजन-बालक का लक्ष्यार्थ नायिका, पयोधर, मुख, नाक और नेत्र हैं। अतः इन शब्दों में साध्यवसाना लक्षणा है।

व्यंग्यार्थ

शब्द की तीसरी शक्ति व्यंजना-शक्ति है। अभिधा और लक्षणा शक्ति अपने अर्थ का बोध कराकर जब विरत हो जाते हैं, तब जिस शब्द-शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ ज्ञात होता है, उसे व्यंजना शक्ति कहते हैं। व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराने वाले शब्द को व्यंजक शब्द और अर्थ को व्यंग्यार्थ कहते हैं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने व्यंजना को इस प्रकार परिभाषित किया है—

विरतास्वभिधाद्यासु ययाऽर्थो बोरूयते परः

सा वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्द स्यार्थादिकस्य च।³⁰

केशव की कृतियों में अनेक स्थलों पर व्यंजना शब्दशक्ति से संबंधित उक्तियों का प्रयोग हुआ है, किंतु रसिकप्रिया ‘कविप्रिया’ और ‘रामचंद्रिका’ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। रामचंद्रचंद्रिका के संवादों में भी इसके द्वारा मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। रावण-सीता-संवाद के प्रसंग का एक छंद द्रष्टव्य है—

कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै। हितू नग्न मुंडी नहीं को सदा है।

अनाथै सुन्यो मैं अनाथानुसारी। बसैं चित्त दंडी जटी मुंडधारी।³¹

उपर्युक्त छंद का अभिधार्थ प्रसंगानुकूल उतना प्रभावशाली नहीं है और न रावण जैसे नीतिज्ञ, महाज्ञानी और निपुण राजा के अनुरूप ही। अतः केशव का अभिप्रेत अर्थ यहाँ व्यंजना के आधार पर व्यक्त हुआ है।

शब्द और अर्थ की दृष्टि से व्यंजना के मुख्यतः दो भेद किए गए हैं—शाब्दी व्यंजना और अर्थी व्यंजना

शाब्दी व्यंजना—जहाँ शब्द-विशेष के कारण व्यंग्यार्थ का बोध होता है और वह शब्द हटा देने

पर व्यंग्यार्थ समाप्त हो जाता है, वहाँ शाब्दी व्यंजना होती है। केशव के काव्य का एक उदाहरण इस प्रकार है—

दनुजन सों दितिसुतन सों, असुरै कहत बखानि।

ईस-सीस ससि बृद्ध की, बरनत बालक-बानि।³²

प्रस्तुत दोहे में ईस का अर्थ है— स्वामी, मालिक, राजा, पति, शिव आदि; किंतु यहाँ व्यंग्यार्थ 'शिव' है क्योंकि इसके स्थान पर कोई भी दूसरा शब्द रख दिया जाए तो व्यंग्यार्थ समाप्त हो जाएगा।

व्यंग्यार्थ और वाच्यार्थ के संबंध के आधार पर शाब्दी व्यंजना को पुनः दो वर्गों में विभक्त किया गया है—अभिधामूला शाब्दी व्यंजना और लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना।

अभिधामूला शाब्दी व्यंजना—

यहाँ पर एक ही शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, वहाँ किस अर्थ-विशेष को ग्रहण किया जाए इसका निर्णय अभिधामूला शाब्दी व्यंजना करती है। इस व्यंजना में शब्द का पर्याय रख देने से व्यंजना का लोप हो जाता है। केशव ने अपने काव्य में अनेक स्थलों पर इस व्यंजना का प्रयोग किया है। जैसे—

रे कपि कौन तू? अक्ष का घातक दूत बली रघुनंदन जू को।

को रघुनंदन रे? त्रिसिरा खर-दूषन भूषन भू को।

सागर कैसे तरयो? जस गोपद, काज कहा, सिय चोरहि देखो।

कैसे बँधाए, जु सुंदरि तेरी छुई दृग खोवत पातक लेखो।³³

यहाँ वाच्यार्थ से सीधे व्यंग्यार्थ प्राप्त हो जाता है। इसलिए अभिधामूला शाब्दी व्यंजना है। व्यंग्यार्थ यह है कि जब हनुमान दूत होकर अकेले ही अक्षयकुमार का सेना सहित संहार कर देते हैं, समुद्र को गोपद के समान आसानी से पार कर लेते हैं तो इसके स्वामी राम कितने बलवान या शक्तिशाली होंगे? रावण का संहार करने में उन्हें ज़रा भी देर नहीं लगेगी।

अभिधामूला व्यंजना अनेकार्थक शब्दों के किसी एक अर्थ को निश्चित करती है। इस प्रकार व्यंग्यार्थ की सिद्धि होती है। भर्तृहरि ने अपने व्याकरणशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रंथ 'वाक्यपदीय' में अनेकार्थक शब्दों का एकार्थ में नियंत्रण करने के 14 कारणों संयोग, विप्रयोग, साहचर्य, विरोधिता, अर्थ, प्रकरण, लिंग, अन्य शब्द सन्निधि, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति और स्वर का उल्लेख किया है। इन कारणों के आधार पर केशव के काव्य में अनेक प्रयोग देखने को मिलते हैं। एक उदाहरण निम्नलिखित है—

लंक लगाइ दई हनुमंत विमान बचे अति उच्चरुखी है।

पाचि फटैं उचटैं बहुधा मनि रानि रहैं पानी-पानी दुखी है।

कंचन को पछिलो पर पूर पयोनिधि में पसरे ति सुखी है।

गंग हजार मुखीगुनि 'केसो' गिरा मिली मानो अपारमुखी है।³⁴

यहाँ शब्द का अर्थ उसके गुण अथवा धर्म (लिंग) विशेष के आधार पर निर्धारित किया गया है। 'कंचन' का अर्थ यहाँ 'धतूरा' नहीं होगा, क्योंकि 'पघिलो' (पिघलना) गुण सोने का है। अतः इसका अर्थ सोना होगा।

लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना

जहाँ किसी शब्द के लाक्षणिक अर्थ से उसके व्यंग्यार्थ पर पहुँचा जाए और शब्द का पर्याय रख देने से व्यंजना का लोप हो जाए, वहाँ लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना होती है। केशव के काव्य में अनेक छंदों में इसका प्रयोग हुआ है। उदाहरण—

नैननि के तारनि में राखौ प्यारे पूतरी कै
मुरली ज्यों लाइ राखौ दसन-बसन में।
राखौ भुज बीच बनमाली बनमाला करि
चंदन ज्यों चतुर चढ़ाइ राखौ तन में
'केसोराइ' कलकंठ राखौ बलि कटुला के
करम करम क्यों हूँ आनी है भवन में।
चंपककली ज्यों कान्ह सूँघ सूँघ देवता ज्यों।
लेहु मेरे लाल! इन्हें मेलि राखौ मन में।³⁵

राधा-कृष्ण के मिलन के अवसर पर सहेली कृष्ण से राधा को सशरीर आँखों में रखने, मुरली की भाँति अधरों पर रखने, बनमाला की भाँति भुजाओं के मध्य हृदय पर रखने चंदन की तरह तन पर चढ़ाकर रखने के लिए कहती है; किंतु यहाँ अभिधार्थ के बाधित होने से उसका व्यंग्यार्थ कृष्ण के प्रेम की अधिकता व्यंजित होता है।

आर्थी व्यंजना : जब व्यंजना किसी शब्द-विशेष पर आधारित न होकर अर्थ पर आधारित होती है, तब वहाँ आर्थी व्यंजना मानी जाती है। केशव के निम्नलिखित कुंडलियाँ छंद में आर्थी व्यंजना है—

तातें नृप सुग्रीव पै, जैये सत्वर तात।
कहियो वचन बुझाइ कै कुसल न चाहौ गात।
कुसल न चाहौ गात, चहत हौ बालिहि देखो।
करहु न सीतासोध कामबस राम न लेख्यो।
राम न लेख्यो चित्त लही सुख-संपति जातें।
मित्र कहयो गहि बहि कानि कीजत है तातें।³⁶

उपर्युक्त कुंडलियों में राम के द्वारा सुग्रीव को प्रेषित संदेश में कहा गया है—'हे सुग्रीव तुम मेरा काम नहीं कर रहे हो।' लगता है तुम बालि को देखना चाहते हो। बालि की मृत्यु हो गई है। वह देवलोक में है, इसलिए सुग्रीव उसे मरकर ही देख सकेगा। इस तरह बालि को देखने का व्यंग्यार्थ यहाँ मरना है। यदि बालि और देखना शब्द के स्थान पर उनके पर्यायवाची भी रख दिए जाएँ तो भी व्यंग्यार्थ रहेगा।

आर्थी व्यंजना के भेदों के अंतर्गत मुख्य भेद है वाच्य संभवा, लक्ष्य संभवा और व्यंग्य संभवा केशवदास के प्रयोग-कौशल का परिचय देने के लिए इनकी विवेचना यहाँ की गई है।

वाच्य-संभवा

जहाँ पर वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ का ग्रहण अनिवार्य हो जाए, वहाँ वाच्य संभवा आर्थी व्यंजना होती है। उदाहरण प्रस्तुत है—

कौन के सुत? बालि के, वह कौन बालि न जानिए।
 काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए।
 है कहाँ वह? वीर अंगद देवलोक बताइयो।
 क्यों गयो? रघुनाथ बान-बिमान बैठि सिधाइयो।³⁷

उपर्युक्त उदाहरण में देवलोक का पर्याय भी रख दिया जाए तो व्यंग्यार्थ में अंतर नहीं पड़ेगा।

लक्ष्य-संभवा

जहाँ व्यंग्यार्थ की सिद्धि वाच्यार्थ से न होकर लक्ष्यार्थ से होती है, वहाँ लक्ष्य संभवा आर्थी व्यंजना होती है। उदाहरण—

श्री नृसिंह प्रहलाद की बेद जो गावत गाथा।
 गए मास दिन आसुही झूठी है नाथ।³⁸

यहाँ लक्ष्यार्थ से अभिप्रेत अर्थ व्यंजित हुआ है। अतः लक्ष्यसंभवा आर्थी व्यंजना है।

व्यंग्य-संभवा

जहाँ व्यंग्यार्थ से व्यंजना निकलती है, वहाँ व्यंग्य-संभवा आर्थी व्यंजना होती है। जैसे—

नीकै कै किवार देहौ, द्वार-द्वार दरबार,
 'केसोदास' आस-पास सूरज न छावैगो।
 छिन में छवाय लैहो ऊपर अटानि आजु
 आँगन पटाइ लैहों जैसे मोहि भावैगो।
 न्यारे-न्यारे नारदान मूँदौंगी झरोखा-जाल
 पाइहै न पानी, पौन आवन न पावैगो।
 माधव तिहारे पीछे मोपहँ मरन मूढ
 आवन कहत सु धौ कौन पैँडे आवैगो।³⁹

यहाँ केशव का अभिप्रेत अर्थ व्यंग्यार्थ से व्यंजित हुआ है। अतः व्यंग्य-संभवा आर्थी व्यंजना है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि केशव के शब्दार्थ निरूपण के अंतर्गत शब्दशक्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है और केशव के काव्य में इनका प्रयोग कुशलतापूर्वक किया गया है।

संदर्भ

1. डॉ० अंबाप्रसाद 'सुमन', पृ० 175
2. भर्तृहरि, वाक्यपदीय, 2/31
3. विश्वनाथ, साहित्य-दर्पण, द्वितीय परिच्छेद, श्लोक 3
4. केशवदास, विज्ञानगीता, प्रभाव 17, छंद 36
5. केशवदास, रामचंद्रिका, प्रकाश 1, छंद 4
6. वही, छंद 5

7. वही, छंद 6
8. वही, वीरचरित्र, प्रकाश 9, छंद 12
9. वही, रसिका प्रिया, प्रभाव 3, छंद 32
10. वही, रामचंद्रिका, प्रकाश 2, छंद 26
11. वही, छंद 27
12. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद, श्लोक 5
13. केशवदास, रसिका प्रिया, प्रभाव 13, छंद 12
14. वही, रामचंद्रिका, प्रकाश 15, छंद 7
15. वही, रसिकप्रिया, प्रभाव 3, छंद 70
16. वही, प्रभाव 5, दंद 3
17. वही, प्रभाव 6, छंद 20
18. वही, प्रभाव 4, छंद 13
19. वही, रामचंद्रचंद्रिका, प्रकाश 22, छंद 3
20. वही, छंद 4
21. वही, कविप्रिया, प्रभाव 13, छंद 16
22. वही, प्रभाव 3, छंद 34
23. वही, रामचंद्रिका, प्रकाश 15, छंद 14
24. वही, रसिकप्रिया, प्रभाव 12, छंद 3
25. वही, कविप्रिया, प्रभाव 6, छंद 66
26. वही, रसिकप्रिया, प्रभाव 5, छंद 13
27. वही, रामचंद्रिका, प्रकाश 5, छंद 13
28. वही, रसिकप्रिया, प्रभाव 3, छंद 49
29. वही, कविप्रिया, प्रभाव 13, छंद 18
30. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद, श्लोक 92
31. केशव, रामचंद्रिका, प्रकाश 13, छंद 58
32. वही, कविप्रिया, प्रभाव 4, छंद 15
33. वही, रामचंद्रिका, प्रकाश 14 छंद 1
34. वही, छंद 11
35. वही, रसिकप्रिया, प्रभाव 5, छंद 27
36. वही, रामचंद्रिका, प्रकाश 13, छंद 28
37. वही, प्रकाश 16, 6
38. वही, प्रकाश 14, छंद 30
39. वही, कविप्रिया, प्रभाव 10, छंद 16

□ 84/2 तिलकनगर, पूरादलेल
अल्लापुर, इलाहाबाद 211006 (उ०प्र०)

गोपालदास नीरज : जीवन दर्शन

मंजू चौहान

गोपालदास 'नीरज' आधुनिक युग के ऐसे शीर्षस्थ कवि हैं, जिनके व्यक्तित्व में न जाने क्या-क्या छिपा हुआ है। वह मंच कवि होने के साथ-साथ एक सफल गीतकार भी है। नीरज जी ने अपने अंदर के मंच कवि को खुला एवं विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया है ताकि उनकी प्रतिभा सभी के समक्ष उजागर हो और सभी के हृदय में अपना आधिपत्य स्थापित कर सकें। नीरज जी के व्यक्तित्व के विषय में जितना कहा जाए, उतना कम है। आज देश का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जो नीरज जी के नाम से अनभिज्ञ हो।

नवयुग के निर्माता युवाशक्ति के प्रणेता, काव्य के शिरोमणि और काव्य-विकास को जानने-समझनेवाले नीरज जी का जन्म उत्तरप्रदेश के इटावा ज़िले में पुरावली नामक गाँव में 4 जनवरी 1925 को हुआ। इनके पिता का नाम बाबू ब्रजकिशोर था। इनके पिता की मृत्यु इनके बचपन में ही हो गई थी। पिता के न होने से उनके घर पर सभी को आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ा। घर में माँ के साथ-साथ दो भाई और भी थे। आर्थिक तंगी के कारण जो पैतृक संपत्ति थी, वह भी बेच दी गई। आर्थिक परिस्थितियों के कारण इनके फूफा जी एडवोकेट बाबू हरदयाल प्रसाद इन्हें अपने साथ एटा ले गए। वहाँ पर उन्हें जो भी काम मिला, उसे खुशी-खुशी किया। 1942 में नीरज जी को यशोदा जी से प्रेम हुआ, लेकिन उनका यह प्रेम सफल नहीं हो सका। उसी से प्रेरित होकर नीरज जी ने 'कितना एकाकी मम जीवन' पंक्तियाँ लिखीं। जो उनके असफल प्रेम के प्रभाव से फूट पड़ी—

कितना एकाकी मम जीवन

किसी पेड़ पर यदि कोई पक्षी का जोड़ा बैठा होता,
तो न उसे भी आँखें भरकर मैं इस डर से देखा करता,
कहीं नज़र लग जाए न इनको।'

नीरज जी ने 1955 में मेरठ के एक कॉलेज में अस्थायी रूप से कार्य किया। इसके बाद नीरज जी ने 1956 से 1970 तक धर्म समाज कॉलेज अलीगढ़ के हिंदी विभाग में अध्यापन कार्य किया। इसके बाद नीरज जी ने दो वर्ष का अवकाश लिया तो वहाँ अध्यापकों ने उनकी अनुपस्थिति में गड़बड़ी करनी शुरू कर दी। जब इस बारे में जानकारी हुई तब वह तुरंत वहाँ गए, लेकिन वहाँ का माहौल उन्हें तनिक भी पसंद नहीं आया। कुछ बदला-बदला-सा नज़र आया तो काका हाथरसी ने कहा— 'तुम नौकरी के चक्कर में क्यों पड़े हो। छोड़ क्यों नहीं देते? इस सम्मेलन से तुम पाँच सौ रुपए लेकर आए हो न?'²

नीरज जी ने कविता-पाठ नवीं कक्षा से प्रारंभ किया था। सर्वप्रथम उन्होंने एटा में

कविता पढ़ी, जिसमें उन्हें पाँच रूप मिले जो आज के हज़ारों लाखों से कहीं ज़्यादा थे। नीरज जी आज जिस शिखर पर हैं, वह सब उनके परिश्रम का परिणाम है। नीरज जी को कविताओं से लगाव बचपन से ही था, उन्हें कविता कहने-सुनने की प्रेरणा विरासत में नहीं मिली, यह सब उनके सतत परिश्रम का ही परिणाम है, जिसे उन्होंने अपने अंदर अर्जित ज्ञान एवं अभ्यास से विकसित किया है।

नीरज जी बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण व्यक्तित्व के स्वामी हैं। वह सदैव जाग्रत और प्रत्येक परिस्थिति में संतुलित रहनेवाले व्यक्ति हैं। नीरज जी की माता जी सदैव उनकी प्रेरणा रही हैं। उन्होंने कभी नीरज जी को कुछ ग़लत नहीं करने दिया। समय-समय पर हमेशा उनके साथ रही। सही-ग़लत की पहचान कराई। उनके जीवन में नियमितता, विनम्रता, व्यवहारकुशलता, व्यापक दृष्टिकोण एवं शालीनता लाने का श्रेय उनकी पहली पत्नी सावित्री जी को जाता है, जिनसे उन्हें कार्य करने की सही प्रेरणा मिलती रहीं। अनुशासनप्रियता, मनमौजी स्वभाव, फक्कड़ स्वभाव, प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं फकीरी स्वभाव उनके चरित्र की विशेषताएँ हैं। नीरज जी अपने आपमें मस्त रहनेवाले कवि हैं। वह एक फकीरी के रूप में अपने आपको मानते हैं। इनके स्वभाव में बनावटीपन बिल्कुल दिखाई नहीं देता है, जैसे वह ऊपर से है वैसे ही उनका स्वभाव अंदर से है। उन्होंने अपने लिए कहा है—

चलो घट-घाट पर यारो, क्या रक्खा, आलमगीरी में,
जो आए मज़ा-फकीरी में
वह मस्ती कहाँ अमीरी में।³

नीरज जी मानव से प्रेम करनेवाले व्यक्ति हैं, इसलिए आज वह मानव के दिलों पर राज करते हैं। नीरज जी अत्यंत मेहनती व्यक्ति हैं। आज 87 वर्ष की अवस्था होने पर भी उनमें अत्यंत जोश है। संघर्षों से घबराकर बैठ जाना उन्हें तनिक भी पसंद नहीं है। वह अपने जीवन को सादगी से व्यतीत करने में ही विश्वास रखते हैं। उनके कविता पाठ में मादकता रहती है। नीरज जी हमारे राष्ट्र का गौरव हैं। उनसे किसी का भी दुःख देखा नहीं जाता। 1943 में बंगाल में पड़े अकाल से नीरज जी बहुत प्रभावित हुए। वहाँ उन्होंने भूख से बिलखते बच्चों को देखा, कुत्तों को रोटी के लिए झपटते देखा, तब उनसे रहा नहीं गया और घर आकर उस विषय पर कविता लिखी और कलकत्ते में तीन दिन का आखंड कवि-सम्मेलन कराया, ताकि कुछ धन एकत्रित हो सके। तब वहाँ पर नीरज जी ने एक कविता सुनाई—

मैं विद्रोही हूँ, जग में विद्रोह कराने आया हूँ,
क्रांति-क्रांति का सरल सुनहरा राग सुनाने आया हूँ।

नीरज जी को सर्वप्रथम कविता लिखने की प्रेरणा हरिवंशराय बच्चन जी से मिली, जब उन्होंने बच्चन जी की 'निशा-निमंत्रण' रचना पढ़ी तो वे अत्यंत प्रभावित हुए फलस्वरूप 1943 में नीरजजीवंत प्रथम काव्य-संग्रह 'संघर्ष' प्रकाशित हुआ। नीरज जी ने सर्वप्रथम एटा के एक कवि-सम्मेलन में अपनी कविता पढ़ी, तभी से नीरज जी मंचकवि के रूप में जाने गए। उन्होंने ठीक ही कहा—

मुझको जीवन आधार नहीं मिलता
आशाओं का संसार नहीं मिलता

भवसागर के लहरों के आलोड़न से
मैं टकराता-फिरता तट के कण-कण से।⁵

नीरज जी को लगातार कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। त्यागपत्र देने के बाद नीरज जी ने कविताएँ लिखनी प्रारंभ कर दी। इन कविताओं से नीरज जी लोकप्रिय होने लगे। वहाँ लोगों ने नीरज जी के विषय में गलत ही अंदेशा लगाया। नीरज जी दुनिया में एक विवादित कवि बनकर रह गए। कुछ साहित्यकारों और आलोचकों ने उनके खिलाफ रोष भी जगाया। इस रोष के कारण नीरज जी की प्रसिद्धि और अधिक होने लगी। जो लोग नीरज जी को नहीं जानते थे, वे भी उन्हें नजदीकी से जान गए। देश के कोने-कोने में नीरज जी विख्यात होने लगे। साहित्यकारों में, रचनाकारों में उनका स्थान सर्वोपरि होने लगा। उनकी इसी प्रसिद्धि के कारण लोग आज भी अपने हृदय में स्थान देते हैं। वास्तव में नीरज जी जब मंच पर होते हैं, तब वह मंच की जान बन जाते हैं। उनका कविता पाठ करना किसी नशे से कम नहीं है। उनके कविता पाठ में इतन अधिक मादकता है कोई कोई सुने तो वह मदहोश हो जाए। नीरज जी की आवाज में मानो जादू है जो सभी को अपनी ओर खींच लेता है। उनकी कविता में यथार्थता के दर्शन होते हैं। इसलिए उन्हें यथार्थवादी कवि भी कहा जाता है। नीरज जी मस्त रहनेवाले कवि हैं और सभी के दर्द को अपना दर्द मानते हैं। उनसे मानव का दर्द छिपा नहीं है। उनके पास कोई भी आ जाए, वह कभी किसी को निराश नहीं करते। वे हमेशा सबकी सहायता के लिए तत्पर रहते हैं। जो नीरज जी ने एक गीत में लिखा है—

औरों का धन सोना-चाँदी
अपना धन तो प्यार रहा
दिल से जो दिल का होता है
वह अपना व्यापार रहा
हानि-लाभ की वह सोचे, जिसकी मंजिल धन-दौलत हो
हमें सुबह की ओस सरीखा, लगा नफ़ा-नुकसान रे।
हम तो मस्त फकीर.....।⁶

नीरज जी का जीवन वेदनाओं से भरा हुआ है। वेदना भी ऐसी, जो मन में टीस भर दे। उन्होंने अपनी वेदनाओं को अपने गीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनके गीत मानव मन को झकझोर देते हैं। मनुष्य इस प्रेम के आगे अपने आपको समर्पित कर देता है। उसे कोई भी बुराई नज़र नहीं आती, चाहे कितनी भी वेदना उस प्रेम में क्यों न मिल रही हो। वह उसके आगे मज़बूत है इसीलिए नीरज जी कहते हैं—

चिंता करता नहीं दुःखों की, मैं जलने वाला परवाना,
अरे! इसी से सारपूर्ण जीवन निस्सार किया करता हूँ।
मैं क्यों प्यार किया करता हूँ।⁷

नीरज जी के लिए प्रेम कोई दिखावा नहीं है, न ही वह अपने तक सीमित है बल्कि वह संपूर्ण संसार से प्रेम करते हैं। वह उन व्यक्तियों से प्रेम करते हैं, जो कठिनाइयों से घबराकर हार नहीं मानते। कठिनाइयों से घबराकर हार मानना उन्होंने नहीं सीखा। नीरज जी ने जीवन को बहुत-ही बारीकी से जिया है। वे टूटे हृदय वाले लोगों का सहारा हैं, उनको सही राह दिखाते

हैं, जो व्यक्ति स्वयं से प्रेम नहीं करता। वह ईश्वर या अन्य लोगों को कैसे प्रेम कर सकता है? जिसने अपना ईमान तक बेच दिया है, वह किसी के दुःख का अनुमान कैसे लगा सकता है। उसे किसी के सुख-दुख से कोई मतलब नहीं है। सुख-दुःख को वही जान सकता है जिसने कभी दुःख देखा हो, सहा हो। उदाहरण के लिए—

मैंने जीवन विषपान किया, मैं अमृतमंथन क्या जानूँ।

मैं दीवानों का भेष लिए, सुख-दुःख का चिंतन क्या जानूँ।⁸

नीरज जी के गीतों में मनुष्य के प्रति विश्वास और भविष्य के प्रति चिंता दोनों एक साथ परिलक्षित होते हैं। नीरज जी ने अपने अनुभवों में मानवीय संबंधों एवं आर्थिक विषमताओं को इतनी सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया है कि उसमें समकालीन समाज का चेहरा साफ-साफ दिखाई देता है। मानव में मानव के प्रति आपस में कोई प्रेम नहीं है। आम आदमी की जिंदगी से जुड़े सुख-दुःख की सामान्य स्थितियों के बीच मानवीय सत्य के संघर्षरत रूपों और सामाजिक संबंधों की विशिष्टता को पहचानने और अमानवीय परिस्थितियों को उभारने की सहज आकांक्षा से प्रेरित इनके गीत पाठक को अपनी ओर सहज ही आकर्षित कर लेते हैं।

इस प्रकार नीरज जी अपने अपने गीतों, गीतिकाओं, सिने-गीतों के माध्यम से देश में बहुत बदलाव लाना चाहते हैं। इनकी दृष्टि से कुछ भी बच नहीं पाया है। आज व्यक्ति के अंदर मानवता क्षीण होती जा रही है। लोग एक-दूसरे के शत्रु तक बन गए हैं। एक दूसरे का शोषण कर रहे हैं, मानव में मानवता नहीं पशुता ही रह गई है। किसी के सुख-दुख से कोई सरोकार नहीं है, अपने में जीने वाले व्यक्ति संसार में बहुत है लेकिन जो व्यक्ति दूसरे के लिए जीता है। वह व्यक्ति वास्तव में व्यक्ति है। उनके गीत समाज व इसमें रहनेवाले लोगों के लिए प्रेरणादायक है। नीरज जी जैसा गीतकार दुनिया में कोई और नहीं है। उन्होंने सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और बड़े-से-बड़े तथ्यों को उजागर किया और मानव के सम्मुख प्रस्तुत भी किया है। इसलिए वह आज भी हमारे समक्ष एक सफल जीवन-दर्शन है।

संदर्भ

1. नदी किनारे, नीरज रचनावली खंड-1, पृ० 02
2. एक मस्त पुकीर : नीरज, डॉ० प्रेमकुमार, पृ० 42
3. वंशीवट सूना है, नीरज रचनावली खंड-3, पृ० 222
4. लहर पुकारे, नीरज रचनावली खंड-1, पृ० 131
5. नदी पुकारे, नीरज रचनावली खंड-1, पृ० 08
6. एक मस्त फकीर, नीरज गीत एक डॉ० प्रेमकुमार, पृ० 16
7. नदी किनारे, नीरज रचनावली खंड-1, पृ० 25

□ शिक्षक बिहारी कॉलोनी
धामपुर (उ०प्र०)

सूचना के अधिकार अधिनियम-2005 : समस्याएँ व सुझाव

डॉ० ब्रह्मप्रकाश, संजयकुमार

भारत को विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में माना जाता है। नागरिकों के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही संविधान की पालना करते हुए लोकतांत्रिक सरकार का गठन किया गया है। भारत की विशेष पहचान दिलवाने में यहाँ नागरिकों को प्रदान किए गए अधिकारों व नीति निर्देशक तत्वों का अति महत्वपूर्ण योगदान है। भारतीय नागरिकों को यह जानने का अधिकार है कि उनके द्वारा बनाई गई सरकार कैसे, कब, कहाँ, क्यों व क्या कार्य करती है। भारतीय संसद ने वर्ष 2005 में एक कानून पास किया, जो महामहिम राष्ट्रपति ए० पी० जे० अब्दुल कलाम के हस्ताक्षर के पश्चात् सूचना का अधिकार अधिनियम-2005 के नाम से जाना जाता है।

सूचना के अधिकार का अर्थ

वह अधिकार जो जनता को यह जानने का हक प्रदान करता है कि यदि कोई नागरिक सरकार से सूचना माँगेगा तो सरकार उसको सूचना प्रदान करने को बाध्य होगी। सूचना के अधिकार से व्यक्ति यह सूचना प्राप्त कर सकता है कि उनके द्वारा बनाई गई सरकार टैक्स के रूप में एकत्रित धन का उपयोग कैसे, कहाँ व किस प्रकार से कर रही है। सूचना के अधिकार के तहत यह बताया गया है, कि सूचना का अधिकार एक मौलिक अधिकार है और संविधान के अनुच्छेद 19(1) के द्वारा सूचना प्राप्त करना, बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का अंग है। सूचना अधिकारी सूचना प्राप्त करने के आवेदन की फीस व अन्य शुल्क के बारे में विस्तृत वर्णन 'दी राईट टू इन्फॉर्मेशन रूल्स-2005' में दी गई है।

सूचना प्राप्त करने की विधि

सूचना का अधिकार अधिनियम-2005, जो 12 अक्टूबर 2005 को भारत में लागू हुआ, उसे भारतीय लोकतंत्र के आदर्श स्वरूप की स्थापना के लिए एक शुभ संकेत माना जा रहा है। इस अधिकार से सूचना पाने की प्रक्रिया का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। धारा-6 में स्पष्ट किया है कि किसी सूचना को प्राप्त करने के लिए आवेदन कैसे किया जाता है? कोई भी व्यक्ति जो केंद्र या राज्य संगठनों से किसी भी प्रकार की सूचना प्राप्त करना चाहता है, उसे निर्धारित शुल्क अदा करना पड़ता है, जो हरियाणा में 50 रुपए, जबकि केंद्र में आवेदन का शुल्क 10 रुपए है। किसी भी विभाग से माँगी गई जानकारी को संबंधित विभाग का जनसूचना अधिकारी 30 दिन के अंदर उपलब्ध करवाएगा। हरियाणा में कोई भी आदमी फार्म 'ए' को भरकर या एक सादे कागज़ पर हिंदी या अँग्रेजी में प्रार्थना-पत्र लिखकर संबंधित विभाग को जनसूचना अधिकारी उसे उस विभाग के संबंध में किसी भी प्रकार की जानकारी प्राप्त कर सकता है।

सूचना के अधिकार का महत्त्व:-

सूचना का अधिकार अधिनियम-2005 को देश में लागू हुए सात वर्ष हो चुके हैं तथा इसने भारतीय एवं लोकतंत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन पैदा किए हैं। लोक प्राधिकारियों के नियंत्रणाधीन सूचना तक आम नागरिक की पहुंच संभव हुई है तथा केंद्रीय व राज्य सूचना आयोग के गठन से प्रशासन में भी भ्रष्टाचार की कमी आई है और सूचना अधिकारियों की जवाबदेयता बढ़ी है। किसी भी विभाग की नीति और उसके कार्यावयन के बारे में जानकारी हासिल करके आम नागरिक देश की नीति-निर्माण प्रक्रिया में अहम योगदान अदा कर सकता है। इस अधिनियम ने भारतीय प्रशासन एवं लोकतंत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन पैदा किए हैं तथा आम जनता ने भी इसके लाभों को स्वीकार किया है। सूचना के अधिकार के इस अधिनियम द्वारा एक ऐसा मार्ग तैयार किया गया है, जो सरकार के नियंत्रण वाली सूचना की तरफ सीधा और बिना किसी बाधा के जाता है। अतः सूचना का अधिकार प्रशासन की पारदर्शिता लाने में काफ़ी हद तक कामयाब रहा है।

सूचना-प्राप्ति में समस्याएँ

इस अधिनियम में इस बात के पुख्ता प्रबंध किए हैं, कि सभी नागरिकों को शासन व प्रशासन के संबंध में सूचना बिना किसी देरी के मिल सके। लेकिन इस अधिनियम की धारा-23 में स्पष्ट है कि सूचना के अधिकार से संबंधित कोई भी अपील या दावा न्यायालय में नहीं डाला जा सकता तथा न ही कोई न्यायालय इस दावे को स्वीकार करेगा, क्योंकि इसके संबंध में शिकायतों का निवारण करने की शक्ति राज्य सूचना आयोग तथा केंद्रीय सूचना आयोग को दी गई है। इस अधिनियम के बारे में अधिकतर जो समस्याएँ देखी जा सकती हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

1. सूचना के अधिकार के संबंध में नागरिकों को पूर्ण जानकारी न होना।
2. सूचना अधिकारी द्वारा वास्तविक तथ्य छुपाकर आँकड़े तोड़-मरोड़कर प्रदान करना।
3. सूचना प्राप्त करने में अधिक समय लगना।
4. पूरी सूचना न प्राप्त होना।
5. सूचना अधिकारी द्वारा सूचना को देने में टाल-मटोल करना।
6. जनसूचना अधिकारी तथा अपीलीय अधिकारी का आपस में अनुचित सहयोग होना।
7. सूचना के अधिकार के प्रति लोगों में जागरूकता की कमी।
8. सूचना अधिकारियों को ही सूचना-संबंधी सभी तथ्यों की जानकारी न होना।

सूचना के अधिकार अधिनियम के संबंध में सुझाव

हमारी संसद ने इस कानून का निर्माण करके मानव अधिकारों के लोकतांत्रिक विस्तार को नवीन आयाम प्रदान किया है तथा देश की शासन-व्यवस्था में दिन-प्रतिदिन पनप रहे भ्रष्टाचार की प्रकृति को निरुत्साहित किया और पारदर्शिता एवं जवाबदेही के नए युग का सूत्रपात किया है। इस अधिकार को सही मायने में प्रभावी बनाने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों को उन समस्याओं को दूर करने हेतु अधिकतम प्रयास करने चाहिए। सूचना के अधिकार अधिनियम के प्रयोग में सामने आनेवाली समस्याओं को दूर करने के लिए निम्न सुझावों को अपनाया जा सकता है—

1. वे सभी संस्थाएँ एवं विभाग, जोकि सूचना संबंधी कानून के क्षेत्र में आते हैं, उन्हें चाहिए कि वे अपने कार्यालयों के बाहर किसी विशेष स्थान पर सूचना प्राप्त करने के संबंध में सूचना प्राप्त करने के नियम व प्रक्रिया सरल व स्पष्ट भाषा की जानकारी हेतु प्रदर्शित करें ताकि भ्रम की स्थिति पैदा न हो सके।
2. केंद्र तथा राज्य सूचना आयोग की तरह स्थानीय स्तर पर सूचना अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिए।
3. इस अधिनियम के बारे में लोगों को संपूर्ण जानकारी प्रदान की जानी चाहिए। दूर संचार के साधनों के माध्यम से जो जानकारी प्रदान की जाती है, उसे और अधिक प्रभावी बनाने के लिए जन संचार माध्यम के साथ-साथ स्थानीय संस्थाओं, गैर-सरकारी संगठनों आदि को भी इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए तथा सरकार की तरफ से ऐसी संस्थाओं को सहायता प्रदान की जानी चाहिए।
4. केंद्रीय स्तरीय अधिनियम तथा राज्य स्तरीय अधिनियमों के बीच तालमेल या समन्वय होना चाहिए।
5. सूचना प्रदान करने के हिसाब से अधिकतम 25000 रुपए तक जुर्माना करने का प्रावधान है जो कम हो सकता है, क्योंकि कई बार कोई सूचना इस जुर्माने से काफ़ी अधिक महत्वपूर्ण हो सकती है। इसलिए जुर्माना राशि में वृद्धि करनी चाहिए।
6. जो अधिकारी भ्रष्टाचार में संलिप्त पाए जाते हैं, उन्हें कड़ी-से-कड़ी सजा दी जाए तथा जो कर्मचारी या अधिकारी कानून को तोड़ते हैं उन्हें सेवा तथा पद से निलंबित कर देना चाहिए।
7. सूचना का अधिकार अधिनियम-2005 के कानून में कुछ संशोधन करके सूचना के अधिकार के सूत्रधार जनसूचना अधिकारी को भी इस संबंध में कोई विशेष प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।
8. सूचना के अधिकार के दायरे में निजी क्षेत्र को भी कुछ विशिष्ट परिस्थितियों के अधीन रखा जाना चाहिए।
9. इस अधिनियम में संशोधन करके सूचना अधिकारियों की नियुक्ति के लिए विशेष योग्यता निर्धारित की जानी चाहिए।
10. सूचना-संबंधी अधिनियम के सभी अधिकारी, कर्मचारी एवं संस्थाओं के प्रतिनिधि जिन पर इस कानून की प्रक्रिया को पूर्ण करने का दायित्व है, उन्हें इस कानून की मूलभूत बातों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
11. सूचना का अधिकार अधिनियम में किसी सामान्य सूचना को प्राप्त करने के लिए समय सीमा 30 दिन निर्धारित है, जोकि अधिक है। आम जनता का विश्वास बढ़ाने के लिए यह जरूरी है कि सूचना-प्राप्ति की समय-सीमा को घटाकर 15 दिन किया जाना चाहिए।
12. सूचना के इस अधिनियम की धारा-8 में कुछ उन विषयों को रखा गया है जिनके बारे में सूचना प्रदान की जाती है। जिन विषयों को सूचना के अधिकार से वंचित रखा गया है, उनका भी स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए, ताकि अधिकारी धारा-8 का

- नाम लेकर सूचना प्रदान करने से पल्ला न झाड़ ले।
13. सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 के बारे में स्नातक स्तर पर भी किसी विषय में इसे शामिल किया जाना चाहिए, ताकि विद्यार्थियों को भी इस अधिनियम की पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके।
 14. महिलाओं को भी इस सूचना अधिकार अधिनियम 2005 के बारे में संपूर्ण जानकारी प्रदान की जाए, जिससे वे घरेलू अधिनियम व दहेज संबंधी इत्यादि अधिनियमों के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करके सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें।
 15. सूचना के अधिकार अधिनियम को सफल बनाने के लिए सरकार को चाहिए कि वह अपने क्रियाकलापों में जहाँ तक संभव हो पारदर्शिता, ईमानदारी व उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करें जिससे कि लोगों को अपना सूचना-संबंधी अधिकार प्रयोग करने की आवश्यकता ही प्रतीत न हो।

संदर्भ

1. द्विवेदी, राधेश्याम, सूचना का अधिकार अधिनियम-2005, सुविधा लॉ हाउस प्राईवेट लिमिटेड पब्लिकेशन, भोपाल, 2005.
2. स्टेटिकल अबस्ट्रैक्ट ऑफ हरियाणा, हरियाणा सरकार, चंडीगढ़ 2006-07, पृ० 229-236.
3. इण्डिया पोस्ट, सूचना के अधिकार पर केंद्रित पाक्षिक, रोहतक अक्टूबर 2007, पृ० 1.
4. बारोवालिया, जे० एन० कर्मेट्री ऑन राईट टू इन्फॉर्मेशन एक्ट, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली 2007, पृ० 42.
5. फाडिया, बी० एल०, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 2008, पृ० 934.
6. बक्शी, पी० एम०, भारत का संविधान, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली, 2008 पृ० 39.

□ प्राध्यापक, सी० आर० किसान कॉलेज,
जींद (हरियाणा)

स्वामी दयानंद के शिक्षा-संबंधी विचार

डॉ० नीलू कपूर

प्रवक्ता इतिहास

कमला आर्यकन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय

मीरजापुर-231001

स्वामी दयानंद के पूर्व शिक्षा की स्थिति

अँग्रेजों के आगमन के पूर्व उत्तर भारत के प्रायः सभी नगरों में फ़ारसी के मदरसे थे। इसके अतिरिक्त समस्त देश में संयुक्त पाठशालाएँ थीं। प्राथमिक पाठशालाओं के साथ उच्च विद्यालय भी थे। तत्कालीन शैक्षणिक स्थिति पर एडम की जो रिपोर्ट निकली थी, उसमें कहा गया कि बंगाल और बिहार में हर चार सौ व्यक्तियों पर एक स्कूल था, किंतु भारत की यह शिक्षा-पद्धति जीर्णशीर्ण और निष्प्राण थी। जो बातें पुरानी पोथियों में लिखी हुई थीं, लोग उन्हें ही पढ़ते जा रहे थे। धार्मिक शिक्षा के नाम पर मुसलमानों के यहाँ कुरान और हिंदुओं के यहाँ स्तोत्र रटवाने की परंपरा थी। मुगलों के समय शासन की भाषा फ़ारसी रही थी। काफ़ी समय तक शिक्षा की ओर अँग्रेजी शासन का ध्यान नहीं गया। '1871 ई० में वारेन हेस्टिंग्स द्वारा कलकत्ता में एक मदरसा खोला गया, जिसमें एक मौलवी तथा 40 मुस्लिम छात्र थे, जिनका उद्देश्य मुसलमानों को धार्मिक शिक्षा देना था। भारत में शिक्षा का यही पहला कार्य था, जिसे कंपनी ने अपने कंधे पर लिया। इसके दस वर्षों बाद बनारस में हिंदुओं के लिए भी एक संस्कृत कॉलेज की स्थापना की गई, जो शिक्षा के क्षेत्र में कंपनी सरकार का दूसरा क़दम था।'¹

1820 में धर्म-प्रचारकों ने कलकत्ता में अपनी एक संस्था खोली, जिसका नाम विशप कालेज रखा गया। राजा राममोहन राय के प्रभाव से काशी में एक स्कूल खुला। तत्पश्चात् 1816 ई० में कलकत्ता में हिंदू महाविद्यालय की स्थापना की गई। 'शिक्षा में सरकारी प्रयत्न का प्रारंभ 1813 ई० में ईस्ट इंडियन एक्ट में हुआ, जिसमें कहा गया कि शिक्षा के काम पर प्रतिवर्ष सरकारी कोष से एक लाख रुपए खर्च किए जा सकते हैं।'²

धीरे-धीरे कलकत्ता, मद्रास, बंबई में विश्वविद्यालय खुले, 1882 ई० में लाहौर में पंजाब विश्वविद्यालय, 1887 ई० इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, जिसमें छात्रों की संख्या 20-25 लाख हो गई थी।'³

धर्मप्रचारकों को आशा थी कि शिक्षा के माध्यम से ही वे भारतीयों को ईसाई बनाने में सफल होंगे। मोनियर विलियम्स ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी' की भूमिका में लिखा है कि मेरे गुरु की अंतिम इच्छा थी कि ईसाइयत के धर्मग्रंथों का अनुवाद संस्कृत में किया जाना चाहिए।

चार्ल्स ग्रांट भारतवासियों को मूर्ख और धर्म आचार विहीन समझता था। उसका कहना था कि जब विदेशियों को शिक्षित करना होता है, तब शिक्षा उन्हीं की भाषा में दी जाती है। लेकिन यह बात भारत पर लागू नहीं होती, यहाँ के लोग स्वयं ही अँग्रेजी सीख रहे हैं। इधर अँग्रेजी पढ़कर जो नवयुवक तैयार हो रहे थे, वे अपने धर्म की निंदा ईसाई प्रचारकों की तरह कर रहे थे। लार्ड मैकाले ने कहा कि अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त करनेवाले हिंदू अपने धर्म के का निष्ठावान अनुयायी कदापि नहीं रह सकते।

सर फ्रैंड्रिक हाल्लिडे ने हाउस आफ़ कामन के समक्ष 25 जुलाई 1853 को कहा था कि 'मेरा विश्वास है कि इंग्लैंड के किसी भी पब्लिक स्कूल की अपेक्षा कलकत्ते के हिंदू कालेज में बाइबिल का ज्ञान अधिक है।'

'जब तक हिंदुओं का चार वेदों में विश्वास नष्ट नहीं किया जाता, तब तक वे लोग ईसाइयत की ओर ध्यान नहीं देंगे। इसी हितार्थ ईसाई स्कूल खोले गए हैं।'⁴

मैक्स मूलर ने भारत के सचिव के नाम अपने पत्र में लिखा था, 'हिंदुस्तान के प्राचीन धर्म की दशा दुर्भाग्यपूर्ण हो गई है और यदि ईसाइयत इसका स्थान लेने को आगे पग न बढ़ाए, तो वह किसका दोष होगा।'⁵

भारत के दूरगामी अतीत पर से पर्दा उठाने का काम अँग्रेजों ने ही प्रारंभ किया था, किंतु भारत के अतीत पर जब संसार चकित होने लगा, तो अँग्रेज घबड़ा गए। अँग्रेजों ने सूत्र को जहाँ पर छोड़ा था, जर्मनों ने उसे वहीं से उठा लिया। जर्मनी के दार्शनिक तथा इतिहासकारों ने भारतीय संस्कृति के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हुए भारत-भूमि को सर्वश्रेष्ठ-साहित्य दर्शन और आध्यात्मशास्त्र की क्रीडास्थली कहा।

नवशिक्षित हिंदू युवक लिबास और कल्चर से अँग्रेज बनते जा रहे थे और अँग्रेजी शिक्षा का प्रभाव हिंदुत्व के लिए घातक होता जा रहा था। 'पाश्चात्य शिक्षा के कारण यह खतरा पैदा हो गया था कि देश का जीवन और दृष्टिकोण राष्ट्रीयता से शून्य हो जाएगा। जाति के जीवन की ऐसी घड़ी में अनेक भद्रपुरुष अवतीर्ण हुए, जिन्होंने देश को आत्मरक्षा का मार्ग दिखाया, जिनमें महर्षि दयानंद सरस्वती का स्थान ऊँचा है।'⁶

स्वामी दयानंद के शिक्षा-संबंधी विचार

स्वामी दयानंद ने अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' के द्वितीय समुल्लास में संतानों की शिक्षा के बारे में लिखा है—'मातृभान पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।'⁷

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे, तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह संतान बड़ी भाग्यवान है, जिसके माता-पिता धार्मिक एवं विद्वान हों। संतान का हित माता ही चाहती है, वह माता धन्य है, जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो, तब तक सुशीलता का उपदेश करे।

स्वामी दयानंद ने सत्यार्थ प्रकाश में आगे लिखा है कि जब संतान पाँच वर्ष की हो जाए, तो देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावे, अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।

स्वामी दयानंद का विचार था कि जितनी मिथ्या बातें हैं उनका उपदेश बाल्यावस्था में ही संतानों के हृदयों में डाल देना चाहिए। ताकि वह किसी के भ्रमजाल में न पड़े। 'जन्म से पाँचवें वर्ष तक बालकों को माता, छठवें वर्ष से आठवें वर्ष तक पिता शिक्षा दे। नवे वर्ष के

आरंभ में द्विज अपने संतानों का उपनयन करके आचार्य कुल में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा देने वाली हो, गुरुकुल में भेज दे।⁸

उन्होंने आगे लिखा है कि उन्हीं के संतान विद्वान, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाई में अपने संतानों का लाडल नहीं करते इससे व्याकरण महाभाष्य का प्रमाण है—‘सामृतेः पाणिभिहनत्रि गुरवो न विषोक्षितं लालनाश्रयिणो दोषस्ताडनाश्रयिणो गुणाः।’ अर्थात् जो माता-पिता, आचार्य संतान और शिष्यों का लाडल नहीं करते हैं वे अपने संतानों का शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं और जो संतानों का शिष्यों का लाडल करते हैं वे अपने संतानों और शिष्यों को विषय पिलाकर नष्ट कर रहे हैं। स्वामी दयानंद ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में लिखा है कि बालक-बालिकाओं को आभूषण नहीं पहनने चाहिए। दुष्टाचारी अध्यापक से शिक्षा न दिलाई जाए। स्वामी जी सह-शिक्षा के पक्ष में नहीं थे इसलिए उन्होंने लिखा कि—‘विद्या पढ़ने का स्थान एकांत देश में होना चाहिए। कन्याओं की पाठशाला में स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष हों। पाठशाला ग्राम से चार कोस दूर हो। सभी शिष्य एक समान हों, माता-पिता अपनी संतानों से मिल न सकें ताकि संसारी चिंता से रहित होकर वे केवल विद्या प्राप्त करें।’⁹

‘कन्यानां संप्रदाय च कुमाशनां च रक्षणमा’ मनु० (7/152)

अभिप्राय यह है कि पाँचवे तथा आठवे वर्ष से आगे कोई अपनी संतानों को घर में न रख सके, उन्हें पाठशाला अवश्य भेजे अन्यथा दंडनीय हो।

पाठन-पाठन की विधि

स्वामी जी का कहना है कि यथायोग्य सब अक्षरों का उच्चारण माता-पिता आचार्य सिखाएँ। तदंतर व्याकरण अर्थात् प्रथम अष्टाध्यायी के सूत्रों का पाठ कराके धातु पाठ के पश्चात् उणादिगण पुनः अष्टाध्यायी की द्वितीयनुवृत्ति पढ़ावे। तदंतर महाभाष्य पढ़ावे। स्वामी दयानंद का विश्वास था कि जितना बोध ठीक शास्त्रों को पढ़ने से तीन वर्षों में होता है उतना बोध कुग्रंथ अर्थात् सारस्वत, चंद्रिका, कौमुदी, मनोरमादि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता।¹⁰

व्याकरण को पढ़ने के बाद छः आठ महीने में आर्य पढ़ें और पढ़ावें। वेदांत सूत्रों को पढ़ने के पूर्व ईश, केन, कठ प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छांदोग्य और वृहदारण्यक इन दस उपनिषदों को पढ़कर चारों वेदों के स्वरूप शब्द, अर्थ, संबंध पढ़ना चाहिए।

‘चार वर्ष के अंदर आयुर्वेद जो कटि मुनि प्रणीत वैदिक शास्त्र है, पढ़ना चाहिए। तत्पश्चात् धनुर्वेद को दो वर्ष में पढ़कर गंधर्व वेद जिसको वेद गान विद्या कहते हैं। सीखें, अथर्ववेद जिसको शिल्प शिक्षा कहते हैं, पढ़कर ज्योतिषशास्त्र, सूर्य सिद्धांतादि जिसमें बीजगणित, अंक, भूगोल खगोल विद्या सीखें।’¹¹

स्वामी दयानंद का विश्वास था कि केवल ऋषि प्रणीत ग्रंथों को ही पढ़ना चाहिए। बालक-बालिकाओं की शिक्षा के लिए नैतिक व धार्मिक शिक्षा आवश्यक है। शारीरिक विकास के लिए ब्रह्मचर्य पर बल देना आवश्यक बताया। ‘गुरु शिक्षा का संबंध पिता, पुत्र के समान हो। हिंदी को वह शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे। स्वामी दयानंद छात्रों में जाति संप्रदाय व ऊँच नीच, धनी-निधन का भेद नहीं मानते थे।’¹²

‘स्वामी दयानंद के निधन के पश्चात् लाहौर में आर्य समाज के कुछ प्रमुख लोगों द्वारा स्वामी जी के स्मारक के रूप में डी०ए०वी० कालेज की स्थापना का निर्णय किया गया। पंजाब

के आर्यों की महर्षि के प्रति श्रद्धा उनकी पहली स्मृति दयानंद एंग्लो वैदिक कालेज के प्रति स्नेह में बदल गई। लाहौर से 'आर्य पालिका' नामक एक पत्र निकाला गया जिसका उद्देश्य आर्य समाज के प्रचार के अतिरिक्त कालेज के लिए आंदोलन करना था।¹³

आर्यसमाज द्वारा स्वामी दयानंद के शिक्षा के प्रति लगाव को जाग्रत रखने के लिए स्थान-स्थान पर आर्यसमाज द्वारा संचालित स्कूल-कालेज खोले जाने लगे। उक्त संस्थाएँ राष्ट्रीय समझी जाने लगीं और उनसे आर्यसमाज और राष्ट्रीयता का भरपूर प्रचार हुआ, क्योंकि यहाँ हिंदी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है।

संदर्भ

1. A source book of Modern Education, M.R. Paranjpal.
2. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारीसिंह 'दिनकर'
3. वही
4. वही
5. वही
6. स्वामी दयानंद सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय समुल्लास
7. वही
8. वही
9. आर्यसमाज का इतिहास, इंद्रु विद्यावाचस्पति
10. स्वामी श्रद्धानंद, सत्यदेव विद्यालंकार
11. आर्यमित्र का गुरुकुल अंक, गंगाप्रसाद उपाध्याय
12. आर्य प्रतिनिधि सभा का इतिहास, भीमसेन
13. पंजाब का आर्यसमाज, रामचंद्र 'जावेद'

□ द्वारा श्री सिद्धार्थ कपूर
स्वामी दयानंद मार्ग
गिरधर का चौराहा
मीरजापुर (उ०प्र०) 231001

भारतीय महिलाओं की समस्याएँ और समाधान

संजयकुमार

यह विडंबना ही है कि जैसे-जैसे हम विकास की ओर अग्रसर हो रहे हैं और महिलाओं के प्रति यौन-अपराधों के संदर्भ में कानून कड़े होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे यौन-अपराध व दुष्कर्म के मामले भी बढ़ते जा रहे हैं। भारत के पास विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की संदेहास्पद विशिष्टता है, जहाँ हर 12 मिनट में एक औरत का शारीरिक उत्पीड़न, हर 14 मिनट में एक महिला का अपहरण, हर 21 मिनट में एक महिला के साथ दुष्कर्म और हर एक घंटे में एक महिला दहेज की बलि चढ़ती है।

भारत में सैद्धांतिक रूप से माना जाता है कि मानव-जीवन का रथ एक पहिए से नहीं चल सकता है। उसकी समुचित गति के लिए दोनों पहिए होने चाहिए। गृहस्थी की गाड़ी नर और नारी के सहयोग व सद्भावना से प्रगति के पथ पर अविराम गति से बढ़ सकती है, लेकिन परिवर्तन प्रकृति का स्वभाव है। भारतीय हिंदू स्त्री की स्थिति वैदिक काल में कुछ और थी और आज के युग में क्राफी भिन्न है। आज के बदलते हुए परिवेश में महिलाओं की स्थिति में सुधार तो परिलक्षित हुआ है, पर वह तो मात्रा पुस्तकों में ही है। कथनी और करनी में अंतर आज भी विद्यमान है। प्रथम मानव माने-जाने वाले मनु ने कहा है—

‘यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवताः।’

इसके साथ ही मनु ने दूसरी नीति भी निर्धारित की है—

‘पिता रक्षति कौमार्ये भर्ता रक्षति यौवने

पुत्रो रक्षति वार्धक्ये न स्त्री स्वातंत्रतामर्हति।’

अर्थात् बचपन में स्त्री को पिता के अधीन युवावस्था में पति के तथा जीवन के अंतिम दिनों यानी वृद्धावस्था में स्त्री को पुत्रों के अधीन रहना चाहिए।

यदि हम आज की महिलाओं की बात करें तो उनकी ऊँची उड़ान भरने के लिए अनेक पंख उपलब्ध हैं। लेकिन ये अवसर और नई संभावनाएँ केवल साधन संपन्न स्त्रियों के लिए ही खुल रहे हैं। जब हम सभी यह जानते हैं, कि नारी से ही घर का निर्माण होता है, नारी ही घर की शोभा है और सत्य तो यह है कि नारी के बिना घर की कल्पना ही नहीं की जा सकती तो फिर क्यों भारतीय महिलाओं को हर पल समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भारतीय महिलाओं की समस्याओं पर चर्चा करने से पहले हमें यह भी जान लेना आवश्यक हो जाता है कि हम समस्या मानते किसे हैं या हम किसे समस्या कह सकते हैं। महिलाओं की समस्या व्यक्तिगत न होकर सामाजिक है।

महिलाओं के साथ जो भेदभाव या अत्याचार होता है, वह किसी एक महिला की या

महिलाओं के किसी एक समूह की समस्या नहीं है, बल्कि संपूर्ण भारतीय समाज या यूँ कहें कि पूरे विश्व की समस्या है। यह व्यक्तिगत समस्या न होकर सामाजिक समस्या है। सामाजिक समस्या को हम इस रूप में परिभाषित कर सकते हैं, कि सामाजिक समस्या वह सामाजिक अवस्था है, जब एक समाज-विशेष के सांस्कृतिक मापदंड के अनुसार सामाजिक जीवन का कोई पक्ष या समाज के बहुत से सदस्यों का कोई व्यवहार अपने लोकप्रिय या स्वस्थ स्वरूप को खोकर विकृत या अवांछनीय रूप धारण कर लेता है तथा उस रूप में वह समाज के लिए अहितकर परिणामों को उत्पन्न करता है। इसलिए उन्हें दूर करने के उपायों को समाज के लोगों द्वारा गंभीरता से सौंपा जाता है।

एल० के० फैंक ने भी कहा है—‘सामाजिक समस्या काफ़ी अधिक संख्यक लोगों की कोई ऐसी कठिनाई या दुर्व्यवहार है, जिसे हम दूर करना या सुधारना चाहते हैं’ और भी स्पष्ट रूप से हम कह सकते हैं कि सामाजिक समस्या में एक नैतिक मूल्यांकन होता है, एक ऐसी भावना होती है कि स्थिति हानिकारक है और इसमें परिवर्तन आवश्यक है। भारतीय महिलाओं की समस्याएँ भारत देश के संपूर्ण बुद्धिजीवी वर्ग को सोचने पर मजबूर करती हैं, क्या कभी इस दयनीय स्थिति का अंत हो पाएगा? क्या भेदभाव की यह प्रथा जो हमारी मानसिकता को बोझिल कर रही है, कभी समाप्त हो पाएगी?

भारतीय महिलाओं की समस्याएँ—

वर्तमान समय में महिलाएँ संक्रमण काल से गुजर रही हैं। इनका एक क़दम घर से बाहर निकला हुआ है, लेकिन दूसरा क़दम अभी-भी घर की चारदीवारी में है। शिक्षा ने उनके सपनों को विस्तार तो दिया है, लेकिन घर-परिवार की लक्ष्मण-रेखा उसे अब भी घेरे हुए है। वह आज भी पिता के लिए दान की और पति के लिए भोग की वस्तु है।

वर्तमान समय में महिलाओं के सामने जो-जो समस्याएँ आती हैं, उनमें मुख्य इस प्रकार हैं—

1. पुरुष-प्रधान समाज

भारतीय महिलाओं की कमजोर स्थिति का मुख्य कारण भारतीय समाज का पुरुष प्रधान होना है। वह विवाह में पहले पिता के घर, उसके बाद पति के घर रहती है और कहावत भी तो है कि स्त्री की पिता के घर से डोली उठती है तथा वापिस लौटने का कोई विकल्प नहीं होता। उसके बाद पति के घर से अर्धी उठती है। विवाह से पहले पिता के अधीन रहना होता है और उसके बाद पति के अधीन। इस प्रकार भारतीय परिवार पुरुष को प्रधान और महिलाओं को निम्न स्थान देते हैं।

2. बाल-विवाह—

महिलाओं की समस्याओं को जन्म देने का एक मुख्य कारण बाल-विवाह है। भारतीय गाँव में लड़की का विवाह कम उम्र में कर दिया जाता है और उसके बाद स्वास्थ्य का स्तर गिर जाता है, जिस कारण उसको अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

3. घरेलू हिंसा—

भारत में पति के लिए ‘भर्ता’ शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है भरण-पोषण करने वाला। सामान्यतः यह माना जाता है, कि घर नारी के लिए सुरक्षा एवं प्रसन्नता

की दृष्टि से स्वर्ग है, किंतु अधिकतर महिलाओं के प्रति घर में हिंसा का व्यवहार किया जाता है। उन्हें लातों, घूसों, चाँटों व डंडों से मारा जाता है और उनकी हड्डियाँ तक तोड़ दी जाती हैं। लेकिन इतना सब होने के बाद भी वह उसे अपना भाग्य व पूर्वजन्म के कर्मों का फल मान लेती है।

4. दहेज की समस्या—

वर्तमान में दहेज एक गंभीर समस्या बनी हुई है। सामान्यतः दहेज उस धन या संपत्ति को कहते हैं जो विवाह के समय कन्यापक्ष द्वारा वरपक्ष को दिया जाता है। आज अधिक दहेज के कारण लड़कियों का विवाह अयोग्य लड़कों के साथ करने को बाध्य होना पड़ता है तथा दहेज उनकी सामाजिक स्थिति को गिराने वाला एक प्रमुख कारण सिद्ध होता है। दहेज के कारण ही प्रत्येक परिवार में पुत्री के जन्म को एक भावी विपत्ति के रूप में देखा जाने लगा है।

5. कन्या-भ्रूण व कन्या-शिशु-हत्या—

जीवन से संबंधित एक और मुख्य समस्या कन्या-भ्रूण-हत्या व कन्या-शिशु-हत्या है। लड़के की चाहत में लड़की के भ्रूण की माँ के गर्भ में हत्या कर दी जाती है।

6. विवाह में परिवार के हस्तक्षेप की समस्या—

कहने को तो भारतीय समाज एक महाशक्ति के रूप में उभरकर सामने आया है तथा मानव हमेशा स्त्री व पुरुष की समानता का पाठ पढ़ता आया है। लेकिन इतना कुछ होने के बाद भी महिलाएँ स्वयं अपने ही विवाह का निर्णय लेने में सक्षम नहीं हो पाती हैं या यह कहें कि उन्हें विवाह का निर्णय लेने का अधिकार आज तक भी नहीं मिला है। उसका विवाह कहाँ और किसके साथ होगा, यह निर्णय उसका पिता, भाई यानी उसके परिवार के लोग करते हैं। यदि हम पूर्णरूप से गहराई से देखें कि एक लड़की पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी और यहाँ तक रोज़गार प्राप्त करने के बाद भी अपने परिवार पर ही निर्भर होती है कि उसे कहाँ विवाह करना है और कहाँ नहीं।

7. समय की पाबंदी—

महिलाओं की एक समस्या उन पर परिवार व समाज के द्वारा समय की पाबंदी लगाई जाती है। परिवार का पुरुष या लड़का जब तक घर से बाहर रहे या कहीं भी जाए, उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। इसके विपरीत लड़की या महिलाओं पर समय की पाबंदी लगा दी जाती है। अगर वह स्कूल, कॉलेज या बाज़ार जाती है, तो उसको बता दिया जाता है कि वहाँ इतना समय लगेगा और उतने समय के बाद ही घर वापिस आ जाना है। यदि किसी कारणवश वह समय से थोड़ी ही देर से घर पहुँचती है, तो उसके माता-पिता पूछने लगते हैं कि इतनी देर कहाँ, किसके साथ थी, परिवार की इज़्जत का ख़याल नहीं करती आदि-आदि।

8. वेश-भूषा की समस्या—

कहते हैं कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है और इसी नियम के कारण हमारे विचारों में भी परिवर्तन आता है। लेकिन महिलाओं के प्रति अपनी सोच को हम अभी तक बदल नहीं पाए हैं। यदि हम महिलाओं की वेश-भूषा की बात करें तो सभी कहते हैं, कि महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की घटनाएँ बढ़ने का एक कारण उनके कम होते कपड़े हैं। महिलाओं के पहनावे पर प्रश्न चिह्न लगाया जाता है। पुरुष अपनी इच्छा से कुछ भी पहन लें, उन्हें कोई रोकने वाला

नहीं होता, लेकिन यदि महिलाएँ अपनी मर्जी से कुछ पहन लें तो परिवार में बवाल खड़ा हो जाता है।

9. शिक्षा प्राप्ति की समस्या—

बेशक सरकार ने लड़कियों के लिए निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान किया हो लेकिन आँकड़े बताते हैं, कि लड़कों की शिक्षा की तुलना में लड़कियाँ आज भी काफ़ी पीछे हैं।

10. पर्दाप्रथा की समस्या—

मानव आज चाँद पर जा पहुँचा है। उसने विकास के सभी मामलों में प्रगति की है, लेकिन ग्रामीण भारत में आज भी महिलाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे घूँघट निकालें, अन्य पुरुषों से दूरी बनाए रखें और उनके सामने खुले मुँह बात न करें। पर्दाप्रथा के कारण उनके व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता और उनके स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

11. छेड़-छाड़ व यौन-उत्पीड़न की समस्याएँ—

आज के समय में महिलाओं की समस्याओं में छेड़-छाड़ व यौन-उत्पीड़न की समस्याओं को प्रमुख रूप से उजागर किया जा सकता है। ये छेड़-छाड़ की घटनाएँ बस, ट्रेन, बाज़ार, कार्यालय, सार्वजनिक स्थानों पर आम देखी जा सकती हैं। यहाँ तक कि वे अपने स्वयं के घरों में आस-पड़ोस में भी सुरक्षित नहीं हैं और उनके सगे-संबंधियों द्वारा भी छेड़-छाड़ की घटनाएँ देखने को मिलती हैं। 2010 में जहाँ छेड़-छाड़ के 40,613 मामले सामने आए, वहीं 2011 में इन घटनाओं की वृद्धि हुई और ये 42,968 मामले दर्ज किए गए। ये घटनाएँ महिलाओं की स्वतंत्रता का सीधा-साधा हनन है।

12. अपहरण—

वर्तमान समय में महिलाएँ कहीं भी सुरक्षित नहीं हैं। उनका सरेआम कहीं से भी अपहरण कर लिया जाता है। 2002 से 2011 तक अपहरण के कुल 76118 मामले दर्ज किए गए, इनमें अकेले 2011 में ही 8618 मामले दर्ज किए गए। अपहरण के ये मामले प्रदर्शित करते हैं कि आज वे कहीं भी अपने आपको सुरक्षित महसूस नहीं करती हैं।

13. बलात्कार की समस्या—

भारत में बलात्कार के अपराधों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। अकेले भारत में ही 2011 में 24,206 बलात्कार के अपराध हुए हैं और 2012 में तो यह संख्या काफ़ी बढ़ी है। 2001-02 की तुलना में 2011 तक बलात्कार के मामलों में 47.84 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इन बलात्कार के बढ़ते हुए आंकड़ों से स्पष्ट होता है, कि आज भारतीय समाज किस प्रकार पतन की ओर जा रहा है। कोई पत्थर दिल ही होगा जो दिल्ली में सामूहिक दुष्कर्म की घटना से विचलित और उद्वेलित न हुआ हो। दिल्ली के बसंत विहार में जो बलात्कार की घटना घटी, वह हृदय विदारक थी। किसी भी सभ्य समाज के लिए इस तरह की घटनाएँ शर्मिंदगी महसूस करने के लिए काफ़ी हैं। बलात्कार की ये घटनाएँ केवल जवान लड़कियों के साथ ही घटित नहीं होती हैं, बल्कि 4 से 5 साल की लड़की से लेकर वृद्ध महिला तक को नहीं बख़्शा जाता है। यहाँ तक कि गूंगी, बहरी, पागल, अंधी और भिखारियों को भी नहीं छोड़ा जाता है।

समस्याओं के समाधान की दिशा में कुछ सुझाव—

अब समय आ गया है स्वयं को और समाज को बदलने का। अब वक्त आ गया है स्त्री को वस्तु से इंसान समझने का। अब घरों में माँ द्वारा बेटी को दुपट्टा ओढ़ने की हिदायत देने की बजाय उसे अपने बेटों को समझाना होगा कि वे किसी भी लड़की को गंदी नज़रों से न देखें। अभी पिछले महीने दिल्ली में जो बलात्कार की घटना घटित हुई, वह हमारे सांस्कृतिक मूल्यों की कलाई खोलती है। उसे देखकर हमें खुद पर शर्म आती है। एन०सी०आर०बी० की जून 2012 की रिपोर्ट के अनुसार देश में हर एक घंटे में दो महिलाओं के साथ दुष्कर्म होता है, तो वहीं इतने समय में 11 महिलाएँ यौन-शोषण का शिकार होती हैं। हमें इस बात का जवाब अपने समाज से ही माँगना होगा कि एक पीड़ित महिला को दुष्कर्मी से भी बड़ा अपराधी क्यों मान लिया है? वर्तमान समय का सबसे कड़वा सच यह है कि स्त्री से जुड़ी सामाजिक मान्यताएँ और कानून व्यवस्थाएँ खुद ही दुष्कर्मी की सबसे बड़ी रक्षक हैं। आखिर ऐसी घटनाएँ कब तक घटित होती रहेंगी, जिससे कि महिलाओं को उनके अनुरूप स्तर प्राप्त हो सके। महिलाओं के यथेष्ट विकास के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत हैं—

इंसाफ में देरी न हो—

आज यदि महिलाओं के प्रति अपराध के लिए सरकार को ज़िम्मेदार ठहराया जाता है तो शायद इसमें कुछ ग़लत भी नहीं है। व्यवस्था को सुधारने के लिए महिलाओं की समस्याओं, जैसे छेड़-छाड़, उत्पीड़न व बलात्कार की घटनाओं के दोषियों के खिलाफ कड़ी कार्यवाही हो। किसी भी घटना के घटित होते ही तुरंत कार्यवाही की जानी चाहिए। त्वरित न्याय न केवल पीड़ित को न्याय दिलाने, बल्कि यौन-शोषण की घटनाओं पर अंकुश लगाने में सबसे अहम कड़ी है। यदि अदालत की कार्यवाही जल्दी हो तो आरोपी पक्ष को सबूत मिटाने का समय नहीं मिलेगा। जब तक त्वरित न्याय नहीं होगा, तब तक महिलाओं की इन समस्याओं में कमी नहीं आएगी।

महिलाओं के प्रति हो समानता का दृष्टिकोण—

आज महिलाओं को हेय समझने वाली मानसिकता कम होने के बजाए बढ़ती जा रही है। इस सोच में बदलाव की ज़रूरत है, लेकिन प्रश्न यह उठता है कि इस सोच में बदलाव कौन लाएगा, जिसके चलते महिलाएँ असुरक्षित होती चली जा रही हैं। अब समाज के सभी वर्गों को भी इस पर विचार करना होगा कि आखिर हम किस प्रकार के समाज का निर्माण कर रहे हैं? यह कैसा समाज है जहाँ आदिम समाज सरीखी बर्बर घटनाएँ घट रही हैं।

भारत बनाम इंडिया की सोच में बदलाव की ज़रूरत—

आर०एस०एस० प्रमुख मोहन भागवत ने महिलाओं के साथ हो रही दुष्कर्म की घटनाओं का कारण पश्चिमी सभ्यता को बताया। अगर हम इस बात को सही मानें तो वहाँ भी पहले महिलाओं के साथ भेदभाव होते रहे हैं, लेकिन उन्होंने तेजी से बदलाव किया। पश्चिम के तमाम देशों में विभिन्न क्षेत्रों में क्रांति हुई है, लेकिन हमारे यहाँ नहीं हो सकी। यह कहना शायद ग़लत होगा कि गड़बड़ी इंडिया में हो रही है, भारत में नहीं (यानी गाँव में नहीं)। जोधपुर में दो गाँव ऐसे हैं, जहाँ 100 वर्षों के बाद बारात आई, क्योंकि लड़कियाँ पैदा होते ही मार दी जाती थीं। राजस्थान में तमाम ऐसे गाँव हैं, जहाँ दबंग कमज़ोर वर्ग की औरतों के साथ जबरन संबंध बनाते हैं। इसके अलावा आजकल गाँवों से और भी काफ़ी महिला-उत्पीड़न के मामले सामने आ रहे

हैं।

तिरस्कार दुष्कर्म का हो न कि पीड़िता का—

भारतीय समाज में महिलाओं के उत्पीड़न, छेड़छाड़ या दुष्कर्म के मामले में लोग दुष्कर्म या छेड़-छाड़ की शिकार महिला को ही हीन भावना से देखते हैं, या उसका ही तिरस्कार किया जाता है, न कि उसका जिसने यह धिनौना कृत्य किया है। वह महिला घर से बाहर इसीलिए नहीं निकल पाती कि वह अब लोगों की नज़रों का सामना किस प्रकार करेगी। लोगों को उसके साथ हमदर्दी होनी चाहिए ताकि वह आगे सामान्य जीवन जी सके।

मददगारों की भी मदद करे प्रशासन—

ऐसी व्यवस्था स्थापित की जाए कि आम जनता पीड़ित महिला की मदद के लिए आगे आए। कई बार पुलिस जाँच कार्यवाही ऐसी होती है कि मदद करने वाले लोग परेशान हो जाते हैं और उसी व्यक्ति से ऐसे पूछताछ की जाती है, जैसे कि उसी ने अपराध किया हो। पुलिस व प्रशासन का कर्तव्य यह होना चाहिए कि जो मददगार होते हैं उनकी वे मदद करें।

कठोर सजा का हो प्रावधान—

महिलाओं पर जो अत्याचार व उत्पीड़न होता है, उस पर कठोर सजा का प्रावधान हो। यहाँ तक की दुष्कर्म के मामले में तो फाँसी से भी परहेज़ नहीं होना चाहिए। यदि ऐसे कठोर कानून होंगे, तो अपराधी के अपराध करने से पहले रोंगटे खड़े हो जाएँगे।

पीड़िता के बयान महिला पुलिस कर्मी द्वारा हों—

जब भी कोई महिला अपनी किसी समस्या को लेकर थाने में जाती है तो उसका बयान लेते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि उस समय महिला पुलिसकर्मी मौजूद हो। यदि ऐसा होगा तो पीड़िता को हीनभावना का शिकार नहीं होना पड़ेगा और वह अपने विचार खुलकर व्यक्त कर सकेगी।

किसी भी घटना को गुप्त न रखा जाए—

कई बार परिवार व माता-पिता कुछ घटनाओं को जान-बूझकर अनदेखा कर देते हैं और यही गलती उन पर भविष्य में भारी पड़ती है। यदि कोई घटना को उजागर नहीं करता तो अपराधी के हौसले बुलंद हो जाते हैं और वह आगे और भी भयानक अपराध कर बैठता है।

नई तकनीक का प्रयोग करें—

आजकल महिलाओं की सुरक्षा के लिए बाज़ार में नई-नई तकनीक आई हैं, उनका प्रयोग किया जाना चाहिए, जैसे पेपरस्त्रे जोकि सामने वाले के चेहरे पर 6 फिट की दूरी से स्प्रे करता है और 30 मिनट के लिए अपराधी को बेकार कर सकता है। इसी प्रकार मोबाइल स्टन गन है जो प्रयोग करने पर सामने वाले को जोर का झटका देता है। ऐसे कुछ भी काफ़ी हद तक सुरक्षित रख सकते हैं।

महिलाओं में प्रेरणा पैदा की जाए—

महिलाओं की समस्याओं से संबंधित कानून उचित परिस्थितियाँ तो पैदा कर सकता है, नया रास्ता भी खोल सकता है, अधिकार भी दे सकता है, पर उन अधिकारों के प्रयोग की शक्ति नहीं दे सकता, यह तो उसे आत्मबल से ही करनी होगी। महिलाओं को स्वयं को जाग्रत करना होगा, तभी उनकी दशा में सुधार आ सकता है।

अंत में यही कहा जा सकता है, कि हम जिनको भी अपने से कमघोर पाते हैं, उन्हें ही अपने रहमो-करम पर जीने वाला मान लेते हैं। हम उनसे शायद यह अपेक्षा करने लग जाते हैं कि उनकी अपनी कोई इच्छा न हो, वे सिर्फ वही और वैसा ही करें जैसा हम उनसे चाहते हैं। आखिर यह कहाँ तक उचित है? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिससे हम किसी भी स्थिति में मुँह नहीं मोड़ सकते। बेहतर होगा कि हम अभी से इस पर विचार करना शुरू कर दें और इससे पहले कि पानी सिर से ऊपर गुज़रने लगे, अपनी मानसिकता बदलना शुरू कर दें।

संदर्भ

1. डॉ॰ सुषमा जैन, भारतीय समाज और महिलाएँ, साहित्यकार, जयपुर 2009
2. रवींद्रनाथ मुखर्जी, भारतीय समाज व संस्कृति, विवेक प्रकाशन 1999
3. डॉ॰ आर॰पी॰ तिवारी व डी॰पी॰ शुक्ला, भारतीय नारी: वर्तमान समस्याएँ और भावी समाधान, 2002
4. एस॰ एल॰ दोषी व पी॰सी॰ जैन, भारतीय समाज नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2002
5. सुधारानी श्रीवास्तव, महिला-शोषण और मानवाधिकार, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2006
6. दैनिक जागरण, 30 दिसंबर 2012, पृ॰ 9
7. दैनिक जागरण, 26 जनवरी 2013

□ प्राध्यापक समाजशास्त्र
छोटूराम किसान महाविद्यालय
जींद (हरियाणा)

भारतीय संविधान का निर्माण

वर्षा पांडेय
डॉ० वी०सी० त्रिपाठी

कैबिनेट मिशन, 1946 (जिसमें ब्रिटिश मंत्रिमंडल के तीन सदस्य—लॉर्ड पैथिक लॉरेन्स, सर स्टेफर्ड क्रिप्स और ए०बी० एलेक्जेंडर थे) ने भारत के लिए अग्रलिखित योजना प्रस्तुत की, जिसमें दो प्रमुख प्रस्ताव थे—

1. भारत पर ब्रिटिश सरकार की प्रभुसत्ता को समाप्त कर देना चाहिए।
2. संविधान बनने के लिए संविधान सभा का निर्वाचन शीघ्र होना चाहिए।¹

कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों को भारतीयों ने स्वीकार किया। मिशन के सुझावों के अनुसार नवंबर, 1946 ई० में संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव किया गया। कुल 296 सदस्यों की इस सभा में 211 सदस्य काँग्रेस से, 73 सदस्य मुस्लिम लीग से तथा शेष 12 स्थान खाली रहे।²

‘कैबिनेट मिशन’ योजना के अंतर्गत गठित संविधान सभा की प्रथम बैठक 9 दिसंबर, सन् 1946 ई० को डॉ० सच्चिदानंद सिन्हा की अस्थायी अध्यक्षता में हुई। 11 दिसंबर, सन् 1946 ई० को डॉ० राजेंद्रप्रसाद संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष चुने गए। इस तरह संविधान सभा के 310 सदस्यों द्वारा संविधान सभा का विधिवत् कार्य आरंभ हुआ। इसमें योग्य एवं अनुभवी नेता सदस्य बनाए गए। इनमें राष्ट्रीय काँग्रेस के डॉ० राजेंद्रप्रसाद, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी एवं पंडित गोविंदवल्लभ पंत, मौलाना अबुल कलाम आजाद, के०एम० मुंशी, आचार्य कृपलानी जैसे शीर्षस्थ नेता सम्मिलित थे। इनके अतिरिक्त, अन्य प्रमुख दलों से संबंधित व्यक्तियों में डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, डॉ० जय बख्शी, प्रो० के०टी० शाह, डॉ० भीमराव अंबेडकर, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती हंसा मेहता, श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख आदि थे। 13 दिसंबर, सन् 1946 ई० को पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा एक उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया, जो 22 फरवरी, सन् 1947 ई० को स्वीकृत हुआ। इस प्रस्ताव में संविधान सभा ने निम्नलिखित बातें रखीं—

1. भारत एक पूर्ण स्वतंत्र और प्रभुत्वसंपन्न गणराज्य होगा। वह स्वयं अपने लिए संविधान का निर्माण करेगा।
2. वे क्षेत्र, जो इस समय ब्रिटिश भारत कहलाते हैं तथा भारतीय रियासतों के अंतर्गत आते हैं, तथा ब्रिटिश भारत और रियासतों के वे क्षेत्र जो स्वतंत्र एवं पूर्ण प्रभुत्वसंपन्न भारत में सम्मिलित होना चाहते हैं, सब मिलकर एक संघ कहे जाएँ।

3. ये तथाकथित क्षेत्र अपनी वर्तमान सीमाओं में अथवा संविधान द्वारा निश्चित सीमाओं में संविधान द्वारा की गई व्यवस्था के अनुसार स्वायत्तशासी इकाई होगी।
4. भारतीय संघ की सरकार और उसकी इकाइयों की सरकारों को समस्त राजनीतिक शक्ति एवं समस्त अधिकार जनता से प्राप्त होंगे।
5. अल्पसंख्यक वर्गों, पिछड़ी जातियों और जनजातियों के हितों की रक्षा की समुचित व्यवस्था जाएगी। वे देश के शासन में समान रूप से भाग ले सकेंगे।
6. भारतीय क्षेत्र की अखंडता, भूमि, जल तथा वायु पर उसकी प्रभुता की रक्षा, न्याय तथा सभ्य राष्ट्रों के कानूनों के अनुसार की जाएगी।
7. यह प्राचीन देश विश्व में अपना अधिकार व सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा और विश्व शांति तथा मानव के कल्याण में अपना पूर्ण एवं स्वैच्छिक योगदान देता रहेगा।³

उक्त उद्देश्य प्रस्ताव ही वास्तव में भारतीय संविधान का आधार हैं। इसके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए के०एम० मुंशी ने कहा था, 'श्री नेहरू द्वारा यह उद्देश्य प्रस्ताव हमारे लोकतांत्रिक प्रभुत्वसंपन्न गणराज्य की जन्मकुंडली है।'⁴

उद्देश्य प्रस्ताव पारित हो जाने के पश्चात् संविधान के पृथक्-पृथक् भागों पर विचार करने के लिए संविधान सभा को कई समितियों में विभाजित कर दिया गया। इनमें संघीय अधिकार समिति, संघीय संविधान समिति, मौलिक अधिकार समिति, अल्पसंख्यक समिति आदि प्रमुख थीं। परंतु संविधान को अंतिम रूप देने के लिए 29 अगस्त, सन् 1947 ई० को संविधान सभा ने डॉ० भीमराव अंबेडकर की अध्यक्षता में एक सात सदस्यीय प्रारूप समिति गठित की। एन० गोपालास्वामी आयंगर, अल्लादी, कृष्णस्वामी अय्यर, के०एम० मुंशी, मुहम्मद सादुल्ला, एन० माधवराव आदि इसके सदस्य थे।

इस प्रारूप समिति द्वारा तैनात किया हुआ संविधान का प्रारूप 21 फरवरी, सन् 1948 ई० को संविधान सभा के समक्ष रखा गया। इस पर विचार हेतु प्रथम अधिवेशन 4 नवंबर, सन् 1948 ई० तक चला, जिसमें सामान्य विचार-विमर्श हुए। तत्पश्चात् द्वितीय अधिवेशन 15 नवंबर, सन् 1948 ई० से 15 अक्टूबर, सन् 1949 ई० तक चला। इस अवधि में 7,635 संशोधन प्रस्तुत किए गए, परंतु इनमें से 2,743 संशोधनों पर ही विचार किया गया। अंतिम रूप से 395 धाराओं तथा 9 अनुसूची के संविधान को संविधान सभा द्वारा 26 नवंबर, सन् 1949 ई० को स्वीकार कर लिया गया। संविधान के कुछ अनुच्छेद तत्काल लागू कर दिए गए और शेष 26 जनवरी सन् 1950 ई० में। रावी नदी के तट पर अखिल भारतीय काँग्रेस के नेतृत्व में भारतीय जनता ने स्वतंत्रता प्राप्त करने का संकल्प लिया था। संविधान सभा ने अपने अंतिम अधिवेशन में 24 जनवरी, 1950 ई० को सर्वसम्मति से डॉ० राजेंद्रप्रसाद को भारतीय गणराज्य का प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित किया।

इस तरह संविधान के निर्माण में 2 वर्ष, 11 माह और 18 दिन का समय लगा। इसके तीन वर्ष के अस्तित्वकरण में 63 लाख, 96 हजार 729 रुपये खर्च हुए।⁵

संदर्भ

1. भारत का संविधान, डॉ० जयनारायण पांडेय, पृ० 16

2. The Constitutional Law of India , Jai Narain Pandey, p. 16
3. भारत का संविधान : एक परिचय, आचार्य डॉ दुर्गादास बसु, पृ० 20
4. Objective Resolution cast the horoscope of our Sovereign Democratic Republic' K.M. Munshi, 'The Pioneer ' (Daily), 23 Feb., 1947, p. 1.
5. भारत का संविधान, मनहरगोपाल भार्गव, पृ० 32-33

एक साहित्यकार की अनुभव-संपदा : सवाल साहित्य के

उषा यादव

सवाल साहित्य के डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल की नवीनतम पुस्तक है, जिसमें एक साहित्यकार के रूप में उनके अनुभवों पर आधृत चौदह निबंध संकलित हैं। स्वानुभव पर निर्मित होने के कारण उनका यह रचना-भवन पाठकों को साहित्य की बँधी-बँधाई परिपाटी से इस चिंतन की एक नई भावभूमि प्रदान करता है। विषय और शैली की ताज़गी ने पूरी पुस्तक को एक अलग छवि प्रदान है। हर निबंध कुछ ऐसी विचारोत्तेजक सामग्री सहित प्रस्तुत हुआ है, जो आज के साहित्यिक-पटल के प्रति हमें गंभीर बनाता है।

पुस्तक के पहले निबंध 'साहित्यिक अध्ययन की समस्या' में निबंधकार ने साहित्य के प्रति आम पाठक को जिज्ञासु बनने के लिए कहा है। कोई साहित्यिक रचना किसी सिनेमा हॉल में लगी ऐसी नई फ़िल्म नहीं है, जिसके बारे में अख़बारी राय पढ़कर उसे देखने या न देखने का फ़ैसला किया जाए। यहाँ तो रचनाकार का नाम भी रचना के महत्त्व के सामने गौण हो जाता है। किसी नामी-गिरामी लेखक की क़लम से भी सामान्य या घटिया सृजन संभव है। दूसरी तरफ़ कोई नया या गुमनाम लेखक बहुत बढ़िया रचना दे सकता है। इसीलिए हमें किसी पुस्तक को पढ़कर ही उसके बारे में निष्कर्ष निकालने चाहिए और एक अनुसंधित्सु की भाँति उसके गुणों को खोजना चाहिए। हर पाठक के हृदय में एक समीक्षक छिपा होता है। नई पुस्तक हाथ में आने पर यदि पाठक स्वयं नीर-क्षीर-विवेकी बनकर उसमें अवगाहन करे, तो ऐसे अमूल्य मोतियों को खोज सकेगा, जिनकी आभा अनिंद्य होगी। किन्हीं पूर्वाग्रहों-दुराग्रहों के तहत किसी रचना को लेना सचमुच अध्येता का ऐसा निजी घाटा है, जिसकी भरपाई संभव नहीं। साहित्य के अध्ययन के प्रति पाठकों के गंभीर और जागरूक होने पर ही साहित्य का सच्चा और निष्पक्ष मूल्यांकन संभव है।

'साहित्य में भाषा की समस्या' निबंध बताता है कि रचना में विषय के साथ अभिव्यक्ति का भी समान महत्त्व है। रचनाकार की भाषा-सामर्थ्य ही उसकी रचना को जन-जन तक संप्रेषित कर सकती है। इसी विषय का विस्तार 'गद्य में उपमाओं' और प्रतीकों का प्रयोग निबंध में है, जो सिद्ध करता है कि रचनाकार को भाषा-सौष्ठव पर ध्यान देना चाहिए। भाषा का सलीका न जानने पर रचना तो दोयम दर्जे की बनेगी ही, पाठकों को भी किसी अख़बारी ख़बर से अधिक न लगेगी।

'समीक्षा में निष्पक्षता और सहानुभूति के संदर्भ' एक ऐसा निबंध है, जो हमें वर्तमान समीक्षा-पद्धति की विसंगतियों और दोषों के प्रति सावधान करता है। सचमुच गुटबंदी और खेमेबाज़ी ने आज हिंदी-समीक्षा का बहुत ज़्यादा अहित किया है। परस्पर प्रशंसन्ति अहो रूप अहो ध्वनि के चलते अपने यार-दोस्तों की औसत दर्जे की रचना की वाहवाही और दूसरों की श्रेष्ठ रचनाओं की

भी अवज्ञा ने समीक्षा-क्षेत्र में एक ऐसा आपाधापी का माहौल उपजा दिया है कि पूरी समीक्षा-पद्धति ही अपनी विश्वसनीयता खो बैठी है। ऐसी स्थिति में निबंधकार का यह मत स्वागतयोग्य है, 'मेरा मन है कि वर्तमान परिस्थितियों' में गुणात्मक परिवर्तन लाया जाना ज़रूरी है।

'साहित्य में आत्मनिर्भरता का महत्त्व' निबंध उन लेखकीय अनुभवों पर आधृत है, जो निबंधकार ने ग़ज़ल रचना सीखने के दौरान बटोरे। निश्चय ही अपनी पहचान बनाने की ललक तो हर साहित्यकार में होती है, पर पहचान वही क़लम बना पाती है, जिसका 'अंदाज़ ए बयां' अलग होता है। भीड़ का एक हिस्सा बनकर अपनी पहचान बना पाना संभव नहीं। इसके लिए अपनी अलग शैली विकसित करनी ही होगी।

'महत्त्व किसका, परंपरा या प्रयोग का' निबंध उस संतुलन की बात कहता है, जो कामायनी में समरसता के माध्यम से प्रसादजी ने बताई है। सचमुच नए और पुराने का संतुलन ज़रूरी है। सिर्फ़ प्रयोग या फिर सिर्फ़ परंपरा की उँगली थामकर श्रेष्ठ साहित्य-सृजन नहीं हो सकता। निबंधकार की यह मान्यता स्तुत्य है। यह संतुलन परंपरा और प्रयोग दोनों को साथ लेकर चलने से प्राप्त होगा। किसी एक पर जोर देने से नहीं।

'साहित्य में आंदोलनात्मक खेमाबंदी' शीर्षक निबंध उस गंभीर वैचारिक भित्ति पर आधृत है, जो हमारे कानों में चुपके से सफलता का यह मूलमंत्र फूँक जाती है, सोच के स्तर पर रचयिता की स्वतंत्रता का अर्थ क्या है, इस रहस्य को समझने की आवश्यकता है। (पृ० 91) जाहिर है, किन्हीं आंदोलनों, सिद्धांतों-रूप से उनका बंधक न बने, अन्यथा अपना ही दिवालियापन घोषित कर देगा किसी खेमाबंदी से बंधकर श्रेष्ठ साहित्य रचा ही नहीं जा सकता है।

'हिंदी-ग़ज़ल में मेरे अनुभव' तथा 'ग़ज़ल कला और अपेक्षाएँ' में लेखक ने ग़ज़ल विधा पर स्वालंबों की विवृत्ति के साथ-साथ कलापरक दृष्टि से भी विचार किया है। निश्चय ही हिंदी-ग़ज़ल के नाम पर आज जो अनर्गल रचा जा रहा है, वह चितनीय है। इसलिए इन निबंधों का महत्त्व बहुत अधिक है।

'लेखक, सामान्यजन और साधारण पाठक निबंध में लेखक का यह निष्कर्ष सही है, 'पाठक नहीं रहेंगे तो साहित्यकार भी नहीं रहेगा। इसलिए अनिवार्यतः पाठकों की संख्या तो हमें बढ़ानी ही होगी। साहित्य जगत् की बढ़ती हुई जनसंख्या इसी सिक्के का दूसरा पहलू है, जो आज थोक के भाव साहित्यकारों के गढ़े जाने की समस्या पर आधृत निबंध है। ऐसी न जाने कितनी फैक्ट्रियाँ चल रही हैं, जो एक पंक्ति तक शुद्ध न लिख सकने वालों को भी साहित्यकार बना देने का दावा करती हैं। विचारणीय प्रश्न है, क्या यह स्थिति साहित्य के लिए घातक और भयावह नहीं है?

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'सवाल साहित्य के' एक साहित्यकार की क़लम से उन दहकते हुए सवालों को साहित्य-प्रेमियों के सामने लाती है, जो समकालीन हिंदी साहित्य को लेकर सभी के मन को प्रायः कुरदते रहते हैं। ये निबंध हमें साहित्य के ख़तरों के प्रति आगार करने हैं और इन गंभीर सामयिक सवालों को लेकर हमें चिंतन के लिए विवश भी करते हैं। रचनाकार डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल इन विचारोत्तेजक निबंधों के सृजन हेतु बधाई के पात्र हैं।

□ 73, नार्थ ईदगाह, आगरा-10

सवाल साहित्य के प्रतिक्रिया

डॉ० हणमंतराव पाटील

हिंदी साहित्य-निकेतन, बिजनौर (उत्तर-प्रदेश) द्वारा प्रकाशित डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल की पुस्तक 'सवाल साहित्य के' में कुल चौदह आलेख हैं। सभी आलेखों में लेखक के साहित्यकार के रूप में अपने अनुभव हैं। ये चौदह आलेख हैं—'साहित्यक अध्ययन की समस्या', 'साहित्य में भाषा की समस्या', 'गद्य में उपमाओं और प्रतीकों का प्रयोग', 'समीक्षा में निष्पक्षता और सहानुभूति के संदर्भ', 'साहित्य में आत्मनिर्भरता का महत्त्व', 'महत्त्व किसका, परंपरा या प्रयोग का', 'साहित्य में आंदोलनात्मक खेमाबंदी', 'हिंदी गजल में मेरे अनुभव', 'चिंतन, भावना, अनुभव और उद्देश्य', 'साहित्य में आशावाद और निराशावाद', 'लेखक, सामान्यजन और साधारण पाठक', 'साहित्य जगत् में बढ़ती हुई जनसंख्या', 'कबिरा खड़ा बाज़ार में' और 'गजल-कला और अपेक्षाएँ।'

इनमें से प्रत्येक आलेख में लेखक का अपना चिंतन दिखाई देता है। लेखक ने इस चिंतन के संबंध में जो विचार किए हैं, वही ये आलेख हैं। इसलिए प्रत्येक आलेख अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण बना है।

साहित्यिक अध्ययन की समस्या के संबंध में लेखक कहता है कि समालोचक यदि न्यायाधीश न बनकर अपनी भूमिका एक अच्छे और कर्तव्यनिष्ठ साहित्यिक की सीमा में रखे तो यह आधुनिक साहित्य के लिए सर्वाधिक गुणकारी होगा। साहित्यकार समालोचकों और समीक्षकों की इच्छापूर्ति करने से बचेंगे और पाठक अपने विवेक को अपने हाथों से गिरवी रखने से बचेंगे।

साहित्य में भाषा की समस्या के संबंध में लेखक का कहना यह है कि 'यह समस्या इसलिए जटिल हो जाती है कि विचार अपने प्रकटीकरण से पहले लेखक को पाठक के साथ नहीं जोड़ता। वह पाठक से लेखक का संबंध तभी स्थापित करता है, जब वह शब्दों का रूप लेकर सामने आ जाता है। विषय पर अत्यधिक बल देना और भाषा को नज़रअंदाज़ करना साहित्य-जगत् की सबसे बड़ी भूल है।'

गद्य में उपमाओं और प्रतीकों के संबंध में लेखक का कहना यह है कि 'सामंती युग के सौंदर्यबोध से आधुनिक युग का सौंदर्यबोध बिल्कुल अलग है। आज के लेखक को अपनी रचनाओं में सौंदर्य कृत्रिमता से नहीं, सादगी से उत्पन्न करना होता है। लेकिन इस सादगी में सपाटपन नहीं, गहरी कलात्मकता होनी चाहिए।'

समीक्षा में निष्पक्षता और सहानुभूति के संदर्भ में लेखक का अन्वय यह है कि 'इसमें गुणात्मक परिवर्तन आना आवश्यक है। गुणात्मक परिवर्तन लाना मतलब सहानुभूति की भावना

से अभिप्राय अशुद्धियों एवं त्रुटियों को नज़रअंदाज़ कदापि नहीं। उद्देश्य यह होता है कि आलोचना को कसौटी बनाना चाहिए, तलवार नहीं।’

साहित्य में आत्मनिर्भरता का महत्त्व आलेख में लेखक का कहना यह है कि ‘क्या कहना’ और ‘कैसे कहना’ में जो अंतर है उस पर एक बार फिर दृष्टि डालिए। साहित्य में अपने आपको पाने का अकेला यही एक सूत्र है। यह आपको राह दिखाता है और आत्मनिर्भर बनाता है।’

महत्त्व किसका, परंपरा या प्रयोग का? आलेख में लेखक का कहना यह है कि जीवन को विशेषकर साहित्य को किसी तरह का अतिवाद सहना नहीं। यह अतिवाद चाहे प्रयोगवादियों की ओर से हो या परंपरावादियों की ओर से। साहित्य संतुलन चाहता है। यह संतुलन परंपरा और प्रयोग दोनों को साथ लेकर चलने से प्राप्त होगा, किसी एक पर ज़ोर देने से नहीं।

‘साहित्य में आंदोलनात्मक ख़ेमाबंदी के संबंध में लेखक का कहना यह है कि ‘किसी विचारधारा, सिद्धांत, दर्शन अथवा आंदोलनात्मक गतिशीलता को प्रस्तुत करने या उसे अपनाने के बावजूद साहित्यकार के लिए यह आवश्यक है कि वह इनका मानसिक रूप से बंधक न बने। साहित्यकार जब-जब किसी प्रकार से वैचारिक ख़ेमाबंदी के साथ बँध जाता है या स्वयं अपनी असंतुलित भावनाओं की पकड़ में आ जाता है, तो वह लेखन के साथ न्याय नहीं कर पाता।’

हिंदी गज़ल के संबंध में मेरे अनुभव के संबंध में, ‘अनुभव ने मुझे बताया कि गज़ल ही नहीं, साहित्य की किसी भी विधा में निरंतर अभ्यास, अध्ययन तथा सही मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। इसके बिना लक्ष्य तक पहुँचना मुश्किल होता है।’

चितन, भावना, अनुभव और उद्देश्य के संबंध में लेखक कहता है कि विचार विषय, अनुभव और उद्देश्य ये अनुभूतियाँ अपने आपसे जोड़ते हैं, जबकि शब्द दूसरों से और दूसरों से जुड़ने के लिए स्वयं में आकर्षण उत्पन्न करना होता है। यहाँ सीधे सपाटपन से काम नहीं बनता।

साहित्य में आशावाद और निराशावाद के संबंध में लेखक का कहना यह है कि ‘सबसे पहले यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि एक साहित्यकार के रूप में हमारा उत्तरदायित्व मात्र अपनी रचनाओं को पाठकों तक पहुँचाना ही नहीं, उनके चितन, विवेक, ज्ञान और अनुभवों को विकसित करना भी है।’

‘लेखक, सामान्यजन और साधारण पाठक’ इस आलेख में लेखक यह कहना चाहता है कि साहित्यकार का अस्तित्व बिना पाठक या श्रोता के नहीं है। वह हवा में अपनी बात नहीं रख सकता। जीवित मानव-प्राणी को ही अपनी बात सुना सकता है। सुनाने या पढ़ने की भावना के बिना साहित्य-रचना का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

‘साहित्य-जगत् में बढ़ती हुई जनसंख्या’ के संबंध में लेखक यह कहना चाहता है कि ‘साहित्य के जगत् में बढ़ती हुई भीड़ पर अंकुश लगाना संभव नहीं, किंतु प्रबुद्ध श्रोताओं और समीक्षकों के लिए आवश्यक है कि वे वाहवाही वाली अपनी पुरानी नैतिक परंपरा को बदलें ताकि भ्रमित हो रहे नवागंतुक को सही मार्ग पर चलने की सीख मिल सके।’

‘कबिरा खड़ा बाज़ार में’ आलेख में लेखक यह कहता है कि लेखन पर विराम लगाना आपके वश में नहीं है। एक दिन आ सकता है जब कबीर बाज़ार में खड़ा होकर सबकी ख़ैर

माँग रहा हो और वहाँ उपस्थित अधिकांश व्यक्ति उसकी आवाज़ पर आकर्षित हो रहे हों।

‘ग़ज़ल कला और अपेक्षाएँ’ इस आलेख में लेखक यह कहना चाहता है कि ‘हिंदी ग़ज़लकारों के सामने एक कठिनाई यह भी आ पड़ती है कि फ़ारसी बहरों के हिसाब से हिंदी के कुछ शब्दों को दबाकर बोलना या लिखना पड़ता है। यदि इनको दबाकर लिखा या पढ़ा न जाए तो बहर और वज़न में बदलाव आ जाता है।

इस प्रकार इन चौदह आलेखों में साहित्यकार के रूप में लेखक के अपने अनुभव हैं। ये अनुभव जितने साहित्यकार के लिए महत्वपूर्ण हैं, उतने ही साहित्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन अनुभवों के आधार पर लेखक की साहित्य के प्रति तिलमिलाहट और अकुलाहट प्रकट होती है। एक अच्छे साहित्य की निर्मिति में ये अनुभव अत्यंत उपयोगी हैं। इसलिए हमारा कहना यह है कि ‘सवाल साहित्य के’ में जो सवाल हैं, उनको गंभीरता से समझना आवश्यक है। इनको गंभीरता से समझने के बाद ही सच्चे साहित्य का निर्माण हो सकता है।

□ एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग
डी०बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय
औरंगाबाद (महाराष्ट्र) 431004
मो० 09420547070

‘सवाल साहित्य के’ रचना समय की माँग

डॉ० बाबूराम (डी.लिट्.)

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल अनेक दृष्टियों से हिंदी के सुविख्यात साहित्यकार हैं। इनकी साहित्य की विविध विधाओं में सृजनात्मक कृतियाँ प्रमुख हैं। शोध और समीक्षा के क्षेत्र में भी इनका अनुपम योगदान है। वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाज़ारीकरण और नगरीकरण के दौर में साहित्य संस्कृति से अपसंस्कृति की ओर तथा मूल्यों से अवमूल्यन की ओर अग्रसर हो रहा है। बाह्य प्राकृतिक वैश्विक प्रदूषण के साथ-साथ आंतरिक सांस्कृतिक प्रदूषण भी बढ़ रहा है। मानवजाति के अस्तित्व के लिए ये शुभ लक्षण नहीं हैं। इनसे मुक्ति के लिए साहित्य की शरण ग्रहण करना आवश्यक है। डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल ने ‘सवाल साहित्य के’ के माध्यम से अपने अनुभवों के बिंदुओं को बड़ी गहराई के साथ उठाया है और इन सवालों के समाधान प्रस्तुत करते हुए साहित्यकारों को सचेत किया है। लेखक की मान्यता है कि अध्ययन खुले दिमाग से हो, निष्पक्ष हो, मानसिक दासता से न किया गया हो। रचना जब लेखक के स्वामित्व से बाहर हो जाती है, तो उस पर प्रतिक्रिया देने के लिए पाठक का अधिकार हो जाता है।

आज के युग में भाषा का अनेक रूपों में विस्तार हो रहा है और भाषा अपने अनेक रूप-रंगों में दृष्टिगोचर हो रही है। यह सब वैश्विक मकड़जाल का परिणाम है। इसीलिए साहित्यकारों के सामने भाषा की समस्या उत्पन्न हो रही है। लेखक और पाठक का तादात्म्य अनिवार्य है। विषय पर अधिक बल देना और भाषा की अनदेखी करना साहित्य-जगत् की सबसे बड़ी भूल है।

लेखक का मत है कि पद्य-गद्य की भाषाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं और उनकी अभिव्यक्ति के उपकरण भी अलग-अलग होते हैं। आधुनिक साहित्यकारों ने पद्य-गद्य की भाषा को गड्ढमड्ड कर दिया है, जिसके कारण पद्य का भावात्मक सौंदर्य तथा उसकी रसात्मकता विलुप्त होती जा रही है और गद्य का विचारात्मक स्वरूप विकृत और अस्पष्ट होता जा रहा है।

निष्पक्षता और तटस्थता सच्ची समीक्षा के प्रतिमान हैं। समीक्षक में सहानुभूति का स्पर्श भी होना चाहिए। साहित्यिक रचना के समीक्षक का रचना के गुण-दोष का विवेचन करना ही पावन कर्तव्य है। समीक्षक को रचनाकार की अपेक्षा रचना को अधिक महत्त्व देना चाहिए। लेखक की यह भी मान्यता है कि समीक्षक को समीक्षा करते समय वस्तुनिष्ठ दृष्टि को अपनाना चाहिए। खेमाबंदी और अपने-अपने दायरे बना लेने की प्रवृत्ति साहित्य-जगत् की निष्पक्षता के लिए और सच्ची समीक्षा के लिए घातक है।

लेखक का साहित्य के संबंध में यह भी विचारणीय प्रश्न है कि साहित्य में आत्मनिर्भरता आवश्यक है। रचनाकार को जो कुछ कहना है, उसे आत्मविश्वास के साथ कहना चाहिए, तभी लेखक में आत्मनिर्भरता का आविर्भाव होगा। इसी के फलस्वरूप साहित्यकार की पहचान संभव है। इसीलिए अपनी शैली के कारण साहित्यकार भीड़ में भी पहचाना जाता है और रचना में उसका व्यक्तित्व भी झलकता है।

साहित्य के सवालियों के अंतर्गत डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल का अभिमत है कि साहित्य में कोई ऐसा नया प्रयोग संभव नहीं है, जिसकी नींव पहले से चली आ रही परंपरा पर न हो। हम परंपरा की नींव पर अपने प्रयोग से नित नए भव्य भवन तो निर्मित कर सकते हैं, किंतु बुनियाद की उस ईंट को नहीं निकाल सकते, जिस पर सभी तरह के प्रयोगों का दुर्ग उठाया जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि साहित्य में परंपरा और प्रयोग का समन्वय आवश्यक है।

संस्कृत में प्रसिद्ध सूक्ति है कवयः निरंकुशः अर्थात् कवि या साहित्यकार स्वतंत्र होते हैं। वे किसी के दबाव या आदेश के कारण रचना में प्रवृत्त नहीं होते। खेमेबंदी और दलबंदी के कारण वादग्रस्त साहित्य की रचना तो संभव है, परंतु चिरस्थायी और कालजयी साहित्य की रचना संभव नहीं है। यही लेखक का दृष्टिकोण है।

लेखक ने हिंदी गूज़ल में अपने व्यक्तिगत अनुभव भी व्यक्त किए हैं। हिंदी में गूज़ल की परंपरा फ़ारसी और उर्दू साहित्य की देन है।

लेखक की यह भी अवधारणा है कि साहित्य-सृजन में आंतरिक, मानसिक और भावात्मक अंतर्द्वंद्व आवश्यक है, तभी ज्वालामुखी की तरह लावा के रूप में उसके विचार बाहर निकलते हैं। भाषा उन भावों और विचारों का विविध रूपों में माध्यम बनती है। यदि साहित्यकार अपनी आत्मानुभूति या अंतर्द्वंद्व के साथ न्याय करके भाषायी स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त करता है, तो वह वास्तविक साहित्यकार है।

मानव अनुकूल परिस्थितियों में आशावादी होता है और प्रतिकूल परिस्थितियों में निराशावादी हो जाता है। इसीलिए आशा-निराशा मानव की सहज प्रवृत्तियाँ हैं। साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध है। साहित्यकार समाज में आशा रूपी मेघों की वर्षा करता है, तो वह लोकप्रियता को प्राप्त करता है अन्यथा वह केवल निराशा रूपी अंधकार फैलाता है। वह समाज के लिए मंगलकारी नहीं होता और समाज भी उसे स्वीकार नहीं करता। साहित्य का अर्थ ही

समाज-मंगल है, लेखक का साहित्य के संबंध में यह महत्वपूर्ण सवाल है।

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल ने एक गंभीर सवाल उठाया है कि साहित्य के लिए लेखक और पाठक दोनों जरूरी हैं। किसी एक के अभाव में साहित्य की रचना संभव नहीं है। चाहे पाठक उच्च स्तर का हो या सामान्य।

सवाल साहित्य के अंतर्गत लेखक कहना चाहते हैं कि कवियों, लेखकों और साहित्यकारों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है, परंतु साहित्य का गुणात्मक स्तर गिर रहा है। विश्वबाजारवाद के दौर में साहित्य एक मिशन न रहकर एक व्यवसाय बनता जा रहा है, जो आज के साहित्य के लिए सबसे बड़ी चुनौती और ज्वलंत समस्या है। साहित्य के भविष्य के संबंध में लेखक बड़े चिंताग्रस्त हैं।

अरबी-फ़ारसी और उर्दू शब्दावली का प्रचलन युग-युगांतर से चल रहा है, परंतु अनेक शब्द हिंदी की प्रकृति के अनुकूल नहीं हैं। साहित्यकारों को इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग में सावधानी बरतनी चाहिए। यही लेखक की मान्यता है।

वस्तुतः कहा जा सकता है कि डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल ने 'सवाल साहित्य के' रचना में जो समस्याएँ उठाई हैं, वे युगानुकूल और प्रासंगिक हैं और साहित्यकारों के लिए इस संदर्भ में सावधान रहने की आवश्यकता है।

प्रोफ़ेसर, हिंदी-विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,
कुरुक्षेत्र

मो. 093158-44906

Email: drbabuji1958@gmail.com

वात्सल्य अनुभूतियों के अर्घ्य से सिक्त लोरियाँ 'ममता की छाँव में'

—कृष्ण शलभ

लोक में माँ और शिशु के सनातन वात्सल्य से फूटते हैं लोरी के स्वर। जब माँ अपने शिशु को सुलाती है तो लोरी का सहारा लेती है। लोरी की धारा को विस्तार और पुष्ट करने में समान रूप से कवियों और कवयित्रियों का अद्वितीय योगदान रहा है। धीरे-धीरे समय के प्रवाह के साथ 'लोरी' की यह नदी भी विस्तार लेती बही जा रही है और इसके मीठे प्रवाह में ममता की छाँव के अवदान के साथ डॉ० शकुंतला कालरा ने भी अपनी वात्सल्य-अनुभूतियों का अर्घ्य दिया है। यह संकलन उनका नवीनतम प्रथम लोरी-प्रभाती संकलन है।

डॉ० शकुंतला कालरा रचित इस संकलन में लोरी और प्रभाती एक साथ कुल 51 रचनाएँ हैं। एक कोमल और भिन्न खुशबू और रूप-रंग के फूलों वाला बेहतरीन गुलदस्ता! संग्रह के प्रारंभ में अति संक्षिप्त भूमिका के सहारे लोरी और प्रभाती की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, आज के दौर तथा लोरी और प्रभाती की स्थिति के साथ चिंता और चिंतनपरक विवेचना इसमें की गई है। भूमिका में वह कहती हैं—'मानव जन्म से ही संगीतप्रेमी होता है इस बात का प्रमाण हैं लोरियाँ। मातृकंठ से लोरियों के स्वर शिशु को आनंद के महासागर में निमाज्जित कर देते हैं। शिशु को सुलाने में नारी चेतनाशक्ति केंद्रीभूत हो जाती है। लोकजीवन की प्रत्येक क्रिया में बंधकर बच्चे को निद्राभिभूत कर देती है। लोरियों की भाँति प्रभातियाँ भी लोकसंस्कृति का अंग हैं।'

चिंतन के साथ अपेक्षा भी—आज हमारे पास सुविधाएँ हैं, पर हमारी कोमल कल्पनाएँ सो गई हैं। संयुक्त परिवार खंडित हो रहे हैं। बालक दादी-नानी की गोद में ही नहीं आता तो लोरी और प्रभाती कौन सुनाए? बाजारवाद की संस्कृति में उसकी बलि दी जा रही है। आज भी लोक का यह उल्लास, कथा-रसधारा लौट सकती है, यदि ईश्वर के अनुपम वरदान शिशु की किलकारियों में प्राप्त होने वाले आनंद को प्राथमिकता दें। एक प्रभावशाली भूमिका, जो बच्चों की पुस्तकों में प्रायः अब नहीं होती, पर जिसे होना चाहिए।

संकलन के प्रथम खंड में कुल सैंतीस लोरियाँ हैं। इन लोरियों में एक माँ के शिशु को सुलाने की मनुहारें हैं, तो उसे सपनों के साथ सैर कराने की आकांक्षा और ज्ञानविस्तार के अनुरोध भी शामिल हैं। शिशु के रूठने और मनाने की चेष्टाएँ कहना इतना भर कि लोक में जो कुछ शिशु-संसार का हिस्सा हो सकता है वह सब अपने रूप-रस में सिमटकर एक लय, एक प्राण होकर इन लोरियों में आ विराजा है। कोई अलछल नहीं कोई कृत्रिमता नहीं।

शिशु को सुलाने की बारी आती है तो माँ नींद से गुहार करती है और उसे रानी कहती है क्योंकि नींद असाधारण है, विशेष है, नींद को शीर्ष पर बैठाना ही होगा। इस संबोधन की प्रभा में लोरी शब्दांकित की है कवयित्री ने। देखें—

‘निंदिया रानी इसे सुला दे/धमाचौकड़ी की है दिनभर/नहीं चैन से बैठा छिन भर/थककर के लेटा बिस्तर पर’ और शिशु की थकान की वेदना में लवलीन माँ की गुहार—‘करवट बदल रहा रह-रहकर/आ के इसकी थकन भुला दे।’ चित्र अलग-अलग पर केंद्र में नींद को बुलाना मुख्य।

रात के आने और सूरज के जाने का सनातन सत्य एक लोरी ‘आई रात सुहानी’ में घुल-मिलकर ऐसे उतरा है कि उसमें प्रयोगधर्मिता के साथ नव्यता का भी दर्शन होता है। कविता का पूर्व की अपेक्षा आगे बढ़ जाना इसे ही कहा जाता है। देखिए—‘सोजा बबुआ हुआ अँधेरा/देख धूप का जाल समेटा/सूरज जाकर घर पर लेटा/कोई न जाने कहाँ बसेरा?’ सूरज का घर जाकर लेटना और धूप का जाल समेटना ऐसी ही नव्यता है, जो बरबस अपनी ओर ध्यान खींचता है। सूरदास के ‘चंद्र खिलौना’ का सा हठ शकुंतला कालरा की लोरी ‘कब से बुला रही निंदिया’ में भी आया है। जहाँ शिशु चाँद का खिलौना माँग-माँगकर हलकान है, पर थोड़ा यहाँ माँ की मुश्किलें भी सामने बोलती हैं—‘सिसक-सिसककर रोए लाला/मुश्किल से है इसे सँभाला’ और बात ये भी...कि मुश्किल बड़ी है क्योंकि चाँद आखिर दिलाएँ तो दिलाएँ कैसे?—‘माँगे चाँद कहाँ से दूँ मैं/मिले मोल का तब तो लूँ मैं।’ और फिर यही कहना—‘तू ही चाँद दिला री निंदिया’ क्योंकि चाँद तो सपने ही दिला सकते हैं और सपनों को बुलाने की ताकत नींद के पास है। सचमुच अनूठेपन और यथार्थ की मुश्किलों को कवयित्री ने इस लोरी में पिरोया है।

लोक की विराट लय निरंतर रचना-सृजन में रचनाकारों को शक्ति देती रही है। जहाँ-जहाँ इसकी रस-वर्षा होती है, वहाँ-वहाँ आनंद सुख उमड़ता है। शकुंतला कालरा ने भी इस लोक लय में निमग्न होकर लोरियाँ रची हैं। इन कुछ लोरियों में लोक का रस छलछलाया है। ‘झूल-झूल बिटवा’, ‘सोजा वीर सुलावे मैया’, ‘आ जा निंदिया’ कुछ ऐसी ही लोरियाँ हैं। ‘सोजा वीर सुलावे मैया’ में लोक की लोरी ‘सोवे नंदलाल सुलावे वाकी मैया’ की लय है, तो ‘झूल-झूल बिटवा’ में दादा, ताऊ और काका के रिश्तों को लोकगीतों की परंपरा से ही शक्ति मिली है जहाँ एक कथ्य निरंतर बढ़ता चलता रहता है। और फिर एक के बाद एक रिश्ता! सचमुच लोक के रंग ऐसे ही गाढ़े होते हैं। ‘झूल-झूल बिटवा’ को देखें जहाँ हर बार झूलने के साथ एक अपेक्षा भी बराबर साथ-साथ चली है—‘झूल-झूल बिटवा तू बाबा के झूलना/बड़ा होके करना तू कभी भी गरूर ना’ और फिर दादा के झूलना के साथ यह चाह कि ‘जाइके बिदेश कभी देस नहीं भूलना’ यहाँ देशज शब्दों का टटका भी इसे सौंधी सुगंध देता है। बिटवा, बिदेस, अंबुआ के ऐसे ही प्रयोग हैं। ‘आजा निंदिया तू मोरी अटरिया भी लोक-रंग से ही निसृत हुई लोरी है। फिर ‘अक्कड़-बक्कड़ बंबे बो’ का उठान भी तो लोक का ही है।

इन लोरियों में जहाँ सपने हैं, चाह है, प्यार और दुलार है, वहीं एक निर्धन माँ का स्थितिजन्य करुण त्रासद भी शकुंतला कालरा ले आई हैं जिस ओर रचनाकारों का ध्यान प्रायः कम ही गया है। भूख जैसी दारुण स्थिति और माँ की निंदिया से गुहार—‘भूखा है री मेरा ललना/ना झूला ना कोई पलना। इससे भी आगे जाकर—‘तुझसे तो कुछ छिपा न रानी/है अभाव

की रामकहानी/जैसे-तैसे मन बहला जा।' इस लोरी में अभावग्रस्त माँ की यह याचना द्रवीभूत करने के लिए पर्याप्त है, 'जो कुछ तेरे पास खिला जा' का कथ्य अनूठा और बेजोड़। सामान्य स्वर से हटकर एक अद्भुत लोरी! एक बहाने से विषमता को सम में बदलने की धारार कोशिश की अपेक्षा।

संकलन की इन लोरियों में कुछ लोरियाँ निश्चय ही अनूठी हैं, किंतु सभी लोरियाँ अपनी भावप्रवणता के कारण पाठकों की सामान्य स्थिति से आगे जाकर बहुत कुछ नहीं कह सकती हैं।

'सोना है तो जागना भी होगा' कविता में जहाँ नींद को बुलाने के लिए लोरी की रचना हुई है, वहीं सोने से जगाने के लिए प्रभातियाँ भी जन्मीं। एक सार्थक युग्म जो निरंतर चलता आ रहा है। प्रभातियाँ खंड में कुल चौदह प्रभाती हैं। जाहिर है इनमें जागरण का स्वर प्रमुख है। इनमें सवेरे के भले-भले दृश्य बिंबों के साथ जगत की जाग्रत क्रियाओं का भी समावेश हुआ है, जो माँ लोरी देकर अभी शिशु को सुलाने के लिए प्रयासरत थी वही माँ उसे उठाने के लिए फिर कविता का सहारा लेती है। ऐसा करे भी क्यों न? भारत एक उत्सवधर्मी देश है और उत्सव गीतमय रहते हैं। यानी हर बार गाने/कविता अंग-संग। इसी से वहाँ सोने के गीत है तो जागने के भी। इन प्रभातियों में अधिकांशतः रंग परंपरागत हैं पर फिर भी उनका रस-आकर्षण बाँधे रखने में सक्षम है। 'जागो गुड़िया रानी', 'मेरी लाडो पलकें खोलो', 'जागो हुआ सवेरा', 'भोर भई ठाकुर जी जागे' को संकलन की बेहतर प्रभातियाँ कहा जा सकता है।

'ममता की छाँव' की लोरियाँ और प्रभातियाँ एक माँ के मन के उद्गार और कोशिशों के ऐसे मधुर कोण लिए हैं जिनके रूप-रंग और शेड्स के आस्वाद कुल मिलाकर आनंद की सृष्टि करते हैं। यह संकलन निःसंदेह इसके पाठकों को चित्रों के साथ पढ़ना सुखद रहेगा। पुस्तक का आवरण-चित्र प्रथम दृष्टि में ही अपनी ओर हर किसी का ध्यान खींचेगा, जो माँ और शिशु के सान्निध्य को बखूबी उजागर करने में सक्षम है।

कृष्ण शलभ

डी-87 पैरामाउंट, दिल्ली रोड, सहारनपुर-247001

'ममता की छाँव' (लोरी और प्रभाती संग्रह)

डॉ० शकुंतला कालरा

प्रकाशक : स्वास्तिक प्रकाशन, आत्माराम बिल्डिंग

1376, कश्मीरी गेट, दिल्ली 110032

प्रकाशन वर्ष : 2012, पृष्ठ : 64, मूल्य 200.00

हिंदी साहित्य निकेतन

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

● निश्तर खानकाही एवं डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल गज़ल और उसका व्याकरण	250.00
● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ० मीना अग्रवाल हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-1	495.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-2	700.00
शोधसंदर्भ-भाग-1	500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2	550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3	525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4	595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5	895.00
हिंदी तुकांत कोश	300.00
शोध अंक भाग-1	100.00
शोध अंक भाग-2	100.00
शोध अंक भाग-3	100.00
शोध अंक भाग-4	100.00
शोध अंक भाग-5	100.00
शोध अंक भाग-6	100.00
शोध अंक भाग-7	100.00
शोध अंक भाग-8	100.00
शोध अंक भाग-9	100.00
शोध अंक भाग-10	100.00
शोध अंक भाग-11	100.00
शोध अंक भाग-12	100.00
शोध अंक भाग-13	100.00
शोध अंक भाग-14	100.00
शोध अंक भाग-15	100.00
शोध अंक भाग-16	100.00
शोध अंक भाग-17	150.00
शोध अंक भाग-18	200.00
शोध अंक भाग-19	200.00
शोध अंक भाग-20	200.00

समीक्षा एवं समालोचना

सवाल साहित्य के • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
डॉ कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान • डॉ अंजु भटनागर	500.00
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध • डॉ ज्योति सिंह	150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न • डॉ ज्योति सिंह	300.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा • डॉ मिथिलेश माहेश्वरी	300.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य • डॉ मनोज कुमार	250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर • डॉ दीपा के	250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत) • डॉ मीना अग्रवाल	450.00
डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य • डॉ हरीशकुमार सिंह	350.00
एक साक्षात्कार : पं० अमृतलाल नागर के साथ • डॉ शंकर क्षेम	150.00
गज़ल : सौंदर्य और यथार्थ • अनिरुद्ध सिन्हा	150.00
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) • डॉ ज्योति व्यास	150.00
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व • डॉ लालबहादुर रावल	300.00
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार • डॉ अशोककुमार	350.00
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन • डॉ ओमदत्त आर्य	500.00
आस्थावाद एवं अन्य निबंध • डॉ मिथिलेश दीक्षित	300.00
साहित्य और संस्कृति • डॉ मिथिलेश दीक्षित	300.00
हिंदी व्यंग्य-निबंध : स्वतंत्रता के बाद • डॉ आशा रावत	350.00
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य • डॉ प्रेम जनमेजय	500.00
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष • विनोदचंद्र पांडेय	300.00
हिंदी बालसाहित्य : डॉ सुरेंद्र विक्रम का योगदान • डॉ स्वाति शर्मा	450.00
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष • डॉ गिरिराजशरण, डॉ मीना अग्रवाल	200.00
फिजी में प्रवासी भारतीय • डॉ शुचि गुप्ता	300.00
मुक्तिबोध का रचना-संसार • डॉ शिवशंकर लधवे	200.00
भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव • डॉ पी०आर० वासुदेवन	300.00
हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति • अविनाश वाचस्पति, रवींद्र प्रभात	495.00
हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास • रवींद्र प्रभात	300.00
साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन • डॉ मीनल रश्मि	250.00
डॉ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (गीत खंड) • डॉ आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (दोहा खंड) • डॉ आदित्य प्रचण्डिया	700.00
साठोत्तरी हिंदी-ग़ज़ल : डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान • डॉ अनिलकुमार शर्मा	350.00

हास्य-व्यंग्य

मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	250.00
मंचीय व्यंग्य एकांकी • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
बाबू झोलानाथ • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	60.00
राजनीति में गिरगिटवाद • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	100.00
आदमी और कुत्ते की नाक • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
भज्जी का जूता • महेशचंद्र द्विवेदी	150.00
क्विलयर फंडा • महेशचंद्र द्विवेदी	120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग • महेशचंद्र द्विवेदी	170.00
काका की विशिष्ट रचनाएँ • काका हाथरसी	300.00
काका के व्यंग्य-बाण • काका हाथरसी	200.00
कक्के के छक्के • काका हाथरसी	200.00
लूटनीति मंथन करी • काका हाथरसी	200.00
खिलखिलाहट • काका हाथरसी	200.00
वसीयतनामा • पं सूर्यनारायण व्यास, सं राजशेखर व्यास	150.00
पैसे कहाँ से दें • डॉ आशा रावत	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह • डॉ आशा रावत	100.00
नमस्कार प्रजातंत्र • महेश राजा	150.00
ए जी सुनिए • अशोक चक्रधर	100.00
इसलिए बौद्धम जी इसलिए • अशोक चक्रधर	100.00
चुटपुटकुले • अशोक चक्रधर	60.00
तमाशा • अशोक चक्रधर	60.00
सो तो है • अशोक चक्रधर	60.00
हँसो और मर जाओ • अशोक चक्रधर	60.00
नमस्ते जी • डॉ बलजीत सिंह	150.00
अब हँसने की बारी है • डॉ बलजीत सिंह	200.00
अजगर करे न चाकरी • बाबूसिंह चौहान	200.00
दूध का धुला लोकतंत्र • गोपाल चतुर्वेदी	150.00
सच का सामना • हरीशकुमार सिंह	150.00
• डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	
1995 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	65.00
1996 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00

1998 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	120.00
2002 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2003 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2004 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	170.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ	200.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ	200.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य • डॉ० शिव शर्मा	50.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • डॉ० शिव शर्मा	150.00
अपने-अपने भस्मासुर • डॉ० शिव शर्मा	150.00
प्रतिनिधि व्यंग्य • दामोदरदत्त दीक्षित	100.00
धमकीबाषी के युग में • निशतर खानकाही	60.00
नो टेंशन • डॉ० सुरेश अवस्थी	170.00
ला खर्चा निकाल • गजेंद्र तिवारी	200.00
जलनेवाले जला करें • गजेंद्र तिवारी	60.00
ये है इंडिया • डॉ० हरीशकुमार सिंह	120.00
आँखों देखा हाल • डॉ० हरीशकुमार सिंह	150.00
लिफ्ट करा दे • डॉ० हरीशकुमार सिंह	200.00
देवेंद्र के कार्टून • देवेंद्र शर्मा	80.00
कार्टून कौतुक • देवेंद्र शर्मा	120.00
लिफ्राफ़े का अर्थशास्त्र • डॉ० पिलकेंद्र अरोरा	120.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं • सूर्यकुमार पांडेय	100.00

कहानी

जिज्ञासा और अन्य कहानियाँ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
छोटे-छोटे सुख • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
कथा जारी है • बाबूसिंह चौहान	150.00
इक्कीस कहानियाँ • सत्यराज	100.00
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) • डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ • डॉ० दिनेशचंद्र बलूनी	200.00
एक बौना मानव • महेशचंद्र द्विवेदी	100.00
लव जिहाद • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
हैं आस्माँ कई और भी • नीरजा द्विवेदी	200.00
कौन कितना निकट • रेणु 'राजवंशी' गुप्ता	120.00
लघु कथाएँ • डॉ० हरिशरण वर्मा	150.00

कमरा नंबर 103 • सुधा ओम ढींगरा	150.00
इमराना हाज़िर हो • महेशचंद्र द्विवेदी	150.00
कहानियाँ अमेरिका से • सं० इला प्रसाद	150.00
कुत्तेवाले पापा • मीना अग्रवाल	150.00
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ • सं० डॉ० कमलकिशोर गोयनका	150.00
लघुकथाएँ मानव-जीवन की • सं० सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'	150.00

उपन्यास

इतिहास की आवाष • राजेन्द्र मिश्र	450.00
अनोखा उपहार • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
आसरा • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	100.00
तीन बीघा षमीन • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
मन के जीते जीत • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
कालचक्र से परे • श्रीमती नीरजा द्विवेदी	200.00
भीगे पंख • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
मानिला की योगिनी • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
और लहरें उफनती रहीं • डॉ० तारादत्त निर्विरोध	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • डॉ० शिव शर्मा	150.00
अराज-राज • डॉ० मोहन गुप्त	200.00
सुराज-राज • डॉ० मोहन गुप्त	350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी • डॉ० आशा रावत	150.00
एक चेहरे की कहानी • डॉ० आशा रावत	150.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) • डॉ० आशा रावत	100.00
इतिहास की आवाज़ • डॉ० राजेन्द्र मिश्र	450.00

एकांकी-नाटक

संसार : एक नाट्यशाला • बाबूसिंह चौहान	150.00
ग्यारह एकांकी • डॉ० हरिशरण वर्मा	200.00
दमन • रामाश्रय दीक्षित	100.00
स्वप्न पुरुष • डॉ० उर्मिला अग्रवाल	150.00
अफलातून की अकादमी • डॉ० शिव शर्मा	150.00
• डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
मंचीय व्यंग्य एकांकी	200.00
बच्चों के हास्य नाटक	200.00
बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00

बच्चों के उत्तम नाटक	200.00
भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
नीली आँखें	60.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले • निश्तर खानकाही	125.00
यादों का मधुबन • कृष्ण राघव	150.00
समय के चाक पर • डॉ लालबहादुर रावल	125.00
समय एक नाटक • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	160.00
दर्पण झूठ बोलता है • बाबूसिंह चौहान	60.00
मकड़जाल में आदमी • बाबूसिंह चौहान	80.00
उफनती नदियों के सामने • बाबूसिंह चौहान	100.00
पीठ पर नील गगन • बाबूसिंह चौहान	100.00
इन दिनों समर में (प्रकाशनाधीन) • डॉ कृष्णकुमार रत्नू	250.00
अनुभव के पंख • चंद्रवीरसिंह गहलौत	250.00

गीत-गज़ल

निश्तर खानकाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/ निश्तर खानकाही	500.000
ग़षल मैंने छेड़ी (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर खानकाही	80.00
ग़षलों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर खानकाही	200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर खानकाही	150.00
कोई आवाष देता है • डॉ कुँअर बेचैन	150.00
दिन दिवंगत हुए • डॉ कुँअर बेचैन	150.00
कुँअर बेचैन के नवगीत • डॉ कुँअर बेचैन	200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत • डॉ कुँअर बेचैन	150.00
पर्स पर तितली (हाइकु) • डॉ कुँअर बेचैन	200.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
सत्राटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
प्रतिनिधि गज़लें • डॉ गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
मातृभूमि के लिए • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	200.00

संघर्ष जारी है • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	170.00
जीवन-पथ में • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
देश हम जलने न देंगे • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
तुम भी मेरे साथ चलो • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
उजियारा आशाओं का • तारा प्रकाश	150.00
बुलंदी इरादों की • तारा प्रकाश	150.00
चलने से मंथिल मिलती है • तारा प्रकाश	200.00
इंद्रधनुष • तारा प्रकाश	200.00
संवेदनाओं के रंग • तारा प्रकाश	200.00
तारा प्रकाश समग्र • तारा प्रकाश	600.00
शमा हर रंग में जलती है • रामेश्वरप्रसाद	150.00
आदमी के हक में (गज़ल-संग्रह) • रामगोपाल भारतीय	100.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) • रमेश कौशिक	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) • रमेश कौशिक	150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य) • आर्यभूषण गर्ग	200.00
राधेय (खंडकाव्य) • डॉ० आकुल	120.00
असित चंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) • डॉ० आकुल	120.00
ज़िंदगी गाती तो है/(गज़ल-संग्रह) • डॉ० आकुल	120.00
आसमान मेरा भी है (गज़ल-संग्रह) • किशनस्वरूप	100.00
बूँद-बूँद सागर में (गज़ल-संग्रह) • किशनस्वरूप	100.00
आँचल-आँचल खुशबू (गज़ल-संग्रह) • कर्नल तिलकराज	100.00
ज़ख्म खिलने को हैं (गज़ल-संग्रह) • कर्नल तिलकराज	100.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) • शचींद्र भटनागर	150.00
तिराहे पर (गज़ल-संग्रह) • शचींद्र भटनागर	150.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) • शचींद्र भटनागर	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) • शचींद्र भटनागर	200.00
सुरों के ख़त • अश्विनीकुमार 'विष्णु'	100.00
सुनहरे मंत्र का जादू • अश्विनीकुमार 'विष्णु'	100.00
सुनाते हुए ऋतुगीत • अश्विनीकुमार 'विष्णु'	150.00
सुबह की अंगूठी • अश्विनीकुमार 'विष्णु'	150.00
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) • डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) • डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) • डॉ० मीना अग्रवाल	200.00
गुलमुहर की छाँव में (गज़ल-संग्रह) • मनोज अबोध	100.00
मेरे भीतर महक रहा है (गज़ल-संग्रह) • मनोज अबोध	150.00
अग्निसुता • राजेंद्र शर्मा	150.00

सीतायनी • डॉ शंकर क्षेम	150.00
एक मुट्ठी धूप • नीरजा सिंह	100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर • डॉ कमल मुसद्दी	150.00
फ़ासले मिट जाएँगे (गज़ल-संग्रह) • डॉ बलजीत सिंह	150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) • डॉ बलजीत सिंह	150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) • डॉ बलजीत सिंह	150.00
भीतर का संगीत (दोहे) • डॉ बलजीत सिंह	200.00
सुख के बिरबे रोप (दोहे) • डॉ बलजीत सिंह	200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) • डॉ बलजीत सिंह	200.00
बहती नदी हो जाइए (गज़लें) • डॉ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	150.00
अँधियारों से लड़ना सीखें (गज़लें) • डॉ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) • डॉ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) • डॉ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) • डॉ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
अनजाने आकाश में • महेशचंद्र द्विवेदी	170.00
बातें कुछ अनकही • सत्येंद्र गुप्ता	200.00
मैंने देखा है • सत्येंद्र गुप्ता	200.00
हौसला तो है • सत्येंद्र गुप्ता	200.00
षिंदगी रुकती नहीं • सत्येंद्र गुप्ता	200.00
जष्वात की धूप • धूप धौलपुरी	250.00
मैं एक समुद्र • डॉ तारादत्त 'निर्विरोध'	200.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ • नवलकिशोर शर्मा	180.00
जब चाँद डूब रहा था • नवलकिशोर शर्मा	200.00
एड्स शतक • पूरणसिंह सैनी	150.00
श्रीगोगाचरित (महाकाव्य) • पूरणसिंह सैनी	300.00
खोजें जीवन सत्य (दोहे) • डॉ ओमदत्त आर्य	150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) • डॉ ओमदत्त आर्य	200.00
राष्ट्र-शक्ति • सलेकचंद संगल	150.00
माँ तुझे प्रणाम • सलेकचंद संगल	150.00
लहरों के विरुद्ध • डॉ रामप्रकाश	200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता • महेंद्र कुमार	200.00
समय के भूगोल में • राजेंद्र मिश्र	200.00
असाबिया • राजेंद्र मिश्र	200.00
पीड़ा का राजमहल • डॉ उर्मिला अग्रवाल	200.00
उड़ान जारी है • विनोद भृंग	200.00
सूर्यनगर की चाँदनी • रामेश्वर वैष्णव	150.00

कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) ● हरिराम पथिक	200.00
डॉ० महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र (भाग एक) ● सं० डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ० महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र (भाग दो) ● सं० डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
मान भी जा छुटकी ● गीतिका गोयल	150.00

आत्मकथा-संस्मरण, साक्षात्कार, पत्र

मेरा जीवन : ए-वन ● काका हाथरसी	300.00
आत्मसरोवर ● ओम्प्रकाश अग्रवाल	125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु ● नीरजा द्विवेदी	200.00
सफ़र साठ साल का ● डॉ० अजय जनमेजय (सं)	400.00
यादों की गुल्लक ● गीतिका गोयल, डॉ० अनुभूति (संपादक)	300.00
आधी हक़ीक़त आधा फ़साना ● डॉ० बलजीतसिंह	150.00
मेरे साक्षात्कार ● डॉ० बालशौरि रेड्डी	250.00
संवाद : साहित्यकारों से ● डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैया'	200.00
उत्तरोत्तर ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)	250.00

बाल-साहित्य

धरती पर चाँद (पुरस्कृत) ● शंभूनाथ तिवारी	150.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) ● डॉ० बलजीतसिंह	150.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) ● डॉ० बलजीतसिंह	150.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) ● डॉ० बलजीतसिंह	200.00
दिन बचपन के (बालगीत) ● डॉ० बलजीतसिंह	200.00
जादूगर बादल (बालगीत) ● विनोद भुंग	150.00
आटे-बाटे दही चटाके (शिशुगीत) ● बालकृष्ण गर्ग	150.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) ● गीतिका गोयल	150.00
किशोर मन की कहानियाँ ● डॉ० सरला अग्रवाल	150.00
चलो आकाश को छू लें ● डॉ० तारादत्त निर्विरोध	200.00
मानव-विकास की कहानी ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
पार्टी गेम्स ● चाँदनी कक्कड़	125.00
कागज की नाव ● डॉ० सरोजनी कुलश्रेष्ठ	150.00

विविध

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति ● नवलकिशोर शर्मा	150.00
उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन ● डॉ० सरिता शाह	200.00
● निश्चल खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
नारी : कल और आज	300.00

● निश्तर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे	125.00
हिंसा : कैसी-कैसी	200.00
● रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन ● डॉ० गिरिराज शाह	200.00
गुरु नानकदेव ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	250.00
वेद-वेदान्त दर्शन ● डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व ● डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
कन्हैया गीता ● डॉ० मूलचन्द दालभ	900.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स ● डॉ० गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी ● मनोज भारद्वाज	300.00
समुद्री दैत्य सुनामी ● डॉ० लालबहादुर रावल	300.00
Ecosystem in The Central Himalyas ● Dr.Vikram Singh IPS	200.00

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०)

फोन : 01342-263232, 0124-4076565,
09412712789, 07838090732